राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्त

सरल पाठ्यक्रम

पी. निकितिन

पीपुल्स

विषयसूची

उत्पादन की कम्युनिस्ट पद्धति

राजनीतिक अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु

विश्व का ज्ञान प्राप्त करना अनेक विज्ञानो का लक्ष्य है। कुछ विज्ञान प्रकृति के व्यापारो का अध्ययन करते हैं और कुछ विज्ञान समाज का अध्ययन करते हैं। प्रकृति का अध्ययन करने वाले विज्ञान प्राकृतिक विज्ञान कहलाते हैं। जो विज्ञान सामाजिक विकास के विभिन्न पहलुओ का अध्ययन करते हैं, वे सामाजिक विज्ञान कहलाते हैं। राजनीतिक अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र मार्क्सवाद-लेनिनवाद के समन्वित विज्ञान का एक हिस्सा है।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद समाज-विकास के नियमो, समाजवादी क्रान्ति और सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व और समाजवादी एव कम्युनिस्ट समाज के निर्माण से सम्बधित विज्ञान है। यह तीन तत्वो का—दर्शन, राजनीतिक अर्थशास्त्र और वैज्ञानिक कम्युनिज्म के सिद्धान्त का एक समन्वित विज्ञान है। *राजनीतिक अर्थशास्त्र मार्क्सवाद-लेनिनवाद का एक महत्वपूर्ण अग है,* क्योकि वह मानव समाज की जिन्दगी की बुनियाद के बारे मे विचार करता है।

भौतिक सम्पदा का उत्पादन सामाजिक जीवन का आधार

युगो से लोग मानव समाज के विकास के कारणो पर विचार करते आये हैं। कई दृष्टिकोण सामने रखे गये हैं। धार्मिक प्रवक्ताओ ने सदा यह दावा किया है कि सभी तरह के विकास ईश्वरेच्छा के परिणाम हैं। पर विज्ञान और व्यवहार ने यह सिद्ध कर दिया है कि कोई आलौकिक शक्तियां नहीं हैं। पहले एक ऐसा भी विचार था और जिसे आज भी बहुतेरे पूजीवादी विद्वान मानते हैं, वह यह है कि समाज का विकास निर्णायक तौर पर भौगोलिक वातावरण, यानी निश्चित प्राकृतिक स्थितियो (जलवायु, मिट्टी, खनिज पदार्थ आदि) पर निर्भर होता है। किन्तु,

ात यह है कि भौगोलिक वातावरण समाज-विकास की निर्णायक
ही, बल्कि एक आवश्यक स्थिति मात्र है। पिछले तीन हजार वर्षों
यूरोप में क्रमिक रूप से तीन समाज-व्यवस्थाओं और मध्य एवं पूर्वी
ार समाज-व्यवस्थाओं का अस्तित्व रहा है, यद्यपि इस अवधि में वहां
क स्थितियां या तो बदली ही नहीं हैं या इतनी कम बदली हैं कि
उन पर ध्यान तक नहीं देते। कुछ लोग सोचते हैं कि इतिहास की
दिशा सिर्फ महान हस्तियों को—राजनीतिज्ञों, सेनाधिकारियों की
ही निर्भर है। वास्तविकता यह है कि ये हस्तियां घटनाओं की गति
ास तौर पर तीव्र या मन्द कर देती हैं लेकिन वे इतिहास की धारा
में असमर्थ हैं।

व कौन-सी बात समाज-विकास की दिशा को निर्धारित करती है?
पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इस प्रश्न का सही उत्तर दिया।

िन्दा रहने के लिए लोगों को खाना, कपड़ा, घर तथा अन्य भौतिक
ी जरूरत होती है और इनको प्राप्त करने के *लिए लोगों को इनका*
रना पड़ता है। तात्पर्य यह कि लोगों को काम करना पड़ता है।
माज यदि भौतिक सम्पदा का उत्पादन बन्द कर दे, तो वह वह
मन मार्क्स का कहना है कि भौतिक सम्पदा का उत्पादन ही जीवन
ज के विकास की बुनियाद है।

भौतिक सम्पदा के उत्पादन का क्या अर्थ है? भौतिक सम्पदा के
की प्रक्रिया में मानव श्रम, श्रम के साधन और श्रम के विषय शामिल हैं।
श्रम भौतिक सम्पदा के उत्पादन के लिए की गयी उद्देश्यपूर्ण क्रिया है।
प्रक्रिया में मनुष्य प्रकृति की वस्तुओं को अपनी आवश्यकतानुकूल बनाने
कार्य करता है। श्रम करना केवल मनुष्य का ही गुण है। यह एक
स्वाभाविक आवश्यकता और मनुष्य जीवन के अस्तित्व के लिए प्राथमिक
जैसा कि एंगेल्स ने कहा है, स्वयं मनुष्य की उत्पत्ति श्रम द्वारा

श्रम के साधनों के बिना उत्पादन की प्रक्रिया की कल्पना भी नहीं की
ी। "श्रम के साधन" शब्दावली का प्रयोग उन सभी वस्तुओं को सूचित
लिए होता है जिनकी सहायता से लोग श्रम के विषयों पर काम कर
परिवर्तित करते हैं। श्रम के साधनों के अन्तर्गत मशीन और साज-सामान,
और सबद्ध साधन, उत्पादन के कार्य के लिए उपयोग में आने वाले
परिवहन की सुविधाएं, नहरें, विद्युत-प्रवाह की लाइनें आदि आती
ि की श्रम का एक महत्वपूर्ण स्थान है। श्रम के साधनों व उत्पादन

के उपकरण निर्धारित हिस्सा अदा करते हैं। प्रकृति को प्रभावित करने व
मनुष्य की शक्ति उसके द्वारा प्रयोग किये जाने वाले उपकरणो पर निर्भर
आदिम समाज मे मनुष्य पत्थरो और डडो को उत्पादन के साधनो के रू
इस्तेमाल किया करता था। अतएव प्रकृति के सामने वह बहुत ही अस
था। आज का मानव शक्तिशाली यत्रो की सहायता से काम करता है
प्रकृति पर उसका अधिकार बेहद बढ गया है। मार्क्स ने बतलाया कि आ
युगो को एक-दूसरे से अलग इस आधार पर नही किया जाता कि किस यु
क्या उत्पन्न होता है, बल्कि भौतिक सम्पदा के उत्पादन के लिए प्र
उपकरणों के आधार पर अलग किया जाता है।

लोग अपने उत्पादन के उपकरणो के द्वारा श्रम के विषयों पर (य
उन सभी चीजो पर जिन पर मनुष्य अपना श्रम लगाता है) काम करते
चूकि इस श्रम का प्रयोग वे अपने इर्द-गिर्द की प्रकृति पर करते है, इस
प्रकृति (भूमि और भूगर्भ) स्वय श्रम का एक सर्वव्यापी विषय है। श्र
सभी प्राथमिक विषय प्रकृति मे मौजूद हैं। मनुष्य को उन्हे अपनी आवश्यकत
के अनुकूल बनाना होता है।

श्रम के साधन और श्रम के विषय के सम्मिलित रूप को उत्पादन
साधन कहते हैं। स्पष्ट है कि उत्पादन के साधन स्वय भौतिक सम्पदा
उत्पादन नही कर सकते। अगर इस्तेमाल करने वाले लोग न हो तो उत
तकनीकी उपकरण भी बेकार हैं। अत सभी प्रकार के उत्पादनों मे निश्चयात
तत्व स्वय मनुष्य है, उसकी श्रम-शक्ति है।

उत्पादक शक्तिया और उत्पादन के सम्बध

उत्पादन के विकास का जो भी स्तर हो, पर उत्पादन के सद
पहलू होते हैं उत्पादक शक्तिया और उत्पादन के सम्बध। उत्पादक शक्ति
के अन्तर्गत समाज द्वारा निर्मित उत्पादन के सा
जिनमे श्रम के उपकरण मुख्य हैं, और भौतिक सम
उत्पन्न करने वाले लोग भी आते हैं। लोग ही अ
अर्जित ज्ञान, अनुभव और श्रम-दक्षता के
उत्पादन के उपकरणो को व्यवहार मे लाते हैं,
उन्नत बनाते है, मशीनो का आविष्कार करते हैं तथा अपने ज्ञान मे वृद्धि क
हैं। इस तरह से उत्पादक शक्तियों का विकास सुनिश्चित होता है और भौ
सम्पदा की उत्तरोत्तर बढती हुई मात्रा प्राप्त होती है।

लेकिन लोग एक-दूसरे से अलग काम करके भौतिक सम्पदा का उत्प
नहीं करते, बल्कि सामाजिक तौर पर समूहों मे रहकर काम करते
उदाहरण के लिए जूते के एक आधुनिक कारखाने को ले लें। यहां हम वि

करते हुए पाते हैं ?
को एक ही वस्तु, जूते के उत्पादन के लिए काम करते हुए पाते हैं ?
ो या हजारो से भी अधिक दूसरे लोग उस कारखाने के लिए मशीनें,
डा, धागा, सुई, इत्यादि उत्पन्न करने मे लगे हैं। छोटा किसान भी दुनिया
अलग रहकर अनाज का उत्पादन नही करता । किसान को हल की
रूरत होती है। हल गाव का दस्तकार बनाता है या कारखाने में बनता है।
सान को नमक, दियासलाई, साबुन, इत्यादि की आवश्यकता होती है जिन्हें
सरे लोग उत्पन्न करते हैं। फलस्वरूप भौतिक सम्पदा के उत्पादन की प्रक्रिया
लोग एक-दूसरे से सम्बद्ध या एक-दूसरे पर अवलम्बित होते हैं और एक-दूसरे
से निश्चित सम्बधो द्वारा जुडे होते हैं ।

भौतिक सम्पदा के उत्पादन, वितरण और विनिमय की प्रक्रिया में लोगो के बीच जो सम्बध बनते हैं, उन्हें मार्क्स ने उत्पादन सम्बंधो या आर्थिक सम्बंधों का नाम दिया । शोषण से यानी मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण से मुक्त लोगो के बीच उत्पादन सम्बध सहयोग या पारस्परिक सहायता का रूप ले सकते हैं। उत्पादन सम्बधो का स्वरूप इस बात पर निर्भर करता है कि उत्पादन के साधनो—भूमि और उसकी खनिज सम्पदा, वन, कारखाने और वर्कशाप, श्रम के उपकरण, इत्यादि पर किसका स्वामित्व है । जब उत्पादन के साधनो पर सम्पूर्ण समाज का नही, अपितु अलग-अलग व्यक्तियो, सामाजिक समूहो या वर्गों का निजी स्वामित्व रहता है, तब जो सम्बध बनते हैं वे मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण, आधिपत्य तथा अधीनता के होते हैं। चूंकि पूजीवाद के अन्तर्गत मजदूर उत्पादन के साधनो से वचित होते हैं, इसलिए उन्हें पूजी-पतियों के लिए काम करने को मजबूर होना पडता है। समाजवाद मे उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व होता है। परिणामस्वरूप मनुष्य द्वारा मनुष्य का कोई शोषण नही होता और लोगो के बीच सौहार्दपूर्ण सहयोग और समाज[illegible] यानी सहायता के सम्बध होते हैं ।

उत्पादन के साधनो मे लोगो का सम्बध ही उत्पादन मे उनके स्थ[illegible] एवं श्रम के उत्पादन के वितरण के तरीकों को निर्धारित करता है। उदाह[illegible] के तौर पर पूजीवाद को लें। पूजीवाद मे पूजीपति वर्ग, जिसका उत्पादन [illegible] साधनों पर स्वामित्व होता है, मजदूरो का सम्पूर्ण उत्पादन हडप जाता [illegible] जबकि दूसरी ओर बहुसख्यक मजदूर गरीबी की जिन्दगी बसर करते [illegible] समाजवाद में, जहां उत्पादन के साधनों पर जनता का अधिकार हो[illegible] (यानी जहां वे समाज की सम्पत्ति होते हैं), उपभोक्ता वस्तुओं का [illegible] उत्पादन की प्रक्रिया में लोगों द्वारा लगाये गये श्रम के अनुपात में हो[illegible] [illegible] जीवनयापन के भौतिक और सांस्कृ[illegible]
[illegible] समस्त मेहनतकश जनता के

मे निरन्तर वृद्धि सुनिश्चित होती है। लोगो के आपसी उत्पादन (या आर्थिक) सम्बधो का यही मतलब है।

मानव इतिहास को पांच तरह के बुनियादी उत्पादन सम्बध ज्ञात हैं। वे हैं : आदिम समाज, दासता, सामन्तवाद, पूजीवाद और कम्युनिज्म के प्रथम चरण समाजवाद के उत्पादन सम्बध। इनमे से प्रत्येक की विशेषता होती है : उत्पादन के साधनो और उपकरणो पर स्वामित्व का निश्चित स्वरूप। इस प्रकार दासता, सामन्तवाद और पूजीवाद मे उत्पादन सम्बधो का आधार उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व है। निजी स्वामित्व ने समाज को सदा दो परस्पर विरोधी वर्गों—शोषकों और शोषितो मे बांटा है और अब भी बांट रहा है। इसीलिए हिंसापूर्ण वर्ग सघर्ष दासता, सामन्तवाद और पूजीवाद का एक बुनियादी लक्षण है। सिर्फ समाजवाद मे ही, जहां उत्पादन सम्बधों का आधार उत्पादन के साधनो पर सामूहिक, समाजवादी स्वामित्व होता है और जहां वर्ग सघर्ष नही होना, समाज मैत्रीपूर्ण वर्गों—मजदूरो और किसानो तथा सामाजिक श्रेणी के रूप मे बुद्धिजीवियो को लेकर बना होता है।

उत्पादक शक्तियो और उत्पादन सम्बधो के योग को उत्पादन पद्धति कहा जाता है।

उत्पादन पद्धति

- उत्पादक शक्तियां
  - उत्पादन के साधन
  - उत्पादन सम्बंधी अनुभव प्राप्त लोग और दक्ष श्रम
- उत्पादन के सम्बध
  - उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के रूप
  - समाज में विभिन्न वर्गों एवं सामाजिक समूहों के स्थान और उनके आपसी सम्बध
  - भौतिक सम्पदा के वितरण के रूप
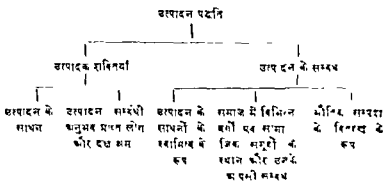
यद्यपि उत्पादन पद्धति मे उत्पादक शक्तियां और उत्पादन सम्बध दोनों शामिल होते है, तथापि ये दोनों उत्पादन पद्धति के दो अलग-अलग पहलू होते है। इन दोनो का एक-दूसरे पर प्रभाव पड़ता है और उनकी एक-दूसरे पर प्रतिक्रिया होती है। उत्पादक शक्तियां और उत्पादन सम्बध उत्पादन के विकास की प्रक्रिया के दौरान विकसित होते है।

पुराने सड़े-गले उत्पादन सम्बंध उत्पादक शक्तियों के विकास के मार्ग में रुकावट डालते हैं। उनको बदलने के लिए एक ऐसी सामाजिक शक्ति की जरूरत है जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को खत्म करे। पूजीवादी समाज मे मजदूर वर्ग ऐसी ही एक शक्ति है। अपने मित्र किसानो के साथ मिलकर मजदूर वर्ग शोषण को समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील है।

सिर्फ समाजवादी समाज मे ही जहां कोई परस्पर विरोधी वर्ग नही होते, उत्पादन के सम्बंध सामाजिक क्रान्ति के द्वारा नहीं, बल्कि उत्पादक शक्तियों के विकास के अनुकूल उनको नियोजित ढंग से परिवर्तित करके विकसित होते हैं।

उत्पादन पद्धति को समाज के आधार से अलग करके देखना चाहिए। किसी भी समाज मे उत्पादक शक्तियो के तत्कालीन स्तर के अनुकूल, उत्पादन सम्बन्धो का कुल योग ही आधार कहा जाता है। समाज का आधार या तो विग्रहपूर्ण या अविग्रहपूर्ण होता है। दास, सामन्तवादी और पूजीवादी समाज स्वभावत मौलिक रूप से विग्रहपूर्ण होते है, क्योकि वे उत्पादन के साधनो के निजी स्वामित्व, आधिपत्य तथा अधीनता और मनुष्य का मनुष्य द्वारा शोषण पर आधारित होते हैं। समाजवादी समाज अविग्रहपूर्ण होता है, क्योकि वह शोषण की अनुपस्थिति मे उत्पादन के साधनो के सामाजिक स्वामित्व पर आधारित होता है।

आधार अपने अनुकूल ही ऊपरी ढाचे को जन्म देता है और इसके विकास को निर्धारित करता है। ऊपरी ढाचे का मतलब समाज के राजनीतिक, दार्शनिक, न्यायिक, कलात्मक, धार्मिक तथा अन्य विचारो एव उनके अनुरूप संस्थाओं से है। वर्ग समाज मे ऊपरी ढाचे का भी एक वर्ग-चरित्र होता है। शासक वर्ग अपने विचारो के अनुरूप अपने वर्ग स्वार्थों की रक्षा के लिए संस्थाओं का निर्माण करता है।

आधार और ऊपरी ढाचा दोनो एक निश्चित अवधि तक ही मौजूद रहते हैं। जब आधार बदलता है, तो उसका ऊपरी ढाचा भी बदलता है। अतः सामन्तवादी आधार मे परिवर्तन और उसके स्थान पर पूजीवाद के आगमन के परिणामस्वरूप सामन्तवादी ऊपरी ढाचे का स्थान पूजीवादी ऊपरी ढाचे ने ले लिया। समाजवादी आधार के उदय के साथ समाजवाद के ऊपरी ढाचे का आगमन हुआ और उसने पूजीवादी ऊपरी ढाचे को विनष्ट कर दिया। यद्यपि ऊपरी ढाचे को पूर्ण रूप मे आधार ही जन्म देता है, तथापि पुराने समाज में नये ऊपरी ढाचे के विभिन्न तत्व उदित हो सकते हैं, क्योकि पुराने समाज मे ही उन्नत वर्ग के विचार और दृष्टिकोण जन्म ले लेते हैं। उदाहरण के तौर पर

आर्थिक नियम समाज के विकास के आधार होते हैं। ये नियम लोगों के बहुविध पारस्परिक सामाजिक-आर्थिक सम्बधो, यानी उत्पादन, वितरण, विनिमय और उपभोग के क्षेत्र मे बनने वाले सम्बधो को निर्धारित करते हैं। सामाजिक विकास के आर्थिक नियमो का अन्वेषण विज्ञान के रूप मे राजनीतिक अर्थशास्त्र के लिए बड़े ही महत्व का है।

प्रकृति और समाज के नियम वस्तुगत होते हैं, यानी उनका उदय और परिचालन हमारी भिज्ञता और अनभिज्ञता से परे तथा हमारी इच्छाओं और अनिच्छाओं से स्वतन्त्र है। इसका मतलब है कि लोग इन नियमो मे कोई हेर-फेर और परिवर्तन नहीं कर सकते हैं। वे न इनका निराकरण कर सकते हैं, न नये नियमों का सृजन ही। इन नियमो के वस्तुगत होने का यह मतलब नही है कि लोग इनके सामने निस्सहाय हैं। वे इन्हे जान सकते हैं और इनका उपयोग समाज के हित मे कर सकते है। समाजवादी देशो के सर्वहारा वर्ग ने इस नियम को समझ लिया कि उत्पादन के सम्बध उत्पादक शक्तियो के स्वभाव के अनुकूल होते है। इसके बाद उसने किसानो के साथ एकजुट होकर कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियो के नेतृत्व मे शोषको की सत्ता को उखाड फेंका और एक नये समाज का निर्माण प्रारम्भ किया।

आर्थिक नियमों के ऐसे भी लक्षण हैं जिनका प्रकृति के नियमो मे होना जरूरी नही है। पहला लक्षण यह है कि वे अपेक्षाकृत अल्पकालीन होते हैं और एक निश्चित ऐतिहासिक अवधि मे ही परिचालित होते हैं। निश्चित आर्थिक स्थितियां, या यो कहे कि वे उत्पादन सम्बध जिन पर समाज आधारित है, आर्थिक नियमो के परिचालन के आधार होते हैं। एक सरचना से दूसरी संरचना की ओर सक्रमण के दौर मे उत्पादन के पुराने सम्बधो का उन्मूलन होता है और नये सम्बंध उनकी जगह लेते हैं। इसी कारण एक प्रकार के आर्थिक नियम लुप्त होते और दूसरे प्रकार के आर्थिक नियम उदित होते हैं।

पूजीवाद के अन्तर्गत उत्पादन सम्बधो का आधार उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व होता है। इसलिए पूजीपति मजदूर वर्ग का शोषण करने तथा अपनी समृद्धि बढाने और अधिकाधिक मुनाफा जोडने के उद्देश्य से उत्पादन का विकास करते हैं। इसी कारण अधिशेष मूल्य का उत्पादन पूंजीवाद का एक वस्तुगत आर्थिक नियम है।

इतना ही नही, उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व होने के कारण पूजीपति उत्पादन की उन्ही शाखाओ को विकसित करता है जिनसे उसे अधिक मुनाफा मिल सके। इस तरह पूजीवाद के अन्तर्गत नियोजित आर्थिक विकास के लिए कोई सम्भावना नही रह जाती। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था प्रतियोगिता

और उत्पादन की अराजकता के आधार पर विकसित होती है। फलस्वरूप, प्रतियोगिता और उत्पादन की अराजकता भी पूंजीवाद का एक वस्तुगत नियम है।

उत्पादन के साधनों पर से निजी पूंजीवादी स्वामित्व को खत्म करने के बाद, पूंजीवाद के आर्थिक नियम काम करना बन्द कर देते हैं। समाजवादी देशों में उत्पादन के साधनों पर से पूंजीवादी निजी स्वामित्व के खात्मे के बाद नये आर्थिक नियमों का जन्म हुआ और पुराने नियमों ने काम करना बन्द कर दिया।

उत्पादन के समाजवादी सम्बंध उत्पादन के साधनों पर सार्वजनिक समाजवादी स्वामित्व पर आधारित होते हैं। समाजवाद के अन्तर्गत स्वयं मेहनतकश जनता ही उत्पादन के साधनों की स्वामी होती है। वह अपने और समाज के हित के लिए कार्य करती है। इसीलिए समाजवादी देशों में उत्पादन के विकास का उद्देश्य समाज की भौतिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं की अधिकाधिक पूर्ति करना होता है। **समाज की भौतिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं की उत्तरोत्तर पूर्ण सन्तुष्टि समाजवाद का एक वस्तुगत आर्थिक नियम है।**

उत्पादन के साधनों का सार्वजनिक समाजवादी स्वामित्व सम्पूर्ण समाजवादी अर्थव्यवस्था को एक सूत्र मे पिरो देता है। ऐसी अर्थव्यवस्था योजनाबद्ध होकर ही विकसित हो सकती है। **राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का सन्तुलित रूप से नियोजित विकास समाजवाद का एक वस्तुगत नियम है।**

प्रत्येक सामाजिक-आर्थिक सरचना मे बहुत से आर्थिक नियम काम करते हैं। जो नियम सिर्फ एक ही सरचना विशेष मे लागू होते हैं, उन्हें विशिष्ट नियम कहा जाता है। उनमें से भी हम बुनियादी नियमों को अलग कर सकते हैं जो समाज के मुख्य लक्ष्य और उसे प्राप्त करने के उपाय और साधन को निर्धारित करते हैं।

इन विशिष्ट आर्थिक नियमों के अतिरिक्त अन्य नियम भी होते हैं जो आम तौर पर सभी सामाजिक-आर्थिक सरचनाओ पर लागू होते हैं। इनमे वह नियम भी है जिसके अनुसार उत्पादन सम्बंध उत्पादक शक्तियों की प्रकृति के अनुकूल होते हैं। यह सामाजिक उत्पादन के दोनों पहलुओं, यानी उत्पादक शक्तियो और उत्पादन सम्बधों के बीच के आवश्यक रिश्तों और उनकी एक-दूसरे पर निर्भरता को व्यक्त करता है।

आर्थिक नियमों का दूसरा लक्षण उनका सामाजिक हित मे प्रयोग किये जाने से सम्बधित है। इसका अभिप्राय है कि प्राकृतिक विज्ञान के नियमों (जहां किसी भी नये नियम का अन्वेषण और प्रयोग कमोबेश आसानी से होता

| के प्रतिकूल आर्थिक नियमों का अन्वेषण और प्रयोग पुरानी पड गयी शक्तियों
जबर्दस्त विरोध के बावजूद होता है। वर्ग समाज मे आर्थिक नियमो के प्रयोग
। एक वर्ग-चरित्र भी होता है।

ये आर्थिक नियमो को प्राकृतिक नियमो से अलग करने वाले विशेष
क्षण हैं।

उत्पादन की सभी पद्धतियों मे आर्थिक नियम स्वत परिचालित हो
कते हैं या "मान्य आवश्यकताओ" के रूप में जानबूझ कर प्रयुक्त किये जा
कते हैं।

विग्रहपूर्ण सामाजिक-आर्थिक सरचनाओ मे जहा उत्पादन के साधनों
र निजी स्वामित्व होता है, आर्थिक नियम बिना अपनी मान्यता का विचार
न्ये अन्धाधुन्ध रूप में परिचालित होते हैं। मिसाल के तौर पर, पूजीवाद मे
त्पादन की प्रक्रिया का चरित्र सामाजिक है और उसकी सभी शाखाए एक-
सरे से सम्बधित और अन्योन्याश्रित हैं। लेकिन उत्पादन का यह सामाजिक
रित्र निजी सम्पत्ति पर आधारित है। इसका मतलब है कि प्रत्येक पूजीपति
पने उद्यम मे समृद्धिशाली होने के अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ही
यत्नशील रहता है और अधिकतम मुनाफा कमाना चाहता है। उत्पादन की
विभिन्न शाखाओ मे आवश्यक सम्बध और अनुपात स्वत स्फूर्त ढग से अनन्त
एव निरन्तर विचलनों के द्वारा स्थापित होते हैं। कभी ढेर सारी वस्तुओ का
उत्पादन होता है, तो कभी बहुत ही थोडी वस्तुओ का। अत आर्थिक नियम
पूजीपति के नियत्रण से परे काम करते है। यह सच है कि कुछ पूजीपति
पूजीवाद के आर्थिक नियमो की समझदारी हासिल कर सकते हैं, पर वे भी
उनके परिचालन के स्वत स्फूर्त चरित्र को बदल नही सकते।

समाजवाद मे आर्थिक नियमो की सही समझदारी प्राप्त होती है और
उनका प्रयोग सोच-समझकर समाज के हित मे किया जाता है। यह उत्पादन के
साधनो पर सामाजिक स्वामित्व होने के कारण ही सम्भव है।

समाजवाद के अन्तर्गत काम करने वाले अधिकाश वस्तुगत आर्थिक
नियमो की स्थापना सभी मेहनतकशो के चेतन, सगठित और सक्रिय कार्यों के
आधार पर होती है। समाजवादी देशो मे कम्युनिस्ट निर्माण कार्य के लिए
वस्तुगत आर्थिक नियमो का ज्ञान प्राप्त करने और इस्तेमाल करने मे कम्युनिस्ट
एव मजदूर पार्टिया बहुत बडी भूमिका अदा करती हैं।

राजनीतिक अर्थशास्त्र सामाजिक विकास के आधार के ऊपर विचार
करने वाला विज्ञान है। यह आधार है भौतिक सम्पदा का उत्पादन या
उत्पादन पद्धति। राजनीतिक अर्थशास्त्र उत्पादन की प्रक्रिया मे लोगो के बीच

राजनीतिक अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु

बनने वाले सम्बन्धों की दृष्टि से ही उत्पादन का अध्ययन करता है। यह समाज के आधार के रूप में अध्ययन करता है। लेनिन के अनुसार राजनीतिक अर्थशास्त्र का सम्बन्ध उत्पादन से नहीं, बल्कि उत्पादन करने वाले लोगों के सामाजिक सम्बन्धों, यानी उत्पादन की सामाजिक पद्धति से होता है।[1] दूसरी तरफ राजनीतिक अर्थशास्त्र उत्पादक शक्तियों और उत्पादन सम्बन्धों के बीच के सम्बन्ध पर विचार किये बिना नहीं रह सकता और न ही यह उत्पादक शक्तियों को पूरी तरह छोड़ सकता है, क्योंकि यह आधार से ही पैदा होता है और उसे प्रवर्तक रूप से प्रभावित करता है।

अतः राजनीतिक अर्थशास्त्र की विषय-वस्तु लोगों के बीच का उत्पादन (आर्थिक) सम्बन्ध होता है। इसके अन्तर्गत उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के प्रकार, उत्पादन की प्रक्रिया में विभिन्न सामाजिक श्रेणियों का स्थान और उनके आपसी सम्बन्ध तथा भौतिक सम्पदा के वितरण के प्रकार आते हैं।

दूसरे शब्दों में, राजनीतिक अर्थशास्त्र लोगों के बीच सामाजिक उत्पादन (यानी आर्थिक) सम्बंधों के विकास का विज्ञान है। यह उन नियमों की व्याख्या करता है जो मानव समाज में उसके विकास की विभिन्न मंजिलों में भौतिक सम्पदा के उत्पादन और वितरण को नियमित करते हैं।

राजनीतिक अर्थशास्त्र की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि यह एक ऐतिहासिक विज्ञान है। इससे पता चल जाता है कि किस प्रकार समाज निम्न-तर अवस्था से उच्चतर अवस्था की ओर विकसित होता है और किस प्रकार ऐतिहासिक विकास का सम्पूर्ण क्रम अवश्यम्भावी रूप से उत्पादन की कम्युनिस्ट पद्धति की विजय का मार्ग प्रशस्त करता है।

राजनीतिक अर्थशास्त्र एक वर्गगत और पक्षधर विज्ञान है। यह व्यक्तियों एवं वर्गों के आपसी सम्बंधों के सवालों पर विचार करता है और उनके महत्वपूर्ण हितों से सम्बंधित है।

क्या पूंजीवाद का पतन और कम्युनिज्म की विजय अवश्यम्भावी है? पूंजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र स्वाभाविक रूप से इस प्रश्न का नकारात्मक उत्तर देता है, क्योंकि यह ऐसी व्यवस्था के हितों का प्रतिनिधि है जो बहुत लम्बे समय से सामाजिक विकास के मार्ग में बाधक है और जिसका पतन अवश्यम्भावी है।

---

१. लेनिन, ''संग्रहीत रचनाएं'', खंड ३, मास्को, पृष्ठ ५२-५३।

जब तक पूंजीपति वर्ग एक उन्नतिशील वर्ग था और पूंजीवाद का विकास सामाजिक प्रगति के हित मे था, तब तक पूंजीवादी अर्थशास्त्री संसार का कमोबेश वस्तुगत विश्लेषण किया करते थे। लेकिन वह समय अब गुजर गया। जब से सर्वहारा वर्ग पूंजीपति वर्ग के मुकाबले एक स्वतंत्र शक्ति के रूप मे सामने आया और वर्ग संघर्ष का विकास ऐसी मंजिल पर पहुंच गया जहां उसने पूंजीवाद के पतन की पूर्व-सूचना देना प्रारम्भ कर दिया, तब से पूंजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र ने अपना वैज्ञानिक चरित्र खो दिया। अब इसका काम सिर्फ दकियानूसी पूंजीवादी व्यवस्था की सभी प्राप्त साधनों से रक्षा करना और मजदूर वर्ग की विचारधारा का विरोध करना रह गया है।

मजदूर वर्ग के नेताओं—मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन ने सही वैज्ञानिक आधार पर राजनीतिक अर्थशास्त्र को विकसित किया।

लेनिन से पहले मार्क्सवाद ने राजनीतिक अर्थशास्त्र मे जो कुछ भी योगदान किया, वह सब मार्क्स की महान कृति पूंजी मे निहित है। यह कृति पूंजीवादी व्यवस्था के सूक्ष्म विश्लेषण पर आधारित है और वैज्ञानिक दृष्टि से पूंजीवाद के अवश्यम्भावी पतन, सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना और कम्युनिज्म की विजय को सिद्ध करती है।

नयी ऐतिहासिक परिस्थितियों मे लेनिन ने मार्क्स और एंगेल्स के काम को जारी रखा और राजनीतिक अर्थशास्त्र को ऊंचे स्तर पर पहुंचाया। लेनिन ने सबसे बड़ा काम पूंजीवाद के उच्चतम और अन्तिम चरण—साम्राज्यवाद का वैज्ञानिक विश्लेषण करने का किया। साम्राज्यवाद का यह विश्लेषण और मुख्यत. साम्राज्यवादी युग मे पूंजीवाद के विषम आर्थिक और राजनीतिक विकास के नियम का अन्वेषण सर्वहारा क्रान्ति के नये सिद्धान्त का आधार बना।

लेनिन ने दिखलाया कि क्रान्ति की विजय सर्वप्रथम एक देश या कुछ देशों मे होगी। महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की तैयारी, उसके सफल संचालन और उसके बाद सोवियत संघ मे समाजवाद की विजय के लिए किये जाने वाले संघर्ष के दौरान कम्युनिस्ट पार्टी की राजनीति एवं कार्यनीति इसी महान अन्वेषण पर आधारित थी। समाजवाद का राजनीतिक अर्थशास्त्र लेनिन के नाम के साथ जुड़ा हुआ है।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी आर्थिक सिद्धान्त का रचनात्मक विकास सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी तथा अन्य देशों की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों के निर्णयों एवं लेनिन के शिष्यों की कृतियों मे हुआ है। आम तौर पर मार्क्स-

वाद-लेनिनवाद और खास तौर पर मार्क्सवादी-लेनिनवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सृजनात्मक विकास का उदाहरण हमे सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २२वी कांग्रेस मे अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार के दौरान देखने को मिला। वे प्रश्न थे : कम्युनिस्ट समाज के दो चरण और समाजवाद से कम्युनिज्म मे विकसित होने के नियम; कम्युनिज्म के भौतिक एवं तकनीकी आधार का निर्माण, समाजवादी सम्पत्ति का विकास और उसके दो रूपो मे समन्वय; वर्ग विभेदों का उन्मूलन और पूर्ण सामाजिक समता की स्थापना, कम्युनिस्ट सामाजिक सम्बधो का निर्माण, कम्युनिज्म के बुनियादी सिद्धान्त—"प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार" का कार्यान्वियन; सास्कृतिक क्रान्ति की पूर्णता और नये आदमी का निर्माण। कम्युनिज्म मे सन्तरण के दौर मे समाज के राजनीतिक सगठन की समस्याओं का भी इसमे विशेष विवेचन किया गया।

तब, राजनीतिक अर्थशास्त्र का क्या महत्व है ?

यह मजदूर वर्ग और सभी मेहनतकशो को समाज के आर्थिक विकास के नियमो से अवगत कराता और उन्हे इन नियमों को सफलतापूर्वक समझने मे समर्थ बनाता है। पूजीवादी देशो के मेहनतकशो को यह उनकी गुलामी, गरीबी और अभाव के कारण बतलाता है। यह बतलाता है कि मजदूर वर्ग और समस्त मेहनतकश जनता के उत्पीड़न और गरीबी का कारण कोई आकस्मिक घटना या व्यक्तिगत पूंजीपतियो का मनमाना शासन नही है, बल्कि सम्पूर्ण पूजीवादी व्यवस्था है। अतएव निर्मम वर्ग सघर्ष, पूजीवाद का उन्मूलन और सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना ही मेहनतकश जनता को शोषण से मुक्त कर सकते हैं।

आर्थिक रूप से पिछडे हुए जनगण को मार्क्सवादी-लेनिनवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र उनके पिछडेपन और गरीबी का कारण बतलाता है। यह बताता है कि उपनिवेशों एव गुलाम देशों मे जनगण के शोषण और लूट के लिए साम्राज्यवाद और औपनिवेशिक व्यवस्था जिम्मेदार है। सदियो से मुट्ठी-भर साम्राज्यवादी देशो ने हिंसा और धोखेबाजी से मानवजाति के विशाल बहुमत को उपनिवेशो मे अपनी अधीनता की स्थिति मे रखा है या यों कहे कि वास्तव मे उन्हे अपना गुलाम बना रखा है। साम्राज्यवाद और उसके अन्य रूपों के विरुद्ध सुदृढ सघर्ष ही इन लोगो को राष्ट्रीय स्वतत्रता एव प्रगति के पथ पर अग्रसर कर सकता है।

राजनीतिक अर्थशास्त्र पूंजीवाद के चंगुल से मुक्त देशों को समाजवाद
र कम्युनिज्म की दिशा बतलाता है। यह बतलाता है कि समाजवादी अर्थ-
वस्था पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की तुलना में क्यों लाभप्रद है। यह कम्युनिज्म
विजय की अनिवार्यता को भी सिद्ध करता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था
नियमों की जानकारी जनता को कम्युनिज्म के निर्माण कार्य में चेतन-मन से
मिल होने का अवसर प्रदान करती है, मेहनतकश जनता को पहल करने के
ए प्रोत्साहित करती है, अधिक उत्पादक काम करने की शिक्षा देती है और
भी मेहनतकशों को कम्युनिस्ट समाज के सक्रिय निर्माता बनने के लिए
त्साहित करती है।

सर्वहारा वर्ग और समस्त मेहनतकश जनता के हाथों में मार्क्सवादी-
निनवादी राजनीतिक अर्थव्यवस्था शान्ति, जनवाद और समाजवाद के लिए
घर्ष में एक शक्तिशाली उपकरण है।
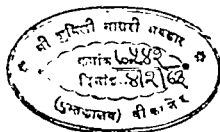
अध्याय १

पूंजीवाद से पहले की उत्पादन की पद्धतियां

इस अध्याय में हम संक्षेप में आदिम सामुदायिक, दास और सामन्तवादी उत्पादन पद्धति के उदय, विकास और पतन पर विचार करेंगे।

१. उत्पादन की आदिम-सामुदायिक उत्पादन पद्धति

करीब ६ करोड वर्ष पहले धरती पर जिन्दगी की शुरूआत हुई। प्रथम मानव का जन्म करीब १० लाख वर्ष पहले हुआ।

विज्ञान बतलाता है कि किस प्रकार आदमी धरती पर आया। यूरोप, एशिया और अफ्रीका के विभिन्न भागो मे जहां उष्ण जलवायु थी, वहा विकसित प्रकार या जाति के नरवानर रहते थे। बहुत लम्बे विकास के क्रम में इन्ही नरवानरों से मनुष्य का उदय हुआ। जानवर और आदमी के बीच बुनियादी फर्क तब आया जब आदमी श्रम करने के लिए औजार (शुरू-शुरू मे बहुत ही आदिम किस्म के) बनाने लगा। श्रम करने के लिए औजारों के बनने के साथ मानवीय श्रम का उदय हुआ। इसी श्रम के कारण नरवानर के अगले पैर धीरे-धीरे आदमी के बाहुओं के रूप मे परिवर्तित हो गये। श्रम करने के लिए बाहुओं और हाथो के स्वतत्र हो जाते ही आदमी के आदिम पुरखे सीधे खडे होकर चलने लगे। औजारो के बनते ही आदिम मानवों के बीच एक-दूसरे से (श्रम करने के औजारों के इस्तेमाल के दौरान) बातचीत करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। अतएव मुखर भाषा ने जन्म लिया। श्रम और मुखर भाषा का मस्तिष्क के विकास मे निर्णायक प्रभाव रहा। स्पष्ट है कि श्रम ने ही आदमी को . दिया और वही मानव समाज के जन्म और विकास का मुख्य स्रोत है।

प्रथम सामाजिक-आर्थिक संरचना आदिम-सामुदायिक व्यवस्था थी जो लाखों-हजारों वर्षों तक विद्यमान रही। वह मानव समाज के उदय का द्योतक है। प्रारम्भ में मनुष्य अर्द्ध-बर्बर अवस्था में थे। वे प्राकृतिक शक्तियों के समक्ष निरीह थे। वे कन्द, जंगली फल, बेर, पौधों की जड़, इत्यादि जमा करते थे। मुख्य रूप में वे शाकाहारी भोजन पर ही जीवन व्यतीत करते थे।

मनुष्य के प्रारम्भिक उपकरण खुरदरे कटे हुए पत्थर और डंडे थे। आगे चलकर लोगों ने अपने अनुभवों से आक्रमण करने, काटने और खोदने के लिए सरल औजार बनाना सीखा।

अग्नि का अन्वेषण प्रकृति के विरुद्ध संघर्ष में आदिम मनुष्यों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। आग की सहायता से वे अपने भोजन में विविधता लाने में समर्थ हो सके। धनुष और तीर का आविष्कार उनके हथियारों को उन्नत करने और आदिम समाज की उत्पादक शक्तियों को विकसित करने की दिशा में एक नया सफल कदम था। अब लोग जंगली जानवरों का शिकार अधिक करने लगे। जंगली जानवरों का मांस उनके तत्कालीन भोजन का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया। आखेट के विकास ने पशु-पालन को जन्म दिया। शिकारियों ने पशु-पालन प्रारम्भ किया।

कृषि का उदय उत्पादक शक्तियों के विकास की दिशा में एक बड़ी छलांग थी। बहुत समय तक कृषि अत्यन्त आदिम थी। भार-वहन के लिए पशुओं के इस्तेमाल ने कृषि श्रम को अधिक उत्पादक बनाया तथा जुताई का कार्य शुरू हुआ। आदिम लोगों ने जिन्दगी का व्यवस्थित ढंग अपनाना प्रारम्भ किया।

आदिम समाज में उत्पादन के सम्बन्धों का निर्धारण उत्पादक शक्तियों की स्थिति के अनुसार होता था। उत्पादन के सम्बन्धों का आधार श्रम के उपकरणों और उत्पादन के साधनों पर सामुदायिक स्वामित्व था। सामूहिक स्वामित्व और उत्पादक शक्तियों के विकास के स्तर में संगति थी। श्रम के उपकरण इतने अपरिष्कृत थे कि आदिम मनुष्य उनसे अकेले प्रकृति और जंगली जानवरों के विरुद्ध संघर्ष नहीं कर सकता था। लोगों को एक साथ समुदायों (कम्यूनों) में रहना पड़ता था और मिलजुल कर अपनी अर्थव्यवस्था (शिकार करना, मछली मारना और भोजन पकाना) चलानी पड़ती थी।

उत्पादन के साधनों पर सामुदायिक स्वामित्व के साथ ही साथ व्यक्तिगत सम्पत्ति भी विद्यमान थी। यह समुदाय के व्यक्तिगत सदस्यों के अधिकार में रहने वाले श्रम के उपकरणों के रूप में थी जिनका प्रयोग वे जंगली जानवरों से अपनी रक्षा के लिए करते थे।

आदिम समाज में श्रम की उत्पादकता बहुत कम थी और जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के बाद कोई अधिशेष नहीं बचता था। श्रम साधारण सहयोग पर आधारित था। बहुत से लोग एक ही तरह का कार्य करते थे। मनुष्य द्वारा मनुष्य का कोई शोषण नहीं होता था। खाद्य पदार्थों की मात्रा बहुत कम होती थी, लेकिन उसे समुदाय के सदस्यों के बीच समान रूप से बांट दिया जाता था।

जब मनुष्य पशु-जगत से बाहर निकल रहे थे, तब वे झुंडों में रहते थे। बाद में सयुक्त अर्थव्यवस्था के उदय के साथ समाज के कुल-सगठन ने जन्म लिया। कुल-सगठन में सिर्फ रिश्तेदार ही मिलजुल कर काम करते थे। प्रारम्भ में कुल एक समूह के रूप में था जिसके सदस्यों की संख्या कुछ दर्जनों से अधिक नहीं होती थी। समय के बीतने के साथ ही यह संख्या सैंकड़ों पर पहुंच गयी। श्रम के उपकरणों के विकसित होने के साथ कुल में श्रम का स्वाभाविक विभाजन—मर्द और औरत, प्रौढ़, बालक और वृद्ध के बीच—होने लगा। मर्द मुख्य रूप से आखेट का काम करने लगे और औरतें खाद्य-हारी खाद्य पदार्थों को एकत्र करने में लग गयी। फलस्वरूप श्रम उत्पादकता में एक निश्चित वृद्धि हुई।

कुल-समाज के प्रारम्भिक काल में नारी की प्रमुख भूमिका थी। वह खाने के लिए फल-मूल, साग-सब्जी जमा करती तथा घर की व्यवस्था देखती थी। कुल मातृसत्तात्मक या मातृप्रधान था। बाद में चलकर जब पशु-पालन और खेती मर्दों के काम बन गये, तब मातृप्रधान कुल पितृप्रधान कुल बन गया। कुल में प्रधान भूमिका औरतों के बदले पुरुषों की हो गयी।

पशु-पालन और कृषि के विकास के साथ श्रम का सामाजिक विभाजन भी हुआ। समाज के एक हिस्से ने कृषि को अपनाया तो दूसरे ने पशु-पालन पर जोर दिया। कृषि से पशु-पालन का लगाव इतिहास में पहला महत्वपूर्ण सामाजिक श्रम विभाजन था।

इस कारण उत्पादकता बढ़ी। आदिम समुदायों ने तब यह महसूस किया कि उनके पास कुछ वस्तुओं की बहुत बड़ी मात्रा है जबकि अन्य वस्तुएं अपर्याप्त मात्रा में हैं। पशु-पालन और खेती में लगी जातियां आपस में अपनी वस्तुओं का विनिमय करने लगी। समय के बीतने के साथ ही लोगों ने धातुओं—ताम्बा और टीन—को पिघलाना सीखा (लौह निष्कर्षण में बाद में दक्षता हासिल की)। कांसे के श्रम उपकरण बनाना, हथियार तैयार करना और बर्तन बनाना सीखा। हाथ करघे के आविष्कार ने वस्त्र उत्पादन को जन्म दिया। बाद में समुदाय के कुछ सदस्यों ने अपने शिल्प पर अपना ध्यान केन्द्रित करना

प्रारम्भ किया। उनके द्वारा निर्मित वस्तुओं का दूसरी वस्तुओं के साथ अधिकाधिक विनिमय शुरू हो गया।

उत्पादक शक्तियों के विकास के साथ ही मनुष्यों की श्रम उत्पादकता और प्रकृति के ऊपर उनके अधिकार में वृद्धि हुई। वे अपनी आवश्यकताओं को और अच्छी तरह सन्तुष्ट करने लगे। लेकिन समाज की नयी उत्पादक शक्तियां तत्कालीन उत्पादन सम्बंधों के छोटे चौखटे में अधिक दिनों तक निर्बाध रूप में विकसित नहीं हो सकीं। सामुदायिक स्वामित्व के नियंत्रित स्वभाव और श्रम की वस्तुओं के समान वितरण ने उत्पादक शक्तियों के विकास को मन्द कर दिया। संयुक्त श्रम अनिवार्य नहीं रहा और व्यक्तिगत श्रम अधिक उत्पादक होने के कारण आवश्यक बन गया। संयुक्त श्रम के लिए उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व की आवश्यकता होती है और व्यक्तिगत श्रम के लिए निजी स्वामित्व जरूरी होता है। उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व स्थापित होते ही कुलों के बीच और कुलों के भीतर सम्पत्ति वितरण में विषमता का समावेश हुआ। समाज के अन्दर धनी और गरीब का भेद उत्पन्न हो गया।

उत्पादक शक्तियों के और विकसित होने के बाद मनुष्य ने जीवन-यापन की अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादन करना प्रारम्भ कर दिया। इन स्थितियों में अधिक श्रमिकों को काम पर लगाना सम्भव हो गया। लड़ाई के द्वारा मजदूर प्राप्त किये जाने लगे। लड़ाई में बन्दी बनाये गये लोगों को गुलाम बना लिया जाता था। प्रारम्भ में दासता पितृप्रधान (घरेलू) थी। आगे चलकर यह एक नयी समाज-व्यवस्था का आधार बनी। दास-श्रम ने विषमता को और ज्यादा बढ़ा दिया। जिन परिवारों ने दासों से काम लेना प्रारम्भ किया, वे जल्दी ही धनी बन गये। सम्पत्ति की विषमता के बढ़ने के साथ ही धनी लोगों ने सिर्फ बन्दियों को ही नहीं, बल्कि अपनी जाति के गरीब या ऋणग्रस्त लोगों को भी गुलाम बनाना प्रारम्भ कर दिया। परिणाम-स्वरूप समाज दो वर्गों—गुलाम रखने वालों और गुलामों के बीच बंट गया। मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की यहीं से शुरुआत हुई। इस काल से लेकर समाजवाद के निर्माण तक मानवजाति का सम्पूर्ण इतिहास वर्ग संघर्ष और शोषकों एवं शोषितों के बीच संघर्ष का इतिहास रहा है।

लोगों के बीच बढ़ती हुई विषमता ने शोषकों द्वारा शोषित वर्गों के दमन के एक यंत्र के रूप में राज्य को जन्म दिया। इस तरह उत्पादन की आदिम सामुदायिक पद्धति के खंडहरों पर दास प्रथा का उदय हुआ।

आदिम समाज में श्रम की उत्पादकता बहुत कम थी और जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की संतुष्ट करने के बाद कोई अधिशेष नहीं बचता था। श्रम साधारण सहयोग पर आधारित था। बहुत से लोग एक ही तरह का कार्य करते थे। मनुष्य द्वारा मनुष्य का कोई शोषण नहीं होता था। खाद्य पदार्थों की मात्रा बहुत कम होती थी, लेकिन उसे समुदाय के सदस्यों के बीच समान रूप से बांट दिया जाता था।

जब मनुष्य पशु-जगत से बाहर निकल रहे थे, तब वे झुंडों में रहते थे। बाद में सयुक्त अर्थव्यवस्था के उदय के साथ समाज के कुल-संगठन ने जन्म लिया। कुल-संगठन में सिर्फ रिश्तेदार ही मिलजुल कर काम करते थे। प्रारम्भ में कुल एक समूह के रूप में था जिसके सदस्यों की संख्या कुछ दर्जनों से अधिक नहीं होती थी। समय के बीतने के साथ ही यह संख्या सैकड़ों पर पहुंच गयी। श्रम के उपकरणों के विकसित होने के साथ कुल में श्रम का स्वाभाविक विभाजन—मर्द और औरत, प्रौढ़, बालक और वृद्ध के बीच—होने लगा। मर्द मुख्य रूप से आखेट का काम करने लगे और औरतें शाका-हारी खाद्य पदार्थों को एकत्र करने में लग गयी। फलस्वरूप श्रम उत्पादकता में एक निश्चित वृद्धि हुई।

कुल-समाज के प्रारम्भिक काल में नारी की प्रमुख भूमिका थी। वह खाने के लिए फल-मूल, साग-सब्जी जमा करती तथा घर की व्यवस्था देखती थी। कुल मातृसत्तात्मक या मातृप्रधान था। बाद में चलकर जब पशु-पालन और खेती मर्दों के काम बन गये, तब मातृप्रधान कुल पितृप्रधान कुल बन गया। कुल में प्रधान भूमिका औरतों के बदले पुरुषों की हो गयी।

पशु-पालन और कृषि के विकास के साथ श्रम का सामाजिक विभाजन भी हुआ। समाज के एक हिस्से ने कृषि को अपनाया तो दूसरे ने पशु-पालन पर जोर दिया। कृषि से पशु-पालन का लगाव इतिहास में पहला महत्वपूर्ण सामाजिक श्रम विभाजन था।

इस कारण उत्पादकता बढ़ी। आदिम समुदायों ने तब यह महसूस किया कि उनके पास कुछ वस्तुओं की बहुत बड़ी मात्रा है जबकि अन्य वस्तुएं अपर्याप्त मात्रा में हैं। पशु-पालन और खेती में लगी जातियां में अपनी वस्तुओं का विनिमय करने लगी। समय के बीतने के स
—ताम्बा और टीन—को पिघलाना सीखा (
हासिल की)। कांसे के श्रम उपकरण बनाना
बनाना सीखा। हाथ करघे के आविष्का-
बाद में समुदाय के कुछ सदस्यों ने

उत्पादन के उपकरण और मुद्रा धनी लोगों के हाथों में केन्द्रित हो गये। ब और भी गरीब होते गये और उन्हें बहुधा धनी लोगों के सामने कर्ज के हाथ पसारने को विवश होना पड़ा। अतः सूदखोरी के साथ कर्जखोरी और जन के रिश्तों ने जन्म लिया। "प्राचीन संसार में वर्ग संघर्षों ने मुख्य तौर कर्जखोरों और महाजनों के संघर्ष का रूप लिया जिसका अन्त रोम में वयन कर्जखोरों के विनाश में हुआ। उनका स्थान दासों ने लिया।"[1] बड़े ने पर दास रखने वाली अर्थव्यवस्था का उदय हुआ। धनी दास-स्वामियों किडों और कभी-कभी हजारों दासों को अपने अधिकार में कर लिया। होंने जमीन के बड़े-बड़े हिस्सों पर कब्जा कर लिया, बड़ी जायदादें बना जिन पर बहुत से दास काम करने लगे। प्राचीन रोम में उन्हें लैटफुडिया ा जाता था।

दास समाज में दास-स्वामियों का उत्पादन के साधनों (भूमि, श्रम के करण, इत्यादि) और उत्पादन करने वाले लोगों यानी दासों पर अधिकार । इसी आधार पर दास समाज में उत्पादन के सम्बन्ध बने। दास खरीद-ोख्त की वस्तु समझा जाता था। वह पूरी तरह से अपने मालिक के अधिकार होता था। दास को "वाणीयुक्त औजार" भी कहा जाता था। दास-स्वामियों नजर में दास और कुल्हाड़ी या बैल में यही फर्क था कि दास बोल सकते । अन्य बातों में वे घरेलू पशुओं, मकान, भूमि और श्रम के उपकरणों की रह ही अपने मालिक की सम्पत्ति थे।

दासों के शोषण ने अत्यन्त क्रूर रूप ले लिया था। उनके साथ पशुओं भी बुरा बर्ताव किया जाता था। चाबुक मार-मारकर उनसे काम लिया ाता था। थोड़ी-सी चूक होने पर कड़ी सजा दी जाती थी। दास की जान ले ने पर भी मालिक को दोषी नहीं माना जाता था। वह दास द्वारा किये गये ारे उत्पादन हड़प लेता था। दास को सिर्फ उतना ही खाना दिया जाता था जिससे वह अपने को किसी तरह जिन्दा रख सके और अपने मालिक के लिए ाम कर सकें।

दासों के श्रम की सहायता से प्राचीन संसार में अर्थव्यवस्था और संस्कृति की काफी तरक्की हुई। ज्ञान की कई शाखाएं—गणित, खगोल विद्या, यंत्र विज्ञान और स्थापत्य कला काफी विकसित हुए। यद्यपि इस व्यवस्था ने आदिम सामुदायिक व्यवस्था की तुलना में अनेक उपलब्धियां प्राप्त कीं, तथापि उत्पादन की यह पद्धति मानवीय प्रगति में बाधक बनने लगी।

---

१. कार्ल मार्क्स, "पूंजी", भाग १, मास्को, पृष्ठ १३५।

२. उत्पादन की दास-युगीन पद्धति

दास प्रथा इतिहास में शोषण का पहला, अपरिष्कृत तथा स्पष्ट रूप है। यह प्रथा सभी जनगण में रही है।

उत्पादक शक्तियों के अधिक विकसित होने, सामाजिक श्रम विभाजन और विनिमय के विकसित होने के कारण ही आदिम समाज का दास प्रथा में संक्रमण सम्भव हुआ।

आदिम समाज में श्रम के लिए मुख्य रूप से पत्थर के उपकरणों को काम में लाया जाता था। किन्तु दास प्रथा के काल में, लोहे को पिघलाने की तरकीब जान लेने के बाद, लोहे के बने उपकरण काम में आने लगे। लोहे के उपकरणों ने मानवीय श्रम के दायरे को बढ़ा दिया। उदाहरण के लिए लोहे की कुल्हाड़ी को ले लें। इसके प्रयोग से पेड़ों और झाड़-झंखाड़ से धरती को साफ कर जोत लायक भूमि बनायी गयी। लोहे की फाल लगे लकड़ी के हल से अपेक्षाकृत बड़े-बड़े खेतों की जुताई होने लगी। कृषि से लोगों को सिर्फ रोटी और साग-सब्जी मिली, बल्कि शराब और वनस्पति तेल भी मिलने लगा। धातु के औजारों के निर्माण ने मजदूरों के एक नये सामाजिक समूह—दस्तकारों को जन्म दिया। इनका पेशा बहुत कुछ स्वतंत्र हो गया। दस्तकारी कृषि से पृथक हो गयी। **यह श्रम का दूसरा महत्वपूर्ण सामाजिक विभाजन था।**

दो बुनियादी शाखाओं में उत्पादन के विभाजित होने के साथ श्रम द्वारा उत्पन्न वस्तुओं का विनिमय भी बढ़ा। विनिमय के नियमित प्रक्रिया का रूप धारण करते ही मुद्रा का आविर्भाव हुआ। मुद्रा एक व्यापक वस्तु हो गयी, जिसके द्वारा अन्य सभी वस्तुओं का मूल्य मापा जाने लगा। मुद्रा वस्तु-विनिमय की प्रक्रिया में माध्यम का कार्य करने लगी। बढ़ते हुए श्रम विभाजन और विनिमय ने वस्तुओं की खरीद-बिक्री करने वाले लोगों—व्यापारियों को जन्म दिया। व्यापारियों का आविर्भाव **श्रम का तीसरा महत्वपूर्ण सामाजिक विभाजन था।** व्यापारियों ने बाजार से दूर रहने वाले उत्पादकों की दूरी का फायदा उठाकर कम कीमत पर वस्तुओं को खरीदकर उपभोक्ताओं के हाथ ऊंची कीमतों पर बेचना प्रारम्भ कर दिया।

दस्तकारी और विनिमय के विकास ने नगरों को जन्म दिया। प्रारम्भ में नगरों को गांवों से अलग करना कठिन था। लेकिन धीरे-धीरे दस्तकारी और व्यापार नगरों में केन्द्रित हो गये। **देहातों से नगरों के अलगाव की यहीं से शुरुआत हुई।**

उत्पादक शक्तियों के विस्तार और श्रम के सामाजिक विभाजन तथा विनिमय के विकास ने सम्पत्ति की विषमता को तीव्र कर दिया। भारवाही

पशु, उत्पादन के उपकरण और मुद्रा धनी लोगों के हाथों में केन्द्रित हो गये। गरीब और भी गरीब होते गये और उन्हें बहुधा धनी लोगों के सामने कर्ज के लिए हाथ फैलाने को विवश होना पड़ा। अब सूदखोरी के साथ कर्जखोरों और महाजन के हितों ने जन्म लिया। "प्राचीन संसार में वर्ग संघर्षों ने मुख्य तौर पर कर्जखोरों और महाजनों के संघर्ष का रूप लिया जिसका अन्त रोम में प्लेबियन कर्जखोरों के विनाश में हुआ। उनका स्थान दासों ने लिया।"[1] बड़े पैमाने पर दास रखने वाली अर्थव्यवस्था का उदय हुआ। धनी दास-स्वामियों ने सैकड़ों और कभी-कभी हजारों दासों को अपने अधिकार में कर लिया। उन्होंने जमीन के बड़े-बड़े हिस्सों पर कब्जा कर लिया, बड़ी जायदादें बना लीं जिन पर बहुत से दास काम करने लगे। प्राचीन रोम में उन्हें लैटफुडिया कहा जाता था।

दास समाज में दास-स्वामियों का उत्पादन के साधनों (भूमि, श्रम के उपकरण, इत्यादि) और उत्पादन करने वाले लोगों यानी दासों पर अधिकार था। इसी आधार पर दास समाज में उत्पादन के सम्बन्ध बने। दास खरीद-फरोख्त की वस्तु समझा जाता था। वह पूरी तरह से अपने मालिक के अधिकार में होता था। दास को "वाणीयुक्त औजार" भी कहा जाता था। दास-स्वामियों की नजर में दास और कुल्हाड़ी या बैल में यही फर्क था कि दास बोल सकते थे। अन्य बातों में वे घरेलू पशुओं, मकान, भूमि और श्रम के उपकरणों की तरह ही अपने मालिक की सम्पत्ति थे।

दासों के शोषण ने अत्यन्त क्रूर रूप ले लिया था। उनके साथ पशुओं से भी बुरा बर्ताव किया जाता था। चाबुक मार मारकर उनसे काम लिया जाता था। थोड़ी-सी चूक होने पर कड़ी सजा दी जाती थी। दास की जान ले लेने पर भी मालिक को दोषी नहीं माना जाता था। वह दास द्वारा किये गये सारे उत्पादन हड़प लेता था। दास को सिर्फ उतना ही खाना दिया जाता था जिससे वह अपने को किसी तरह जिन्दा रख सके और अपने मालिक के लिए काम कर सके।

दासों के श्रम की सहायता से प्राचीन संसार में अर्थव्यवस्था और संस्कृति की काफी तरक्की हुई। ज्ञान की कई शाखाएं—गणित, खगोल विद्या, यंत्र विज्ञान और स्थापत्य कला काफी विकसित हुए। यद्यपि इस व्यवस्था ने आदिम सामुदायिक व्यवस्था की तुलना में अनेक उपलब्धियां प्राप्त कीं, तथापि *उत्पादन की यह पद्धति मानवीय प्रगति में बाधक बनने लगी।*

---

१. कार्ल मार्क्स, "पूंजी", भाग १, मास्को, पृष्ठ १३५।

उत्पादन की इस पद्धति मे गहरे और दुरूह अन्तर्विरोध पैदा हो गये जो अन्ततोगत्वा इसके विनाश के कारण बने। सबसे बड़ी बात यह हुई कि शोषण का यह रूप समाज की बुनियादी उत्पादक शक्ति—दासों को निरन्तर नष्ट करता रहा। प्रचण्ड शोषण के विरुद्ध दास बराबर बगावत करते रहे। इस अर्थव्यवस्था को जीवित रखने के लिए दासों को निर्बाध गति से प्राप्त करना एक आवश्यक शर्त थी। अन्य राज्यों के विरुद्ध युद्ध छेड़कर ही दास प्राप्त किये जाते थे। किसान और दस्तकार युद्ध-यन्त्र की रीढ़ थे। वे ही लोग सिपाहियों के रूप में लड़ते और लड़ाई के लिए साधन जुटाने के लिए करों का बोझ उठाते थे। सस्ते दासो के श्रम पर आधारित बड़े पैमाने के उत्पादन की प्रतिद्वन्द्विता के फलस्वरूप किसान और दस्तकार नष्ट हो गये। इस वजह से दास रखने वाले राज्यो की आर्थिक, राजनीतिक और सामरिक शक्ति कम हो गयी। विजय के बदले उनकी पराजय होने लगी। निर्बाध रूप से निरन्तर सस्ते दास प्राप्त करने का स्रोत खत्म हो गया। इन सबके कारण उत्पादन मे सामान्य रूप से हर जगह ह्रास हुआ।

"व्यापक दरिद्रता, वाणिज्य, दस्तकारी, कला और आबादी का ह्रास; नगरों का पतन; कृषि का हेय स्थान—यही था रोम के विश्व-आधिपत्य का अन्तिम परिणाम।"[1]

प्रारम्भ में दास व्यवस्था ने उत्पादक शक्तियों के विकास में योग दिया। लेकिन इसके आगे का विकास उत्पादक शक्तियों के विनाश का कारण बना। दास श्रम पर आधारित उत्पादन के सम्बध समाज की उत्पादक शक्तियों के विकास मे बाधक बने। दासों को अपने श्रम के फल मे कोई दिलचस्पी नहीं थी। उनकी मेहनत अब उतनी उपयोगी नही रही। दासों के स्वामित्व पर आधारित उत्पादन सम्बंधो के बदले दूसरे प्रकार के सम्बंधों को स्थापित करने की ऐतिहासिक आवश्यकता उत्पन्न हो गयी जिससे कि समाज की मुख्य उत्पादक शक्ति—दासों की स्थिति बदल जाये।

दास श्रम पर आधारित बडी-बड़ी लैटफूडिया के पतन के बाद छोटे-छोटे घरेलू उत्पादन अधिक लाभप्रद बन गये। मुक्त दासो की सख्या बढी। बड़े-बडे जागीर छोटे-छोटे टुकडो मे बट गये। कोलोनी उन्हें जोतने लगे। कोलोनस अब दास न रहा, वल्कि काश्तकार हो गया। उसे जीवन पर्यन्त इस्तेमाल के लिए जमीन का एक टुकड़ा मिला। इसके लिए उसे या तो मुद्रा की एक निश्चित मात्रा अदा करनी पडती थी या उत्पादन कार्य करना पड़ता था। वह

[1] फ्रेडरिक एंगेल्स, "परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राजसत्ता की उत्पत्ति", मार्क्स और एंगेल्स, 'सगृहीत रचनाएं", खंड २, मास्को, पृष्ठ २६६।

अलग कदम नहीं था। वह अपने खेत के साथ बंधा हुआ था, उसे छोड़ नहीं सकता था। उसे उसकी जमीन के टुकड़े के साथ बेचा जा सकता था। कोलोनी मध्ययुगीन कमियों (Serfs) के पूर्ववर्ती थे।

इस तरह पुरानी दास व्यवस्था के गर्भ में उत्पादन की नयी सामन्तवादी पद्धति ने आकार धारण करना शुरू किया।

दास-स्वामी अर्थव्यवस्था के विकसित होने के साथ-साथ शोषकों के विरुद्ध दासों का संघर्ष भी तेज होता गया। दास-स्वामियों के खिलाफ दासों के विद्रोह हुए। बड़े भूस्वामियों और राज्य द्वारा सताये गये स्वतन्त्र किसानों एवं दस्तकारों ने दासों का साथ दिया। इन अनेक विद्रोहों में स्पार्टकस (ईसा-पूर्व ७४-७१) के नेतृत्व में हुआ विद्रोह विशेष महत्वपूर्ण था। दास व्यवस्था को भीतर और बाहर से धक्के लगने लगे और अन्तिम तौर पर दास व्यवस्था ढह गयी।

३. उत्पादन की सामन्तवादी पद्धति

प्रायः सभी देशों में सामन्तवादी पद्धति एक या दूसरे प्रकार के लक्षणों के साथ कायम रही है। सामन्तवाद का युग काफी लम्बा रहा है। चीन में सामन्तवादी व्यवस्था दो हजार वर्षों से भी अधिक काल तक रही। पश्चिम यूरोप में रोमन साम्राज्य के पतन (५वीं सदी) से इंगलैंड (१७वीं सदी) और फ्रांस (१८वीं सदी) की पूंजीवादी क्रान्तियों तक सामन्तवाद का बोलबाला रहा। रूस में इसका दौर ९वीं सदी से १८६१ में कमिया प्रथा के उन्मूलन के समय तक चलता रहा।

सामन्तवादी समाज के उत्पादन सम्बंध सामन्तों के निजी भूस्वामित्व और कमियों के ऊपर उनके अपूर्ण सम्पत्ति-अधिकार पर आधारित थे। कमिया दास नहीं था। उसकी अपनी जमीन थी। सामन्तों की सम्पत्ति के अतिरिक्त समाज में किसानों और दस्तकारों की सम्पत्ति थी। उत्पादन के उपकरणों और जमीन के छोटे टुकड़ों पर उनका अधिकार था। लघु कृषक अर्थव्यवस्था और छोटे स्वतन्त्र दस्तकारों द्वारा उत्पादन व्यक्तिगत श्रम पर आधारित थे। सभी उत्पादन मुख्यतः वस्तुओं के रूप में होते थे। तात्पर्य यह कि उत्पादन मुख्य रूप से परिवारों के उपभोग के लिए होता था, विनिमय के लिए नहीं।

सामन्तों द्वारा किसानों के शोषण का आधार बड़े पैमाने की सामन्तवादी भूसम्पत्ति थी। सामन्त का अपना डेमसेन जमीन के एक भाग में होता था। वह बाकी हिस्से को कड़ी शर्तों पर किसानों को इस्तेमाल के लिए देता था। इसके बदले ही वह श्रम-शक्ति प्राप्त करता था। जमीन पर पैतृक

धीरे-धीरे दस्तकारो के श्रम-यत्रों में और कच्चे मालो के शोधन करने के तरीको मे सुधार हुआ। दस्तकारियो मे विशेषीकरण हुआ। समय बीतने के साथ नयी दस्तकारिया—हथियार, कील-चाकू, ताला, जूता, जीन, आदि बनाने की—भी पनपी। लोहा पिघलाने तथा शोधन की प्रक्रिया मे सुधार हुआ। पहली बार धमन-भट्टिया १५वी सदी में बनी। महान भौगोलिक अन्वेषण भी इसी काल मे हुए।

सामन्तवादी व्यवस्था मे नयी उत्पादक शक्तियां अब तक विकसित हो चुकी थी। लेकिन यह व्यवस्था उनके आगे के विकास मे बाधक बनने लगी। उत्पादक शक्तियो और सामन्तवादी उत्पादन सम्बधो के तग चौखटे मे विरोध पैदा हो गया। सामन्तवादी शोषण के जुए मे जुता हुआ किसान उत्पादन नही बढा सकता था, क्योकि कमियाँ की उत्पादकता बहुत ही कम थी। शहरो मे दस्तकारो की बढती हुई उत्पादकता को गिल्ड नियमो द्वारा डाली जाने वाली बाधा का सामना करना पडा। इसलिए यह जरूरी हो गया कि उत्पादन के पुराने सम्बधो का उन्मूलन हो और उनकी जगह सामन्तवादी जजीरो से मुक्त नये सम्बंध लें। सामन्तवादी व्यवस्था के गर्भ मे ही उत्पादन के पूजीवादी सम्बधों ने जन्म लेना शुरू किया।

आगे चलकर साधारण वस्तु-उत्पादन (यानी उत्पादन के साधनो के निजी स्वामित्व और व्यक्तिगत श्रम पर आधारित विनिमय के लिए वस्तुओ का उत्पादन) धीरे-धीरे विस्तृत होने लगा। वस्तुओ के उत्पादक एक-दूसरे के साथ जबर्दस्त प्रतिद्वन्द्विता मे जुट गये। फलस्वरूप धनी-गरीब और शहर-देहात के विभेद का जन्म हुआ। बाजार के विस्तार के साथ बडे वस्तु-उत्पादक बहुधा गरीब किसानो और दस्तकारो को भाडे पर रखकर काम कराने लगे।

पूजीवाद का विकास एक अन्य तरह से भी हुआ। वणिक-पूजी जिसका प्रतिनिधित्व व्यापारी करते थे, प्रत्यक्ष रूप मे किसानो और दस्तकारों के उत्पादन को नियत्रित करने लगी। वणिक-पूजी सबसे पहले छोटे उत्पादकों की वस्तुओ के विनिमय मे माध्यम के रूप मे प्रकट हुई। आगे चलकर व्यापारियों ने नियमित रूप से छोटे उत्पादकों से वस्तुओ को खरीदना और उन्हें कच्चे माल तथा अग्रिम पैसे देना प्रारम्भ कर दिया। इस तरह से छोटे उत्पादक आर्थिक दृष्टि से व्यापारियो पर अवलम्बित हो गये। दूसरा कदम जो वणिक-पूजी ने उठाया, वह था बिखरे हुए दस्तकारों को एक छप्पर के नीचे एक कारखाने मे इकट्ठा करना जहा वे मजदूरी के लिए काम करें। इस तरह से वणिक-पूजी औद्योगिक पूजी मे बदल गयी और व्यापारी औद्योगिक पूजीपति हो गया।

उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति

जैसा कि हम जानते हैं, उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति का जन्म सामन्तवाद के गर्भ में हुआ। अपने विकास के क्रम मे पूंजीवाद दो चरणों से गुजरता है : एकाधिकारी पूंजीवाद से पहले का चरण और एकाधिकारी पूंजीवाद का चरण (साम्राज्यवाद)। इन दोनो चरणों का एक ही आर्थिक आधार है—उत्पादन के साधनों पर निजी पूंजीवादी स्वामित्व और भाडे पर लगाये गये मजदूरो का शोषण। एकाधिकारी पूंजीवाद के पूर्व के चरण और साम्राज्यवाद मे अन्तर भी है। एकाधिकारी पूंजीवाद के पहले के काल मे मुक्त प्रतियोगिता थी और उत्पादक शक्तियां कमोबेश बेरोक-टोक बढी। अमरीका, ब्रिटेन और फ्रांस तथा आर्थिक रूप से विकसित अन्य देशों मे १९वीं सदी के अन्तिम कुछ दशकों तक एकाधिकारी पूंजीवाद के पहले का काल था। इस दौरान पूंजीवादी देशों मे आर्थिक विकास की प्रक्रिया ने पूंजीवाद मे एक गुणात्मक परिवर्तन किया। मुक्त प्रतियोगिता के स्थान पर एकाधिकारो का बोलबाला हो गया। इजारेदारियां पूंजीवादी देशो के आर्थिक मामलो मे निर्णायक भूमिका अदा करने लगी। इस शताब्दी के शुरू मे एकाधिकार पूंजीवाद का पहला चरण समाप्त हो गया और पूंजीवादी विकास के अन्तिम चरण—साम्राज्यवाद का आगमन हुआ।

क. एकाधिकारी पूंजीवाद से पहले का चरण

अध्याय २

वस्तु-उत्पादन, वस्तु और मुद्रा

मार्क्स ने पूंजीवाद का अपना विश्लेषण वस्तु से प्रारम्भ किया। पूंजीवादी व्यवस्था में प्रत्येक चीज—एक आलपीन से लेकर एक बड़े कारखाने तक और यहां तक कि मानव श्रम-शक्ति भी—खरीदी और बेची जाती है। इस तरह से चीजें वस्तुओं का रूप ले लेती हैं। समाज में लोगों के आपसी सम्बंध वस्तुओं के सम्बंध के रूप में प्रकट होते हैं। मार्क्स के अनुसार वस्तु पूंजीवादी समाज का आर्थिक प्रतिरूप है। जिस प्रकार एक बूंद पानी में इर्द-गिर्द की चीजों का बिम्ब झलकता है, उसी तरह से वस्तु पूंजीवाद के सभी बुनियादी अन्तर्विरोधों को प्रदर्शित करती है।

मार्क्स ने वस्तु और वस्तु-उत्पादन का अध्ययन किया जिससे कि वह पूंजीवादी सम्बंधों के मूल तत्वों की व्याख्या कर सके।

१. वस्तु-उत्पादन का सामान्य विवरण

वस्तु-उत्पादन का मतलब व्यक्तिगत इस्तेमाल के लिए सामग्रियों के होने वाले उत्पादन से नहीं है, बल्कि विक्रय और बाजार में विनिमय के उद्देश्य से होने वाले उत्पादन से है। लेनिन ने कहा कि "वस्तु-उत्पादन का मतलब सामाजिक अर्थव्यवस्था के उस संगठन से है जिसमें वस्तुओं का उत्पादन एक-दूसरे से अलग रहने वाले, वस्तु विशेष में विशेषज्ञता

वस्तु-उत्पादन की अवधारणा

उत्पादकों द्वारा पृथक्-पृथक् होता है। परिणामस्वरूप समाज की आव-
श्यकता की पूर्ति के लिए उत्पादन को बाजार में खरीदना और बेचना
आवश्यक होता है। (इस तरह से उत्पादित सामग्रियां वस्तुओं का रूप
है।)''

वस्तु-उत्पादन का जन्म आदिम-साम्यवादिक व्यवस्था के विघटन के
के दौरान हुआ। वस्तु-उत्पादन दास समाज और सामन्तवादी समाज में
विद्यमान था, यद्यपि उस समय प्राकृतिक अर्थव्यवस्था की ही प्रधानता थी।
अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत समाज समरूप इकाइयों का समूह था। प्रत्येक
ई में कई तरह के कच्चे मालों को प्राप्त करने से लेकर उनको उपभोग के
उपयुक्त सामग्रियों में परिवर्तित करने तक के सभी काम होते थे। इस
की अर्थव्यवस्था जिसमें मुख्य तौर पर अधिशेष उत्पादन का विनिमय
जाता था, पूंजीवाद के उदय तक बनी रही।

पूंजीवाद के उदय ने प्राकृतिक अर्थव्यवस्था पर जबर्दस्त प्रहार किया।
पूंजीवाद के अन्तर्गत मानव की श्रम-शक्ति समेत सभी चीजों ने वस्तुओं का
रूप धारण कर लिया। श्रम-शक्ति के वस्तु के रूप में परिवर्तित हो जाने से
वस्तु-उत्पादन प्रधान और व्यापक हो गया।

वस्तु-उत्पादन का बोलबाला होते ही उत्पादन की प्रक्रिया में लोगों के
बीच बने सम्बंधों (यानी उनके उत्पादन सम्बंधों) ने वस्तु-सम्बंधों का रूप ले
लिया। इसे स्पष्ट करने के लिए हम पूंजीवादी समाज के बुनियादी उत्पादन
सम्बंध (पूंजीपति वर्ग द्वारा सर्वहारा वर्ग के शोषण) पर विचार करें। मज-
दूर का शोषण करने के लिए यह आवश्यक है कि वह जब अपनी श्रम-शक्ति
(जो अब एक वस्तु बन गयी है) बेचने के लिए मजबूर हो, तब पूंजीपति उसे
भाड़े पर लेकर काम पर लगाये। पूंजीपति मजदूर को मजदूरी देता है। मज-
दूर मजदूरी के पैसों से निर्वाह के साधन (वस्तुएं) खरीदता है। इस तरह
मजदूर और पूंजीपति के आपसी सम्बंध प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त न होकर
वस्तुओं के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। उनके आपसी सम्बंध वस्तु-सम्बंधों
का रूप ले लेते हैं।

पूंजीपति एक-दूसरे को अपनी वस्तु बेचते हैं तथा , कच्चे
माल, साज-सामान तथा आपसी
सम्बंध वस्तु

फलस्वरूप पूंजीवादी समाज में वस्तु-उत्पादन प्रधान और व्यापक चरित्र ग्रहण कर लेता है और लोगों के पारस्परिक सम्बंध चीजों और वस्तुओं के आपसी सम्बधों के रूप में परिलक्षित होते हैं।

वस्तु-उत्पादन का वही उदय होता है जहां कतिपय निश्चित स्थितिया मौजूद रहती हैं। वस्तु-उत्पादन के उदय और अस्तित्व के लिए सबसे महत्वपूर्ण स्थिति है—श्रम का सामाजिक विभाजन।

वस्तु-उत्पादन के उदय की स्थितिया

तात्पर्य यह कि वस्तुओं का उत्पादन कार्य अलग-अलग लोगो या जन-समूहो मे बंटा हुआ हो। मिसाल के लिए, लोगों का एक समूह कपड़ा बुनता है, दूसरा जूते बनाता है, तीसरा घरेलू वस्तुओं का उत्पादन करता है तो चौथा औजार बनाता है। स्पष्ट है कि लोगो के लिए अपनी व्यक्तिगत जरूरतो की सन्तुष्टि के लिए अपने श्रम-फल का आपस में विनिमय करना जरूरी होता है। इस तरह से सभी उत्पादको को मिलाकर एक बहुत बड़ी उत्पादन इकाई बनती है जिसके सदस्य आपस मे एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं।

लेकिन श्रम का सामाजिक विभाजन वस्तु-उत्पादन के अस्तित्व के लिए सिर्फ एक स्थिति है। दूसरी आवश्यक स्थिति है—समाज में उत्पादन के साधनो के विभिन्न स्वामियों का होना। एक उदाहरण लें। मान लें कि किसी व्यक्ति ने कोई वस्तु बनायी है। वह उस वस्तु को किसी के हाथ बेचना चाहता है। प्रश्न है कि क्या वह ऐसा कर सकता है ? उत्तर हा मे है। लेकिन इसके साथ एक शर्त है कि उसे उस वस्तु के उत्पादन के लिए उत्पादन के जरूरी साधनों का स्वामी होना चाहिए। ऐसा होने पर ही वस्तु पर उसका अधिकार हो सकता है। उदाहरणस्वरूप, आदिम-समुदायों मे श्रम विभाजन होने पर भी कई वस्तु-उत्पादन या वस्तु-विनिमय नही होता था। समुदाय के सदस्य अपने श्रम के उत्पादनों को आपस मे अदला-बदली करते थे लेकिन बेचते नहीं थे। वे ऐसा इसलिए भी नही कर सकते थे कि उत्पादन के साधनों और श्रम के उत्पादनों पर सम्पूर्ण समुदाय का अधिकार था। यह अलग बात थी कि एक समुदाय की वस्तुओं का दूसरे समुदाय की वस्तुओं के साथ विनिमय होता था। स्वामित्व मे परिवर्तन होने के कारण ही श्रम के उत्पादन ने वस्तु का रूप ले लिया।

अतः वस्तु-उत्पादन का आधार श्रम का सामाजिक विभाजन और समाज मे उत्पादन के साधनों के विभिन्न स्वामियों की उपस्थिति होना है। जब ये दोनों स्थितियां मौजूद रहती हैं तभी वस्तु-उत्पादन और उत्पादकों का विनिमय क्रय-विक्रय के रूप में जन्म लेता है।

साधारण वस्तु-उत्पादन और पूंजीवादी वस्तु उत्पादन

साधारण वस्तु-उत्पादन के आधार पर और निश्चित सामाजिक स्थितियो की मौजूदगी मे ही पूजीवादी वस्तु-उत्पादन पनपता है।

साधारण वस्तु-उत्पादन के सबसे उपयुक्त प्रतिनिधि छोटे किसान और दस्तकार हैं। उनके उत्पादन का आधार उनका व्यक्तिगत श्रम है। वे अपने आप काम करते हैं। वे दूसरे का शोषण नही करते। प्रत्येक साधारण वस्तु-उत्पादक अपने उत्पादन के साधनों का स्वामी होता है। वह अपने उपभोग के लिए नही, बल्कि बाजार मे बिक्री के लिए वस्तुओं का उत्पादन करता है।

साधारण वस्तु-उत्पादन का चरित्र दोहरा होता है। एक ओर, निजी स्वामित्व पर आधारित होने के कारण छोटा किसान या दस्तकार सम्पत्ति वाला व्यक्ति होता है और वह पूँजीपति के नजदीक पडता है। दूसरी तरफ, साधारण वस्तु-उत्पादन के व्यक्तिगत श्रम पर आधारित होने के कारण वह एक मेहनतकश भी होता है और वह सर्वहारा वर्ग के नजदीक पडता है। सर्वहारा वर्ग का भी उसकी तरह उत्पादन के साधनो पर अधिकार नही होता। स्पष्ट है कि इस मामले मे सर्वहारा वर्ग और किसानो के हित समान होते हैं, फलस्वरूप उनकी एक-दूसरे से मैत्री हो सकती है।

कुछ सामाजिक स्थितियो के अन्तर्गत साधारण वस्तु-उत्पादन पूजीवादी उत्पादन के उदय के लिए प्रस्थान-बिन्दु और आधार हो सकता है। इसके लिए दो स्थितियो का होना आवश्यक है। पहली स्थिति है : उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व। हमे मालूम है कि यह स्थिति आदिम समाज के अवसानकाल मे पैदा हुई। दूसरी स्थिति है श्रम-शक्ति का वस्तु के रूप मे परिवर्तन। यह स्थिति सामन्तवादी समाज के विघटन-काल मे उत्पन्न हुई।

साधारण वस्तु-उत्पादन अस्थिर होता है क्योकि किसानो और दस्तकारो के विभिन्न स्तरो मे विभाजन की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। कुछ व्यक्ति (अल्पसंख्यक) धनी होते जाते है, जबकि अन्य (बहुसंख्यक) गरीब होते जाते हैं। उपर्युक्त स्थितियो मे यह प्रक्रिया शहरो और गावो मे पूजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग को जन्म देती है।

साधारण वस्तु-उत्पादन की भांति पूजीवादी वस्तु-उत्पादन भी श्रम के सामाजिक विभाजन और उत्पादन के साधनो के निजी स्वामित्व पर आधारित होता है, लेकिन साथ ही वह उत्पादक के व्यक्तिगत श्रम पर आधारित न होकर उत्पादन के साधनो के मालिको द्वारा भाडे के मजदूरो के शोषण पर आधारित होता है। पूजीवादी वस्तु-उत्पादन मे उत्पादन के साधनो और मुद्रा-राशि पर

अधिकार होने के कारण पूंजीपति स्वयं काम नहीं करता। वह मुद्रा-राशि से श्रम-शक्ति खरीदता है जिससे अपने उत्पादन के साधनों का इस्तेमाल कर सके। श्रम-शक्ति के वस्तु के रूप में परिवर्तित होने का मतलब होता है कि पूंजीवाद के अन्तर्गत वस्तु-उत्पादन और भी विस्तृत और व्यापक होता है। लेनिन ने लिखा कि वस्तु विनिमय "पूंजीवादी (वस्तु) समाज का सरलतम, मौलिक, साधारणतम आम तौर पर और दिन-प्रति-दिन का सम्बन्ध—ऐसा सम्बन्ध जिससे हजारों-लाखों बार वास्ता पड़ता है"[1]—प्रमाणित प्रतीत होता है। अतः हमारे लिए पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के इस प्रतिरूप—वस्तु की व्याख्या करना जरूरी है।

२. वस्तु और उसको उत्पन्न करने वाला श्रम

वस्तु का उपयोग-मूल्य और मूल्य

वस्तु वह चीज है जो मानवीय आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करती है और जिसका उत्पादन व्यक्तिगत उपयोग के लिए नहीं होकर विक्रय और विनिमय के लिए होता है।

अपने उपभोग के लिए सामग्रियों का उत्पादन करने वाला व्यक्ति केवल पदार्थ उत्पादित करता है वस्तु नहीं। पदार्थ तभी वस्तु बन सकता है जब वह किसी सामाजिक आवश्यकता को सन्तुष्ट करे या यों कहें कि जब समाज के अन्य सदस्यों द्वारा उस वस्तु की मांग को पूरा किया जाये।

वस्तु पर विचार करने से हम पाते हैं कि उसके दो अविच्छिन्न पहलू हैं। उसके दो गुणधर्म हैं—*उपयोग-मूल्य और मूल्य*।

मानवीय आवश्यकता को सन्तुष्ट करने के गुण को उपयोग-मूल्य कहते हैं। आवश्यकताएं भी कई विभिन्न रूप ले सकती हैं। कोई वस्तु प्रधान आवश्यकता हो सकती है—जैसे रोटी, वस्त्र, जूता। वह विलास की सामग्री भी हो सकती है—जैसे कीमती शरावें, आभूषण, इत्यादि। वह उत्पादन का साधन भी बन सकती है—जैसे मशीन, कोयला, लोहा, इत्यादि।

किसी पदार्थ के एक से अधिक उपयोग-मूल्य भी हो सकते हैं—जैसे कोयले का इस्तेमाल ईंधन के रूप में भी हो सकता है और रासायनिक पदार्थों के उत्पादन में कच्चे माल के रूप में भी।

समाज के ऐतिहासिक विकास के दौरान उत्पादक शक्तियों के विकास के फलस्वरूप उपयोग-मूल्य (मनुष्य के लिए किसी चीज की उपयोगिता) का पता लगता है। कोयले को ही लें। कोयले के बारे में मनुष्य को आदिकाल

---

१. लेनिन, "मार्क्स-एंगेल्स-मार्क्सवाद", मास्को, पृष्ठ २७२।

र मालूम है, किन्तु ईंधन के रूप में इसका इस्तेमाल बहुत बाद में चलकर शुरू हुआ। विज्ञान और टेक्नालाजी के विकास से कोयले की एक और विशेषता के बारे में मालूम हुआ है। अब कोयला रसायन उद्योग में कच्चे माल के रूप में काम में लाया जा रहा है।

वस्तु-उत्पादन के अन्तर्गत विभिन्न उपयोग-मूल्यों का निरन्तर निश्चित संख्यात्मक मात्रा में पारस्परिक विनिमय होता है। जैसे, एक अनुपात में एक उपयोग-मूल्य का दूसरे उपयोग-मूल्य के साथ विनिमय होता है, उसे वस्तु का विनिमय-मूल्य कहते हैं। विनिमय मूल्य पर विचार करते समय दो प्रश्न उठते हैं: १) किस आधार पर पूर्णतया भिन्न गुण वाली वस्तुओं को एक-दूसरे के समतुल्य किया जाता है, और २) विभिन्न वस्तुओं को एक-दूसरे के साथ क्यों एक निश्चित अनुपात—एक निश्चित मात्रा में समतुल्य किया जाता है? अगर दो असमरूप वस्तुओं को विनिमय के दौरान समतुल्य बनाया जा सकता है, तो इसका मतलब है कि उन दोनों वस्तुओं में कोई चीज समान रूप से उपस्थित है। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने कहा था कि जिस तरह असमरूप चीजों में पारस्परिक समानता स्थापित नहीं हो सकती, उसी तरह बिना समानता के विनिमय असम्भव है।

साधारणतया सभी वस्तुओं में निम्नलिखित गुणधर्म विभिन्न मात्रा में मौजूद होते हैं उपयोगिता, माग और पूर्ति का विषय बनने की क्षमता, विरलता और श्रम।

इनमें कौन-सा गुणधर्म वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करता है?

पहली नजर में उपयोगिता ही वस्तु के मूल्य का कारण प्रतीत हो सकती है। कोई वस्तु जितनी ही उपयोगी होती है, उसका मूल्य उतना ही अधिक होता है। लेकिन वास्तव में हम हर कदम पर पाते हैं कि उपयोगिता मूल्य का निर्धारण नहीं करती। बहुधा अत्यन्त उपयोगी वस्तुओं के लिए हमें कुछ भी नहीं करना पड़ता (जैसे हवा), या बहुत कम व्यय करना पड़ता है (जैसे पानी)। दूसरी तरफ कई ऐसी वस्तुएं हैं जिनका व्यक्तिगत उपयोग नाम को है, लेकिन उनकी कीमत बहुत अधिक होती है (जैसे हीरा)। सचमुच अगर वस्तुओं का मूल्य उनकी उपयोगिता की मात्रा पर निर्भर करता, तो रोटी और पानी हीरा से भी ज्यादा मूल्यवान होते। अत. उपयोगिता या उपयोग-मूल्य मूल्य के कारण नहीं, बल्कि एक आवश्यक स्थिति मात्र हैं। मूल्य उपयोग-मूल्य के बिना नहीं हो सकता लेकिन उपयोग-मूल्य के लिए मूल्य का होना आवश्यक है (जैसे हवा का उपयोग-मूल्य काफी अधिक है जबकि उसका कोई मूल्य नहीं है)।

तब क्या माग और पूर्ति मूल्य-निर्धारण कर सकती है ? पहली नजर में लगता है कि ऐसा सम्भव है। यह सामान्य ज्ञान की बात है कि वस्तुओं की माग जितनी ही अधिक होती है, उनका मूल्य भी उतना ही अधिक होता है और दूसरी तरफ उनकी पूर्ति जितनी ही ज्यादा होती है, बाजार में उनका मूल्य उतना ही कम होता है।

अगर हम इस प्रश्न के मूल में जायें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि वस्तुओं का मूल्य मांग और पूर्ति पर निर्भर नहीं होता। उदाहरण के लिए चीनी और नमक को ले सकते हैं। इन वस्तुओं पर मांग और पूर्ति का नियम लागू होता है। अगर उनकी मांग और पूर्ति समान हैं, तब भी १ किलोग्राम चीनी का मूल्य १ किलोग्राम नमक के मूल्य से काफी अधिक होगा। इसका मतलब है कि माग और पूर्ति का मूल्य के साथ कोई सम्बंध नहीं है। यह सच है कि माग और पूर्ति की मात्रा के कारण वस्तुओं की कीमतों मे अन्तर आ सकता है, लेकिन वह मूल्य की मात्रा को निर्धारित नही करती। हां, मांग और पूर्ति की मात्रा किसी वस्तु के मूल्य की तुलना में उसकी बाजार-कीमत के उतार-चढ़ाव को दिखलाती है। किसी वस्तु की माग बढ़ने, लेकिन पूर्ति घटने पर बाजार मे उसकी कीमत उसके मूल्य से अधिक हो जाती है। इसी तरह वस्तु की माग घटने और पूर्ति बढ़ने पर उसकी बाजार-कीमत उसके मूल्य से कम हो जाती है। जब माग और पूर्ति बराबर हो जाती हैं, तब कीमत और मूल्य भी बराबर हो जाते हैं। लेकिन इस तरह की अवस्था पूंजीवादी वस्तु-उत्पादन के अन्तर्गत शायद ही आती है। इसका मतलब यह है कि माग और पूर्ति किसी वस्तु का मूल्य निर्धारित नही करती।

तब क्या वस्तु की विरलता उसके मूल्य को निर्धारित कर सकती है ? हजारों व्यावहारिक उदाहरणों को देखने से लगता है कि ऐसा हो सकता है। उदाहरण के लिए सोना, हीरा और रोटी को देखें। सोना और हीरा विरल होने के साथ ही कीमती भी हैं। रोटी अधिक मात्रा मे प्राप्त है। उसकी माग भी अधिक है, लेकिन तो भी वह काफी सस्ती है। किन्तु इसका यह मतलब नही हुआ कि विरलता ही मूल्य मे कमी-बेशी का कारण है। किसी अनावृष्टि वाले साल मे लोग वर्षा के लिए काफी व्याकुल रहते हैं, यानी वर्षा की मांग बहुत अधिक होती है। लेकिन वर्षा की विरलता, उपयोगिता और माग के बावजूद उसका मुद्रा के रूप मे अभिव्यक्त हो सकने वाला कोई मूल्य नही होता।

अत न उपयोगिता, न माग और पूर्ति का विषय बनने की क्षमता और न ही विरलता वस्तु के मूल्य के कारण है। केवल श्रम ही मूल्य का एकमात्र वास्तविक आधार या मार्क्स के शब्दों में मूल तत्व है। किसी वस्तु के उत्पादन

लिए श्रम की जितनी ही अधिक मात्रा की आवश्यकता होगी, उसका मूल्य ना ही अधिक होगा, या यों कहें कि वह वस्तु उतनी ही कीमती होगी। ा कोयले से अधिक कीमती है, क्योंकि सोने के पूर्वेक्षण और उसे फालतू मश्रणों से अलग करने में कोयले की उतनी ही मात्रा के खनन-व्यय से धिक खर्च पड़ता है।

सभी वस्तुएं मानव श्रम का परिणाम होती हैं। प्रत्येक वस्तु में श्रम की निश्चित मात्रा निहित होने के कारण वस्तुएं आपस में तुलनीय हैं। चूंकि तुएं श्रम द्वारा उत्पन्न होती हैं, इसलिए उनका मूल्य भी होता है।

मूल्य वस्तु में निहित वस्तु-उत्पादकों का सामाजिक श्रम होता है। निहित" शब्द यह संकेत करता है कि श्रम भी वस्तु में शामिल होता है। तलब यह हुआ कि श्रम ने पदार्थ या वस्तु का रूप ले लिया है। जिन नुपातों में वस्तुओं का विनिमय होता है, वे मूल्य की अभिव्यक्ति के रूप का म करते हैं। वे बतलाते हैं कि विनिमय की जाने वाली वस्तुओं पर श्रम की मान मात्रा लगायी गयी है और वे मूल्य की दृष्टि से समरूप हैं।

किसी वस्तु का मूल्य एक सामाजिक प्रवर्ग होता है जिसे देखा नहीं जा ता, लेकिन जब एक वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ विनिमय होता है या जब क वस्तु को दूसरी वस्तु के समतुल्य किया जाता है, तब उसे महसूस किया ाता है। इसीलिए लेनिन ने कहा कि "मूल्य दो व्यक्तियों के बीच का सम्बध ...ऐसा सम्बध जो वस्तुओं के आपसी सम्बध के रूप में छिपा है।"[१]

उपयोग-मूल्य सदा रहा है और सदा रहेगा। मूल्य के आकार के रूप में स्तु का आविर्भाव समाज-विकास के एक निश्चित दौर में हुआ जब वस्तु-त्पादन और विनिमय ने जन्म ले लिया था। वस्तु-उत्पादन के लुप्त हो जाने र वस्तु-मूल्य भी नहीं रहेगा। इसका मतलब यह हुआ कि मूल्य एक साथ ही ामाजिक और ऐतिहासिक प्रवर्ग है, यानी वह समाज-विकास के एक निश्चित ौर में ही उपस्थित होता है।

वस्तु में यद्यपि दो पहलुओं (उपयोग-मूल्य और मूल्य) का मेल होता , किन्तु यह मेल परस्पर विरोधी है।

उपयोग-मूल्यों के रूप में वस्तुओं में गुणात्मक विविधता (गेहूं, कपड़ा ोहा, इत्यादि) दिखायी देती है, किन्तु मूल्य की दृष्टि से वे एक ही चीज है (क्योंकि मनुष्य अपने श्रम के द्वारा सबका उत्पादन करता है)।

उपयोग-मूल्यों के रूप में वस्तुओं का इस्तेमाल उपभोग के लिए और मूल्यों के रूप में उनका इस्तेमाल बिक्री के लिए होता है।

---

१. लेनिन, "मार्क्सवाद और मार्क्सवाद", पृष्ठ ११।

वस्तु-उत्पादन की दिलचस्पी वस्तु के मूल्य में होती है (उपयोग-मूल्य में नहीं), किन्तु वस्तु के लिए मूल्य मिले इसलिए उसमें उपयोग-मूल्य का होना जरूरी है, यानी वस्तु के लिए मांग होनी चाहिए।

किसी वस्तु का उपयोग-मूल्य गोचर और उसका मूल्य अगोचर होता है। किसी वस्तु के उपयोग-मूल्य और मूल्य में यही अन्तर होता है।

हमने ऊपर यह स्पष्ट कर दिया है कि वस्तु के दो गुणधर्म होते हैं। उसमें उपयोग-मूल्य और मूल्य का सामञ्जस्य होता है।

अब प्रश्न उठता है कि वस्तु का यह दोहरा चरित्र किस कारण से है?

मूर्त और अमूर्त श्रम

वस्तु के दोहरे चरित्र का निर्धारण वस्तु को उत्पन्न करने वाले श्रम के दोहरे चरित्र के कारण होता है। वस्तु में निहित उत्पादक का श्रम एक तरफ तो मूर्त श्रम के रूप में और दूसरी ओर अमूर्त श्रम के रूप में नजर आता है।

मूर्त श्रम वह श्रम है जिसे एक निश्चित कालोचित और उपयोगी रूप में व्यय किया जाता है। कोई व्यक्ति एक साथ सभी काम नहीं कर सकता। वह मोची, विमान चालक या इसी तरह का कोई काम करता है।

विभिन्न तरह के श्रम में गुण, कौशल, कार्य-विधि, औजार, व्यवहृत सामान और अन्तिम परिणाम यानी उत्पादन और उपयोग-मूल्य की दृष्टि से भिन्नता होती है। मूर्त श्रम ही किसी वस्तु के उपयोग-मूल्य का सृजन करता है।

अगर हम विभिन्न प्रकार के श्रम को ध्यान से देखें, तो हमें सबमें एक समान विशेषता—मानव श्रम का व्यय (यानी मांसपेशियों, मस्तिष्क, तंत्रिकाओं, इत्यादि का व्यय)—दिखायी देती है। अगर श्रम को उसके मूर्त रूप से अलग करके मानवीय श्रम के रूप में देखें, तो हम अमूर्त श्रम पायेंगे। अमूर्त श्रम ही वस्तु के मूल्य का रूप ले लेता है।

मूर्त श्रम, जो उपयोग-मूल्य का सृजन करता है, सदा संसार में विद्यमान रहा है और सदा विद्यमान रहेगा। वस्तु-उत्पादन की उपस्थिति या अनुपस्थिति का इसके अस्तित्व पर कोई असर नहीं पड़ता। किन्तु अमूर्त श्रम सिर्फ वस्तु-उत्पादन की ही विशेषता है। वस्तु-उत्पादन (जहां वस्तुओं का उत्पादन बिक्री के लिए होता है) की उपस्थिति के कारण ही विभिन्न प्रकार के मूर्त श्रम समरूप अमूर्त श्रम या सामान्य श्रम के रूप में परिवर्तित हो पाते हैं। मान लें कि कोई उत्पादक एक जोड़े जूते बनाकर बाजार में ले जाता है, तो प्रश्न यह है कि वह जूतों का रोटी के साथ किस प्रकार विनिमय करेगा? उपयोग-मूल्य की दृष्टि से इन वस्तुओं की तुलना नहीं हो सकती। उनकी तुलना उन पर

व्यय किये गये श्रम की दृष्टि से हो सकती है। अगर मोची एक जोड़े जूते का विनिमय १०० किलोग्राम अनाज के साथ करता है, तो इसका मतलब यह हुआ कि एक जोड़े जूते और १०० किलोग्राम अनाज के उत्पादन में अमूर्त श्रम की समान मात्रा व्यय हुई है। अगर जूते का निर्माण मोची विनिमय के लिए न कर अपने घरेलू इस्तेमाल के लिए करता है, तो उसमें निहित श्रम की मात्रा का निर्धारण अनावश्यक है। वस्तु-उत्पादन की अनुपस्थिति में अमूर्त श्रम का प्रवर्ग भी लुप्त हो जायेगा।

वस्तु-उत्पादन के अन्तर्गत मूर्त और अमूर्त श्रम के बीच एक असाध्य अन्तर्विरोध होता है जो प्रकट रूप में निजी और सामाजिक श्रम के अन्तर्विरोध के रूप में दिखायी देता है।

निजी और सामाजिक श्रम

वस्तु-उत्पादन के अन्तर्गत प्रत्येक उत्पादक एक विशेष प्रकार की वस्तु का ही उत्पादन करता है। समाज में श्रम-विभाजन रहता है और यह विभाजन जितना ही सूक्ष्म होता है, उत्पादन की शाखाएं उतनी ही अधिक होती हैं तथा वस्तु-उत्पादकों को आपस में सम्बद्ध करने वाली कड़ियां भी उतनी ही अधिक व्यापक होती हैं और वे एक-दूसरे पर उतने ही ज्यादा निर्भर होते हैं। प्राय: प्रत्येक वस्तु के उत्पादन के लिए अलग-अलग व्यवसायों में लगे बीसियों क्या सैकड़ों लोगों की जरूरत होती है। इसका मतलब यह है कि प्रत्येक वस्तु-उत्पादक का श्रम समाज के श्रम का ही एक अंश होता है, अत: उसका चरित्र सामाजिक होता है।

ऐसे समाज में जहां उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व होता है, वस्तु-उत्पादक एक-दूसरे से स्वतन्त्र उत्पादन कार्य में लगे होते हैं। उनके बीच एकता का अभाव होता है। इसलिए मूलत: सामाजिक श्रम होते हुए भी उनका श्रम निजी श्रम का रूप ले लेता है। यहां श्रम का सामाजिक चरित्र गुप्त रहता है, *सिर्फ बाजार में वस्तुओं के विनिमय के समय ही वह परिलक्षित होता है।* वस्तुओं के विनिमय, यानी बाजार में उनके क्रय-विक्रय के समय यह स्पष्ट होता है कि वस्तु-उत्पादक का निजी श्रम सामाजिक श्रम का ही एक अंश है, क्योंकि समाज उसकी अपेक्षा करता है।

वस्तु-उत्पादकों का श्रम प्रत्यक्षत: निजी होने के साथ ही सामाजिक भी होता है। अत: साधारण वस्तु-अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण अन्तर्विरोध—**निजी और सामाजिक श्रम का अन्तर्विरोध**—जन्म लेता है। यह अन्तर्विरोध विनिमय के दौरान प्रकट होता है। बाजार में वस्तुओं को ले जाने के बाद कुछ उत्पादक अपनी वस्तुओं को बेच लेते हैं, जबकि कई अन्य इसमें विफल होते

प्रति वस्तु इकाई श्रम के व्यय को कम करता है। किसी समाज मे उत्पादकता जितनी ही अधिक होगी, (यानी समय की एक निश्चित इकाई के दौरान अन्तिम तौर पर तैयार वस्तुओ की मात्रा जितनी ही अधिक होगी) वस्तु का मूल्य उतना ही कम होगा। इसी तरह सामाजिक श्रम की उत्पादकता के कम होने पर किसी वस्तु के उत्पादन के लिए सामाजिक तौर पर आवश्यक वस्तु को तैयार करने मे लगने वाला श्रम कम होता है। उत्पादकता जितनी ही ज्यादा होती है, समय की एक निश्चित इकाई के दौरान तैयार वस्तुओ की मात्रा उतनी ही अधिक होती है और वस्तुओ का मूल्य उतना ही कम होता है। दूसरी ओर, सामाजिक श्रम की उत्पादकता जितनी ही कम होती है, वस्तु को तैयार करने के लिए सामाजिक तौर पर आवश्यक श्रम-काल उतना ही ज्यादा लगता है और वस्तु का मूल्य भी उतना ही अधिक होता है। अतएव यह कहा जाता है कि श्रम उत्पादकता और प्रत्येक वस्तु का मूल्य एक-दूसरे पर प्रतिलोमत: अवलम्बित होते हैं।

अगर श्रम उत्पादकता बढती है, तो वस्तु का प्रति इकाई मूल्य कम हो जाता है। इसके ठीक विपरीत अगर श्रम उत्पादकता मे कमी आती है, तो वस्तु का प्रति इकाई मूल्य बढ जाता है।

श्रम उत्पादकता को श्रम की तीव्रता समझ लेना भूल है। **श्रम की तीव्रता प्रति इकाई समय के दौरान व्यय किये गये श्रम की मात्रा के रूप में अभिव्यक्त होती है।** किसी निश्चित समय-अन्तराल के दौरान श्रम का जितना ही अधिक व्यय होता है, वस्तुओ की उतनी ही अधिक सख्या का निर्माण होता है। पर श्रम की एक बडी मात्रा का वितरण वस्तुओ की बहुत बड़ी सख्या पर होने के कारण किसी एक वस्तु के मूल्य मे परिवर्तन नही होता।

वस्तु के मूल्य का परिमाण श्रम की जटिलता की मात्रा से प्रभावित होता है। इसका मतलब यह हुआ कि मूल्य का परिमाण इस बात पर भी निर्भर करता है कि श्रम कुशल है या अकुशल। जिस मजदूर को कोई विशेष प्रशिक्षण प्राप्त नही होता, उसके श्रम को साधारण श्रम या अकुशल श्रम कहते हैं। जिस श्रम के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, उसे जटिल या कुशल श्रम कहते हैं। जटिल श्रम साधारण श्रम की अपेक्षा प्रति समय इकाई मे अधिक मूल्य का सृजन करता है। इसीलिए मार्क्स ने कहा है कि जटिल श्रम और साधारण श्रम मे सिर्फ अशात्मक अन्तर होता है।

निजी सम्पत्ति पर आधारित वस्तु-उत्पादन के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के श्रम को—भिन्न कुशलता के श्रम और भिन्न उत्पादकता वाले श्रम को—एक मापदण्ड, यानी अमूर्त श्रम (जो वस्तु के मूल्य का सृजन करता है) के रूप मे

वस्तु के बराबर है। जब तक विनिमय का चरित्र आकस्मिक या संयोगिक था, वस्तुओं के मूल्य का परिमाण समान नहीं होता था। इस स्थिति में हम मूल्य का प्रारम्भिक, एकाकी या आकस्मिक रूप पाते हैं।

आदिम समाज के अन्तर्गत प्रथम सामाजिक श्रम-विभाजन—पशुचारी कबीलों के शेष से अन्य लोगों से अलगाव—के बाद विनिमय के दायरे में मवेशी, अनाज, इत्यादि आये और विनिमय नियमित हो गया।

मूल्य का सम्पूर्ण या विस्तारित रूप

विनिमय के दौरान यह भी स्पष्ट हो गया कि बहुसंख्यक लोग एक वस्तु विशेष की कामना करते हैं। आम तौर पर यह वस्तु विशेष मवेशी थे। विनिमय की प्रक्रिया में मवेशियों को अन्य वस्तुओं के समतुल्य किया जाता था और फिर विनिमय होता था। मिसाल के लिए,

१ भेड़	= ४० किलोग्राम अनाज या = २० मीटर कपड़ा या = २ कुल्हाड़ी या = ३ ग्राम सोना, इत्यादि।

इस रूप को जिसमें किसी एक वस्तु का मूल्य कई वस्तुओं के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है, मूल्य का सम्पूर्ण या विस्तारित रूप कहते हैं।

वस्तु-उत्पादन और विनिमय के विकास के साथ एक वस्तु विशेष की माग बढ़ गयी। सभी वस्तुओं का मूल्य एक ही वस्तु के रूप में अभिव्यक्त होने लगा। वह वस्तु जो बहुत-सी अन्य वस्तुओं के

मूल्य का सर्वव्यापी रूप

मूल्य की अभिव्यक्ति के माध्यम का काम करती है, सर्वव्यापी तुल्य का हिस्सा अदा करती है। वह वस्तु मूल्य की दृष्टि से अन्य सभी वस्तुओं के बराबर होती है। सर्वव्यापी तुल्य के उदय के फलस्वरूप मूल्य के विस्तारित रूप का मूल्य के सर्वव्यापी रूप में संक्रमण हुआ। इसे इस प्रकार अभिव्यक्त किया जा सकता है:

४० किलोग्राम अनाज = या २० मीटर कपड़ा = या २ कुल्हाड़ी = या ३ ग्राम सोना, इत्यादि =	१ भेड़

...करने का कार्य बाजार में वस्तु की बिक्री के समय अपने आप होता ... मूल्य वस्तु-उत्पादकों के पारस्परिक सम्बंधों को, उनके क्रिया-कलापों ...रिक आदान-प्रदान को अभिव्यक्त करता है। पर ऊपरी तौर पर ये ...चीजों के आपसी सम्बंध प्रतीत होते हैं।

३. विनिमय का विकास और मूल्य के रूप

...वस्तुओं के मूल्य का सृजन उनको उत्पन्न करने के लिए व्यय किये गये ...होता है। विनिमय की प्रक्रिया में जब एक वस्तु की तुलना दूसरी वस्तु ...से की जाती है, तभी उनके मूल्य अपने को अभिव्यक्त करते हैं। इस तरह मूल्य विनिमय-मूल्य के रूप में अभिव्यक्त होता है। एक कुल्हाड़ी का मूल्य प्रत्यक्षत: श्रम-काल के रूप में अभिव्यक्त नहीं हो सकता। उसका मूल्य दूसरी वस्तु की इकाइयों के रूप में अभिव्यक्त हो सकता है। मान लें कि एक कुल्हाड़ी २० किलोग्राम ...अनाज के बराबर है। यहां अनाज कुल्हाड़ी के मूल्य की अभिव्यक्ति का माध्यम ...है। उपर्युक्त समीकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि २० किलोग्राम अनाज और एक कुल्हाड़ी के उत्पादन के लिए श्रम की बराबर मात्रा व्यय की गयी है। जब कोई वस्तु (यहां कुल्हाड़ी) अपना मूल्य किसी दूसरी वस्तु के माध्यम से अभिव्यक्त करती है, तब इस अभिव्यक्ति को पहली वस्तु के मूल्य का सापेक्ष रूप कहते हैं। उस वस्तु (यहां अनाज) को जिसका उपयोग-मूल्य किसी अन्य वस्तु के मूल्य की अभिव्यक्ति के लिए माध्यम का काम करता है, मूल्य का तुल्य रूप कहते हैं।

...विनिमय-मूल्य—वह रूप जिसमें मूल्य अपने आपको अभिव्यक्त करता है

विनिमय-मूल्य ने ऐतिहासिक विकास के लम्बे मार्ग को (मूल्य के प्रारम्भिक या आकस्मिक रूप से लेकर मौद्रिक रूप तक) तय किया है।

प्राकृतिक अर्थव्यवस्था में लोग सामग्रियों का उत्पादन विनिमय के लिए नहीं, बल्कि व्यक्तिगत उपभोग के लिए करते थे। केवल संयोगवश संचित अधिशेष उत्पादनों का ही विनिमय किया जाता था। विनिमय की जाने वाली सामग्रियों की मात्रा सीमित थी। एक वस्तु का विनिमय किसी दूसरी वस्तु के रूप में प्रत्यक्ष रूप से होता था। इस तरह पहली वस्तु का मूल्य दूसरी वस्तु के रूप में अभिव्यक्त होता था। उदाहरण के तौर पर, मान लें कि १ कुल्हाड़ी २० किलोग्राम अनाज के बराबर है, या २० मीटर कपड़ा १

मूल्य का प्रारम्भिक रूप

इस संक्रमण के कारण वस्तुओं का परिचलन शुरू हुआ। विनिमय की प्रत्येक क्रिया के दो चरण होते हैं : क्रय और विक्रय। अब तक सर्वव्यापी तुल्य का कार्य कोई एक वस्तु नही करती थी। कई स्थानों में मवेशी सर्वव्यापी तुल्य की भूमिका अदा करते थे और कई अन्य जगहों पर नमक और पशुओं की खालें। इसी तरह भिन्न जगहो पर भिन्न वस्तुएं सर्वव्यापी तुल्य थीं।

कई वस्तुओ के सर्वव्यापी तुल्य के रूप मे प्रयुक्त होने के कारण विनिमय का विकास अवरुद्ध हो गया तथा विकासशील बाजार की आवश्यकताओ और इस पद्धति मे विरोध पैदा हो गया। अतः एक तुल्य की ओर संक्रमण आवश्यक हो गया। कीमती धातुओं को—चादी और सोना को सर्वव्यापी तुल्य का स्थान देकर इस विरोध को हल किया गया।

मूल्य का मौद्रिक रूप सर्वव्यापी तुल्य के रूप में स्वर्ण के प्रयुक्त होने के परिणामस्वरूप मूल्य का मौद्रिक रूप प्रकट हुआ। इसे इस प्रकार अभिव्यक्त किया जा सकता है:

४० किलोग्राम अनाज	=	३ ग्राम सोना
या		
२० मीटर कपड़ा	=	
या		
२ कुल्हाड़ी	=	
या		
१ भेड, इत्यादि	=	

श्रम के द्वितीय महत्वपूर्ण सामाजिक विभाजन यानी दस्तकारी का कृषि से अलगाव के बाद मूल्य का मौद्रिक रूप सामने आया। सोना और चांदी अपनी खास विशेषताओ (सजातीयता, विभाज्यता, स्थायित्व, सुगठित आकार, इत्यादि) के कारण मुद्रा के रूप मे दृढ़ रूप से स्थापित हो गये। मुद्रा वह वस्तु है जो सभी अन्य वस्तुओं के मूल्य की अभिव्यक्ति का सामाजिक कार्य करती है। मुद्रा के उदय के बाद अन्य सभी वस्तुओ का मूल्य मुद्रा के रूप मे मापा जाने लगा।

४. मुद्रा

मुद्रा का स्वभाव और उसके कार्य वस्तु-उत्पादन और विनिमय के ऐतिहासिक विकास के दौरान मुद्रा का जन्म स्वतः हुआ। संक्षेप मे हम कह सकते हैं कि मूल्य के रूपो के विकास ने ही, जिसकी शुरुआत अति साधारण चीजों से हुई थी, मूल्य के मौद्रिक रूप और स्वयं मुद्रा को जन्म दिया।

सोना और चांदी, धातु के ढले हुए सिक्के या उनके स्थान पर कागजी मुद्रा का प्रयोग मुद्रा के रूप में होता है। इस मुद्रा का प्रचलन एकाएक प्रारम्भ नहीं हुआ। यह तो एक दीर्घकालीन विकास का फल था। सर्वप्रथम विनिमय के माध्यम के रूप में बहुधा प्रयुक्त होने वाली वस्तु को अलग कर लिया गया।

विभिन्न समयों में जानवरों की खाल, मवेशी, चमडा, अनाज, नमक, आदि का प्रयोग मुद्रा के रूप में किया गया। कभी एक और कभी दूसरी वस्तु ने मुद्रा की भूमिका अदा की। वस्तु-अर्थव्यवस्था के लम्बे विकास के फलस्वरूप सोना ही मुद्रा का कार्य सम्पादित करने लगा और इस तरह स्वर्ण के साथ मुद्रा की भूमिका सम्बद्ध हो गयी। १९वीं शताब्दी के दौरान बहुसंख्यक देशों में सोना मुद्रा का कार्य करने लगा था।

एक विकसित अर्थव्यवस्था में मुद्रा निम्नलिखित कार्य करती है : वस्तुओं के मूल्यों की माप, प्रचलन का माध्यम, संचय या निसंचय का माध्यम, भुगतान का माध्यम और सर्वव्यापी मुद्रा का कार्य। अब हम एक-एक कर इन पर विचार करेंगे।

मुद्रा का बुनियादी कार्य मूल्य की माप है। सभी वस्तुओं का मूल्य मुद्रा के रूप में मापा जाता है। इस कार्य को सम्पादित करने के लिए आवश्यक है कि मुद्रा का अपना भी कोई मूल्य हो। उदाहरण के लिए, किसी वस्तु का वजन एक लोहे के बाट द्वारा मापा जा सकता है, क्योंकि लोहे के बाट का भी अपना वजन होता है। इसी तरह से किसी वस्तु के मूल्य को मापने के लिए आवश्यक है कि जिस वस्तु से उसे मापा जाये, उसका भी कोई मूल्य हो।

वस्तु के मूल्य की माप स्वर्ण के माध्यम से हो सकती है। किसी वस्तु के लिए निश्चित कीमत निर्धारित करने के उद्देश्य से उसका मालिक दिमागी तौर पर (या जैसा मार्क्स कहते हैं, वैचारिक तौर पर) उस वस्तु का मूल्य सोना के रूप में अभिव्यक्त करता है। चूंकि सोने के मूल्य और किसी वस्तु के मूल्य में सदा एक निश्चित सम्बंध रहता है, इसीलिए उस वस्तु को सोने की एक निश्चित मात्रा के साथ समतुल्य करना सम्भव है। इस सम्बंध का आधार होता है स्वर्ण और उस वस्तु को उत्पन्न करने के लिए व्यय की गयी सामाजिक तौर पर आवश्यक श्रम की मात्रा।

वस्तु के मूल्य की मुद्रा के रूप में अभिव्यक्ति को उस वस्तु की कीमत कहते हैं। अतः कीमत किसी वस्तु के मूल्य की मौद्रिक अभिव्यक्ति है।

सोने और चांदी की निश्चित मात्रा के रूप में वस्तु अपने मूल्य को अभिव्यक्त करती है। मौद्रिक वस्तु की इन मात्राओं की माप आवश्यक है। मुद्रा के लिए प्रयुक्त धातु की एक निश्चित मात्रा ही मुद्रा की माप की एक

होती है । अमरीका मे मुद्रा की इकाई को डालर, ब्रिटेन में पौंड
ग और फ्रांस मे फ्रैंक कहते हैं । सुविधा के लिए इन मौद्रिक इकाइयों
विभाजन अशेष-भाजक हिस्सो मे किया गया है । डालर को १०० सैंट के
मे फ्रैंक को १०० सेन्टाइम्स के रूप में तथा पौंड स्टर्लिंग को २० शिलिंग
र १ शिलिंग को १२ पैंस के रूप में बाटा गया है ।

मुद्रा की इकाई और उसके हिस्से कीमत के मानक के रूप मे कार्य
रते है ।

मुद्रा का दूसरा कार्य प्रचलन माध्यम का होता है । मुद्रा के उदय के
पहले वस्तुओ का साधारण विनिमय होता था । एक वस्तु का दूसरी वस्तु के
साथ प्रत्यक्ष विनिमय या अदला-बदली होती थी । मुद्रा के जन्म के उपरान्त
मुद्रा की सहायता से एक वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ विनिमय होने लगा ।
सर्वप्रथम वस्तु का विनिमय मुद्रा के साथ होता है और फिर मुद्रा का उपयो
किसी अन्य वस्तु को खरीदने के लिए किया जाता है । मुद्रा की सहायता से हो
वाले वस्तु-विनिमय को वस्तुचलन (वस्तु—मुद्रा—वस्तु) कहते हैं । यहां ध्य
देने की बात यह है कि वस्तु ग्राहक के हाथों में जाते ही प्रचलन क्षेत्र को छ
देती है, लेकिन मुद्रा निरन्तर प्रचलन क्षेत्र मे रहती है । मुद्रा पहले चरण मे
ग्राहक के पास से निकलकर विक्रेता के हाथों मे आ जाती है और दूसरे च
मे फिर विक्रेता के पास से ग्राहक के पास चली जाती है । इस तरह मुद्रा वस्तुअ
के प्रचलन में माध्यम का कार्य करती है । इस कार्य को सम्पादित करने के
लिए मुद्रा की वास्तविक उपस्थिति आवश्यक होती है ।

प्रारम्भ मे जब वस्तुओं का विनिमय शुरू हुआ, तब मुद्रा ने सोने या
चादी की छड़ो का रूप लिया । लेकिन इससे कई कठिनाइयां खड़ी हो गयीं ।
हर बार छड़ो को तोलना होता था और उनके छोटे टुकड़ो को तोड़कर शुद्धता
की परीक्षा करनी पड़ती थी । अब धीरे-धीरे सोने या चांदी की छड़ों का स्थान
सिक्को ने ले लिया । सिक्कों की ढलाई का काम राज्य ने अपने हाथो में ले
लिया । प्रत्येक सिक्का एक निश्चित आकार और वजन वाला धातु का टुक
होता है ।

प्रचलन की प्रक्रिया मे सिक्के घिस जाते हैं और अपने मूल्य का
हिस्सा खो देते है । लेकिन व्यवहार में घिसे हुए सिक्को और नये सिक्कों
कोई भेद नही किया जाता । यह इसलिए होता है कि प्रचलन के माध्यम
रूप में मुद्रा क्रेता और विक्रेता के हाथों में बहुत दिनों तक नहीं ठहरती ।
उत्पादक को इस बात की फिक्र नहीं रहती कि उसे पूरे मूल्य की मुद्रा मि
या नहीं, क्योंकि उस मुद्रा को वह तुरन्त ही अपनी जरूरत की अन्य व

पर स्वयं करता है। चलन-माध्यम का कार्य अपूर्ण मूल्य की धातु मुद्रा या कागजी मुद्रा से भी हो सकता है।

वस्तु-अर्थव्यवस्था के विकास के साथ मुद्रा संचय और निसंचय के माध्यम का भी कार्य करने लगी। मुद्रा धन का एक सर्वव्यापी मूर्तिमान रूप है। मुद्रा के द्वारा कोई भी वस्तु प्राप्त की जा सकती है। वस्तु-उत्पादक मुद्रा का संचय आवश्यकता की वस्तुओं को खरीदने के लिए करते हैं। यह कार्य पूर्ण मूल्य वाली मुद्रा—सोना और चांदी के सिक्कों तथा सोना या चांदी की चीजों से ही हो सकता है।

मुद्रा भुगतान के माध्यम का भी कार्य करती है। वस्तुएं सदा नकद मुद्रा के लिए नहीं बेची जाती। वे कभी-कभी साख या विलम्बित भुगतान पर भी बेची जाती हैं। साख पर खरीदी गयी वस्तु बिना तुरन्त भुगतान किये वस्तु-विक्रेता द्वारा ग्राहक को दे दी जाती है। समझौते के अनुसार पैसे किसी आगामी तिथि को चुका दिये जाते हैं। भुगतान के समय मुद्रा ग्राहक के हाथों से निकलकर विक्रेता के पास आ जाती है। इस तरह मुद्रा भुगतान के माध्यम का कार्य करती है।

मान लें कि किसान को बसन्त ऋतु में एक हल की जरूरत है। उसके पास तत्काल भुगतान करने के लिए पैसे नहीं हैं। लोहार उसके लिए हल बनाता है। किसान के पास शरद ऋतु में फसल कटने और अनाज बिकने पर पैसे हो जायेंगे। ऐसी स्थिति में किसान को लोहार से हल लेने की एक ही सूरत दीखती है कि वह हल उधार पर ले और शरद ऋतु में भुगतान करे। भुगतान के माध्यम के रूप में मुद्रा का व्यवहार कर और जमीन का लगान, आदि चुकाने के लिए भी होता है।

चलन-माध्यम और भुगतान के माध्यम के रूप में मुद्रा के कार्य से वस्तुओं के प्रचलन के लिए मुद्रा की आवश्यक मात्रा को निर्धारित करने वाले नियम की व्याख्या करना असम्भव हो जाता है।

प्रचलन के लिए मुद्रा की आवश्यक मात्रा पहले तो प्रचलन में रहने वाली वस्तुओं की कुल कीमतों पर और उसके बाद मुद्रा के वेग पर निर्भर करती है। मुद्रा का वेग जितना ही अधिक होगा (यानी जितनी अधिक तेजी से मुद्रा प्रचलित होगी), प्रचलन के लिए मुद्रा की आवश्यक मात्रा उतनी ही कम होगी। इसी तरह मुद्रा का वेग जितना ही कम होगा, वस्तुओं के प्रचलन के लिए मुद्रा की आवश्यक मात्रा उतनी ही अधिक होगी। मान लें कि एक वर्ष के दौरान बिकी वस्तुओं की कुल कीमत १ खरब डालर है और प्रत्येक डालर का औसत

५० है। ऐसी स्थिति में कुल वस्तुओं के प्रचलन के लिए २ अरब डालर
आवश्यकता होगी। हम यह कहते हैं कि—

$$\text{मुद्रा की राशि} = \frac{\text{वस्तुओं की कुल कीमत}}{\text{मुद्रा का आवर्त वेग}} = \frac{\text{१ खरब डालर}}{\text{५०}} = \text{२ अरब डालर}$$

उत्पादकों द्वारा एक-दूसरे को साख पर वस्तुएं देने के कारण मुद्रा की आवश्यकता कम हो जाती है। यह कमी साख पर बेची जाने वाली वस्तुओं की कुल कीमत तथा आपस में सध-पट जाने वाली वस्तुओं के बराबर होती है। मुद्रा के प्रचलन का नियम निम्नलिखित है : वस्तुओं के प्रचलन के लिए मुद्रा की आवश्यक राशि सभी वस्तुओं की कुल कीमतों के योग को मुद्रा के औसत आवर्त से विभाजित करने पर प्राप्त राशि के बराबर होती है। इसके अलावा वस्तुओं की कुल कीमतों के योग में से साख पर बेची जाने वाली वस्तुओं की कु कीमतों और आपस में सध-पट जाने वाले भुगतानों की कुल राशि को घटा दे चाहिए, लेकिन चुकायी जाने वाली भुगतान की राशि को जोड़ देना चाहिए

यह नियम ऐसी सभी सामाजिक संरचनाओं के लिए लागू होता है जह वस्तु-उत्पादन और विनिमय उपस्थित रहता है।

मुद्रा सर्वव्यापी मुद्रा का भी कार्य करती है। विश्व बाजार में मुद्रा अपने स्थानीय लिबास (मार्क्स के शब्दों में) को त्याग देती है और अपने मूल रूप में, सोना या चांदी के रूप में प्रकट होती है। विश्व बाजार में देशों के बीच व्यापा-रिक लेन-देन में सोना क्रय और भुगतान का सर्वव्यापी माध्यम तथा सामाजिक धन का सर्वव्यापी प्रतीक है।

ये सब मुद्रा के कार्य हैं जो विविध रूपों में मुद्रा के मूल तत्व को, उस सर्वव्यापी तुल्य होने को अभिव्यक्त करते हैं। ये सभी कार्य एक ही शरीर विभिन्न अंगों की तरह आपस में सम्बद्ध हैं।

मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण पर आधारित सामाजिक संरचन (दासता, सामन्तवाद और पूंजीवाद) में मुद्रा का एक वर्ग चरित्र होता मुद्रा शोषण के साधन का काम करती है।

स्वर्ण व कागजी मुद्रा

मुद्रा-स्फीति

कागजी मुद्रा के अन्तर्गत स्वर्ण के स्थान पर माध्यम और भुगतान के माध्यम के रूप में कार्य वाली राज्य द्वारा चलायी गयी प्रतीक मुद्राएं हैं। चूंकि व्यवहार में कागजी मुद्रा का अपना

मूल्य नहीं होता, इसलिए वह वस्तुओं के मूल्य की माप का कार्य नहीं कर सकती।

कागजी मुद्रा सबसे पहले अमरीका में १६९० में चलायी गयी थी। रूस में कागजी मुद्रा सबसे पहले १७६९ में चलायी गयी।

कई प्रकार के कागजी प्रतीक चलाये जाते हैं। लेकिन वे सिर्फ वस्तु-प्रचलन को पूरा करने के लिए सोने की आवश्यक मात्रा के मूल्य को जाहिर करते हैं। अगर आवर्त को पूरा करने के लिए मुद्रा की आवश्यक राशि के मूल्य के बराबर कागजी मुद्रा जारी की जाती है, तो कागजी मुद्रा की क्रय-शक्ति और स्वर्ण मुद्रा की क्रय-शक्ति बराबर होती है। चूंकि नियमतः पूंजीवादी राज्यों का राजस्व उनके व्यय से कम होता है, इसलिए वे बहुधा अतिरिक्त कागजी मुद्रा जारी करते हैं। ऐसा विशेषकर लड़ाई, संकट और अन्य असाधारण कालों में किया जाता है। फलस्वरूप कागजी मुद्रा का मूल्य घट जाता है।

निम्नलिखित उदाहरण देखें। मान लें कि वस्तुओं के प्रचलन के लिए ५ अरब स्वर्ण मुद्राओं की जरूरत है। प्रत्येक स्वर्ण मुद्रा का मूल्य १ डालर के बराबर है। राज्य ने ५ अरब कागजी डालर जारी किये हैं। इसका मतलब है कि प्रत्येक कागजी डालर का मूल्य एक स्वर्ण मुद्रा के बराबर है। मान लें कि वस्तुओं का प्रचलन वही रहता है, लेकिन राज्य ने ५ अरब डालर के अतिरिक्त नोट जारी कर दिये हैं। अब प्रत्येक स्वर्ण मुद्रा का प्रतिनिधित्व दो कागजी डालरों से होगा। दो डालरों से उतनी ही वस्तुएं खरीदी जा सकती है जितनी पहले एक डालर से खरीदी जाती थी, अतः कागजी मुद्रा का मूल्य घट गया और उसकी क्रय-शक्ति में ह्रास हो गया।

इस प्रक्रिया को मुद्रा-स्फीति कहते हैं। इसके कारण वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हो जाती है। लेकिन पूंजीवादी देशों में मजूरी और मजदूरों की आय बड़ी धीमी गति से बढ़ती है (अगर वे बढ़ती हैं तो)। इसलिए सर्वहारा वर्ग को मुद्रा-स्फीति से अधिक तकलीफ उठानी पड़ती है।

एक चरण ऐसा भी आता है जब मुद्रा-स्फीति के कारण देश की अर्थ-व्यवस्था में काफी गड़बड़ी पैदा हो जाती है। सामान्य मुद्रा-प्रचलन को कायम रखने के लिए कई उपाय किये जाते हैं। मौद्रिक सुधार का एक तरीका है घटे हुए मूल्य की मुद्रा के स्थान पर कम संख्या में नयी मुद्रा को चालू करना (अवमूल्यन करना)।

मौद्रिक सुधार के स्वभाव और तरीकों का निर्धारण पूंजीवादी राज्य द्वारा शासक वर्ग के हित में होता है। पूंजीपतियों द्वारा मौद्रिक सुधार लाने

एक नतीजा यह होता है कि सर्वसाधारण के जीवनयापन का स्तर गिर
ता है।

पूंजीवादी देशों में कागजी मुद्रा के अतिरिक्त साख मुद्रा भी होती है।
सका जन्म मुद्रा के कार्य-भुगतान के माध्यम से हुआ। साख मुद्रा का साधारण
रूप हुंडी है। यह उस दस्तावेज का स्थापित रूप है
जिसके द्वारा देनदार व्यक्ति एक निश्चित अवधि के
अन्दर मुद्रा की एक निश्चित राशि अदा करने क

साख मुद्रा

वादा करता है। चूंकि वस्तुओं की खरीद-बिक्री के समय हुंडी एक व्यक्ति से दूस-
व्यक्ति को हस्तान्तरित होती है, इसलिए हुंडी मुद्रा का कार्य सम्पन्न करती है।

शुरू-शुरू में निजी व्यावसायिक हुंडियों का व्यवहार साख मुद्रा के रूप
में होता था। इस हुंडी का निर्माण वस्तुओं का क्रेता करता था। चूंकि निजी
हुंडियों को उनके लिखने वाले व्यक्तियों के जानकार लोग ही स्वीकार करते थे
इसलिए उनका प्रचलन जनता के एक छोटे दायरे में ही होता था। आगे च
कर बैंक निजी हुंडियों को स्वीकार करने तथा बट्टा करने लगे। बैंकों ने उन
जगह अपनी हुंडिया चलायी जो बैंक-नोटों के रूप में प्रसिद्ध हुईं। बैंक-नोट
बैंकर के ऊपर एक धनादेश है जिससे वाहक को सम्बद्ध बैंक से नकद मुद्रा
मिल सकती है।

बैंक-नोटों का किसी भी समय सोना या अन्य धात्वीय मुद्रा के साथ
विनिमय हो सकता है। ऐसी अवस्थाओं में बैंक-नोट स्वर्ण मुद्राओं के समान
होते हैं और उनका मूल्य-ह्रास नहीं हो सकता। पूंजीवाद के विकसित होने पर
प्रचलित स्वर्ण मुद्रा की राशि में एक सापेक्षिक ह्रास हुआ। केन्द्रीय मुद्रा-प्रचलन
बैंकों में आरक्षित निधि के रूप में सोने की राशि उत्तरोत्तर संचित होने लगी
प्रचलन में सोने की जो राशि थी, उसकी जगह बैंक-नोटों और आगे चलक
कागजी मुद्रा ने ले ली। प्रारम्भ में बैंक-नोटों का विनिमय सोना के साथ
सकता था। लेकिन आगे चलकर सपरिवर्तनशील बैंक-नोट जारी किये ग
इसने बैंक-नोटों को बहुत हद तक कागजी मुद्रा की बराबरी में ला दिया।

५. मूल्य का नियम—वस्तु-उत्पादन का एक आर्थिक नियम

प्रतिद्वन्द्विता और उत्पादन की अराजकता

जहां निजी स्वामित्व होता है, वहां वस्तुओं का उत
अपने आप होता है। उत्पादक किस वस्तु का उ
करें और कितनी मात्रा में करें, यह बतलाने
न कोई संस्था है और न हो सकती है। निजी
कर्ता और किसान अपने उत्पादन का अन्य व्यव

या उपभोक्ताओ के साथ कोई ताल-मेल नही बिठाते। अतएव उत्पादन मे अराजकता (यानी नियोजन का अभाव और उत्पादन मे गडबडी) की स्थिति बनी रहती है।

निजी वस्तु-उत्पादको के बीच उत्पादन और बिक्री की अधिक लाभप्रद स्थितियो तथा अधिकतम सम्भावित मुनाफे के लिए कटु संघर्ष होता है तथा प्रतिद्वन्द्विता रहती है। फलस्वरूप उत्पादन की अराजकता और भी बढ़ जाती है। प्रतिद्वन्द्विता तथा उत्पादन की अराजकता निजी स्वामित्व पर आधारित वस्तु-उत्पादन के नियम है। प्रत्येक वस्तु-उत्पादक, किसान, दस्तकार और पूजीपति (यह सही है कि पूजीपति स्वय वस्तुओ का उत्पादन नहीं करते लेकिन बाजार मे वे वस्तु-उत्पादक की तरह व्यवहार करते हैं) अपनी वस्तुओ की बिक्री से अधिकतम सम्भावित मुनाफा कमाना चाहते हैं। किन्तु वे उस वस्तु की माग का ठीक अनुमान नही लगा सकते। वे सिर्फ इतना ही जानते हैं कि हाल में वस्तु की माग काफी थी। वे अपनी सामर्थ्य के अनुसार उत्पादन करने की कोशिश करते हैं। अन्य वस्तु-उत्पादक भी इसी तरह काम करते हैं। फलस्वरूप प्रत्येक उत्पादक जोखिम उठाकर अपने भाग्य के भरोसे काम करता है। बहुधा समाज की माग की अपेक्षा वस्तु का उत्पादन अधिक होता है।

तब प्रश्न यह उठता है कि कौन-सी ताकत निजी स्वामित्व पर आधारित समाज के उत्पादन को नियमित करती है? वास्तव मे इसका नियमन मूल्य के नियम से होता है।

मूल्य का नियम

मूल्य का नियम वस्तु-उत्पादन का एक आर्थिक नियम है। इसके अनुसार वस्तुओं का नियमन उन पर व्यय की गयी सामाजिक तौर पर आवश्यक श्रम की मात्रा के आधार पर होता है। दूसरे शब्दो मे मूल्य के नियम का मतलब यह है कि एक वस्तु का विनिमय दूसरी वस्तु के साथ उनके मूल्य के अनुसार होता है। तात्पर्य यह है कि जो वस्तुए एक-दूसरे के साथ विनिमय की जाती है, उनमे सामाजिक तौर पर श्रम की समान मात्रा निहित होती है। इसी तरह से वे तुल्य होती है। परिणामस्वरूप किसी वस्तु की कीमत (याद रखें कि मूल्य की मौद्रिक अभिव्यक्ति को ही कीमत कहते हैं) उसके मूल्य के अनुकूल होनी चाहिए। लेकिन वास्तव मे होता यह है कि वस्तुओ की कीमतें माग और पूर्ति की शक्तियो के असर के कारण अपने मूल्यो से अधिक या कम होती हैं। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि किसी वस्तु की कम मात्रा बाजार में रहने और उसकी माग की मात्रा पूर्ति की मात्रा से अधिक होने पर उस वस्तु की कीमत अधिक होती है। अगर पूर्ति की मात्रा माग की मात्रा से अधिक है, तो

...मत पास होती है। तब क्या यह कहा जा सकता है कि मूल्य का नियम नहीं लागू हो रहा है? नहीं, ऐसी बात नहीं है। किसी भी नियम की कार्य-प्रणाली अनगिनत तथ्यों पर विचार करने के बाद ही समझी जा सकती है। अगर एक लम्बे समय के दौरान किसी वस्तु के लिए अदा की गयी विभिन्न कीमतों पर विचार करें, तो हम पायेंगे कि मूल्य से ऊपर या नीचे की ओर कीमतों का विचलन एक-दूसरे से कट-पट जाता है, फलस्वरूप औसत कीमतें मूल्य के बराबर होती हैं।

उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व पर आधारित वस्तु-समाज में गड़बड़ी एवं उत्पादन की अराजकता के बावजूद अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखाओं में समय-समय पर सन्तुलन की अवस्था (या उचित अनुपात) स्थापित की जा सकती है। वस्तु-अर्थव्यवस्था में बाजार की प्रतिद्वन्द्विता के सहारे काम करने वाले उत्पादन के नियामक—मूल्य के नियम—के कारण ही ऐसा हो पाता है। एंगेल्स ने ऐसा संकेत किया था कि "वस्तुओं का पारस्परिक विनिमय करने वाले उत्पादकों के समाज में प्रतिद्वन्द्विता ही मूल्य के नियम को परि-चालित करके इन अवस्थाओं में सम्भव सामाजिक उत्पादन संगठन और व्यवस्था ला पाती है। सिर्फ वस्तुओं के अल्पमूल्यन या अतिमूल्यन के द्वारा ही व्यक्तिगत वस्तु-उत्पादक के सामने यह बात स्पष्ट हो पाती है कि समाज को किन चीजों की और कितनी मात्रा में जरूरत है या जरूरत नहीं है।"[1]

उत्दादन के साधनों के निजी स्वामित्व पर आधारित वस्तु-उत्पाद... में मूल्य के नियम का परिचालन अपने को निम्नलिखित तरह से स्प... करता है:

१. मूल्य का नियम उत्पादन की शाखाओं में उत्पादन के सा... और श्रम के वितरण को स्वतः नियमित करता है।

श्रम के सामाजिक विभाजन के लिए आवश्यक है कि उत्पाद... विभिन्न शाखाओ मे एक निश्चित आनुपातिक सम्बन्ध हो। ऐसे सम्बन्ध के... उत्पादन हो ही नही सकता। कीमतो का उतार-चढ़ाव और परिणाम... उत्पादन की अधिक या कम लाभदायकता ही एक ओर उत्पादन की ... शाखाओं में और दूसरी ओर कुछ विशेष शाखाओ मे उत्पादन के साध... श्रम के प्रवाह का नियमन करती है।

इस बात को स्पष्ट करने के लिए एम. इलिन की किताब स्टो... द ग्रेट प्लान से एक युक्तिपूर्ण उदाहरण दे सकते हैं। लेखक ने एक...

---

१. फ्रेडरिक एगेल्स, 'प्रोफेस टू दी फर्स्ट जर्मन एडिसन' (देखें कार्ल मार्क्स, "पावर्टी आफ फिलासफी", मास्को, पृष्ठ २१।)

मनोरंजक चित्र प्रस्तुत करते हुए बतलाया है कि किस प्रकार मूल्य का नियम वस्तु-उत्पादन, खासकर पूंजीवादी वस्तु-उत्पादन का नियमन करता है।

इलिन लिखते हैं "मान लें कि श्री फाक्स के पास कुछ पैसे हैं—१० लाख डालर हैं। वे जानते हैं कि पैसा बेकार पड़ा नहीं रहना चाहिए। श्री फाक्स अखबार पढ़ते हैं, अपने दोस्तों से सलाह-मशविरा करते हैं और एजेन्ट रखते हैं। उनके मनके विशेषज्ञ सुबह से शाम तक शहर में घूमते और यह पता लगाते हैं कि श्री फाक्स अपने पैसों का क्या करें।

"आखिर विनियोग के लिए एक अच्छा जरिया मिल जाता है—हैट उत्पादन। हैट के लिए अच्छा बाजार है, क्योंकि लोगों की हालत दिनोंदिन बेहतर हो रही है।

"श्री फाक्स हैट बनाने के लिए कारखाना लगाते हैं।

"यही विचार श्री फाक्स, श्री क्राक्स और श्री नाक्स को भी एक ही समय आता है और वे सब भी हैट के कारखाने लगाते हैं।

"छ महीने के भीतर हैट के नये कारखाने बन जाते हैं। फलस्वरूप दूकानों में हैट का अम्बार लग जाता है। गोदामों में भी हैट ठसाठस भर जाते हैं। विज्ञापन बोर्ड, विज्ञापन और पोस्टर हैट-हैट चिल्लाने लगते हैं। कारखाने पूरी रफ्तार से काम करते हैं।

"इसी समय ऐसी स्थिति आ जाती है जिसकी उम्मीद श्री फाक्स, श्री नाक्स और श्री क्राक्स को नहीं थी। लोग हैट खरीदना बन्द कर देते हैं। श्री नाक्स कीमत में २० सेंट की कमी कर देते हैं। श्री क्राक्स एक कदम आगे बढ़ते हैं और कीमत में ४० सेंट की कमी कर देते हैं। श्री फाक्स हैटों से पिण्ड छुड़ाने के लिए उन्हें घाटे पर बेचना शुरू कर देते हैं।

"किन्तु तब भी बिक्री घटती ही रहती है।

"वह दिन भी आता है जब श्री फाक्स अपना कारखाना बन्द कर देते हैं। दो हजार मजदूर बर्खास्त कर दिये जाते हैं। दूसरे दिन श्री नाक्स भी अपना कारखाना बन्द कर देते हैं। एक हफ्ते के बाद करीब सारे कारखाने बन्द हो जाते हैं। हजारों मजदूर बेरोजगार हो जाते हैं। नयी मशीनों में जंग लग जाती है। कारखाने रद्दी के ढेर की तरह बिक जाते हैं।

"इसी तरह एक या दो साल बीत जाते हैं। श्री नाक्स, श्री फाक्स और श्री क्राक्स से खरीदे गये हैट पुराने पड़ जाते हैं। लोग फिर हैट खरीदना शुरू कर कर देते हैं। हैट की दूकानों में माल कम पड़ने लगता है। धूल से भरे हैट के बक्सों को तहखाने से निकाला जाता है। हैट का अभाव हो जाता है। हैट की कीमत चढ़ जाती है।

उसका अन्य वस्तुओं के साथ सम्बंध कायम हो जाता है, त्यों ही वह वस्तु अपने उत्पादक से स्वतंत्र हो जाती है। उसका अस्थिर जीवन प्रारम्भ होता है। ऐसा हो सकता है कि आज कोई उत्पादक एक जोड़े जूते के लिए २० डालर प्राप्त करे और कल सिर्फ १५ डालर। परसों ऐसा भी हो सकता है कि जूते के बदले उसे कुछ भी न मिले। आगे चलकर ऐसा भी सम्भव है कि लोग जूतों के लिए शोर करें और बहुत अधिक व्यय करने के लिए तैयार हों।

बाजार में वस्तुओं के इस स्वतंत्र और पूर्णतया सांयोगिक जीवन को देखकर बहुतेरे लोग वस्तुओं में निहित नहीं रहने वाले गुणधर्मों को भी उनके साथ सम्बद्ध करने लगते हैं। लोगों के आपसी सम्बंध चीजों के पारस्परिक सम्बंधों के रूप में छिपे होते हैं।

उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व पर आधारित वस्तु-अर्थव्यवस्था के लिए उत्पादन-सम्बंधों का तत्वांतरण स्वाभाविक है। इसे मार्क्स ने वस्तुओं की प्रतीकनिष्ठा[1] कहा है।

वस्तु-उत्पादन के विकास के साथ वस्तुओं की प्रतीकनिष्ठा भी बढ़ती है और अधिक व्यापक हो जाती है। मुद्रा ने जन्म लेते ही अपने सम्पूर्ण रूप—मुद्रा की प्रतीकनिष्ठा को ग्रहण कर लिया। सभी चीजें सोने के द्वारा खरीदी जा सकती हैं। लोगों की नजर में यह मुद्रा और सोने का स्वाभाविक गुणधर्म प्रतीत होता है, जबकि वास्तव में यह निश्चित सामाजिक सम्बंधों और वस्तु-उत्पादन के सम्बंधों का फल है।

मार्क्स पहले व्यक्ति थे जिन्होंने वस्तुओं की प्रतीकनिष्ठा का रहस्योद्घाटन किया। उत्पादन के साधनों पर से निजी स्वामित्व के उन्मूलन के बाद ही वस्तुओं की प्रतीकनिष्ठा लुप्त हो सकती है।

१. "प्रतीकनिष्ठा" शब्द का मतलब वस्तुओं में धार्मिक देवत्व रोपण से है। प्रतीक लोगों की स्वयं की कृति है। अन्धविश्वासी लोगों के अनुसार प्रत्येक प्रतीक को अलौकिक और जादू करने की शक्तियां प्राप्त होती हैं।

अध्याय ३

पूंजी और अधिशेष मूल्य तथा पूंजीवाद के अन्तर्गत मजूरी

सामाजिक विकास के एक निश्चित चरण में वस्तु-उत्पादन पूंजीवाद को जन्म देता है। पूंजीवाद से हम क्या समझते हैं? लेनिन ने पूंजीवाद की एक बहुत ही सरल और स्पष्ट परिभाषा दी। उन्होंने लिखा :

"पूंजीवाद उस समाज व्यवस्था का नाम है जिसके अन्तर्गत भूमि, कारखाने, औजार, इत्यादि थोड़े-से भूस्वामियों और पूंजीपतियों के अधिकार में होते हैं और जनसाधारण के पास कोई सम्पत्ति नहीं होती या बहुत थोड़ी सम्पत्ति होती है। अत. वे मजदूरो के रूप मे भाड़े पर काम करने के लिए मजबूर होते हैं।"[1]

पूंजीवाद के अन्तर्गत लोगो को व्यक्तिगत स्वतंत्रता तो प्राप्त होती है, लेकिन उत्पादन के साधनों से वंचित होने के कारण वे जीवन-निर्वाह के साधनों से भी वंचित होते हैं। इसी कारण वे पूंजीपतियो के वास्ते काम करने के लिए मजबूर होते हैं।

आखिर ऐसी स्थितियां कैसे उत्पन्न होती हैं जिनमे उत्पादन के साधन थोड़े-से लोगो के हाथो मे केन्द्रित हो जाते हैं?

१. पूंजी का आदिम संचय

पूंजीवादी सिद्धान्तकार जानबूझकर पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा के उदय के इतिहास को विकृत करते हैं। वे अपनी पूरी शक्ति लगाकर

१. लेनिन, "संग्रहीत रचनाएं", खंड ४, पृष्ठ ३११।

पूजीवाद के उदय की स्थितिया

सम्पदा के अन्यायपूर्ण वितरण को न्यायोचित बतलाने की कोशिशें करते हैं। वे समाज के धनी-गरीब मे बट जाने के सम्बध मे झूठी कहानियां गढकर प्रचारित करते है। जमाने से कई प्रकार के लोग समाज मे बसते आये है। उनका दावा है कि इनमे से कुछ लोग अध्यवसायी तथा मितव्ययी होते हैं और कुछ लोग सुस्त होते हैं। कालक्रम मे अध्यवसायी और मितव्ययी लोगो ने सभी प्रकार के धन इकट्ठे कर लिये जबकि अन्य लोग भिखमगे बने रहे। पूजीवाद की उत्पत्ति की इस व्याख्या का तथ्यो से कोई वास्ता नही है।

पूजीवाद के उदय के लिए दो बुनियादी स्थितियां आवश्यक हैं। पहली, समाज मे ऐसे लोगों का रहना आवश्यक है जिन्हें व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्राप्त हो लेकिन उन्हें न तो उत्पादन के साधन प्राप्त हों, न जीवन-निर्वाह के साधन। अतः उन्हें अपनी श्रम-शक्ति को बेचना आवश्यक हो जाये। दूसरी, यह जरूरी है कि कुछ व्यक्तियों के हाथों मे उत्पादन के साधन और मुद्रा की बहुत बड़ी राशि केन्द्रित हो।

ये दो स्थितिया सामन्तवाद के अन्तर्गत छोटे वस्तु-उत्पादकों के बीच स्तरीकरण की प्रक्रिया के दौरान आयीं। भूस्वामियों, नवोदित पूजीपति वर्ग तथा राजसत्ता के संगठनो ने जनसाधारण के विरुद्ध बलप्रयोग के अपरिष्कृत तरीको का इस्तेमाल कर उत्पादन की पूजीवादी पद्धति की स्थापना की गति तेज की।

उत्पादक का उत्पादन के साधनो से अलगाव। चन्द लोगों के हाथो मे धन का सचय

आदिम संचय की प्रक्रिया मे पूजीवाद के उदय के लिए आवश्यक स्थितियो का निर्माण निहित था। मार्क्स ने लिखा है: "आदिम सचय उत्पादक के उत्पादन के साधनो से अलगाव की ऐतिहासिक प्रक्रिया के अतिरिक्त और कुछ नही है।"[1]

यह प्रक्रिया ही पूजीवाद का पूर्व-इतिहास है। पूजी के आदिम सचय ने इंगलैण्ड मे अत्यन्त प्रकारात्मक रूप लिया। वहा भूस्वामियो ने किसानो की सामूहिक भूमि को जबर्दस्ती दखल कर लिया और कही-कही तो उन्हें अपने घरो से भी उजाड दिया। भूस्वामियो ने किसानों से छीनी गयी जमीन को भेडो के लिए चारागाह बना दिया या किसानों को ही पट्टे पर दे दिया। उस समय विकासोन्मुख वस्त्रोद्योग के लिए ऊन की बहुत अधिक माग थी।

---

१. कार्ल मार्क्स, "पूजी," खंड १, पृष्ठ ७१४।

दिन पूंजीपति वर्ग ने राजकीय जमीन को भी हड़प लिया तथा
ी सम्पत्ति को लूटा। बहुत बड़ी संख्या में जीविका से वंचित
र, भिखमगे और बटमार बन गये। राज्याधिकारियों ने उन उजड़े
विरुद्ध कानून जारी किये जिन्होंने अपनी सम्पत्ति पुनः प्राप्त
ोशिश की। आगे चलकर इंगलैण्ड में इन्हें "खूनी कानूनों" की
यी। इन बर्बाद, लुटे हुए लोगों को यन्त्रणा देकर, कोड़े मारकर और
से दागकर पूंजीवादी उद्योगों में काम करने के लिए मजबूर किया

किसानों को जमीन से जबर्दस्ती अलग करने के दो नतीजे सामने आये।
भूमि लोगों के एक छोटे समूह की निजी सम्पत्ति हो गयी। दूसरा,
में मजूरी के लिए काम करने वाले मजदूरों का निरन्तर प्रवाह
त हो गया। इस तरह पूंजीवाद के उदय के लिए आवश्यक पहली
—व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्राप्त, सम्पत्ति तथा उत्पादन के साधनों से वंचित,
की बहुत बड़ी संख्या में उपस्थिति—उत्पन्न हो गयी।

मार्क्स ने बड़े पूंजीवादी उद्योगों के संगठन के लिए आवश्यक मात्रा
धन के संचय के वास्ते काम में लाये जाने वाले निम्नलिखित बुनियादी तरीकों
ओर संकेत किया है। १) उपनिवेश-व्यवस्था—अमरीका, एशिया और
फ्रीका के पिछड़े हुए जनगण की गुलामी और लूट; २) कर-व्यवस्था—
जारेदारी के निर्माण तथा अन्य तरीकों से जनता पर लगाये गये करों के एक
हिस्से को हड़पना, ३) संरक्षण की व्यवस्था—पूंजीवादी उद्योगों के विकास
के लिए राजकीय समर्थन, और ४) शोषण के पाशविक तरीकों का प्रयोग

इस तरह आदिम संचय के परिणामस्वरूप उत्पादन के साधनों
वंचित लोगों की एक फौज बनी और चन्द लोगों के हाथों में अपार धन संचि॰
हो गया।

२. मुद्रा का पूंजी के रूप में परिवर्तन

मुद्रा स्वयं पूंजी का निर्माण नहीं करती। हमें पता है कि पूंजीवाद के उदय के पूर्व भी मुद्रा रही है। वस्तु-उत्पादन के विकास के एक विशेष चरण में ही मुद्रा पूंजी के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

पूंजी का सामान्य सूत्र

पूंजीवाद के पहले भी वस्तु-प्रचलन था। इसे हम निम्नलिखित सूत्र द्वारा अभिव्यक्त कर सकते हैं: व-मु-व (वस्तु-मुद्रा-वस्तु)। मतलब यह हुआ कि

एक वस्तु बेचकर दूसरी वस्तु खरीदना। पूंजी के संचलन को एक अन्य सूत्र द्वारा अभिव्यक्त करते हैं—मु-व-मु (मुद्रा-वस्तु-मुद्रा) यानी बेचने के लिए खरीदना।

सूत्र व-मु-व साधारण वस्तु-उत्पादन के लिए प्रकारात्मक है। इस उदाहरण में मुद्रा के माध्यम से एक वस्तु का विनिमय दूसरी वस्तु के लिए होता है। मुद्रा सिर्फ चलन-माध्यम का काम करती है। मुद्रा पूंजी नहीं है। वस्तु-विनिमय का उद्देश्य स्पष्ट है। उदाहरण के लिए किसी मोची को लें। मोची जूतों को बेचकर रोटी खरीदता है। इसका मतलब है कि एक उपयोग-मूल्य का विनिमय दूसरे उपयोग-मूल्य के साथ होता है।

सूत्र मु-व-मु का चरित्र सर्वथा अलग है। यहां मुद्रा ही प्रारम्भ बिन्दु है। मुद्रा का प्रयोग बेचने के उद्देश्य से क्रय करने के लिए होता है। यहां मुद्रा पूंजी के रूप में काम करती है। पूंजीपति अपनी मुद्रा-राशि से निश्चित मात्रा में वस्तुएं खरीदता है। फिर उन्हें वह मुद्रा-राशि के रूप में परिवर्तित कर देता है। यहां प्रारम्भ बिन्दु और समापन बिन्दु एक ही हैं। इस प्रक्रिया के प्रारम्भ में पूंजीपति के पास मुद्रा थी और प्रक्रिया की समाप्ति के बाद भी उसके पास मुद्रा है।

अगर पूंजीपति के पास प्रक्रिया के प्रारम्भ और समाप्ति के समय भी समान मुद्रा-राशि हो, तो पूंजी का सचलन निरर्थक होगा। पूंजी के प्रयोग का एकमात्र उद्देश्य यही है कि इस सचलन के बाद पूंजीपति के पास प्रारम्भिक मुद्रा-राशि की अपेक्षा अधिक मुद्रा-राशि हो। पूंजीपति की सम्पूर्ण क्रियाओं का एकमात्र उद्देश्य मुनाफा बटोरना है। अत पूंजीवादी स्थितियों के अन्तर्गत मार्क्स ने मुद्रा के सचलन को निम्नलिखित सूत्र (जिसे उन्होंने पूंजी का सामान्य सूत्र कहा) में स्पष्ट किया—मु-व-मु। मु प्रारम्भ में दी गयी मुद्रा-राशि और उसमें हुई कुछ वृद्धि के बराबर है। मूल राशि में इसी वृद्धि को मार्क्स ने अधिशेष मूल्य कहा। अधिशेष मूल्य के लिए उन्होंने 'अ' अक्षर का इस्तेमाल किया।

पूंजीपति मुद्रा का प्रयोग वस्तु-प्रचलन के माध्यम के रूप में नहीं, बल्कि मुनाफा कमाने और समृद्धि हासिल करने के लिए करते हैं।

पूंजीवाद के अन्तर्गत मुद्रा का सचलन एक अन्तहीन प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के दौरान मुद्रा अपने आप बढ़ने की क्षमता प्राप्त कर लेती है। स्वय बढ़ने वाले मूल्य (या वह मूल्य जिसके कारण अधिशेष मूल्य प्राप्त होता है) को पूंजी कहा जाता है।

अब प्रश्न उठता है : पूंजी किस प्रकार बढ़ती है? सम्भव है कि पूंजी की वृद्धि खरीद-बिक्री की प्रक्रिया के दौरान प्रचलन के क्षेत्र में होती है।

...गना सर्वथा गलत होगा क्योंकि इस लेन-देन में (प्रचलन के दौरान)
...मान मूल्य वाले तुल्यों का ही विनिमय होता है। मान लें कि सभी
...ी वस्तुओं को वास्तविक मूल्य से १० प्रतिशत अधिक पर बेचने में
...ाते हैं, तो जब वे स्वयं खरीदेंगे तब उन्हें भी अपने विक्रेताओं को
...क मूल्य से १० प्रतिशत अधिक चुकाना पड़ेगा। स्पष्ट है कि वस्तु-
...ने विक्रेता के रूप में जो कुछ भी प्राप्त किया है उसे उन्हें ग्राहक के
...देना पड़ेगा। फिर भी हम पाते हैं कि पूंजीपति वर्ग की पूंजी में वृद्धि
...ती है।

...जिस प्रकार पूंजीपति अपनी वस्तुओं को उनके वास्तविक मूल्य प...
...बेचकर भी अधिशेष मूल्य प्राप्त कर लेते हैं।

पूंजी के सामान्य सूत्र में दो तत्व हैं—मुद्रा और वस्तु। अतः ...
...या वस्तुओं में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप ही मूल्य की वृद्धि प्राप्त
...कती है। यह सामान्य ज्ञान की बात है कि मुद्रा अपने आप न तो अपने
... में परिवर्तन कर सकती है और न अपने में कोई वृद्धि ला सकती है। अतः
...य की वृद्धि का स्रोत वस्तुओं में ही ढूंढना चाहिए।

मुद्रा को पूंजी में परिवर्तित करने के लिए बाजार में पूंजीपति को ऐसी
...स्तु जरूर प्राप्त करनी चाहिए जिसका इस्तेमाल किया जाये और वह वस्तु
...पने आपमें निहित मूल्य से अधिक मूल्य की सृष्टि कर सके। ऐसी वस्तु श्रम-
...शक्ति है।

वस्तु के रूप में श्रम-शक्ति। उसका मूल्य और उपयोग मूल्य

श्रम-शक्ति मनुष्य की उन शारीरिक और मानसिक क्षमताओं के सम्मि-
लित रूप का नाम है जिनका इस्तेमाल वह भौतिक धन के उत्पादन के लिए
करता है। प्रत्येक समाज में श्रम-शक्ति उत्पादन का
एक आवश्यक तत्व है। श्रम-शक्ति सिर्फ पूंजीवाद ...
अन्तर्गत ही वस्तु का रूप ले लेती है, क्योंकि पूंजी-
वाद के अन्तर्गत ही मेहनतकश जनता के पास न ...
उत्पादन के साधन होते हैं और न जीवन-निर्वाह
साधन। ऐसी स्थिति में बाजार में बेचने के लिए उसके पास सिर्फ श्रम-श...
होती है।

तब अन्य वस्तुओं की तरह ही श्रम-शक्ति का भी मूल्य और उपयोग
मूल्य होना चाहिए। वास्तव में ऐसा है भी। अन्य वस्तुओं के मूल्यों की तरह
श्रम-शक्ति का मूल्य भी उसके पुनरुत्पादन के लिए सामाजिक तौर पर आवश्यक
श्रम-काल से निर्धारित होता है। श्रम-शक्ति का मतलब मनुष्य के काम करने
की योग्यता से है। यह योग्यता तभी तक वर्तमान रहती है जब तक उसका

स्वामी जीवित रहता है। अपने आपको जीवित रखने के लिए प्रत्येक मजदूर को जीवन-निर्वाह के साधनों की एक निश्चित मात्रा की आवश्यकता होती है। परिणामस्वरूप श्रम-शक्ति का मूल्य मजदूर के जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक साधनों के मूल्य से निर्धारित होता है।

हर देश में मजदूर के लिए आवश्यक जीवन-निर्वाह के साधनों की मात्रा और किस्म कतिपय बातों पर निर्भर होती है आर्थिक विकास का स्तर, सर्वहारा वर्ग के जन्म की परिस्थितियां, मजदूर वर्ग के संघर्ष का काल और उसकी सफलताएं।

श्रम-शक्ति के मूल्य में मजदूर वर्ग की सामाजिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं (जो इतिहास के एक निश्चित काल में विकसित हुई हैं) का मूल्य भी शामिल है। मार्क्स ने लिखा कि "अन्य वस्तुओं की स्थिति के विपरीत श्रम-शक्ति के मूल्य में एक ऐतिहासिक और नैतिक तत्व भी शामिल है।"[१]

श्रम-शक्ति का पुनर्भरण श्रमिक का परिवार करता है। इस प्रकार श्रम-शक्ति के मूल्य में श्रमिक के परिवार के सदस्यों के लिए आवश्यक जीवन-निर्वाह के साधनों का मूल्य भी शामिल होना चाहिए।

कोई भी व्यक्ति दक्ष मजदूर के रूप में जन्म नहीं लेता। दक्ष श्रम-शक्ति प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षण पर व्यय करना आवश्यक है। अतः प्रशिक्षण व्यय भी श्रम-शक्ति के मूल्य में शामिल है। दूसरे शब्दों में, श्रम-शक्ति के मूल्य का निर्धारण हर देश में मजदूर की शारीरिक शक्ति को बनाये रखने, उसकी तथा उसके परिवार की सामाजिक और सांस्कृतिक जरूरतों को पूरा करने और योग्यता प्राप्ति के लिए किये गये व्यय को पूरा करने के लिए अत्यन्त जरूरी आवश्यकता की वस्तुओं के मूल्य से होता है। श्रम-शक्ति की कीमत श्रम-शक्ति के मूल्य की मुद्रा के रूप में अभिव्यक्ति का ही नाम है। पूंजीवाद के अन्तर्गत श्रम-शक्ति की कीमत को मजूरी कहते हैं।

चूंकि श्रम-शक्ति एक वस्तु है, इसलिए उसका उपयोग मूल्य भी होता है। श्रम-शक्ति के उपयोग मूल्य से हमारा मतलब श्रम की प्रक्रिया में श्रम-शक्ति के मूल्य से अधिक मूल्य का निर्माण करने की क्षमता से है। अधिशेष मूल्य का स्रोत श्रम-शक्ति ही है। इसी कारण पूंजीपति की दिलचस्पी अधिशेष मूल्य में ही होती है।

अब हम देखें कि किस प्रकार श्रम-शक्ति के प्रयोग के द्वारा अधिशेष मूल्य की उत्पत्ति होती है और किस प्रकार पूंजीपति धन बटोरता है।

---

१. कार्ल मार्क्स "पूंजी", खंड १, पृष्ठ १७१।

. अधिशेष मूल्य का उत्पादन तथा पूंजीवादी शोषण

श्रम-शक्ति का व्यवहार श्रम की प्रक्रिया के दौरान होता है। श्रम की एक निश्चित सामाजिक रूप में होती है। इस सामाजिक रूप को

उत्पादन के सम्बंध — उत्पादन के सम्बंध के नाम से सम्बोधित करते हैं। उत्पादन के सम्बंध उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के स्वरूप पर आधारित हैं। प्रत्येक समाज में श्रम-प्रक्रिया की खास विशेषताएं उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व के स्वरूप के अनुसार होती हैं। पूंजीवा॰

[पूंजीव]ाद के अन्तर्गत [श्रम]-प्रक्रिया की [विशि]ष्ट विशेषताए — [प्रक्रि]या मे उत्पादन के साधनों पर पूंजीपति का अधिकार होता है और मजदूर [उनसे] वंचित होते हैं। श्रम-प्रक्रिया की निम्नलिखित विशेषताएं पूंजीवाद में [..]द प्रकारात्मक हैं :

पहली, मजदूर उस पूंजीपति के नियन्त्रण में काम करता है जिस[का उ]सके श्रम पर अधिकार होता है। पूंजीपति इस बात का फैसला करता है [कि कि]स वस्तु का उत्पादन, किस पैमाने पर और किस तरीके से हो।

दूसरी, पूंजीपति सिर्फ मजदूर के श्रम का ही मालिक नहीं होता, बल्कि श्रम के उत्पादन का भी अधिकारी होता है।

ये विशेषताए पूंजीवाद के अन्तर्गत मजदूर के श्रम को एक भारी बोझ के रूप मे परिवर्तित कर देती हैं।

मूल्य-वृद्धि की प्रक्रिया। पूंजीवादी शोषण — पूंजीवादी उत्पादन उपयोग मूल्य का निर्माण और मूल्य-वृद्धि की प्रक्रियाओं का सम्मिलित रूप है। वस्तु-अर्थव्यवस्था में उपयोग मूल्य का उत्पादन बिना मूल्य का उत्पादन किये सम्भव नहीं है। मजदूर जब कोई वस्तु तैयार करता है तो वह उसमे अपना श्रम खर्च करता है। श्रम का चरित्र दोहरा होता है। एक तरफ वह मूर्त श्रम है और उपयोग मूल्य का निर्माण करता है। दूसरी तरफ वह अमूर्त श्रम है और वस्तु के मूल्य का निर्माण करता है। पूंजीपति के लिए उपयोग मूल्यों का उत्पादन उसके लक्ष्य की प्राप्ति का एक साधन है। पूंजीवादी उत्पादन का लक्ष्य और प्रमुख प्रयोजन अधिशेष मूल्य का उत्पा[दन] करना है।

अब जरा हम इस बात पर विचार करें कि अधिशेष मूल्य का उत्पादन कैसे होता है।

जब पूंजीपति अपना व्यवसाय प्रारम्भ करता है, तब वह बाजार में जरूरत की प्रत्येक चीज—मशीन, मशीनी औजार, कच्चे माल, ईंधन और

श्रम-शक्ति खरीदता है। तत्पश्चात उत्पादन प्रारम्भ होता है। मशीन और औजार परिचालित होते हैं। मजदूर काम करते हैं। ईंधन की खपत होती है। फिर कच्चे माल तैयार माल के रूप मे परिवर्तित हो जाते हैं। वस्तु के तैयार हो जाने पर पूंजीपति उसे बाजार मे बेच देता है। वस्तु को बेचने से प्राप्त होने वाली मुद्रा-राशि से वह और अधिक कच्चे माल, मशीन, श्रम-शक्ति, इत्यादि खरीदता है। दूसरे शब्दो मे हम कह सकते हैं कि पुराने चक्र की ही पुनरावृत्ति होती है। इस चक्र को यो दिखा सकते हैं :

श्र. श.
मु.—व < . . . उ . . . व' —मु'.
उ. सा.

मुद्रा-वस्तु (श्रम-शक्ति और उत्पादन के साधन)—उत्पादन-वस्तु-मुद्रा।

अब तैयार वस्तु का मूल्य क्या होगा ?

मान लें कि पूंजीपति के पास कपड़े की एक मिल है। पोशाक तैयार करने के लिए वह सिलाई की मशीनें, ऊनी कपड़े, कतरनें, (किनारी, बटन, धागा, इत्यादि) और श्रम-शक्ति खरीदता है। मान लें कि ५०० पोशाकें बनाने के लिए वह १,५०० गज ऊनी कपड़े ३० डालर प्रति गज की दर से ४५,००० डालर मे खरीदता है। कतरन पर वह ३० डालर प्रति पोशाक के हिसाब से कुल १,५०० डालर खर्च करता है। ५०० पोशाको के उत्पादन के दौरान सिलाई मशीनो की घिसावट तथा अन्य मदो (रोशनी, गर्मी, इत्यादि) मे ५,००० डालर खर्च होते हैं। ५ डालर प्रति मजदूर की दर से ५०० मजदूरो को काम पर लगाने मे २,५०० डालर व्यय करना पड़ता है।

इस तरह पूंजीपति उत्पादन के लिए आवश्यक सभी तत्वो को प्राप्त कर लेता है। ५०० पोशाकें बनाने मे इसका कुल व्यय का ब्योरा इस प्रकार है :

ऊनी कपड़े का मूल्य................	४५,००० डालर
कतरन का मूल्य....................	१५,००० डालर
घिसावट वगैरह का मूल्य	५,००० डालर
श्रम-शक्ति का मूल्य..................	२,५०० डालर
योग	६७,५०० डालर।

अतः एक पोशाक का मूल्य (६७,५००÷५००) १३५ डालर होगा। पूंजीपति बाजार मे देखता है कि ठीक उसी तरह की पोशाक बाजार मे १३५ डालर प्रति पोशाक की दर से बेची जाती है। इसलिए उसे भी अपनी पोशाक उसी कीमत पर बेचनी पड़ती है। हमने देखा है कि पूंजीपति

३. अधिशेष मूल्य का उत्पादन तथा पूं

श्रम-शक्ति का व्यवहार श्रम की प्रक्रिया के दौरान
प्रक्रिया एक निश्चित सामाजिक रूप में होती है। इस

	उत्पादन के सम्बध के नाम से
पूंजीवाद के अन्तर्गत	उत्पादन के सम्बंध उत्पादन के
श्रम-प्रक्रिया की	के स्वरूप पर आधारित हैं।
विशिष्ट विशेषताएं	प्रक्रिया की खास विशेषताएं
	स्वामित्व के स्वरूप के अनुसार ह

व्यवस्था मे उत्पादन के साधनों पर पूंजीपति का अधिकार
उनसे वचित होते हैं। श्रम-प्रक्रिया की निम्नलिखित
लिए प्रकारात्मक हैं :

पहली, मजदूर उस पूंजीपति के नियन्त्रण में
उसके श्रम पर अधिकार होता है। पूजीपति इस बात का
किस वस्तु का उत्पादन, किस पैमाने पर और किस तरीके

दूसरी, पूजीपति सिर्फ मजदूर के श्रम का ही
बल्कि श्रम के उत्पादन का भी अधिकारी होता है।

ये विशेषताएं पूजीवाद के अन्तर्गत मजदूर के
के रूप में परिवर्तित कर देती हैं।

मूल्य-वृद्धि की	पूजीवादी उत्पादन उपयोग
प्रक्रिया। पूजीवादी	मूल्य-वृद्धि की प्रक्रियाओ का
शोषण	वस्तु-अर्थव्यवस्था मे उपयो

बिना मूल्य का उत्पादन किये सम्भव नहीं है। मजदूर
करता है तो वह उसमे अपना श्रम खर्च करता है। श्रम
है। एक तरफ वह मूर्त श्रम है और उपयोग मूल्य का नि
तरफ वह अमूर्त श्रम है और वस्तु के मूल्य का निर्मा
के लिए उपयोग मूल्यो का उत्पादन उसके लक्ष्य की
पूंजीवादी उत्पादन का लक्ष्य और प्रमुख प्रयोजन अ
करना है।

अब जरा हम इस बात पर विचार करें कि
कैसे होता है।

जब पूंजीपति अपना व्यवसाय प्रारम्भ क
जरूरत की प्रत्येक चीज—मशीन, मशीनी औ

बन्दियों का श्रम स्पष्ट रूप से बलात श्रम था। उनका शोषण गुप्त या छद्मावरण में लिपटा नहीं था।

पूंजीवाद के अन्तर्गत भिन्न स्थिति होती है। यहां मजदूर व्यक्तिगत रूप से किसी पर निर्भर नहीं होते। उन पर किसी पूंजीपति विशेष का अधिकार नहीं होता। पूंजीपति उन्हें काम करने के लिए मजबूर नहीं कर सकते। मजदूरों के पास न तो उत्पादन के साधन होते हैं और न जीवन-निर्वाह के साधन ही। इस वजह से उन्हें अपनी श्रम-शक्ति को बेचने के लिए मजबूर होना पड़ता है। भूख मजदूरों को पूंजीपति के लिए काम करने के वास्ते मजबूर कर देती है। अतः मजदूर-श्रम की व्यवस्था को मजदूर-दासता की व्यवस्था कहते हैं।

पूंजीवाद के अन्तर्गत श्रम को बलात लेने वाला चरित्र छिपा रहता है।

पूंजीवादी शोषण का रहस्योद्घाटन करने के बाद मार्क्स ने उत्पादन के पूंजीवादी ढंग का बुनियादी आर्थिक नियम ढूंढ निकाला। उन्होंने लिखा—"अधिशेष मूल्य का उत्पादन उत्पादन की इस प्रणाली का निरपेक्ष नियम है।"[1]

अधिशेष मूल्य का नियम हमें पूंजीवादी समाज में चलने वाली सभी क्रियाओं और घटनाओं को समझने और उनकी व्याख्या करने में मदद देता है। यह नियम पूंजीवादी समाज के शोषक स्वरूप को दर्शाता है। यह नियम प्रतिद्वन्द्विता की तीव्रता और पूंजीवादी उत्पादन की अराजकता, मेहनतकश जनता की बढ़ती हुई दरिद्रता एवं बेरोजगारी और पूंजीवाद के सभी अन्तर्विरोधों की गहराई तथा तीव्रता को निर्धारित करता है।

आवश्यक और अधिशेष श्रम-काल

पूंजीवादी उद्यम में कार्य-दिवस को दो भागों में—आवश्यक श्रम-काल और अधिशेष श्रम-काल—में बांटते हैं। इसी के अनुकूल मजदूर का श्रम भी दो भागों—आवश्यक और अधिशेष श्रम—में विभाजित होता है।

आवश्यक श्रम-काल और आवश्यक श्रम श्रमिक द्वारा व्यय किये गये श्रम-काल और श्रम के वे हिस्से हैं जो उसकी श्रम-शक्ति के मूल्य (यानी उसके द्वारा अपेक्षित जीवन-निर्वाह के साधनों के मूल्य) के पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक हैं। पूंजीपति मजदूर को आवश्यक श्रम-काल के लिए मजूरी के रूप में भुगतान करता है।

अधिशेष श्रम-काल और अधिशेष श्रम श्रम और श्रम-काल के वे भाग हैं जिन्हें अधिशेष पैदावार के उत्पादन के लिए व्यय किया जाता है। पूंजीवाद

१. कार्ल मार्क्स, "पूंजी", खंड १, पृष्ठ ६७८।

ने उत्पादन में कुल ६७,५०० डालर लगाये थे और बिक्री के बाद भी उन्हें उतनी ही राशि (१३५ डालर × ५०० = ६७,५०० डालर) मिल पाती है। यहां न तो किसी अधिशेष मूल्य का निर्माण हुआ और न मुद्रा का पूंजी के रूप में परिवर्तन ही। तब फिर अधिशेष मूल्य का निर्माण कैसे होता है?

महत्वपूर्ण बात तो यह है कि मजदूर अपनी श्रम-शक्ति के मूल्य का पुनरुत्पादन पूरे कार्य-दिवस के दौरान नहीं करता, बल्कि उसके एक हिस्से (मान लें कि ५ घण्टे) में ही करता है। पूंजीपति उसे ५ घण्टे से अधिक काम करने के लिए मजबूर करता है। चूंकि पूंजीपति श्रम-शक्ति का दैनिक मूल्य चुकाता है इसलिए उसके उपयोग मूल्य पर पूरे दिन के लिए उसका अधिकार हो जाता है। इसी वजह से वह मजदूर को ८-१० या उससे भी अधिक घण्टों तक काम करने के लिए मजबूर करता है। श्रम-प्रक्रिया के विस्तार के परिणामस्वरूप मजदूर उस वस्तु (श्रम-शक्ति) के मूल्य से अधिक मूल्य का निर्माण करता है।

मान लें कि पूंजीपति मजदूरों से ५ घण्टे नहीं बल्कि १० घण्टे काम लेता है। १० घण्टे में मजदूर (इस उदाहरण में ५०० मजदूर) उत्पादन के दुगुने साधनों का इस्तेमाल करेंगे और ३,००० पोशाक बनायेंगे।

पूंजीपति के व्यय का ब्योरा इस प्रकार होगा :

ऊनी कपड़े का मूल्य…………	९०,००० डालर
कतरन का मूल्य………………	३०,००० डालर
घिसावट इत्यादि का मूल्य……	१०,००० डालर
श्रम-शक्ति का मूल्य…………	२,५०० डालर
योग	१३२,५०० डालर

१० घण्टे के कार्य-दिवस के दौरान मजदूरों ने ३,००० पोशाकें बनायी हैं। बाजार में उनकी बिक्री (१३५ डालर प्रति पोशाक की दर) से पूंजीपति को १,३५,००० डालर प्राप्त हुए। उसने इसके लिए सिर्फ १,३२,५०० डालर व्यय किये थे। २५,००० डालर की अधिक राशि अधिशेष मूल्य है। मुद्रा का पूंजी के रूप में परिवर्तन हो गया है।

अधिशेष मूल्य इसलिए मिला है कि मजदूरों ने अपनी श्रम-शक्ति के मूल्य के पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक काम के घण्टों से अधिक लगाये हैं। अतः अधिशेष मूल्य पूंजीपति वर्ग द्वारा मजदूर वर्ग के शोषण का ही परिणाम है।

मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को पूंजीवाद ने जन्म नहीं दिया। यह शोषण पहले भी मौजूद था। दास और सामन्तवादी समाज में दासों और

कमियों का श्रम स्पष्ट रूप से बलात श्रम था। उनका शोषण गुप्त या छद्मावरण में लिपटा नहीं था।

पूंजीवाद के अन्तर्गत भिन्न स्थिति होती है। यहां मजदूर व्यक्तिगत रूप से किसी पर निर्भर नहीं होते। उन पर किसी पूंजीपति विशेष का अधिकार नहीं होता। पूंजीपति उन्हें काम करने के लिए मजबूर नहीं कर सकते। मजदूरों के पास न तो उत्पादन के साधन होते हैं और न जीवन-निर्वाह के साधन ही। इस वजह से उन्हें अपनी श्रम-शक्ति को बेचने के लिए मजबूर होना पड़ता है। भूख मजदूरों को पूंजीपति के लिए काम करने के वास्ते मजबूर कर देती है। अतः मजदूर-श्रम की व्यवस्था को मजदूर-दासता की व्यवस्था कहते हैं।

पूंजीवाद के अन्तर्गत श्रम को बलात लेने वाला चरित्र छिपा रहता है।

पूंजीवादी शोषण का रहस्योद्घाटन करने के बाद मार्क्स ने उत्पादन के पूंजीवादी ढंग का बुनियादी आर्थिक नियम ढूंढ निकाला। उन्होंने लिखा—"अधिशेष मूल्य का उत्पादन उत्पादन की इस प्रणाली का निरपेक्ष नियम है।"[1]

अधिशेष मूल्य का नियम हमें पूंजीवादी समाज में चलने वाली सभी क्रियाओं और घटनाओं को समझने और उनकी व्याख्या करने में मदद देता है। यह नियम पूंजीवादी समाज के शोषक स्वरूप को दर्शाता है। यह नियम प्रतिद्वन्द्विता की तीव्रता और पूंजीवादी उत्पादन की अराजकता, मेहनतकश जनता की बढ़ती हुई दरिद्रता एवं बेरोजगारी और पूंजीवाद के सभी अन्तर्विरोधों की गहराई तथा तीव्रता को निर्धारित करता है।

आवश्यक और अधिशेष श्रम-काल

पूंजीवादी उद्यम में कार्य-दिवस को दो भागों में—आवश्यक श्रम-काल और अधिशेष श्रम-काल—में बांटते हैं। इसी के अनुकूल मजदूर का श्रम भी दो भागों—आवश्यक और अधिशेष श्रम—में विभाजित होता है।

आवश्यक श्रम-काल और आवश्यक श्रम श्रमिक द्वारा व्यय किये गये श्रम-काल और श्रम के वे हिस्से हैं जो उसकी श्रम-शक्ति के मूल्य (यानी उसके द्वारा अपेक्षित जीवन-निर्वाह के साधनों के मूल्य) के पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक है। पूंजीपति मजदूर को आवश्यक श्रम-काल के लिए मजूरी के रूप में भुगतान करता है।

अधिशेष श्रम-काल और अधिशेष श्रम श्रम और श्रम-काल के वे भाग हैं जिन्हें अधिशेष पैदावार के उत्पादन के लिए व्यय किया जाता है। पूंजीवाद

१. क. से मार्क्स, "पूंजी", खंड १, पृष्ठ ६७८।

के अन्तर्गत अधिशेष उत्पादना पूंजीपति द्वारा हड़पे जाने वाले अधिशेष मूल्य का रूप ग्रहण कर लेता है। अधिशेष श्रम या अधिशेष श्रम-काल का आवश्यक श्रम या आवश्यक श्रम-काल के साथ अनुपात मजदूर के शोषण की मात्रा जाहिर करता है। फलस्वरूप अधिशेष श्रम-काल और अधिशेष श्रम एक निश्चित सामाजिक सम्बध व्यक्त करता है। यह सम्बध उत्पादन के साधनों के स्वामियों—पूंजीपतियों द्वारा मजदूर वर्ग के शोषण की व्यवस्था की विशिष्टता है।

उत्पादन के साधनों का पूंजीवादी स्वामित्व और मजदूर के श्रम का शोषण पूंजीवादी समाज को दो परस्पर-विरोधी वर्गों मे बांट देते हैं।

मार्क्स और एगेल्स ने सिद्ध कर दिया कि उत्पादन के साधनों (भूमि, भूगर्भ, श्रम के उपकरणों या सक्षेप मे यों कहें कि भौतिक धन के उत्पादन के लिए आवश्यक प्रत्येक चीज) पर निजी स्वामित्व होने के बाद से ही समाज वर्गों में बंट गया। समाज का अल्पसख्यक हिस्सा उत्पादन के साधनों का मालिक बन बैठा और फलस्वरूप उत्पादन के साधनों से वंचित समाज के दूसरे हिस्से का शोषण करने लगा।

पूंजीवादी समाज का वर्ग-ढाचा

लेनिन ने कहा कि एक शोषक समाज में वर्ग लोगो के समूह होते हैं। इस समाज मे एक समूह दूसरे समूह के श्रम को उत्पादन के साथ अलग-अलग सम्बध होने के कारण हड़प जाता है।

समाज का पहला वर्ग-विभाजन दास-स्वामियों और दासों के बीच हुआ था। दासता से सामन्तवाद तक पहुंचने के बाद यह विभाजन सामन्तों और कमिया लोगो के बीच हुआ।

पूंजीवादी समाज की विशेषता यह है कि उसमें दो परस्पर-विरोधी बुनियादी वर्ग—पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग हैं। पूंजीपति वर्ग उत्पादन के साधनों पर अधिकार रखने वाला वर्ग है। पूंजीपति उनका इस्तेमाल अधिशेष मूल्य प्राप्त करने के लिए मजदूरों का शोषण करने में करते हैं। सर्वहारा वर्ग मजदूरों का वह वर्ग है जो उत्पादन के साधनों से वंचित है। अतः उसका पूंजीवादी शोषण होता है। पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग के अतिरिक्त पूंजीवाद के अन्तर्गत सामन्तवादी व्यवस्था के अवशेष के रूप में भूस्वामियों और किसानों का वर्ग भी होता है।

पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग दो परस्पर-विरोधी वर्ग हैं। इन वर्गों के हित परस्पर-विरोधी और असमाधेय होते हैं। जैसे-जैसे पूंजीवाद का विस्तार होता जाता है, वैसे-वैसे सर्वहारा वर्ग की ताकत भी बढ़ती जाती है और वह

अपने वर्ग-स्वार्थों के प्रति जागरूक होता जाता है। वह पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध संघर्ष के लिए अपने आपको विकसित और संगठित करता है। पूंजीवादी समाज का मुख्य लक्षण है पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध सर्वहारा वर्ग का संघर्ष। इस समाज में सर्वहारा वर्ग सबसे बड़ा क्रान्तिकारी वर्ग है। वह पूंजीवादी समाज की कब्र खोदने वाला है।

पूंजीवादी राज्य पूंजीवाद के अन्तर्गत मौजूद सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक विषमता की रक्षा करता है। वह उत्पादन के साधनों के पूंजीवादी निजी स्वामित्व की रक्षा करता है और मेहनतकश जनता के शोषण के लिए एक यंत्र है। पूंजीवादी राज्य पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध मेहनतकश जनता के संघर्ष को कुचल देता है।

पूंजीवादी समाजशास्त्री और विधिवेत्ता पूंजीवादी राज्य को वर्ग और समाज के ऊपर रखते हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि पूंजीवादी राज्य अर्थ-व्यवस्था पर आधिपत्य रखने वाले वर्ग का राजनीतिक संगठन है। यह पूंजीपति वर्ग का अधिनायकत्व है।

शोषक राज्य का मुख्य कार्य शोषित बहुमत को जकड़े रखना और शासक वर्गों का गुलाम बनाये रखना है। पूंजीवादी राज्य के कई रूप (राजतंत्र या गणतंत्र) हैं। इसके अन्तर्गत कई प्रकार के शासनतंत्र (जनतांत्रिक या फासिस्ट और निरंकुशवादी) हो सकते हैं। किन्तु सब रूपों में वस्तुगत समानता है। वे पूंजीपति वर्ग का अधिनायकत्व हैं। शोषक राज्य का उद्देश्य पूंजी के द्वारा भाड़े पर लगाये गये श्रम के शोषण की व्यवस्था को बनाये रखना और मजबूत करना है।

४. पूंजी और उसके अवयव

पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार आदिम मनुष्य के पत्थर और डंडे से लेकर अब तक श्रम का प्रत्येक उपकरण पूंजी है, किन्तु वास्तव में उत्पादन का प्रत्येक साधन अपने आप पूंजी नहीं होता। किसी समाज के अस्तित्व के लिए उत्पादन के साधन अपरिहार्य हैं। इस दृष्टि से वे वर्गों के लिए महत्वहीन है। उत्पादन के साधन तभी पूंजी का रूप धारण कर लेते है जब वे पूंजीपतियों की निजी सम्पत्ति होते है और उनका इस्तेमाल मजदूर वर्ग के शोषण के लिए होता है। पूंजी न तो मुद्रा की एक निश्चित राशि है और न उत्पादन का साधन। यह ऐतिहासिक रूप से निर्धारित सामाजिक-आर्थिक सम्बंध है, जिसमे उत्पादन के साधन और उपकरण तथा जीवन-निर्वाह के बुनियादी साधन पूंजीपति वर्ग की सम्पत्ति होते है, जबकि दूसरी ओर समाज की

उत्पादन के सामाजिक सम्बंध के रूप में पूंजी

पूजीवादी अर्थशास्त्री इस विभाजन को स्वीकार नहीं करते। इस तरह पूजीवाद के वकील के रूप में वे उसके शोषक चरित्र को छिपाना चाहते हैं। पूजीपति अपने व्यावसायिक खाते में पूजी को स्थिर और चलायमान पूंजी के रूप में विभाजित करता है। इसी विभाजन को पूजीवादी अर्थशास्त्री मान्यता देते हैं। पूजी का यह विभाजन उत्पादन के यंत्र की व्याख्या करने में सहायता करता है, लेकिन पूजीवादी शोषण के ऊपर प्रकाश नहीं डालता।

स्थिर और चलायमान पूजी

उत्पादक पूजी अपने मूल्य को तैयार माल में तत्काल या कई चरणों में हस्तान्तरित कर देती है। हस्तान्तरण का ढंग ही पूजी के स्थिर और चलायमान पूजी के रूप में विभाजन का आधार है।

स्थिर पूंजी से हमारा मतलब उस पूजी से है जो तैयार माल को अपना मूल्य कई चरणों में अपने (इमारतें, मशीन, मशीनी औजार) घिसने के साथ-साथ हस्तान्तरित करती है। चलायमान पूंजी से हमारा तात्पर्य उस भाग से है जो श्रम-शक्ति, कच्चा माल, सहायक सामग्री तथा ईंधन पर व्यय किया जाता है। यह पूजी उत्पादन के उसी काल में पूजीपति को वस्तु बेचने के बाद मुद्रा-राशि के रूप में वापस मिल जाती है।

स्थिर और चलायमान पूजी के रूप में पूजी का विभाजन उत्पादन के साधनों और श्रम-शक्ति के मूल विभेद को छिपा लेता है। यहां पर श्रम-शक्ति *और कच्चे माल तथा सहायक सामग्रियों, ईंधन, इत्यादि को एक साथ* रखते हैं। ये उत्पादन के अन्य साधनों से अलग रखे जाते हैं। अधिशेष मूल्य की सृष्टि में श्रम-शक्ति जो हिस्सा अदा करती है उसे यह विभाजन छिपा देता है और इस तरह पूजीवादी शोषण के ऊपर एक पर्दा डाल देता है।

पूंजी के इन दोनों प्रकार के विभाजनों को हम इस प्रकार दिखा सकते हैं:

शोषण की प्रक्रिया में महत्व की दृष्टि से विभाजन		प्रचलन के तरीके के अनुसार विभाजन
अचल पूजी	कारखाने की इमारत और स्थान, साज-सामान, मशीन कच्चे माल तथा सहायक सामग्रियां, ईंधन मजदूरों की मजूरी	स्थिर पूजी
चल पूजी		चलायमान पूजी

परिमाण होता

लिए काम करता है। अधिशेष श्रम का आवश्यक श्रम के साथ अनुपात जितना ही अधिक होगा, शोषण की दर उतनी ही अधिक होगी।

पूंजीवाद के विकास के साथ अधिशेष मूल्य में भी वृद्धि होती है। अमरीका में खानों तथा प्रोसेसिंग उद्योगों में अधिकृत आंकड़ों के आधार पर गणना करने पर हम पाते हैं कि अधिशेष मूल्य की दरें इस प्रकार थी १८८९ में १४५ प्रतिशत, १९१९ में १६५ प्रतिशत, १९२९ में २१० प्रतिशत, १९३९ में २२० प्रतिशत, १९४७ में २६० प्रतिशत और १९५५ में (सिर्फ प्रोसेसिंग उद्योगों के लिए) ३०९.३ प्रतिशत।

अब प्रश्न है : पूंजीवाद के अन्तर्गत शोषण के अंश में किस प्रकार वृद्धि होती है?

५. मजदूर वर्ग के शोषण का अंश बढ़ाने के दो तरीके

जैसा कि हमने ऊपर कहा है, पूंजीवाद के अन्तर्गत कार्य-दिवस को दो भागों में बांटा जाता है: १) आवश्यक श्रम-काल जिसकी आवश्यकता श्रम-शक्ति के मूल्य के बराबर मूल्य उत्पन्न करने के लिए होती है और २) अधिशेष श्रम-काल जिसके दौरान मजदूर पूंजीपति के लिए काम करके अधिशेष मूल्य की सृष्टि करता है।

निरपेक्ष अधिशेष मूल्य

उदाहरण के लिए १० घंटों का कार्य-दिवस लें। उनमें से ५ घंटे आवश्यक श्रम-काल के हैं और ५ घंटे अधिशेष श्रम-काल के। इसे हम एक रेखा-चित्र से दिखला सकते हैं :

५ घंटे	५ घंटे
आवश्यक श्रम-काल	अधिशेष श्रम-काल

इस उदाहरण में अधिशेष मूल्य की दर

$$\text{अ.}' = \frac{\text{अ.}}{\text{प.पू.}} = \frac{\text{५ घंटे अधिशेष काल}}{\text{५ घंटे आवश्यक काल}} \times १००\% = १००\%$$

अगर आवश्यक श्रम-काल स्थिर रहे तो कार्य-दिवस को बढ़ा कर ही अधिशेष श्रम-काल को बढ़ाया जा सकता है। इसका अर्थ होगा अधिशेष मूल्य की दर तथा मजदूर के शोषण के अंश में वृद्धि। मान लें कि कार्य दिवस को १० घंटे

अधिशेष मूल्य की मात्रा और दर

अधिशेष मूल्य का एक निश्चित—निरपेक्ष या सापेक्ष—परिमाण होता है। अधिशेष मूल्य के निरपेक्ष परिमाण को अधिशेष मूल्य की मात्रा कहते है। यह शोषण का अंश तथा शोषित मजदूरों की संख्या पर निर्भर है। अधिशेष मूल्य के सापेक्ष परिमाण को अधिशेष मूल्य की दर या शोषण के अंश के रूप मे व्यक्त करते हैं।

पूजी के अचल पूजी और चल पूंजी के रूप मे विभाजन की व्याख्या करके मार्क्स ने न सिर्फ पूजीवादी शोषण के चरित्र का भेद खोला, बल्कि शोषण के अंश को मापने का तरीका भी बतलाया।

अचल पूजी (अ. पू.) अधिशेष मूल्य की सृष्टि नही करती, अतः अधिशेष मूल्य की दर को निर्धारित करते समय इसे अलग कर देना चाहिए। चल पूजी (च. पू.) ही अधिशेष मूल्य की सृष्टि करती है। इस कारण से अधिशेष मूल्य के सापेक्षिक परिमाण को निर्धारित करते समय अधिशेष मूल्य को चल पूजी की ही दृष्टि से देखना चाहिए, तभी हमे अधिशेष मूल्य की दर प्राप्त हो सकती है। श्रम-शक्ति के शोषण के अंश के लिए यह सही अभिव्यक्ति है। अगर हम अ' से अधिशेष मूल्य की दर को सूचित करें और अ. से अधिशेष मूल्य को तो हमे निम्नलिखित समीकरण मिलेगा :

$$\text{अ.}' = \times \frac{\text{अ.}}{\text{च. पू}} \times १००\%$$

इसे स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण लें। मान लें कि कोई पूजीपति वस्तुओं के उत्पादन के लिए निम्नलिखित राशि (डालर मे) देता है :

१,००,००० अ. पू. + २०,००० च. पूं. = १,२०,०००

मान लें कि वह अपने मजदूरों द्वारा उत्पन्न वस्तुओं को १,४०,००० डालर मे बेच देता है तो इसका मतलब है कि उसे अधिशेष मूल्य के रूप मे २०,००० डालर मिलते हैं।

अधिशेष मूल्य की दर क्या होगी ?

$$\text{अ.}' = \frac{\text{अ.}}{\text{च. पू.}} \times १००\% = \frac{२०,०००}{२०,०००} \times १००\% = १००\%$$

यह उदाहरण बतलाता है कि यहा मजदूर का श्रम दो बराबर भागों—आवश्यक और अधिशेष श्रम—मे विभाजित है। कार्य-दिवस के आधे भाग मे मजदूर अपने लिए काम करता है और आधे भाग मे बिना मजूरी लिये पूजीपति के

ादा काम करता है। अधिशेष श्रम का आवश्यक श्रम के साथ अनुपात जितना ही अधिक होगा, शोषण की दर उतनी ही अधिक होगी।

पूंजीवाद के विकास के साथ अधिशेष मूल्य में भी वृद्धि होती है। अमरीका के खानों तथा प्रोसेसिंग उद्योगों में अधिकृत आकड़ों के आधार पर गणना करने पर हम पाते हैं कि अधिशेष मूल्य की दरें इस प्रकार थी: १८८६ में १४५ प्रतिशत, १६१६ में १६५ प्रतिशत, १६२६ में २१० प्रतिशत, १६३६ में २२० प्रतिशत, १६४७ में २६० प्रतिशत और १६५५ में (सिर्फ प्रोसेसिंग उद्योगों के लिए) ३०६.३ प्रतिशत।

अब प्रश्न है पूंजीवाद के अन्तर्गत शोषण के अंश में किस प्रकार वृद्धि होती है?

५. मजदूर वर्ग के शोषण का अंश बढ़ाने के दो तरीके

जैसा कि हमने ऊपर कहा है, पूंजीवाद के अन्तर्गत कार्य-दिवस को दो भागों में बांटा जाता है: १) आवश्यक श्रम-काल जिसकी आवश्यकता श्रम-शक्ति के मूल्य के बराबर मूल्य उत्पन्न करने के लिए होती है और २) अधिशेष श्रम-काल जिसके दौरान मजदूर पूंजीपति के लिए काम करके अधिशेष मूल्य की सृष्टि करता है।

निरपेक्ष अधिशेष मूल्य

उदाहरण के लिए १० घंटों का कार्य-दिवस लें। उनमें से ५ घंटे आवश्यक श्रम-काल के हैं और ५ घंटे अधिशेष श्रम-काल के। इसे हम एक रेखा-चित्र से दिखला सकते हैं:

५ घंटे	५ घंटे
आवश्यक श्रम-काल	अधिशेष श्रम-काल

इस उदाहरण में अधिशेष मूल्य की दर:

$$\text{अ.}' = \frac{\text{अ.}}{\text{च. पू.}} = \frac{\text{५ घंटे अधिशेष काल}}{\text{५ घंटे आवश्यक काल}} \times १००\% = १००\%$$

अगर आवश्यक श्रम-काल स्थिर रहे तो कार्य-दिवस को बढ़ा कर ही अधिशेष श्रम-काल को बढ़ाया जा सकता है। इसका अर्थ होगा अधिशेष मूल्य की दर तथा मजदूर के शोषण के अंश में वृद्धि। मान लें कि कार्य-दिवस को १० घंटे

से १२ घंटे कर दिया गया तब अधिशेष श्रम-काल ५ घंटों के बजाय ७ घंटों का होगा। अगर ऐसा है तब अधिशेष मूल्य की दर $\frac{७}{५} \times १००\% = १४०\%$ होगी।

कार्य-दिवस को बढ़ाकर जो अधिशेष मूल्य उत्पन्न किया जाता है उसे मार्क्स ने निरपेक्ष अधिशेष मूल्य कहा है। चूंकि अधिशेष मूल्य के लिए पूंजीपति की भूख अन्तहीन होती है, इसलिए वह कार्य-दिवस को अन्तिम हद तक बढ़ाने की कोशिश करेगा।

किस सीमा तक पूंजीपति कार्य-दिवस को बढ़ा सकते हैं? अगर वे कार्य-दिवस को बढ़ाने में समर्थ हैं तो भी वे मजदूरों को प्रतिदिन २४ घंटे ही काम करने के लिए मजबूर कर सकते हैं। लेकिन यह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य को हर दिन और रात को विश्राम करने तथा सोने और खाने में कुछ समय लगाना आवश्यक है। ये आवश्यकताएं कार्य-दिवस की विशुद्ध प्राकृतिक सीमाओं को निर्धारित करती हैं। प्राकृतिक सीमाओं के अतिरिक्त नैतिक सीमाएं भी हैं, क्योंकि समाज के एक सदस्य के नाते मजदूर को अपनी सांस्कृतिक और सामाजिक जरूरतों (पुस्तकें और समाचारपत्र पढ़ना, सिनेमा देखना, सभाओं में जाना, आदि) को पूरा करना आवश्यक है, लेकिन चूंकि कार्य-दिवस की प्राकृतिक और नैतिक सीमाएं लचीली होती हैं, इसलिए पूंजीवाद के अन्तर्गत कार्य-दिवस ८, १०, १२ या उससे भी अधिक घंटों का हो सकता है।

पूंजीवाद के प्रारम्भिक चरणों में राज्य ने पूंजीपतियों के हित में कार्य-दिवस को बड़ा करने के लिए विशेष कानून जारी किया था। बाद में यांत्रिक उत्पादन के प्रसार और बेरोजगारी की वृद्धि के कारण कार्य-दिवस को बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं रही। पूंजीपति आर्थिक दबाव डालकर मजदूरों को अधिकतम सम्भव समय तक काम करने के लिए मजबूर करने लगे।

तब मजदूर वर्ग ने कार्य-दिवस को छोटा करने के लिए संघर्ष छेड़ दिया। संघर्ष सबसे पहले इंगलैंड में शुरू हुआ। यह संघर्ष विशेषकर प्रथम इन्टरनेशनल और १८६६ में बाल्टीमोर में हुई श्रमिक कांग्रेस के बाद तीव्र हो गया। इस कांग्रेस ने ८ घंटे के कार्य-दिवस का नारा दिया। मजदूर वर्ग के संघर्ष के फलस्वरूप बहुतेरे पूंजीवादी देशों में कार्य-दिवस को नियन्त्रित करने के लिए कानून बनाये गये। प्रश्न उठता है: अगर कार्य-दिवस को बहुत बड़ा नहीं किया जा सकता तो कोई पूंजीपति किस प्रकार बड़ी मात्रा में अधिशेष मूल्य प्राप्त कर लेता है?

अधिशेष मूल्य को बढाने का दूसरा तरीका है आवश्यक श्रम-काल को कार्य-दिवस के घटे पूर्ववत रखते हुए छोटा कर देना, जिससे अधिशेष श्रम-काल बढ सके। यह कैसे होता है ? स्मरण रहे कि श्रम-शक्ति के मूल्य का निर्धारण मजदूर के जीवन-निर्वाह के साधनों पर व्यय की गयी श्रम की मात्रा से होता है। अगर उपभोक्ता वस्तुओं को उत्पन्न करने वाले उद्योगो मे श्रम-उत्पादकता बढ जाती है तो उपभोक्ता वस्तुओ का मूल्य कम हो जायेगा। इसका अर्थ होगा श्रम-शक्ति के मूल्य में ह्रास। फलस्वरूप अधिशेष श्रम-काल बढ़ जायेगा।

सापेक्ष अधिशेष मूल्य

मान लें कि हम १० घटे के कार्य-दिवस को ५ घटे के आवश्यक श्रम-काल और ५ घटे के अधिशेष श्रम-काल मे विभाजित करते हैं। यह भी मान लें कि उपभोक्ता वस्तुओ के उद्योग मे श्रम-उत्पादकता मे वृद्धि होने के फलस्वरूप आवश्यक श्रम-काल ५ घटों से घटकर ३ घटे हो जाता है। अब अधिशेष श्रम-काल निस्सदेह ५ घटे से बढ़कर ७ घटे हो जायेगा। कार्य-दिवस मे कोई परिवर्तन नहीं होने पर भी शोषण का अश (या अधिशेष मूल्य की दर) ऊचा हो जायेगा। इस उदाहरण मे हम कार्य-दिवस को इस प्रकार दिखा सकते हैं

५ घटे	५ घटे
आवश्यक श्रम-काल	अधिशेष श्रम-काल
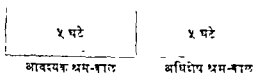
प्रतिशत के रूप मे अधिशेष मूल्य की दर होगी $अ' = \frac{५}{५} \times १००\% = १००\%$

३ घटे	७ घटे
आवश्यक श्रम-काल	अधिशेष श्रम-काल

अधिशेष मूल्य की दर होगी $अ.' = \frac{७}{३} \times १००\% = २३३$ प्रतिशत।

हमारे उदाहरण मे कार्य-दिवस की लम्बाई मे निरपेक्ष वृद्धि के कारण नहीं, बल्कि आवश्यक और अधिशेष श्रम-काल के अनुपात मे परिवर्तन हो जाने के

फलस्वरूप ही अधिशेष मूल्य की दर १०० प्रतिशत से बढ़कर २३३ प्रतिशत हो गयी है।

बढ़ी हुई श्रम-उत्पादकता के फलस्वरूप आवश्यक श्रम-काल में कमी तथा अधिशेष श्रम-काल में सगत वृद्धि करके जो अधिशेष मूल्य प्राप्त किया जाता है उसे सापेक्ष अधिशेष मूल्य कहते हैं। कई स्थितियों मे पूंजीपति अतिरिक्त अधिशेष मूल्य प्राप्त कर लेता है।

अतिरिक्त अधिशेष मूल्य सापेक्ष अधिशेष मूल्य का ही एक रूप है। प्रत्येक पूजीपति अधिकतम मुनाफा कमाना चाहता है। इस उद्देश्य से वह नयी मशीन और टेक्नालाजी का प्रयोग करता है और इस प्रकार उच्च उत्पादकता प्राप्त कर लेता है। फलस्वरूप उसके उद्यम में उत्पन्न होने वाली वस्तुओं का मूल्य इसी तरह के अन्य उद्यमों में उत्पन्न होने वाली इसी प्रकार की वस्तुओ के औसत मूल्य की अपेक्षा कम हो जाता है। चूंकि किसी वस्तु की बाजार कीमत उत्पादन में मौजूद औसत स्थितियों से निर्धारित होती है इसलिए पूजीपति को अधिशेष मूल्य की सामान्य दर की तुलना मे ऊंची दर प्राप्त होती है।

अतिरिक्त अधिशेष मूल्य

वस्तु के सामाजिक मूल्य और उसके निम्न व्यक्तिगत मूल्य के अन्तर को अतिरिक्त अधिशेष मूल्य कहते हैं। इसकी दो विशेषताएं हैं: पहली, यह उन्हीं उद्यम विशेष को प्राप्त होता है जो औरो से पहले नये और अधिक उत्पादक यन्त्र लगाते हैं; दूसरी, किसी भी पूजीपति को अतिरिक्त अधिशेष मूल्य अस्थायी तौर पर मिल सकता है, क्योकि देर-सवेर अन्य पूजीपतियो के उद्यमों में भी नयी मशीन लग जायेगी और कुछ विशेष लोगों का लाभ खत्म हो जायेगा और उनको अतिरिक्त अधिशेष मूल्य मिलना बन्द हो जायेगा। अगर इसी बीच किसी अन्य उत्पादक ने अपने उद्यम मे और भी उत्पादक मशीन लगा ली तो उसे ही अब अतिरिक्त अधिशेष मूल्य मिलने लगेगा।

पूंजीवाद के विकास मे अतिरिक्त अधिशेष मूल्य एक महत्वपूर्ण हिस्सा अदा करता है। अतिरिक्त अधिशेष मूल्य हासिल करने की महत्वाकांक्षा के कारण ही टेक्नालाजी मे स्वतः विकास होता है। चूंकि प्रत्येक पूजीपति के सामने उसकी अपनी समृद्धि का लक्ष्य रहता है, इसलिए वह अपनी नयी मशीन और उत्पादन टेक्नालाजी को गुप्त रखता है, जिससे अन्य उद्योगपति उनका इस्तेमाल नहीं कर पाते। इसके कारण पूंजीपतियों मे पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता बढ जाती है और उनके पारस्परिक अन्तर्विरोध तीव्र हो जाते हैं। परिणामस्वरूप कुछ उद्योगपति बर्बाद हो जाते हैं और कुछ धनी हो जाते हैं।

दूसरे शब्दों मे, अतिरिक्त अधिशेष मूल्य की प्राप्ति की आकांक्षा उत्पादक शक्तियों के विकास के लिए प्रेरक है, किन्तु वह उनके विकास को मन्द कर देती है।

सापेक्ष अधिशेष मूल्य का स्रोत श्रम-उत्पादकता की वृद्धि है। इस मूल्य के विश्लेषण से हम पूंजीवाद के अन्तर्गत उत्पादकता के विकास के तीन ऐतिहासिक चरण पाते हैं : साधारण सहयोग, हाथों की सहायता से उत्पादन और मशीन से उत्पादन। पूंजीवादी साधारण सहयोग श्रम-उत्पादकता का प्रथम और प्रारम्भिक रूप था। इसकी मूल विशेषता यह है कि पूंजीपति एक ही समय अपने कारखाने मे एक ही तरह के काम करने वाले मजदूरों को बहुत बड़ी संख्या मे काम पर लगाता है।

उद्योग मे पूंजीवादी विकास के तीन चरण

जब बहुत से मजदूर मिलकर एक और एक ही तरह का काम करते हैं तब पूंजीपति को मजदूरों की व्यक्तिगत उत्पादकता की तुलना करने का अवसर मिलता है और वह उन्हें काम की रफ्तार बढ़ाने के लिए मजबूर करता है। फलस्वरूप श्रम की उत्पादकता मे वृद्धि होती है। एक साथ काम पर लगाये गये पांच मजदूरों की कुल उत्पादकता उन्ही के अलग-अलग काम करने से प्राप्त कुल उत्पादकता से काफी अधिक होती है। एक साथ काम करने के कारण उत्पादकता मे होने वाली वृद्धि के लिए पूंजीपति को कुछ भी अधिक खर्च नही करना पड़ता। वह मजदूरों को उनकी श्रम-शक्ति का जितना मूल्य पहले चुकाता था, उतना ही अब भी चुकाता है, लेकिन उत्पादकता मे वृद्धि होने के कारण उसे अधिक मुनाफा प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त, जहां बहुत से मजदूर मिलकर काम करते हैं वहां पूंजीपति इमारत, कारखाने की जगह, रोशनी, गर्मी, इत्यादि के मामले मे बचत करता है। इस तरह यह भी पाया जाता है कि कुछ लोग किसी एक कार्य को करने मे अधिक दक्ष होते हैं तो दूसरे लोग दूसरे कार्यों को करने मे अधिक प्रवीण होते हैं। इसलिए पूंजीपति मजदूरों को उन्ही कार्यों मे लगाता है जिनमे वे दक्ष होते हैं। इस तरह कारखाने मे श्रम-विभाजन लागू हो जाता है। श्रम-विभाजन और हस्त-कला की तकनीक पर आधारित पूंजीवादी उद्यम को निर्माणशाला कहते हैं।

निर्माणशाला के अन्दर श्रम-विभाजन स्थापित हो जाने के कारण श्रम-उत्पादकता मे काफी वृद्धि हुई। हम सूइयों का उदाहरण लें। १८वी शताब्दी मे १० मजदूरों वाली निर्माणशाला ४८,००० सूइयां प्रतिदिन बनाती थी, यानी प्रति मजदूर ४,८०० सूइयों का उत्पादन होता था। श्रम-विभाजन के बिना एक मजदूर सिर्फ २० सूइयां ही प्रतिदिन बना सकता था। इस तरह उत्पादकता २४० गुनी बढ़ गयी।

निर्माणशाला मे श्रम की दशाए बहुत ही कठिन थी। एक ही तरह के साधारण संचलन की निरन्तर पुनरावृत्ति ने मजदूर को शारीरिक और नैतिक रूप से अपग कर दिया था। उसका कार्य-दिवस १८ घंटे या उससे भी अधिक तक पहुच गया था, लेकिन मजूरी बहुत ही कम थी।

हाथो के द्वारा होने वाले उत्पादन ने बड़े पैमाने के मशीनी उत्पादन के लिए स्थितिया पैदा कर दी, यथा: १) कार्य-परिचालन विधियों के सरल हो जाने के कारण मजदूर हाथो के बदले मशीन से काम करने लगे; २) अलग-अलग प्रक्रियाओ के पूरा होने के कारण औजारों में विशेषीकरण बढ़ा, फलस्वरूप हाथ द्वारा चलाये जाने वाले औजारों के बदले मशीनें आयीं; ३) हाथो के द्वारा होने वाले उत्पादन ने मशीन-उद्योग के लिए दक्ष मजदूर तैयार किये। इस तरह हाथो के द्वारा होने वाले उत्पादन ने एक ऐतिहासिक भूमिका अदा की।

कारखाने तक पहुचने के लिए हाथो के द्वारा होने वाला उत्पादन एक सक्रान्ति काल के रूप मे आया। सर्वप्रथम कार्य करने वाली मशीन आयी। इस मशीन ने वही कार्य करना प्रारम्भ कर दिया, जो कार्य पहले मजदूर करते थे, किन्तु ऐसी मशीन को चलाना एक मजदूर की मासपेशियों की शक्ति से बाहर की बात थी। तब एक प्रेरक यत्र—वाप्प इजन—को ईजाद किया गया जिसने नयी मशीन को सचालित करना प्रारम्भ कर दिया। इन सबके फलस्वरूप पूंजीवादी कारखाने का उदय हुआ। पूजीवादी कारखाना वह इकाई था जिसमे वस्तुओं के उत्पादन के लिए एक-दूसरे से सम्बद्ध कई मशीनें व्यवहृत की जाने लगीं।

मशीनो के प्रयोग और उनमे सुधार के कारण श्रम-उत्पादकता बढाने और वस्तुओ को सस्ती करने की नयी सम्भावनाएं उत्पन्न हुईं। मशीनो के बढते प्रयोग ने छोटे वस्तु-उत्पादकों की बहुत बड़ी संख्या को बर्बाद कर दिया और जिन वर्कशापों मे हाथों से काम होता था, वे बन्द हो गये।

श्रम को पूजी द्वारा गुलाम बनाने की दिशा में पूजीवादी कारखाना एक नया चरण था। अब मजदूर मशीन के एक उपांग की भूमिका अदा करने लगे। मशीनों के पूजीवादी व्यवहार के कारण कार्य-दिवस लम्बा हो गया, औरतो और बच्चो को काम पर लगाया गया, बेरोजगारों की एक बड़ी फौज तैयार हो गयी और मजदूर वर्ग की हालत बदतर हो गयी।

पूजीपति मशीन का व्यवहार सदा नही करता। पूजीपति मशीन का प्रयोग तभी तक करता है जब तक उसकी कीमत मशीन द्वारा विस्थापित मजदूरो की मजूरी से कम होती है। पूजीपति मशीन का प्रयोग तभी तक करता है जब तक उसका इस्तेमाल उसके फायदे में होता है। मशीनी उत्पादन के कारण हाथ से काम किया जाना बिलकुल खत्म नही होता। अमरीका और ब्रिटेन जैसे अत्यन्त

विकसित औद्योगिक देशों में शारीरिक श्रम का अब भी व्यापक रूप से इस्तेमाल होता है।

हाथों से उत्पादन करने के ढंग से कारखाने तक संक्रमण ने उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली को अच्छी तरह स्थापित कर दिया।

बड़े पैमाने के मशीनी उत्पादन ने श्रम और उत्पादन के स्वतः सामाजीकरण की प्रक्रिया के लिए आधार तैयार कर दिया। हाथ से संचालित होने वाली मशीनों का इस्तेमाल करने वाले छोटे वर्कशापों को विभिन्न व्यवसायों में हजारों आदमियों को काम देने वाले बड़े कारखानों ने उखाड़ फेंका। श्रम-विभाजन का और विस्तार हुआ। सभी उद्यम और उद्योग परस्पर सम्बद्ध और एक-दूसरे पर निर्भर हो गये। हम जानते हैं कि इंजीनियरिंग संयंत्र के लिए लोहा और इस्पात के कारखाने के उत्पादनों के बिना काम करना असम्भव हो जाता है। लोहा और इस्पात के कारखाने कोयले के बिना काम नहीं कर सकते। कोयले की खानें इंजीनियरिंग तथा अन्य संयंत्रों पर निर्भर होंगी। इस तरह उत्पादन ने एक सामाजिक चरित्र ग्रहण कर लिया।

पूंजीवाद का मूल अन्तर्विरोध

इस दौरान सभी प्रकार के उद्यम, भूमि और भू-धन निजी सम्पत्ति ही रहे। सामाजिक श्रम के उत्पादन को पूंजीपति हड़प गये। परिणामस्वरूप उत्पादन के सामाजिक चरित्र और उत्पादन की फल-प्राप्ति के निजी और पूंजीवादी रूप में एक अन्तर्विरोध पैदा हो गया। यही पूंजीवाद का मूल अन्तर्विरोध है।

पूंजीवाद का मूल अन्तर्विरोध निरन्तर विकसित होने वाली उत्पादक शक्तियों और पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों के अन्तर्विरोध के रूप में जाहिर होता है। जैसे-जैसे उत्पादन का समाजीकरण होता जाता है, वैसे-वैसे उत्पादक शक्तियों के विस्तार के मार्ग में पूंजीवादी रुकावटें आने लगती हैं। इन रुकावटों को दूर करने के लिए पूंजीवादी सम्पत्ति का उन्मूलन आवश्यक हो जाता है। पूंजीवाद उत्पादक शक्तियों को विकसित कर अपनी (पूंजीवाद की) कब्र खोदने वाले सर्वहारा वर्ग को जन्म देता है। सर्वहारा वर्ग ही वह शक्ति है जिसके हाथों निजी सम्पत्ति का उन्मूलन और उसकी जगह सामाजिक स्वामित्व की स्थापना निश्चित है।

६. पूंजीवाद के अन्तर्गत मजूरी

मजूरी का मूल स्वभाव

हमने अब तक यह स्पष्ट किया है कि पूंजीवाद के अन्तर्गत अन्य वस्तुओं की तरह ही श्रम-शक्ति का भी एक मूल्य होता है। श्रम-शक्ति के मूल्य की मुद्रा के रूप में अभिव्यक्ति को श्रम-शक्ति की कीमत कहते हैं।

पूंजीवादी शोषण को छिपाने के लिए पूंजीवादी अर्थशास्त्री कहते हैं कि मजूरी ही श्रम की कीमत है। वे कहते हैं कि मजदूर पूंजीवादी कारखाने में काम करता है, तरह-तरह की चीजों को पैदा करता है और अपने श्रम के बदले श्रम की कीमत—मजूरी पाता है।

यह इसलिए लगता है कि मजदूर को उनके द्वारा किये गये काम के लिए मजूरी मिलती है। मजदूर को एक निश्चित समय की निश्चित अवधि मे काम कर चुकने के बाद ही मजूरी मिलती है। मजूरी या तो किये गये काम की अवधि (घंटे दिन, सप्ताह) के अनुसार दी जाती है, या उत्पन्न की गयी सामग्रियों के अनुसार दी जाती है। वास्तव मे, जैसा कि कार्ल मार्क्स कहते है, मजूरी श्रम-शक्ति के मूल्य या कीमत का तत्वान्तरित यानी गुप्त और छद्मावरित रूप है।

श्रम स्वयं कोई वस्तु नही है और इस वजह से न तो इसका कोई मूल्य होता है और न कोई कीमत होती है। श्रम को बेचने के लिए जरूरी है कि बिक्री के पहले उसका अस्तित्व रहे। कोई भी व्यक्ति अस्तित्वहीन चीज को नही बेच सकता। जब कोई मोची अपने जूते बाजार मे लाता है तो इसका अर्थ होता है कि जूतों का अस्तित्व है और वे बेचे जा सकते है। किन्तु जब पूंजीपति मजदूरों को काम पर लगाता है तब श्रम का कोई अस्तित्व नही होता। सिर्फ मजदूर के काम करने की क्षमता यानी उसकी श्रम-शक्ति रहती है। इसी को मजदूर पूंजीपति के हाथों बेचते हैं। जब पूंजीपति इसे खरीदता है और मुद्रा-राशि का भुगतान करता है तब उसकी मुख्य दिलचस्पी काम करने और अधिशेष मूल्य की सृष्टि करने की मजदूरों की क्षमता मे होती है, न कि स्वय मजदूरो मे।

चूकि पूंजीवाद के अन्तर्गत मजूरी श्रम के लिए किये जाने वाले भुगतान का रूप ले लेती है, इसलिए ऐसा लगता है कि भुगतान सम्पूर्ण श्रम के लिए किया जाता है। मान लें कि श्रमिक को अपने और अपने परिवार के लिए जीवन-निर्वाह के साधनों को उत्पन्न करने में सामाजिक तौर पर ६ घंटे कार्य करने की आवश्यकता होती है। अगर इस समय का एक घंटा १ डालर के बराबर हो तो सामाजिक तौर पर आवश्यक कार्य-काल के ६ घंटों का मूल्य ६ डालर के बराबर होगा। पूंजीपति श्रम-शक्ति के पूरे मूल्य ६ डालर का भुगतान करता है, लेकिन मजदूर को १२ घंटे काम करने के लिए मजबूर करता है। इसलिए वास्तविक दर सिर्फ ५० सेंट प्रति घंटा होती है। मजूरी इस बात को छिपाती है कि पूंजीपति कार्य-दिवस के आधे हिस्से के लिए ही भुगतान करता है। अतः मजूरी कार्य-दिवस के आवश्यक और अधिशेष श्रम-काल तथा भुगतान किये गये श्रम और नहीं भुगतान किये गये श्रम के विभाजन को छिपा देती है। मजूरी से ऐसा लगता है कि उसका भुगतान श्रमिक द्वारा व्यय किये गये पूरे श्रम के लिए होता है। इस तरह

मजूरी शोषण को हमारी दृष्टि से ओझल कर देती है। इसी [illegible] पूंजीवाद को [illegible] के [illegible] रूपों से [illegible] करता है।

मजूरी के रूप

पूंजीवाद के अन्तर्गत मजूरी दो रूप ग्रहण कर लेती है। काल-मजूरी वह रूप है जिसके अन्तर्गत काम की कालावधि (दिन, सप्ताह और महीना) के अनुसार मजूरी का भुगतान किया जाता है।

पूंजीवाद में काल-मजूरी का सही अन्दाज प्राप्त करने के लिए उसे कार्य-दिवस की लम्बाई की दृष्टि से देखना चाहिए। अगर पूंजीपति किसी मजदूर को प्रतिदिन १० डालर देता है और मजदूर १० घंटे काम करता है तो एक घंटे काम करने की औसत मजूरी १ डालर हुई। मान लें कि पूंजीपति कार्य-दिवस को बढ़ाकर १० घंटे से १२ घंटे कर देता है। इस अवस्था में १ घंटे काम करने की औसत १ डालर से घटकर ८३ सेंट हो जाती। इससे यह स्पष्ट है कि पूंजीपति के लिए काल-मजूरी शोषण को तीव्र करने का एक साधन है। काल-मजूरी के अतिरिक्त मजूरी का एक अन्य रूप नग-मजूरी भी है।

मजूरी के उस रूप को जिसके अनुसार मजदूर की कमाई समय की एक इकाई (एक घंटा या एक दिन) के दौरान उसके द्वारा की गयी उत्पन्न सामग्रियों की मात्रा पर निर्भर है, नग-मजूरी (पैदावार के अनुसार भुगतान) कहा जाता है।

मार्क्स ने नग-मजूरी को काल-मजूरी का एक परिवर्तित रूप कहा। वास्तविकता यह है कि प्रत्येक हिस्से के लिए भुगतान की राशि तय करने में पूंजीपति मजदूर की प्रतिदिन की काल-मजूरी की राशि को और बलिष्ठतम एवं सबसे अधिक निपुण मजदूर द्वारा एक दिन के दौरान उत्पन्न किये गये हिस्सों को ध्यान में रखता है।

अगर दैनिक काल दर १० डालर है और मजदूर द्वारा २० हिस्से तैयार किये जाते हैं तो प्रत्येक हिस्से के लिए पूंजीपति ५० सेंट नग-दर देगा। इस तरह पूंजीपति अपने को आश्वस्त कर लेता है कि नग-मजूरी काल-मजूरी से अधिक नहीं है। अगर यही स्थिति है तो फिर पूंजीपति नग-मजूरी क्यों लागू करते हैं? ऐसा वे इसलिए करते हैं कि नग-मजूरी की कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो उसे पूंजीपतियों के लिए मजूरी के अन्य रूपों की तुलना में कभी-कभी अधिक लाभप्रद बना देती हैं। नग-मजूरी रहने पर कार्य की कोटि की जांच अन्तिम रूप से तैयार वस्तु द्वारा की जाती है। पूंजीपति उच्च या मध्यम कोटि की वस्तुओं के लिए भुगतान करेगा, लेकिन घटिया कोटि की वस्तुओं के लिए भुगतान नहीं करेगा। मजूरी का यह रूप मजदूर के श्रम पर एक दबाव डालता है और प्रत्येक मजदूर अधिक मुद्राराशि प्राप्त करने के लिए अपना उत्पादन बढ़ाने की कोशिश करता है। लेकिन

ज्यों ही सभी मजदूर अपना उत्पादन बढा लेते हैं, त्यों ही पूंजीपति प्रति इकाई मजूरी कम कर देता है और इस तरह उसका मुनाफा बढ जाता है। इसीलिए मार्क्स ने कहा कि मजदूर जितना ही अधिक काम करता है उसे उतनी ही कम मजूरी मिलती है।

पूंजीपति मूर्त परिस्थितियों को देखकर ही मजूरी के विभिन्न रूपों का प्रयोग करते हैं।

ऐतिहासिक रूप से काल-मजूरी खड-मजूरी से पहले आयी। पूंजीवादी विकास के प्रारम्भिक चरणो मे भी जब पूंजीपति कार्य-दिवस को बढ़ाकर अधिशेष मूल्य को बढाने की स्थिति मे थे, काल-मजूरी व्यापक रूप से प्रचलित थी। मजूरी के इस रूप से उन्हें कई फायदे हुए। पीछे चलकर जब कार्य-दिवस को कानून के द्वारा नियंत्रित कर दिया गया तब पूंजीपतियों ने खंड-दर का व्यापक प्रयोग प्रारम्भ किया। वर्तमान काल में काल-दर-लाभांश प्रणाली के विभिन्न रूप काफी प्रचलित हैं। अत १९५७ के अन्त में अमरीका के ७० प्रतिशत औद्योगिक श्रमिकों को परिष्कृत काल-मजूरी मिली।

खड-मजूरी से काल-मजूरी की ओर आने के कौन-से कारण हैं? तथ्य यह है कि वर्तमान पूंजीवादी उद्योग की बहुतेरी शाखाओ मे एक निश्चित रफ्तार से घूमने वाले वाहक पट्टो द्वारा 'प्रवाह' विधि अपनायी गयी। इसका मतलब है कि उत्पादन की गति मजदूर पर निर्भर नही है। इसका निर्धारण वाहक पट्टों के निरन्तर अधिक तेजी से घूमने से या उत्पादन टेक्नालाजी के विशिष्ट स्वभाव से होता है। श्रम की भयकर तीव्रता के साथ-साथ श्रमिकों की मजूरी मे कोई वृद्धि नही होती है।

बहुधा एक ही उद्यम मे और एक ही समय भुगतान के दोनों रूपो (काल और खड) का इस्तेमाल एक साथ होता है। पूंजीवाद मे मजूरी के ये दोनों रूप मजदूर वर्ग के शोषण को तीव्र करने के विभिन्न तरीके मात्र हैं।

अधिक अधिशेष मूल्य की आकांक्षा से पूंजीपति उत्पादन को संगठित करने तथा मजूरी का भुगतान करने की अतिश्रामण व्यवस्थाएं काम में लाते हैं। इन व्यवस्थाओं का मूल उद्देश्य एक निश्चित काल के दौरान श्रमिक से जितना भी सम्भव श्रम हो, उतना लेना है। मजूरी के भुगतान की दर्जनों अतिश्रामण व्यवस्थाएं हैं।

पहली कोटि की व्यवस्थाओं में एक है टेलरवाद जिसका नाम इसके अमरीकी इंजीनियर-अन्वेषक एफ. टेलर के नाम पर रखा गया है। टेलरवाद का सार यह है कि पूंजीपति द्वारा चुने गये बलिष्ठतम और निपुणतम मजदूरों को अधिकतम तीव्रता से काम करने के लिए बाध्य किया जाता है। अलग-अलग

क्रियाओं को सम्पादित करने का समय सेकेण्डो या उनसे भी छोटे भागो मे निश्चित रहता है। इस तरह जो आंकडे मिलते हैं उन्हे एक विशेष तकनीक परिषद को दे दिया जाता है। यह परिषद उनका अध्ययन करने के बाद उत्पादन का एक सगठन तथा उद्यम के मजदूरो के लिए काल-मजूरी निश्चित करती है। काम पूरा करने वालो के लिए मजूरी की ऊची दर और काम पूरा न करने वालों के लिए नीची दर तय की जाती है। इस मजूरी व्यवस्था के परिणामस्वरूप श्रम-उत्पादकता मे द्रुत गति से वृद्धि होती है, किन्तु मजूरी की पूरी राशि शायद ही बढती है। परिणाम यह होता है कि शोषण की दर काफी बढ जाती है।

अतिश्रामण व्यवस्था का दूसरा रूप फोर्डवाद है। इसका भी लक्ष्य मजदूर से श्रम की अधिकतम मात्रा प्राप्त करना है। वाहक पट्टे की गति को तेज कर ही ऐसा किया जाता है। प्रारम्भ मे वाहक पट्टा तीन मीटर प्रति मिनट की रफ्तार से चलता था, लेकिन अब अगर उसकी गति त्वरित हो जाये तो उसकी गति चार या पाच मीटर प्रति मिनट हो जायेगी। इस परिस्थिति मे मजदूर अधिक जोर-शोर से काम करने और अधिक शक्ति व्यय करने के लिए चाहे-अनचाहे मजबूर हो जाते हैं, लेकिन उनकी मजूरी पुराने ही स्तर पर रहती है और व्यय की गयी अधिक शक्ति के लिए पुरस्कार नही दिया जाता। परिणाम यह होता है कि बहुतेरे मजदूर ४०-५० वर्ष की उम्र होते-होते पूर्णतया थक जाते हैं और मालिक द्वारा बरखास्त कर दिये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त वाहक पट्टो पर किये गये कामो की सरलता को देखते हुए पूजीपति प्रशिक्षित मजदूरो को काम पर लगाते है, भुगतान की निम्न दर निश्चित करते है और इस तरह मुनाफे की बडी रकमे कमाते हैं।

मुनाफे में हिस्सा देने की पद्धति को भी मजूरी की अतिश्रामण व्यवस्था मे ही रखा जा सकता है। इस पद्धति के अन्तर्गत पूजीपति मजदूरो को सूचित कर देता है कि वह उनको अन्य पूजीपतियो की अपेक्षा कम मजूरी देगा, लेकिन प्रत्येक वर्ष के अन्त मे जब काम का लेखा-जोखा लिया जायेगा, तब अच्छी तरह काम करने वाले मजदूर मुनाफे का एक हिस्सा पायेंगे।

इस पद्धति का प्रयोग श्रम की तीव्रता को बढा देता है, उनकी वर्ग-चेतना के विकास को मन्द कर देता है, उनको एक-दूसरे से अलग कर देता है और पूजीपतियो के विरुद्ध उनके सघर्ष को अवरुद्ध करता है। मुनाफे मे हिस्सा देने की पद्धति से यह भ्रम पैदा हो जाता है कि मजदूरो को भी पूजीवादी उद्यम को बढाने में दिलचस्पी है।

पूजीवादी विकास के प्रारम्भिक चरणो मे मजदूरो को शायद ही मुद्रा के रूप मे मजूरी मिलती थी। पूजीपति ने मजदूरो को ऐसी स्थिति मे रख दिया जिसमे

अमरीका में १९४९ में १९३९ की अपेक्षा उपभोक्ता पर कर का बोझ १२ गुना बढ़ गया। १९४८ में कमाई का २५-३० प्रतिशत लगान के रूप में चला गया। मुद्रास्फीति के कारण भी वास्तविक मजूरी घट जाती है।

पूंजीवाद के अन्तर्गत मजदूर वर्ग की मजूरी में ह्रास होने के ये कतिपय कारण हैं।

पूंजीवादी देशों में औरतों और मर्दों को समान काम के लिए समान मजूरी नहीं दी जाती। मर्दों के बराबर काम करने पर भी औरतों को मर्दों की अपेक्षा कम मजूरी मिलती है।

औरतों की औसत मजूरी मर्दों को दी जाने वाली औसत मजूरी से अमरीका में ३० से ४० प्रतिशत कम, फ्रांस में १५ से २० प्रतिशत कम और जापान में २५ से ४० प्रतिशत कम है। मर्दों और औरतों की मजूरी के इस अन्तर के कारण अमरीका को हर साल कई अरब डालर का अतिरिक्त मुनाफा होता है।

नस्ली भेदभाव पूंजीपतियों के लिए अपार मुनाफा कमाने का एक स्रोत है। अमरीका में नीग्रो मजदूरों को गोरे मजदूरों की तुलना में बदतर दशाओं में काम करना पड़ता है। उनको अत्यन्त कठिन, मुश्किलदेह और खतरनाक कामों में लगाया जाता है। नीग्रो मजदूरों को गोरे मजदूरों की अपेक्षा बहुत कम मजूरी मिलती है।

विभिन्न पूंजीवादी देशों में मजूरी का स्तर एक-सा नहीं है। इसके कई कारण हैं। ऐसा सोचना गलत होगा कि कुछ देशों में दूसरे देशों की अपेक्षा पूंजीपति मजदूरों के प्रति अधिक उदार हैं। हर जगह उनकी कोशिश कम से कम मजूरी देने की होती है। विभिन्न देशों की मजूरी की दरों की तुलना करते समय हमें उन ऐतिहासिक स्थितियों पर ध्यान देना चाहिए, जिनमें उन देशों के मजदूर वर्ग ने जन्म लिया है। इसके अतिरिक्त, मजदूर वर्ग की परम्परागत जरूरतों का स्तर, दक्षता प्राप्ति व्यय, श्रम की उत्पादकता तथा वर्ग संघर्ष एवं अन्य स्थितियों पर भी विचार करना चाहिए।

उदाहरण के लिए अमरीका को लें। वहां पूंजीवाद का विकास उस समय हुआ जब श्रम की पूर्ति कम थी। इस कारण वहां मजूरी ऊंची हो गयी। यूरोप के देशों में ब्रिटेन में ही पहले पहल मजदूर वर्ग ने पूंजीपतियों का सामना करना प्रारम्भ किया। इस कारण अभी ब्रिटेन में आयरलैंड की अपेक्षा मजूरी की दर ऊंची है।

ऊंची मजूरी के लिए मजदूर वर्ग का संघर्ष

पूंजीपति मजदूरों की कमाई कम करने की कोशिश करते हैं और सिर्फ उतना ही देना चाहते हैं जिससे उनकी जरूरी आवश्यकताएं पूरी हो जायें। सर्वहारा वर्ग के विरुद्ध अपने संघर्ष में पूंजीपति राज्य, कानून, चर्च, प्रेस, रेडियो, टेलीविजन, इत्यादि की सहायता प्राप्त कर लेते हैं।

पूंजीपति सर्वहारा से टक्कर लेने के लिए एकजुट होकर मालिकों का संगठन ए
संयुक्त मोर्चा बनाते हैं।

दूसरी ओर मजदूर अपनी ट्रेड यूनियनों में संगठित होकर पूंजी के आक्रम
का मुकाबला करते हैं और अपनी आर्थिक स्थिति मे सुधार लाते हैं। १९६० मे
सारे विश्व में ट्रेड यूनियनो की कुल सदस्य सख्या १८ करोड़ के आसपास थे,
जिसमे से १० करोड सदस्य विश्व मजदूर सघ से सम्बद्ध थे।

मजूरी का स्तर सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच चलने वाले
वर्ग सघर्ष के फलस्वरूप स्थापित होता है। जहां मजदूर हडतालो में अविचल और
दृढ़ता दिखाते हैं वहा पूंजीपति बहुधा उनकी मांगो को मान लेने तथा उनकी मजूरी
को बढाने के लिए मजबूर हो जाते हैं। हाल मे बड़े पूंजीवादी देशों—अमरीका
ब्रिटेन, फ्रांस, इटली पश्चिम जर्मनी और जापान मे मजदूर वर्ग ने अपनी स्थिति
की हालतो को उन्नत करने के लिए सघर्ष किया था। सिर्फ १९६४ में करीब
६ करोड लोगो ने हडतालों में भाग लिया। फ्रांस के मजदूरो के व्यापक सघर्ष
बेल्जियम के खान मजदूरो की हडताल, इटली के इस्पात और इंजीनियरिंग उद्योग
के मजदूरों की लम्बी हडताल जिसमे १२,५०,००० लोगो ने हिस्सा लिया, इंग्लैंड
के इंजीनियरिंग उद्योग के मजदूरो की हडताल, आदि को इतिहास सदा याद
रखेगा। पूंजीवादी देशो मे आर्थिक और सामाजिक अधिकारों के लिए मजदूर वर्ग
का सघर्ष उग्र होता जा रहा है।

सर्वहारा वर्ग का आर्थिक सघर्ष बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस बात को मानते
हुए मार्क्सवाद-लेनिनवाद यह सीख देता है कि सिर्फ यही मजदूरों को शोषण से
मुक्त नही कर सकता। क्रान्तिकारी राजनीतिक सघर्ष के द्वारा उत्पादन की पूंजी-
वादी पद्धति का उन्मूलन करने पर ही मजदूर वर्ग आर्थिक और राजनीतिक उत्पी-
ड़न को जन्म देने वाली स्थितियों को समाप्त कर सकता है।

अध्याय ४

पूंजी का संचय और सर्वहारा वर्ग की बिगड़ती हुई स्थिति

हम पहले देख चुके हैं कि अधिशेष मूल्य का उत्पादन पूंजी से होता है, किन्तु पूंजी-निर्माण अधिशेष मूल्य से होता है। यह कैसे होता है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए आवश्यक है कि हम पूंजीवादी पुनरुत्पादन के विषय में कुछ जानकारी हासिल करें।

१. पूंजी का संचय और बेरोजगारों की फौज

पूंजी का पुनरुत्पादन और संचय

उत्पादन से हमारा मतलब भौतिक धन की सृष्टि की प्रक्रिया से है। पूंजीवाद के अन्तर्गत इसका मतलब यह है कि पूंजीपति बाजार में उत्पादन के साधन और श्रम-शक्ति खरीदता है और तब जनता भौतिक धन का उत्पादन करती है। इस तरह उत्पादन की प्रक्रिया पूरी होती है। तो क्या इसका मतलब यह है कि इसके बाद भौतिक धन के उत्पादन की कोई आवश्यकता नहीं रहती? नहीं, इसका यह मतलब नहीं है। समाज कभी भी भौतिक धन का उत्पादन बन्द नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसा करने पर उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा। अतः जरूरी है कि उत्पादन निरन्तर होता रहे, उसकी प्रक्रिया का प्रत्येक चरण दुहराया जाता रहे। भौतिक धन के उत्पादन की इस निरन्तर नवीकृत और पुनरावृत्त प्रक्रिया को पुनरुत्पादन कहते हैं।

पुनरुत्पादन प्रत्येक समाज में होता है, किन्तु अलग-अलग समाज में पुनरुत्पादन की प्रेरक शक्ति अलग-अलग होती है। अधिशेष मूल्य की आकांक्षा ही

पूंजीपति के लिए पूंजी के अन्तर्गत प्रेरक शक्ति है। भौतिक धन का उत्पादन और पुनरुत्पादन मेहनतकश जनता की जरूरतों को पूरा करने के लिए नहीं होता, बल्कि इसलिए होता है कि पूंजीपति मुनाफा प्राप्त कर सकें।

पूंजीपति द्वारा प्राप्त अधिशेष मूल्य की सृष्टि पूंजीवादी पुनरुत्पादन के दौरान होती है। हम यहां सिर्फ यही नहीं जानना चाहते कि पूंजीपति किस प्रकार अधिशेष मूल्य प्राप्त करता है, अपितु यह भी जानना चाहते हैं कि अधिशेष मूल्य का किस प्रकार इस्तेमाल किया जाता है। मतलब यह है कि अधिशेष मूल्य की राशि को किस प्रकार व्यय किया जाता है। अगर पूंजीपति अधिशेष मूल्य की सम्पूर्ण राशि को अपनी निजी आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए खर्च करे, तो हम उत्पादन की इस पूरी प्रक्रिया को साधारण पुनरुत्पादन कहेंगे। मान लें कि किसी पूंजीपति ने २,००,००० डालर की पूंजी लगायी है, जिसमे अचल पूंजी १,६०,००० डालर और चल पूंजी ४०,००० डालर है। अगर अधिशेष मूल्य की दर १०० प्रतिशत हो तो कुल तैयार वस्तुओं का मूल्य २,४०,००० डालर होगा। यहां हमारी यह मान्यता भी है कि सम्पूर्ण अचल पूंजी तैयार वस्तुओं के मूल्य में सम्मिलित है (१,६०,००० अ. पूं. + ४०,००० च. पूं. + ४०,०००अ. = २,४०,०००)। इन २,४०,००० डालरों में प्रारम्भ में लगाये गये २,००,००० डालर तथा उत्पादन प्रक्रिया मे मजदूरों के श्रम द्वारा उत्पन्न अधिशेष मूल्य के रूप में ४०,००० डालर सम्मिलित हैं।

चूंकि साधारण पुनरुत्पादन मे अधिशेष मूल्य की सम्पूर्ण मात्रा पूंजीपति और उसके परिवार की निजी जरूरतों पर खर्च कर दी जाती है, इसलिए दूसरे वर्ष भी पुनरुत्पादन की प्रक्रिया उसी पैमाने पर चलेगी। तीसरे, चौथे और इसी तरह आगे के अन्य वर्षों में भी पुनरुत्पादन के पैमाने एक जैसे रहेंगे। साधारण पुनरुत्पादन मे भौतिक धन के उत्पादन की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता, किन्तु अगर हम उसका विश्लेषण करें तो पूंजीपतियों की समृद्धि का स्रोत पा सकते हैं।

उत्पादन की प्रक्रिया में प्रारम्भिक पूंजी का पुनरुत्पादन और अधिशेष मूल्य की सृष्टि होती है। अधिशेष मूल्य को पूंजीपति अपनी निजी जरूरतों की पूर्ति के लिए व्यय करता है।

अगर पूंजीपति को अधिशेष मूल्य प्राप्त नहीं हो, तो वह अपनी निजी आवश्यकताओं की सतुष्टि के लिए अपनी सारी प्रारम्भिक पूंजी ही खर्च कर देगा। उपर्युक्त उदाहरण मे अगर पूंजीपति हर साल ४०,००० डालर खर्च करे, तो उसकी सारी प्रारम्भिक पूंजी (२,००,००० डालर) ५ वर्षों मे पूर्णतया समाप्त हो जायेगी। किन्तु ऐसा नहीं होता। वास्तव मे पूंजीपति अपनी निजी आवश्यक-

जरूरतों पर जो पूंजीपति खर्च करता है, वह अधिशेष मूल्य की राशि होती है। अधिशेष मूल्य की सृष्टि मजदूरों के उस श्रम से होती है, जिसके लिए उन्हें कोई भुगतान नहीं किया जाता।

लगायी गयी पूंजी का प्रारम्भिक स्रोत जो भी हो, निष्कर्ष यही निकलता है कि साधारण पुनरुत्पादन के दौरान पूंजी कालक्रम से मजदूरों के द्वारा उत्पन्न मूल्य का रूप धारण कर लेती है, जिसे बिना कोई कीमत चुकाये पूंजीपति हड़प जाता है।

इससे एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात सामने आती है। समाजवादी क्रान्ति के दौरान जब मजदूर वर्ग पूंजीपतियों का उन्मूलन कर उनके कारखाने ले लेता है, तब वह सिर्फ उन्हीं चीजों को लेता है, जिनका निर्माण उसके पुश्त-दर-पुश्त के श्रम से हुआ है। निजी पूंजीवादी स्वामित्व का उन्मूलन एक वैध कार्य है। ऐतिहासिक न्याय का कार्य है।

हमने ऊपर माना था कि पूंजीपति सम्पूर्ण अधिशेष मूल्य को अपनी निजी जरूरतों पर खर्च करता है। सवाल है कि क्या यह स्थिति सदा रह सकती है? पूंजीवादी विकास के प्रारम्भिक चरण में ऐसा बहुधा होता था। उस समय पूंजीपति सिर्फ थोड़े-से मजदूरों का शोषण करता था और कभी कभी स्वयं काम करता था। पूंजीवादी उद्यमों के विस्तार के बाद स्थिति बदली। पूंजीपति अब सैकड़ों-हजारों मजदूरों का शोषण करने लगा। मान लें कि किसी पूंजीपति ने १,००० मजदूरों को काम पर लगाया है। वह उन्हें मजूरी के रूप में २० लाख डालर हर वर्ष देता है। ये मजदूर उसके लिए (अगर अधिशेष मूल्य की दर १०० प्रतिशत है) प्रति वर्ष २० लाख डालर के बराबर अधिशेष मूल्य की सृष्टि करते हैं। मान लें कि पूंजीपति अधिशेष मूल्य की सम्पूर्ण राशि को नहीं, बल्कि उसके एक हिस्से को अपनी निजी जरूरतों पर खर्च करता है। अधिशेष मूल्य के बाकी हिस्से को उत्पादन का विस्तार करने, अधिक मशीनें तथा कच्चे माल प्राप्त करने और अधिक मजदूरों को काम पर लगाने के लिए प्रयोग में लाता है। यह **विस्तारित पुनरुत्पादन या पूंजी के संचय की स्थिति** है।

अब हम अधिशेष मूल्य के पूंजी के रूप में बदल जाने की प्रक्रिया पर विचार करें। मान लें कि किसी पूंजीपति के पास १ करोड़ डालर की पूंजी है। इसमें से वह ८० लाख डालर अचल पूंजी और २० लाख डालर चल पूंजी के रूप में लगाता है। अधिशेष मूल्य की दर १०० प्रतिशत है। मान लें कि सम्पूर्ण अचल पूंजी तैयार वस्तु के मूल्य में शामिल हो जाती है। इस तरह उत्पादन की प्रक्रिया की समाप्ति के बाद १ करोड़ २० लाख डालर के मूल्य की वस्तुओं का उत्पादन

ड. पूं.+२० लाख डालर च. पूं.+२० ला...

८० लाख डालर अ. पूं.+२० लाख डालर च. पूं.+२० लाख

।

ान लें कि पूजीपति अधिशेष मूल्य (२० लाख डालर) का वितरण
दो पर इस प्रकार करता है : उत्पादन के विस्तार के लिए १० लाख
निजी उपभोग के लिए १० लाख डालर। उत्पादन के विस्तार के लिए
मूल्य का जो भाग (१० लाख डालर) रखा गया है, उसका अचल और
ी के रूप में उसी अनुपात में विभाजन होता है, जिस अनुपात में प्रारम्भ
लगायी गयी थी। प्रारम्भ में कुल पूजी का विभाजन अचल और चल पूजी
में ४ : १ के अनुपात में हुआ था। अतः वह ८ लाख डालर अचल पूजी और
ख डालर चल पूजी के रूप में लगाता है।

परिणामस्वरूप दूसरे वर्ष उद्यम के पास सक्रिय पूजी के रूप में १ करोड
लाख डालर (८८ लाख डालर अ. पू.+२२ लाख डालर च. पू.) होता है।
र अधिशेष मूल्य की दर १०० प्रतिशत है तो दूसरे वर्ष के दौरान १ करोड
२ लाख डालर (८८ लाख अ. पू.+२२ लाख च. पूं.+२२ लाख डालर अ.)
मूल्य की वस्तुएं पैदा होंगी।

दूसरे वर्ष के दौरान उत्पादन की मात्रा बढी और अधिशेष मूल्य के परिमाण
में वृद्धि हुई, क्योंकि पहले वर्ष में प्राप्त अधिशेष मूल्य के एक हिस्से को पूजी में
रूपान्तरित किया गया। इस तरह अधिशेष मूल्य पूजी सचय का स्रोत है। पूजी-
करण (यानी पूजी में अधिशेष मूल्य के योग) के द्वारा पूजीपति अपनी पूजी को
उत्तरोत्तर बढाता है।

अपनी समृद्धि के लिए अधिकाधिक अधिशेष मूल्य प्राप्त करने की अतृप्त
आकाक्षा पूजीपति को अपने उत्पादन के पैमाने को निरन्तर बढाने के लिए प्रेरित
करती है। दूसरी ओर प्रतिद्वन्द्विता प्रत्येक पूजीपति को तकनीक को उन्नत करने
और उत्पादन का विस्तार करने के लिए बाध्य करती है, क्योंकि ऐसा नही करने
पर उसे अपने बर्बाद हो जाने का भय बना रहता है। तकनीक के विकास और
उत्पादन के विस्तार को रोकने का मतलब है प्रतिद्वन्द्विता मे पीछे छूट जाना। पीछे
छूटने वाले लोग अपने प्रतिद्वन्द्वियों के शिकार हो जाते हैं।

अगर पूजीपति निरन्तर उत्पादन का विस्तार कर रहे है, तो क्या इसका
अर्थ यह नही हुआ कि वे अपनी निजी आवश्यकताओं पर व्यय होने वाली अधिशेष
मूल्य की राशि में कटौती कर रहे हैं? नही, ऐसी बात नही है। वास्तविकता
यह है कि पूजीपति वर्ग की धनराशि मे वृद्धि होने के साथ उसकी निजी आवश्य-
कताओं पर व्यय की जाने वाली अधिशेष मूल्य की राशि भी बढती है। उदाहरण
के लिए, अमरीका के लखपति अपनी आय का २५ प्रतिशत अपनी व्यक्तिगत

जरूरतो पर खर्च करते हैं। कुछ लखपति परिवारों के पास कई आलीशान इमारतें, कीमती क्रीडा-नौकाएं, निजी हवाई जहाज और ऐश के लिए दर्जनो मोटरगाडिया हैं। अमरीकी लखपतियो की फिजूलखर्ची निम्नलिखित तथ्य से स्पष्ट हो जायेगी। अमरीका के ६० सबसे अधिक समृद्धिशाली परिवारो मे से कोई न कोई परिवार हर मौसम मे एक बडा शानदार स्वागत-समारोह आयोजित करता है। इस समारोह मे जितना धन खर्च होता है, उतने मे पाच व्यक्तियो वाला एक अमरीकी परिवार जीवन-पर्यन्त अभावहीन जिन्दगी बिता सकता है। स्पष्ट है कि पूजी-सचय के साथ पूजीपति वर्ग की परजीविता और फिजूलखर्ची भी बढती है।

कुत्सित पूजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रतिनिधि कहते है कि पूजीवादी सचय पूंजीपतियो के मितव्यय का परिणाम है। चूकि पूजीपतियो को समाज की भलाई की चिन्ता रहती है, इसलिए वे अपनी आवश्यकताओ को सीमित रखते हैं और पूजी-सचय करते हैं।

इस विचार का सबसे कुख्यात प्रवक्ता १९वी सदी का अग्रेज अर्थशास्त्री सिनियर था। उसने निष्ठापूर्वक कहा: "मैं उत्पादन के एक उपकरण के रूप मे काम आने वाली पूजी के बदले उपभोग-स्थगन शब्द रखता हू।"[1]

'उपभोग-स्थगन' शब्द की खिल्ली उडाते हुए मार्क्स ने कहा कि पूजीपति वाष्प-इजिन, रेलगाडी, खाद, इत्यादि का स्वय उपभोग न कर श्रम के उपकरण के रूप मे मजदूरो को देता है और इस तरह अपनी आवश्यकताओ को सीमित करता है। इन प्रचारको के वास्तविक स्वरूप का पर्दाफाश करते हुए मार्क्स ने व्यंग्यात्मक स्वर मे कहा कि सामान्य मानवीय दया-भाव का तकाजा है कि पूजीपति से उत्पादन के साधनो का स्वामित्व लेकर उसे इन "कष्टपूर्ण त्यागो" से मुक्त किया जाये।

१९वी सदी के अन्त मे सिनियर के सिद्धान्तो को अग्रेज अर्थशास्त्री अल्फ्रेड मार्शल और अमरीकी अर्थशास्त्री टामस कार्वर ने परिष्कृत रूप मे पुनर्जीवित किया। उन लोगो ने 'उपभोग-स्थगन' शब्द के बदले 'भविनम्यता' और 'प्रतीक्षा' शब्द रखे।

इन सभी सिद्धान्तो का एकमात्र उद्देश्य पूजीवाद और पूजीवादी शोषण को न्यायोचित सिद्ध करना है। किन्तु वास्तविकता यह है कि पूजी सचय और सचय की सीमा पूजीपति के 'उपभोग-स्थगन' पर नही, जैसा कि पूजीपति सिद्धान्त-वेत्ता सोचते है, बल्कि मजदूर वर्ग के शोषण पर निर्भर है। उदाहरण के लिए, ८,००० डालर की अचल पूजी और २,००० डालर की चल पूजी लें। अगर अधिशेष मूल्य की दर १०० प्रतिशत मानें तो २,००० डालर के बराबर अधिशेष

१. कार्ल मार्क्स, "पूंजी", खंड १, पृष्ठ ५९९।

मूल्य प्राप्त होगा। अगर अधिशेष मूल्य की दर २०० प्रतिशत हो तो ४,००० डालर के बराबर अधिशेष मूल्य मिलेगा। निष्कर्ष यह निकला कि शोषण की दर जितनी ही ऊंची होगी, उतना ही अधिक अधिशेष मूल्य प्राप्त होगा और उतना ही अधिक पूंजी-संचय होगा। कार्य-दिवस को बड़ा करना, श्रम की तीव्रता को बढ़ाना, मजूरी को श्रम-शक्ति के मूल्य से भी कम करना, इत्यादि तरीकों से श्रम-शक्ति के शोषण की मात्रा बढ़ायी जाती है।

श्रम की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई उत्पादकता पूंजी संचय की गति को तेज करती है। इसके परिणामस्वरूप वस्तुएं सस्ती हो जाती हैं और पूंजीपति के लिए यह सम्भव हो जाता है कि वह (क) श्रम-शक्ति के मूल्य को कम कर सके, जिसका मतलब यह हुआ कि चल पूंजी की समान मात्रा से जीवित श्रम की एक बड़ी मात्रा को काम मे लगाया जा सकता है, जिससे अधिक उत्पादन और फल-स्वरूप अधिक अधिशेष मूल्य उत्पन्न हो सकता है, (ख) विस्तारित उत्पादन के लिए अधिशेष मूल्य के आवश्यक भाग को बिना घटाये अपने निजी उपभोग को बढ़ा सके और (ग) पूंजी के रूप मे इस्तेमाल किये जाने वाले अधिशेष मूल्य को बिना बढ़ाये सस्ती मशीनो के प्रयोग से उत्पादन को तेजी से बढ़ा सके।

पूंजी-संचय की मात्रा लगायी गयी पूंजी के आकार से भी प्रभावित होती है। अगर अचल और चल पूंजी के बीच पूंजी के विभाजन का अनुपात अपरिवर्तित रहे, तो पूंजी की मात्रा जितनी ही अधिक होगी, चल पूंजी का आकार उतना ही बड़ा होगा। अतः अन्य स्थितियो के अपरिवर्तित रहने पर पूंजी संचय का आकार विनियुक्त प्रारम्भिक पूंजी के आकार का प्रत्यक्ष रूप से समानुपाती होता है।

ये बुनियादी तत्व ही पूंजी-संचय के आकार को निश्चित करते हैं।

सवाल उठता है कि पूंजी-संचय किस प्रकार मजदूर वर्ग की स्थिति को प्रभावित करता है? इस प्रश्न पर विचार करने से पहले जरूरी है कि हम पूंजी का सांगठनिक संयोजन सम्बन्धी मार्क्स के सिद्धान्त के सम्बन्ध मे थोड़ी जानकारी हासिल करें।

पूंजी का सांगठनिक संयोजन

मार्क्स ने अधिशेष मूल्य के सिद्धान्त द्वारा पूंजी के अचल और चल पूंजी के रूप में विभाजन को स्पष्ट कर अधिशेष मूल्य के वास्तविक स्रोत को सामने रखा। बाद मे मार्क्स ने इसमें पूंजी के सांगठनिक संयोजन के सिद्धान्त को भी शामिल कर लिया।

पूंजी के संयोजन के दो पहलू हैं: प्राकृतिक सार (पदार्थ) और मूल्य के अनुसार।

मूल्य के अनुसार पूंजी का संयोजन अचल एवं चल पूंजी के विभाजन के अनुपात पर निर्भर है।

उत्पादन की प्रक्रिया में कार्य करने वाली पूंजी उसके भौतिक रूप की दृष्टि से उत्पादन के साधनों और श्रम-शक्ति के बीच विभाजित होती है। उत्पादन के प्रयुक्त साधनों की मात्रा और उनके संचालन के लिए आवश्यक श्रम की मात्रा के पारस्परिक सम्बंध से निर्धारित पूंजी की संरचना को पूंजी का तकनीकी संयोजन कहते हैं। यह सम्बंध उद्यम विशेष के तकनीकी साज-सामान पर निर्भर है।

पूंजी का मूल्य की दृष्टि से संयोजन और उसका तकनीकी संयोजन दोनों घनिष्ठ रूप से एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। सामान्यतया पूंजी के तकनीकी संयोजन में परिवर्तन होने से मूल्य की दृष्टि से संयोजन में भी परिवर्तन आता है। जिस हद तक अचल और चल पूंजी का पारस्परिक सम्बंध (यानी मूल्य की दृष्टि से पूंजी का संयोजन) पूंजी के तकनीकी संयोजन से निर्धारित होता है और उसके परिवर्तन को प्रदर्शित करता है, मार्क्स ने इसे **पूंजी का सांगठनिक संयोजन** कहा है।

अतः पूंजी के सांगठनिक संयोजन का मतलब अचल और चल पूंजी का आपसी सम्बंध है। उदाहरण के लिए, अगर अचल पूंजी ८०० डालर और चल पूंजी २०० डालर हो, तो सांगठनिक संयोजन ४ १ होगा। मूल्य की दृष्टि से पूंजी के संयोजन को सांगठनिक संयोजन का एकदम पर्यायवाची नहीं समझ लेना चाहिए। उत्पादन के साधनों और श्रम-शक्ति की बाजार कीमतों में उतार-चढाव के फलस्वरूप मूल्य की दृष्टि से पूंजी के संयोजन में निरन्तर परिवर्तन होता है। किन्तु पूंजी के सांगठनिक संयोजन में परिवर्तन पूंजी की तकनीकी संरचना में आने वाले परिवर्तन से प्रभावित होने पर ही होता है।

पूंजीवाद के विकास और पूंजी के बढ़ते हुए संचय के साथ पूंजी के सांगठनिक संयोजन में निरन्तर वृद्धि होती है। जैसे, अमरीका के प्रोसेसिंग उद्योगों में सांगठनिक संयोजन १८८९ में ४.४ : १, १९३९ में ६ · १ और १९५५ में ८ : १ था।

सांगठनिक संयोजन में वृद्धि का मतलब है कि उत्पादन के विकास के साथ कच्चे माल, मशीन, औजार और अन्य साज-सामान की मात्रा में उत्पादन के लिए प्रयुक्त श्रम-शक्ति की मात्रा की अपेक्षा अधिक तेजी से वृद्धि होती है। मान लें कि प्रारम्भ में पूंजी का सांगठनिक संयोजन १ : १ था और फिर बढकर क्रमशः, २ : १, ३ : १, ४ : १ और ५ : १ हो गया। इसका मतलब है कि सम्पूर्ण पूंजी में चल भाग का हिस्सा १/२ से घटकर क्रमशः १/३, १/४, १/५ और १/६ हो गया। चूंकि श्रम की मांग सम्पूर्ण पूंजी पर नहीं, अपितु उसके चल भाग पर

निर्भर है, इसलिए चल पूंजी की मात्रा में कटौती होने का मतलब है कि जिस गति से श्रमिक काम पर लगाये जाते हैं, वह गति उत्तरोत्तर धीमी होती जाती है और पूजी सचय की दर से पीछे छूटती जाती है।

प्रसका परिणाम यह होता है कि मजदूरो की उत्तरोत्तर बढती हुई संख्या को काम नही मिल पाता। मजदूर वर्ग का एक हिस्सा पूजीवादी सचय की जरूरतों की दृष्टि से अनावश्यक हो जाना है और एक तथाकथित "फालतू जन-समूह" या सापेक्ष फालतू जन-समूह बेरोजगार हो जाता है।

स्थिर सापेक्ष फालतू जन-समूह का अस्तित्व जनसंख्या के पूंजीवादी नियम की अभिव्यक्ति है। इस नियम को मार्क्स ने ढूढ़ निकाला। इस नियम का सार यह है कि अधिशेष मूल्य की जितनी ही अधिक सृष्टि होगी, पूजी-सचय और पूजी का सांगठनिक सयोजन उतना ही अधिक होगा, किन्तु उत्पादन की प्रक्रिया मे लगी श्रम-शक्ति की मात्रा उतनी ही कम होगी।

औद्योगिक रिजर्व फौज और उसके रूप

पूजीवादी देशों में उत्पादन की प्रक्रिया से निकाले गये श्रमिको से रोजगार-विहीनों की एक फौज बनती है।

औद्योगिक रिजर्व फौज के निर्माण का मुख्य कारण पूंजी के सांगठनिक सयोजन मे वृद्धि है। इसके अतिरिक्त अन्य तत्व भी हैं जो बेरोजगारी की वृद्धि को तीव्र कर देते है। ये अन्य तत्व हैं : (क) **काम के लम्बे घंटे और श्रम की बढ़ी हुई तीव्रता।** बेरोजगारों की फौज की उपस्थिति का फायदा उठाकर पूजीपति रोजगार पाये हुए प्रत्येक मजदूर को दो या तीन मजदूरों के बराबर काम करने के लिए वाध्य करते हैं। फलस्वरूप औद्योगिक रिजर्व फौज का आकार भी बढता है। (ख) **औरतों और बालकों के श्रम का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल।** नवीन तकनीकी क्रियाओं और श्रम-सक्रियाओ के सरलीकरण के कारण कम मजूरी पर औरतो और अल्प-वयस्को को उत्पादन मे लगाया जाना सम्भव हो जाता है। इससे काम पर लगे बहुतेरे वयस्क मर्द मजदूर बेरोजगार हो जाते हैं। (ग) **छोटे उत्पादकों की बर्बादी।** पूजी-सचय के बढ़ने के साथ यह प्रक्रिया भी तीव्र होती जाती है। किसानों और दस्तकारों को उत्पादन छोड़कर बेरोजगारो की फौज मे भर्ती होने के लिए मजबूर होना पडता है।

काम पर लगे मजदूरो को सदा भयभीत और आतंकित रखने के लिए आवश्यक है कि पूजीवाद मे औद्योगिक मजदूरो की रिजर्व फौज बनी रहे। पूजीपति बरखास्तगी का भय दिखाकर मजूरी कम करने में सफल हो जाते हैं और श्रम की तीव्रता को भी बढ़ा देते हैं। इस तरह मजदूर वर्ग का अधिकाधिक शोषण होता है

सकता। अतः पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों के सामने बेरोजगारी के उद्भव और अस्तित्व की व्याख्या करने की समस्या मौजूद है।

माल्थस का अमानवीय "सिद्धान्त"

बहुसंख्यक पूंजीवादी अर्थशास्त्री बेरोजगारी और गरीबी को शाश्वत प्राकृतिक नियमों का फल मानते हैं। इन अर्थशास्त्रियों में १७९८ में सबसे अधिक प्रतिक्रियावादी सिद्धान्त प्रतिपादित करने वाला अंग्रेज पादरी माल्थस था।

माल्थस ने कहा कि मानव-समाज के प्रारम्भ से ही जनसंख्या गुणोत्तर श्रेणी (१, २, ४, ८, इत्यादि) में बढ़ रही है, जबकि जीवन-यापन के साधन, प्राकृतिक साधनों की सीमितता के कारण समानान्तर श्रेणी (१, २, ३, ४, इत्यादि) में बढ़ रहे हैं। माल्थस के अनुसार संसार में लोगों का एक विशाल जन-समूह "बेकार" है। ये बेकार लोग न तो रोजगार पा सकते हैं और न भोजन ही। माल्थस का यह निष्कर्ष झूठी सांख्यिकीय गणनाओं पर आधारित था।

माल्थस के "सिद्धान्त" के बेतुकेपन के बावजूद पूंजीवाद ने उसका खुले हृदय से स्वागत किया, क्योंकि उसने पूंजीवाद की सभी बुराइयों को न्यायोचित बतलाया था। कहा गया कि मजदूर वर्ग की जनसंख्या में निरपेक्ष रूप से बड़ी तेज़ वृद्धि के कारण ही बेरोजगारी होती है। माल्थस ने बतलाया कि भोजन करने वालों की संख्या में निरपेक्ष रूप से वृद्धि होती है, लेकिन जीवन निर्वाह के साधनों में उसी अनुपात में वृद्धि नहीं होती। परिणामस्वरूप बेरोजगारी, गरीबी आदि का जन[illegible] होता है। पूंजीवाद को खत्म करके सर्वहारा वर्ग अपने आपको बेरोजगारी, गरी[illegible] और भुखमरी से मुक्त नहीं कर सकता। माल्थस का नुस्खा है कि सर्वहारा वर्ग[illegible] सदस्य शादी-ब्याह नहीं करें और कृत्रिम तरीकों से जन्म-दर कम करें। यही [illegible] माल्थस ने युद्ध और महामारी जैसी विपत्तियों को मानवजाति के लिए ईश्वर की कृपादृष्टि माना, क्योंकि इनके द्वारा मानवजाति "फालतू" जनसंख्या से मुक्ति पा लेती है और इस तरह जनसंख्या जीवन-निर्वाह के उपलब्ध साधनों के अनुकूल हो जाती है।

सब देशों के प्रगतिशील लोग माल्थस के "सिद्धान्त" के खिलाफ जोरदार रूप से डट गये। इस अमानवीय विचारधारा के सक्रिय विरोधियों में रूसी जनवादी क्रान्तिकारी चेरनीशेव्स्की (१८२८-१८८९) और पिसारेव (१८४०-१८६८) के नाम उल्लेखनीय हैं।

मार्क्स ने "पूंजी-संचय" के अपने सिद्धान्त में माल्थस के गलत विचारों की काफी धज्जियां उड़ायी। किन्तु अब भी पूंजीवादी विश्व में इस सिद्धान्त की वकालत की जाती है। अमरीका में यह सिद्धान्त विशेषकर प्रचलित है। अमरीक[illegible]

में प्रकाशित विलियम वोग्ट की पुस्तक रोड टू सरवाइवल में कहा गया है कि पृथ्वी में ५०-६० करोड लोगो से अधिक के पालन-पोषण की क्षमता नही है। बाकी जनसख्या फालतू है और उससे मुक्ति पाना जरूरी है। रावर्ट कुक लिखित एक अन्य किताब ह्यूमन फर्टिलिटी : दी माडर्न डायलेमा मे जनसख्या की वृद्धि को मानवजाति के अस्तित्व के लिए भयानक खतरे के रूप मे दिखलाया गया है।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सस्थापको ने वैज्ञानिक ढग से पूजीवाद के अन्तर्गत बेरोजगारी, गरीबी और भुखमरी के वास्तविक कारणो को सामने रखा। उत्पादन के पूजीवादी ढग और उसके साथ पूजीवादी सचय की तीव्र आकांक्षा के फलस्वरूप श्रमिक जन-समूह मे बेरोजगारी और भुखमरी का जन्म होता है। इन बुराइयो से मुक्ति पाने का एकमात्र मार्ग है क्रान्ति द्वारा पूजीवाद का विनाश। समाजवादी देशो का विकास इसका स्पष्ट सबूत है।

प्राकृतिक नियमों का परिपालन न तो मजदूर वर्ग की बिगडती हुई स्थिति के लिए जिम्मेदार है न बेरोजगारी में वृद्धि के लिए ही। इनकी व्याख्या पूजीवादी उत्पादन के नियमो मे की गयी है। मार्क्स ने लिखा :

पूजीवादी संचय के सामान्य नियम का सार

"जितना ही अधिक सामाजिक धन, कार्यकारी पूजी, उसके विकास की सीमा और उसकी शक्ति तथा परिणामस्वरूप सर्वहारा वर्ग की निरपेक्ष संख्या एव श्रम की उत्पादकता होगी, औद्योगिक रिजर्व फौज भी उतनी ही बडी होगी...। लेकिन यह रिजर्व फौज सक्रिय श्रमिक फौज की अपेक्षा जितनी ही बडी होगी, फालतू जनसख्या भी उतनी ही अधिक होगी। फालतू जन-संख्या का उत्पीडन उसके द्वारा लगाये गये श्रम के प्रत्यक्ष अनुपात मे होगा। अन्त में, सर्वहारा वर्ग का अन्तिम स्तर[1] और औद्योगिक फौज का आकार जितना ही बडा होगा, अधिकृत दरिद्रता भी उतनी ही अधिक होगी। यही पूजीवादी सचय का निरपेक्ष व्यापक नियम है।"[2]

पूजीवादी सचय के सामान्य नियम के अनुसार पूजी-सचय एक ओर (पूजीपति वर्ग के हाथो मे) धन की वृद्धि को निर्धारित करता है और दूसरी ओर मजदूर वर्ग की बेरोजगारी और असुरक्षा की वृद्धि के लिए जिम्मेदार है। पूजीवादी सचय का सामान्य नियम पूजीवाद के बुनियादी आर्थिक नियम—अधिशेष मूल्य के नियम—के परिचालन की मूर्त अभिव्यक्ति है। अधिशेष मूल्य की उत्तरोत्तर बढती हुई आकांक्षा के परिणामस्वरूप पूजीपति वर्ग की समृद्धि,

---

१. समाज का अन्तिम स्तर : दरिद्रताग्रस्त बेरोजगार लोग, भिखमंगे, अस्थायी श्रम या दूसरे लोगों के जूठन पर पलने वाले बेघरबार लोग।—सम्पादक

२. कार्ल मार्क्स : "पूंजी", खंड १, पृष्ठ ६४४।

विलासिता, परजीविता और अपव्यय में वृद्धि होती है। पूंजीपति वर्ग द्वारा धन का जितना ही अधिक सचय होगा, बेरोजगारों की फौज और रोजगार प्राप्त मजदूरों के शोषण की मात्रा उतनी ही अधिक और उनकी स्थिति उतनी ही खराब होगी। अतः पूजी-सचय और सर्वहारा वर्ग की दु.स्थिति—ये दोनो पूजीवादी समाज के अभिन्न पहलू हैं।

सर्वहारा वर्ग की स्थिति मे सापेक्ष और निरपेक्ष गिरावट

पूजीवाद के विकास के साथ सर्वहारा वर्ग की सापेक्ष कगाली की प्रक्रिया भी चलती है। तात्पर्य यह हुआ कि सामाजिक धन ज्यो-ज्यो बढ़ता है, समाज मे पैदा होने वाली नयी मूल्य-राशि (राष्ट्रीय आय) मे श्रमिकों का हिस्सा उतना ही कम होता जाता है और पूजीपतियों का हिस्सा बढता जाता है।

अमरीका, ब्रिटेन, फास आदि विकसित पूजीवादी देश मजदूर वर्ग की उत्तरोत्तर बढती हुई सापेक्ष कगाली के स्पष्ट उदाहरण हैं। अमरीकी मजदूरों को वहा की राष्ट्रीय आय का १८६० मे ५६ प्रतिशत तथा १६२३ में ५४ प्रतिशत मिला और आज उनको वहा की राष्ट्रीय आय का ५० प्रतिशत से भी कम मिलता है।

राष्ट्रीय आय मे मजदूर वर्ग का हिस्सा तो घट रहा है, लेकिन पूजीपतिय का हिस्सा धीरे-धीरे बढता जा रहा है। "अमरीका मे पूजीपति वर्गों को राष्ट्री आय का आधा से भी अधिक प्राप्त होता है, यद्यपि उनका हिस्सा देश की कु जनसख्या का सिर्फ दसवा भाग है।"[1]

मजदूर वर्ग की सापेक्ष कगाली मजूरी और मुनाफे के अनुपात मे मज वर्ग के प्रतिकूल, किन्तु पूजीपति वर्ग के हितों के अनुकूल परिवर्तनो से स्पष्ट है

पूजीवादी सचय का आम नियम मजदूर वर्ग की आर्थिक स्थिति मे निरपे गिरावट लाता है और निरपेक्ष कगाली की प्रवृत्ति को जन्म देता है।

पूजीवाद के अन्तर्गत मजदूर इतने निराशावादी हो जाते हैं कि उन्हें भविष्य पर कोई विश्वास ही नही रह जाता। पूजी-सचय मजदूर की आगे आने वाली पीढी को भी भरण-पोषण के लिए मजूरी पर निर्भर रहने के लिए बाध्य करता है। आगे आने वाली पीढी को भी श्रम-बाजार मे आने को मजबूर होन पडता है। इस तरह वह शोषण की वस्तु बनती है। एक तरफ मजदूर वर्ग के ए बडे हिस्से को अत्यन्त कठिन परिश्रम करने और राक्षसी शोषण कराने के लि

१. "सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की असाधारण २१वीं कांग्रेस की दस्तावे मास्को, १६५६, पृष्ठ २६।

मजदूर होना पड़ता है, जबकि दूसरी ओर बेरोजगारों की एक बड़ी फौज खड़ी हो जाती है।

निरपेक्ष कंगाली का तात्पर्य मजदूरों के जीवन-निर्वाह और कार्य करने की दिनोंदिन बदतर होने वाली स्थितियों में है। मजदूरों की वास्तविक मजूरी दिनोंदिन कम होती जाती है, लेकिन जीवन-निर्वाह का खर्च बढ़ता जाता है। शहरों और देहातों में बेरोजगारों की फौज का आकार निरन्तर बढ़ा होता जाता है। यही नहीं, श्रम की तीव्रता बढ़ती है, आवास-स्थिति खराब होती है, इत्यादि। नीचे हम इनमें से कुछ पर विचार करेंगे।

पूंजीवादी देशों में जीवन-निर्वाह का खर्च दिन-प्रति-दिन बढ़ता जा रहा है। उदाहरण के रूप में अमरीका को ही ले लें। अगर वहा के १९४८-४९ के जीवन-निर्वाह के खर्च का सूचकांक १०० मानें तो १९५० में यह सूचकांक १०३, १९५५ में ११५ और १९६० में १२६ ४ था। इस तरह १९४७ और १९६१ के बीच अमरीका में जीवन-निर्वाह के खर्च में ७६ ४ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

अगर ब्रिटेन के जीवन-निर्वाह के खर्च का सूचकांक १९३८ के लिए १०० मानें, तो यह सूचकांक १९५० में १८५ और १९५५ में २४६ था। अत ब्रिटेन में जीवन-निर्वाह का खर्च १९५५ में १९३८ की अपेक्षा ढाई गुना अधिक था। जीवन-निर्वाह का खर्च १९५५ के बाद लगातार बढ़ता जा रहा है। अगर १९५६ के लिए जीवन-निर्वाह के खर्च का सूचकांक १०० मानें, तो १९५८ में यह सूचकांक १०९ और १९६० में ११० ७ था।

पूंजीवाद के अन्तर्गत मजदूर वर्ग की निरपेक्ष कंगाली की प्रवृत्ति के लिए बेरोजगारी की वृद्धि बहुत हद तक जिम्मेदार है। पूंजीवादी देशों में आम बेरोजगारी स्थायी और दीर्घकालिक हो गयी है। पूर्णतया बेरोजगार व्यक्तियों के अतिरिक्त लाखों लोग अर्द्ध-बेरोजगार हैं, जिन्हें कुछ हफ्तों या कुछ दिनों के लिए ही काम मिल पाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमरीका में पूर्णतया बेरोजगार लोगों की वार्षिक संख्या २०-३० लाख थी, जो १९६२ में ४० लाख पर पहुंच गयी। १९६४ में इटली में बेरोजगारों की संख्या १२ लाख थी।

बेरोजगारी सिर्फ रोजगार-विहीन लोगों के लिए ही दरिद्रता और उत्पीड़न नहीं लाती, बल्कि सम्पूर्ण मजदूर वर्ग की स्थिति खराब हो जाती है। बेरोजगारी का भय दिखाकर पूंजीपति मजूरी घटाने की कोशिशें करते हैं।

पूंजीवादी उद्यमों में श्रम की तीव्रता में निरन्तर वृद्धि भी मजदूर वर्ग के जीवन-निर्वाह के स्तर की गिरावट का सूचक है। समुचित सुरक्षा व्यवस्था के अभाव और श्रम की अत्यन्त तीव्रता के परिणामस्वरूप बहुधा औद्योगिक दुर्घटनाएं होती हैं। अमरीका का ही उदाहरण लें। वहा हर तीन मिनट पर एक मजदूर या

तो मर जाता है या अपग हो जाता है। हर ग्यारह सेकेंड मे किसी एक मजदूर को कोई चोट लगती है। अमरीका के ब्यूरो आफ लेबर स्टैटिस्टिक्स के आंकडों के अनुसार १९५० और १९६० के बीच २ करोड २० लाख अमरीकी मजदूर दुर्घटनाओ के शिकार हुए। इस तरह प्रति वर्ष औसतन २० लाख मजदूर दुर्घटनाओं की चपेट मे आये।

निरपेक्ष कंगाली की प्रवृत्ति पर विचार करते समय उपनिवेशो और पराधीन देशों के मजदूरों की स्थिति पर भी ध्यान देना होगा। इन देशों को विरासत के रूप मे साम्राज्यवाद से गरीबी और ऊची मृत्यु-दर मिली है। समस्त पूजीवादी देशों मे साम्राज्यवाद के चलते कृषक और दस्तकार समुदाय तबाह और कगाल हो गया है।

सक्षेप मे, उपर्युक्त तत्व पूजीवादी देशो के मजदूर वर्ग की निरपेक्ष कगाली के लिए जिम्मेदार हैं।

निरपेक्ष कगाली का मतलब मजदूरों के जीवन-निर्वाह के स्तर में वर्ष-प्रति-वर्ष या दिन-प्रति-दिन लगातार व्यापक गिरावट नही है। यह मुमकिन है कि कुछ देशों में मजदूरों के जीवन-निर्वाह का स्तर ऊपर उठे, किन्तु अन्य पूजीवादी देशों मे मजदूरो के जीवन-निर्वाह के स्तर में गिरावट आये। पूंजीवादी देशो में मजदूर वर्ग की स्थिति पर विचार करते समय हमे यह याद रखना चाहिए कि मजदूर वर्ग भौतिक सुख का स्तर पूजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग की वर्ग-शक्तियो के संतु[illegible] पर निर्भर होता है। पूजीवाद के प्रारम्भ से ही मजदूर अपने जीवन-निर्वाह दशा को सुधारने के लिए दृढ सघर्ष करते आ रहे हैं। उनका सघर्ष उनके जी[illegible] निर्वाह के स्तर में गिरावट के विरुद्ध एक महत्वपूर्ण तत्व है।

पूजीवादी जगत मे हर साल हड़तालें होती हैं। अमरीका में हड़ता[illegible] आम घटना बन गयी है। १९३१-४० के दौरान अमरीका में २२,०२१ [illegible] हुईं। १९४६-५५ मे हडतालो की सख्या ४३,१५९ रही। १९४६-५५ के [illegible] हडतालियों की सख्या २ करोड ६५ लाख थी, जबकि १९३१-४० मे सिर्फ [illegible] लोगो ने हडतालो में भाग लिया। १९३१-४० मे १४ करोड़ ५० ला[illegible] दिवस नष्ट हुए, किन्तु १९४६-५५ मे ४३ करोड़ ४० लाख कार्य-[illegible] बर्बादी हुई। १९६२ में वहां ३,५०० से भी अधिक हड़तालें हुई, जिनमें मजदूरो ने भाग लिया। हडतालें निरन्तर अधिकाधिक दीर्घकालिक और [illegible] जा रही हैं।

समस्त पूजीवादी दुनिया में १९६० और १९६४ के बीच हडताली मजदूरों और अन्य मेहनतकशों की सख्या ५ करोड ४० लाख से बढ़कर ६ करोड़ हो गयी। मजदूर वर्ग की राजनीतिक गतिविधियां भी निरन्तर बढी हैं। १९५८ मे

करीब ४३ प्रतिशत कुल हड़तालियों ने राजनीतिक हड़तालों में भी भाग लिया
१९६८ में तीन-चौथाई हड़तालियों ने राजनीतिक हड़तालों में हिस्सा लिया।

पूंजीवादी और दक्षिणपंथी समाजवादी अर्थशास्त्री पूंजीवाद के स्वरूप क
आकर्षक बनाने की कोशिश कर रहे हैं। वे पूंजीवाद के अन्तर्गत मजदूर वर्ग क
सापेक्ष और निरपेक्ष दोनों दृष्टियों से बिगड़ती हुई स्थिति से सम्बंधित मार्क्सवादी
लेनिनवादी सिद्धान्त का खंडन करने के लिए नये सिद्धान्त प्रतिपादित करने
प्रयत्न कर रहे हैं।

हाल के वर्षों में "जन-पूंजीवाद" नामक सबसे झूठे सिद्धान्त का प्रचा
किया गया है। श्रमजीवी जन-समूह को बरगलाने के लिए साम्राज्यवाद की ओर
यह सिद्धान्त रखा गया है। जरा अमरीका पर ही एक निगाह डालें। वहां ए
विशेष सरकारी एजेंसी को इस सिद्धान्त के प्रचार का कार्य सौंपा गया है। कह
जाता है कि एक अमरीकी अधिकारी ने "जन-पूंजीवाद" शब्द के अस्तित्व क
इसलिए बनाये रखने पर जोर दिया है कि आधुनिक अमरीकी पूंजीवाद और आ
से १०० वर्ष पूर्व मार्क्स द्वारा वर्णित यूरोपीय पूंजीवाद का अन्तर स्पष्ट किया ज
सके।

इस सिद्धान्त के वकीलों का दावा है कि पूंजीवाद के अन्तर्गत मजूरी इतन
तेजी से बढ़ती है कि मजदूर और पूंजीपति का पारस्परिक वर्ग-विभेद धुंधला प
जाता है। मजदूर अपनी मजूरी के पैसों से गाड़ी, मकान और शेयर खरीदते है
बचत बैंकों में पैसा जमा करते हैं और उन्हें कई उद्यमों से मुनाफा भी प्राप्त होत
है। पूंजीवाद के इन समर्थकों का कहना है कि "जन-पूंजीवाद" के अन्तर्गत लोगं
की "आय में क्रान्तिकारी परिवर्तन" होते हैं। परिणामस्वरूप धनी और गरीब
व्यक्तियों के जीवन-निर्वाह के स्तर बहुत कुछ एक हो जाते हैं तथा समाज में भौतिक
धन का वितरण समान हो जाता है। अतः वर्ग विरोध के बदले वर्ग समानता अ
जाती है। चूंकि प्रत्येक अध्यवसायी और मितव्ययी मजदूर "जन-पूंजीवाद" में
पूंजीपति हो सकता है, इसलिए वर्ग संघर्ष का मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त
अनावश्यक है।

लेकिन ऐसे अकाट्य तथ्य उपलब्ध है, जिनके आधार पर "जन-पूंजीवाद"
के सिद्धान्त को गलत बतलाया जा सकता है। मजदूरों की हड़तालें और संघर्ष में
वृद्धि इस सिद्धान्त की बखिया उधेड़ देती हैं। "वर्ग शान्ति", "वर्ग समन्वय" के
वकील असाध्य को सिद्ध करने की मूर्खतापूर्ण गलती कर रहे हैं। उनका मुख्य उद्देश्य
है मजदूर वर्ग को उसके बुनियादी वर्ग-हितों के संघर्ष से अलग कर देना, उसे
निहत्था बना देना और उसके दिमाग में यह भ्रम पैदा कर देना कि बिना क्रान्ति-
कारी संघर्ष किये पूंजीवाद की बुराइयों का उन्मूलन सम्भव है।

पूजी-सचय के पूर्ण विश्लेषण के बाद मार्क्स ने पूंजीवादी सचय की
ऐतिहासिक प्रवृत्ति को दिखलाया। पूजीवादी सम्पत्ति का जन्म पहले-पहल छो
वस्तु उत्पादकों की निजी सम्पत्ति के रूप में हुआ

पूजीवादी संचय की ऐतिहासिक प्रवृत्ति

सामन्तवाद के दौरान छोटे पैमाने का वस्तु उत्पा
विघटित होने लगा और उससे पूंजीवाद के तत्व उ
लेने लगे। किन्तु विघटन की यह प्रक्रिया बहुत ध
थी। प्रारम्भिक पूंजी-सचय के दौरान छोटे वस्तु उत्पादकों के बलात विनाश ने इस
प्रक्रिया को तेज कर दिया। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप पूजीवादी सम्पत्ति का
बोलबाला हो गया।

इस तरह उत्पादन के पूजीवादी सम्बध आये। उनका आधार उत्पादन के
साधनो पर बडे पैमाने का निजी स्वामित्व था। पूजीवादी उत्पादन सम्बधों ने
उत्पादक शक्तियो के तेज विकास को प्रोत्साहित किया। तकनीकी प्रगति बडी तेजी
से हुई और सैकडो-हजारो मजदूरो को एक स्थल पर इकट्ठा किया गया। इस
प्रकार उत्पादन ने एक सामाजिक चरित्र ग्रहण किया।

पूजीवाद के आर्थिक नियमो की सक्रिया ने उत्पादन के सामाजिक चरित्र
को और पक्का कर दिया। पूजीवाद के बुनियादी आर्थिक नियम—अधिशेष मूल्य के
नियम—के फलस्वरूप मजदूर वर्ग का शोषण उत्तरोत्तर बढता जाता है और पूजी-
सचय भी तेजी से होता है। पूजीवादी सचय की प्रक्रिया मे पूजी का सान्द्रण और केन्द्री-
करण भी बढता है। इन सबके परिणामस्वरूप उत्पादन बडे पैमाने पर होने लगता है।

उत्पादन का समाजीकरण होने के साथ-साथ पूजीपतियो की सम्पदा बढ़ती
जाती है, किन्तु सामाजिक धन की अधिकाधिक मात्रा पूजीपति वर्ग के अधिकार मे
आ जाती है। पूजीपति वर्ग लाखो मजदूरो की मेहनत की कमाई हड़पने मे समर्थ
हो जाता है।

पूजीवाद के विकास के साथ ही उत्पादन की प्रक्रिया के सामाजिक चरित्र
और पूजीवादी स्वामित्व के बीच विरोध पैदा हो जाता है। उत्पादक शक्तियो के
अग्रिम विकास मे निजी स्वामित्व बाधक हो जाता है।

पूजी द्वारा श्रम के समाजीकरण के कारण पूजीवाद के विनाश की वस्तु-
पूर्वस्थितियां तैयार हो जाती है। साथ ही पूजीवाद के आन्तरिक नियमों के
चालन के कारण पूजीवाद के पतन की आत्मगत पूर्वस्थितियां पैदा होती है। पू
और उत्पादन के पैमाने में वृद्धि के साथ मजदूर वर्ग की सख्यात्मक शक्ति भी ब
है। पूजीवादी उत्पादन यत्र के जरिये मजदूर अपने आपको एकजुट और स
कर उस दिन की तैयारी करते है, जिस दिन उन्हें समाजवादी समाज मे उ
की अवस्था बननी होगी। पूजीवादी सचय की प्रक्रिया से अनिवार्यतः ब

मजदूर वर्ग की स्थिति बदतर होती है और उसका संघर्ष जोर पकड़ता है। मज़
वर्ग यह बात अच्छी तरह समझ जाता है कि गरीबी, भुखमरी और शोषण से छु
कारा पाने का एकमात्र रास्ता क्रान्ति के द्वारा पूंजीवाद की समाप्ति है।

अतः पूंजीवाद स्वयं अपने विनाश की वस्तुगत और आत्मगत स्थिति
तैयार करता है। पूंजीवादी निजी स्वामित्व के खात्मे, पूंजीवाद के पतन अ
समाजवाद की विजय के लिए समस्त आवश्यक स्थितियों को तैयार कर दे
पूंजीवादी संचय की ऐतिहासिक प्रवृत्ति की विशेषता है।

सम्पूर्ण ऐतिहासिक विकास स्पष्ट रूप से पूंजीवाद के अवश्यम्भावी प
को इंगित करता है। १९१७ में रूसी मजदूर वर्ग ने गरीब किसानों के घनि
सहयोग में लेनिन के नेतृत्व और कम्युनिस्ट पार्टी की देखरेख में अक्तूबर क्रा
सम्पन्न की।

क्रान्तिकारी परिवर्तनों के दौरान सोवियत संघ के मजदूर वर्ग ने पूंजीप
वर्ग को समाप्त कर दिया। उसने उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व का उ
लन कर उसके स्थान पर सार्वजनिक स्वामित्व कायम किया। समाज के सदस्यो
बीच उत्पादन के नये सम्बंध बने। पुरुषों और स्त्रियों के बीच शोषणहीन सहयो
और पारस्परिक सहायता के सम्बंध स्थापित हुए।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अन्य कई देशों की जनता ने क्रान्तिकारी साम
जिक-आर्थिक परिवर्तनों का मार्ग पकड़ा। आज वे देश सफलतापूर्वक समाजव
का निर्माण कर रहे हैं।

अध्याय ५

अधिशेष मूल्य का मुनाफे में परिवर्तन और विभिन्न शोषक समूहों में उसका वितरण

१. पूंजी के विशिष्ट रूप

पिछले अध्यायों में हम सर्वहारा वर्ग और औद्योगिक पूजीपति वर्ग के पारस्परिक सम्बधो की चर्चा कर चुके हैं। हमने अन्य शोषक समूहों—व्यावसायिक पूजीपति वर्ग, बैंक मालिको, खेतिहर पूजीपतियो और बडे जमीदारों—के सम्बध मे उस समय कोई चर्चा नही की थी। मजदूर वर्ग के शोषण के लिए ये सब एकजुट हो जाते है और मजदूरो द्वारा उत्पन्न अधिशेष मूल्य की राशि को आपस मे बाट लेते हैं। पूजीपति वर्ग के समूह-विशेषों मे विभाजन का कारण हमे पूजीवादी उत्पादन की वास्तविक स्थितियो मे ढूढना चाहिए।

पूजी का चक्रीय प्रचलन

पूजी सदा गतिशील रहती है। पूजी की गति के रुकने या मन्द होने पर पूजीपति को प्राप्त होने वाले अधिशेष मूल्य की राशि खत्म हो जाती है या कम हो जाती है। गतिशील पूजी कई दौरो से गुजरती है और विभिन्न रूप धारण करती है। पहले दौर मे पूजी मुद्रा के रूप मे प्रचलन-क्षेत्र मे कार्य करती है। इस मुद्रा-राशि से पूजीपति उत्पादन के साधन और श्रम-शक्ति खरीदता है। पूजी के प्रचलन को इस दौर मे हम निम्नलिखित सूत्र से दिखला सकते है :

$$म —— व < \begin{matrix} श्र. श. \\ उ. सा. \end{matrix}$$

(म = मुद्रा, व = वस्तुए, श्र. श. = श्रम शक्ति, उ सा. = उत्पादन के साधन)। इस तरह पहले दौर मे पूजी मुद्रा का रूप छोड़कर उत्पादक पूंजी का रूप ग्रहण करती है।

दूसरे दौर में पूंजी उत्पादन के क्षेत्र में कार्य करती है। यहां भाड़े के श्रम और उत्पादन के साधनों का संयोजन होता है। मजदूर अपने श्रम से अधिशेष मूल्य सहित नये मूल्य वाली नयी वस्तुओं की सृष्टि करते हैं। इस दौर में पूंजी के प्रचलन को हम यों अभिव्यक्त कर सकते हैं :

$$व < \begin{matrix} श्र \\ उ\ सा \end{matrix} \ldots उ \ldots व'$$
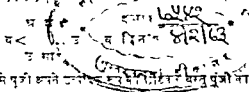
इस तरह दूसरे दौर में पूंजी अपने उत्पादक रूप में से निकलकर वस्तु पूंजी का रूप धारण करती है।

तीसरे दौर में पूंजी पुन. प्रचलन के क्षेत्र में कार्य करती है। उत्पन्न वस्तुएं इस दौर में बेची जाती हैं और वस्तु पूंजी मुद्रा पूंजी में पुन: परिवर्तित हो जाती है। इस दौर में पूंजी के प्रचलन को हम निम्नलिखित सूत्र में प्रदर्शित कर सकते हैं

$$व' — म'$$

इस तरह पूंजी अपना प्रचलन मुद्रा के रूप में प्रारम्भ करती है और अन्त में फिर मुद्रा के रूप में आ जाती है। किन्तु पूंजीपति के पास से जितनी मुद्रा-राशि प्रचलन में आ जाती है, उससे अधिक मुद्रा-राशि उसके पास आती है।

हम पूंजी के सम्पूर्ण प्रचलन को इस प्रकार दिखा सकते हैं

$$म — व < \begin{matrix} श्र \\ उ\ सा \end{matrix} \ldots उ \ldots व' — म'$$
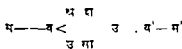
पूंजी के इस प्रचलन को पूंजी का परिपथ कहते हैं। इस परिपथ पर पूंजी क्रमश: विभिन्न रूप धारण करती है और तीन दौरों से गुजरती है।

पूंजी के परिपथ के तीन दौरों में से दो दौर प्रचलन के हैं और एक उत्पादन का। इस तरह पूंजीवादी पुनरुत्पादन प्रचलन प्रक्रिया और उत्पादन प्रक्रिया का सूत्रबद्ध रूप है। इनमें से उत्पादन प्रक्रिया का निर्णायक महत्व होता है। इसी प्रक्रिया के दौरान अधिशेष मूल्य का उत्पादन होता है।

औद्योगिक पूंजी के परिपथ के तीन दौरों के अनुकूल ही पूंजी के तीन रूप क्रमश: मुद्रा पूंजी, उत्पादक पूंजी और वस्तु पूंजी हैं। पूंजीवाद के विकास के साथ-साथ पूंजी के विभिन्न रूप एक-दूसरे से स्पष्टत: अलग हो जाते हैं। व्यावसायिक और ऋण पूंजी का अस्तित्व उत्पादन में कार्य करने वाली पूंजी से अलग हो जाता है। वे क्रमश: व्यवसाय तथा साख के क्षेत्रों में कार्य

पूंजी के विभिन्न रूपों व पूंजीपतियों के विभिन्न समूहों का बनना

करने लगती है। पूंजी के इन विभिन्न रूपों के अनुरूप ही पूंजीपति वर्ग भी
भिन्न-भिन्न समूहों—उद्योगपति, व्यवसायी और बैंक मालिक—के रूप में विभक्त
हो जाता है।

औद्योगिक पूंजीपति अधिशेष मूल्य के उत्पादन के दौरान मजदूर वर्ग का
अधिशेष श्रम हड़प लेते हैं। व्यवसायी वस्तु पूंजी को मुद्रा पूंजी के रूप में परि-
वर्तित करते हैं। ऋण देने वाले पूंजीपति उपलब्ध पूंजी को मुद्रा के रूप में एक
जगह इकट्ठा करते हैं और उसके बाद उसका वितरण करते हैं। प्रत्येक पूंजीपति
समूह को मजदूर वर्ग द्वारा उत्पन्न अधिशेष मूल्य में हिस्सा मिलता है।[1] उत्पादन के

पूंजीपतियों के अतिरिक्त भूस्वामी भी शोषक वर्ग में आते हैं। उत्पादन के
एक महत्वपूर्ण साधन "भूमि" का स्वामी होने के कारण उनका पूंजीवादी समाज में
एक विशिष्ट स्थान होता है। उन्हें अधिशेष मूल्य की कुल राशि में हिस्सा प्राप्त
होता है।

समाज की पूंजी का, जैसा कि हम देख चुके हैं, स्वतंत्र कार्यकारी पूंजी
कई रूपों, यथा औद्योगिक, व्यावसायिक और ऋण पूंजी में विभाजन हो जाने
बड़े भूस्वामियों के उपस्थित होने के कारण विभिन्न शोषक समूहों में अ
मूल्य का अधिकाधिक हिस्सा प्राप्त करने के लिए भयंकर प्रतिद्वन्द्विता होती है
पूंजीपति को मुनाफे के रूप में अधिशेष मूल्य प्राप्त होता है। औद्योगिक पू
को औद्योगिक मुनाफा, व्यवसायी को व्यावसायिक मुनाफा और बैंक मालि
ऋण पर ब्याज मिलता है। बड़े भूस्वामियों को जमीन की लगान प्राप्त हो

२. औसत मुनाफा और उत्पादन की कीमत

हर पूंजीवादी उद्यम में उत्पन्न वस्तु के मूल्य में तीन तत्व शा
हैं: १) अ. पू.—अचल पूंजी का मूल्य (म
लागत, कीमत और कारखाने के मूल्य का एक हिस्सा और कच्चा ...
मुनाफा। मुनाफे की ईंधन, इत्यादि का मूल्य), २) च. पू.—चल पूंजी का
दर मूल्य, ३) अ.—अधिशेष मूल्य।

इनमें से सिर्फ पहले दो तत्वों के लिए ही पूंजीपति को भुगतान करना
पड़ता है और भुगतान की राशि ही उसकी लागत कीमत होती है। अतः पूंजीप
की लागत कीमत अचल और चल पूंजी के रूप में व्यय की गयी राशि के मे
(अ. पू. + च. पू.) के बराबर होती है।

---

१. पूंजीपतियों के उपर्युक्त समूहों के अतिरिक्त कृषि के क्षेत्र में भी पूंजीपति
हैं। उनको अलग समूह में रखने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि औ
पूंजीपतियों से वे किसी भी अर्थ में भिन्न नहीं होते।

पूंजीपति को अपने कारखाने में निर्मित वस्तु को बेचने पर लागत कीमत के अतिरिक्त अधिशेष मूल्य भी प्राप्त होता है। व्यय की गयी या लगायी गयी पूंजी (यानी लागत कीमत) के संदर्भ में अधिशेष मूल्य द्वारा उस उद्यम विशेष की लाभ-प्रदता निश्चित होती है। कुल पूंजी के सदर्भ में अधिशेष मूल्य की राशि ही मुनाफे की राशि का रूप ले लेती है। इस प्रकार का आभास होता है कि अधिशेष मूल्य का सृजन पूंजी द्वारा हुआ है, किन्तु वास्तविकता कुछ और है। अधिशेष मूल्य का सृजन पूंजी के सिर्फ चल भाग द्वारा होता है। इसीलिए मार्क्स ने मुनाफे को अधिशेष मूल्य का परिवर्तित रूप कहा।

हर पूंजीवादी उद्यम की लाभप्रदता की माप मुनाफे की दर से होती है। अगर हम अधिशेष मूल्य और कुल पूंजी के अनुपात को प्रतिशत के रूप में अभिव्यक्त करें, तो हमें मुनाफे की दर मिलेगी। मान लें कि लगायी गयी कुल पूंजी (अ.पू + च.पू.) २,००,००० डालर (१,६०,००० अ.पू + ४०,००० च.पू.) के बराबर हो तथा उस वर्ष अधिशेष मूल्य (अ) ४०,००० डालर हो तो मुनाफे की दर होगी :

$$\text{मु द.}' = \frac{\text{अ.}}{\text{अ. पू.} + \text{च. पू}} \times १०० \% = \frac{४०,०००}{२,००,०००} \times १००\% = २०\%$$

मुनाफे की दर और अधिशेष मूल्य की दर में भेद करना आवश्यक है। हर उद्यम में मुनाफे की दर अधिशेष मूल्य की दर से सदा कम होगी। उपर्युक्त उदाहरण में अधिशेष मूल्य की दर होगी .

$$\text{अ.}' = \frac{\text{अ.}}{\text{च. पू.}} \times १०० \% = \frac{४०,०००}{४०,०००} \times १००\% = १००\%$$

मुनाफे की दर पूंजीवादी उत्पादन की प्रेरक शक्ति है। पूंजीवादी व्यवस्था में मुनाफे की दर के महत्व को १९वीं सदी के मध्य के प्रसिद्ध अंग्रेज ट्रेड यूनियन नेता और पत्रकार टी. जे डनिंग ने बहुत ही अच्छी तरह रखा है। उनके शब्दों में : "कहीं पर अगर मुनाफे की दर १० प्रतिशत हो, तो वहां निश्चित रूप से पूंजी लगायी जा सकती है, अगर मुनाफे की दर २० प्रतिशत हो, तो वहां पर पूंजी लगाने के लिए पूंजीपति उतावले हो जायेंगे, अगर दर ५० प्रतिशत हो, तो पूंजीपति ढीठ होकर विनियोग करेंगे, मुनाफे की दर १०० प्रतिशत होने पर पूंजीपति विनियोग करने के लिए इतने उतावले हो जायेंगे कि वे किसी भी मानवीय विधान की परवाह नहीं करेंगे और अगर मुनाफे की दर कहीं ३००% हो तो पूंजी लगाने के लिए पूंजीपति कोई भी जघन्य अपराध करने और खतरा मोल लेने में पीछे नहीं हटेंगे, अगर उन्हें फांसी भी लगने की नौबत आ जाये, तो भी नहीं हटेंगे।"[१]

१. कार्ल मार्क्स, "पूंजी", खंड १, पृष्ठ ७६० ।

आज के पूंजीपतियों के व्यवहार से इस विवरण की पूर्ण पुष्टि हो जाती है। अमरीकी करोड़पतियों—मारगन, राकफेलर, ड्यूपोण्ट आदि ने धन और दौलत प्राप्त करने के लिए किसी भी मानवीय अधिकार और नियम की कोई परवाह नहीं की।

मुनाफे की औसत दर और उत्पादन की कीमत का निर्धारण

पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था सब प्रकार की वस्तुओं को उत्पन्न करने वाले विभिन्न उद्यमों का सामूहिक रूप है। एक ही तरह की वस्तुओं को उत्पन्न करने वाले सब उद्यम समान स्थितियों में काम नहीं करते। आकार, तकनीकी उपकरणों के स्तर और उत्पादन के संगठन की दृष्टि से उनमें अन्तर होता है। फलस्वरूप विभिन्न उद्यमों द्वारा उत्पन्न वस्तुओं के मूल्य एक नहीं होते। उद्योग की एक शाखा के अन्तर्गत प्रतिद्वन्द्विता होने के कारण वस्तुओं की कीमतें उनके उत्पादन के लिए किसी एक उद्यम के द्वारा व्यय किये गये श्रम या वस्तुओं के अलग-अलग मूल्यों द्वारा निश्चित नहीं होती, बल्कि उनके बाजार (सामाजिक) मूल्य द्वारा निश्चित होती हैं।

वस्तुओं की कीमतों का निर्धारण उनके बाजार मूल्य द्वारा होने के कारण ऊंचे स्तर की टेक्नालाजी और श्रम-उत्पादकता वाले उद्यम बेहतर स्थिति में रह हैं। उन्हें अतिरिक्त मुनाफा या अधिलाभ प्राप्त होता है, किन्तु मुक्त प्रतिद्वन्द्वि इस स्थिति को बहुत दिनों तक नहीं चलने देती। उच्च मुनाफे की राशि की ओ सभी आकर्षित होते हैं। पूंजीपति तकनीकी सुधार करते हैं, उत्पादकता बढ़ाते और मजदूरों से अधिक मेहनत करवाते हैं। इस तरह निम्न स्तर के उद्यम उत्पन्न वस्तुओं और उन्नत उद्यमों की वस्तुओं के मूल्य बराबर हो जाते हैं। मूल्य अब बाजार या सामाजिक मूल्य बन जाता है। फलस्वरूप अब किसी भी को अधिलाभ नहीं मिलता। किन्तु पुनः कुछ उद्यमों में तकनीकी सुधार हो और उन्हें अधिलाभ प्राप्त होने लगता है।

पूंजीवादी समाज के अन्तर्गत उत्पादन की न सिर्फ एक ही शाखा के अन्दर प्रतिद्वन्द्विता रहती है, बल्कि विभिन्न शाखाओं के बीच भी प्रतिद्वन्द्विता रहती है। उद्योग की विभिन्न शाखाओं में पूंजी लगाने वाले पूंजीपतियों में पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता रहती है। इस प्रकार की प्रतिद्वन्द्विता के फलस्वरूप उद्योग की विभिन्न शाखाओं में मुनाफे की दर समान रहती है। पूंजी की समान मात्रा पर हर शाखा में मुनाफे की समान राशि प्राप्त होती है।

अब हम देखें कि पूंजीपतियों को मुनाफे की समान दर कैसे प्राप्त होती है। मान लें कि समाज में उद्योग की तीन शाखाएं—चर्म उद्योग, वस्त्र उद्योग और इंजीनियरिंग उद्योग हैं। इन उद्योगों में पूंजी की बराबर मात्राएं लगायी गयी

हैं, किन्तु इनमें पूजी के सांगठनिक संयोजन भिन्न हैं। मान लें कि प्रत्येक औद्योगिक शाखा में पूजी की १०० इकाइया (१० लाख डालर) लगायी गयी हैं। चर्म उद्योग में अचल पूजी की ७० इकाइया और चल पूजी की ३० इकाइया, वस्त्र उद्योग में अचल पूजी की ८० इकाइया और चल पूजी की २० इकाइया तथा इजीनियरिंग उद्योग में अचल पूजी की ९० इकाइया और चल पूजी की १० इकाइया लगी हैं। मान लें कि इन तीनों में अधिशेष मूल्य (१०० प्रतिशत की दर में) की दर बराबर है। अत: चर्म उद्योग में अधिशेष मूल्य की ३० इकाइया, वस्त्र उद्योग में २० इकाइयां और इजीनियरिंग उद्योग में १० इकाइया उत्पन्न होगी। पहले, दूसरे और तीसरे उद्योगों में उत्पन्न वस्तुओं के मूल्य क्रमश १३०, १२० और ११० इकाइयां होंगे। इस तरह कुल मिला कर ३६० इकाई मूल्य की वस्तुए उत्पन्न होंगी।

अगर वस्तुओं को उनके मूल्य के अनुसार बेचा जाये, तो चर्म उद्योग, वस्त्र उद्योग और इजीनियरिंग उद्योग में मुनाफे की दरें क्रमश ३० प्रतिशत, २० प्रतिशत और १० प्रतिशत होगी। मुनाफे की यह वितरण-व्यवस्था चर्म उद्योग में विनियोग करने वाले पूजीपतियों के लिए लाभदायक और इजीनियरिंग उद्योग में पूजी लगाने वालों के लिए अलाभदायक होगी। मुनाफे की लालच में पूजीपति इंजीनियरिंग उद्योग में पूंजी हटाकर चर्म उद्योग में लगायेंगे। चर्म उद्योग में अतिरिक्त पूजी लगाने से वहां जरूरत से अधिक वस्तुओं का उत्पादन होने लगेगा। अत. चर्म उद्योग में बनी वस्तुओं की कीमतें गिरेंगी और वहा मुनाफे की दर में (मान लें कि २० प्रतिशत) कमी होगी।

दूसरी ओर इजीनियरिंग उद्योग का उत्पादन घटेगा, किन्तु माग पूर्ववत रहेगी। माग और पूर्ति के पारस्परिक सम्बध में परिवर्तन होने के कारण इजीनियरिंग उद्योग से सम्बद्ध पूजीपति अपनी वस्तुओं की कीमतें बढ़ाने में सफल हो जायेंगे। फलस्वरूप मुनाफे की दर बढ़ेगी। उदाहरणार्थ यह दर १० प्रतिशत से बढ़कर २० प्रतिशत हो जायेगी।

अत: उद्योग की एक शाखा से दूसरी शाखा में पूजी के प्रवाह के कारण मुनाफे की दरों में विषमता खत्म हो जाती है और एक औसत दर हर जगह हो जाती है। विभिन्न औद्योगिक शाखाओं में पूंजी की समान मात्राएं लगाने पर मुनाफे की मिलने वाली समान मात्राओं को औसत मुनाफा कहते हैं। मुनाफे की औसत दर के निर्धारण के बाद वस्तुओं का विक्रय उनके मूल्य (अ. पू + च. पू. + अ.) पर नहीं होता, बल्कि लागत कीमत और औसत मुनाफा (अ.पू + च. पू. + औ. मु.) के योग के बराबर उनकी कीमत होती है। उत्पादन की कीमत वस्तु की लागत कीमत और औसत मुनाफे के योग के बराबर होती है।

निम्नलिखित तालिका से मुनाफे की विभिन्न दरों की समानता और उत्पादन की कीमत के निर्धारण को स्पष्ट किया जा सकता है :

उद्योग	पूंजी का सांगठनिक संयोजन	अधिशेष मूल्य की दर, %	अधिशेष मूल्य	मुनाफे की दर, %	वस्तु का मूल्य	मुनाफे की औसत दर, %	उत्पादन की कीमत	मूल्य से उत्पादन की कीमत का विचलन
चर्म उद्योग	७० अ.पूं.+३० च.पूं.	१००	३०	३०	१३०	२०	१२०	−१०
वस्त्र उद्योग	८० अ.पूं.+२० च.पूं.	१००	२०	२०	१२०	२०	१२०	०
इंजीनियरिंग उद्योग	९० अ.पूं.+१० च.पूं.	१००	१०	१०	११०	२०	१२०	+१०
योग	२४० अ.पूं.+६० च.पूं.	१००	६०	२०	३६०	२०	३६०	—

इस तालिका से स्पष्ट है कि मुनाफे की विभिन्न दरों को एक औसत दर के रूप मे परिवर्तित किया गया है। उत्पादन की कीमतें वस्तु के मूल्य से भिन्न हैं। एक उद्योग मे उत्पादन की कीमतें वस्तु के मूल्य से ऊपर बढ़ी हैं और दूसरे उद्योग मे नीचे गिरी हैं।

जिन उद्योगों में पूंजी का सांगठनिक संयोजन कम होता है (हमारे उदाहरण मे चर्म उद्योग), उनमे उत्पादन की कीमत वस्तु के मूल्य से कम तथा मुनाफे की राशि अधिशेष मूल्य की राशि से कम होती है। पूंजी के मध्यम सांगठनिक संयोजन वाले उद्योगों मे उत्पादन की कीमत वस्तु के मूल्य के बराबर और मुनाफे की राशि अधिशेष मूल्य की राशि के बराबर होती है। पूंजी के उच्च सांगठनिक संयोजन वाले उद्योगों (हमारे उदाहरण मे इंजीनियरिंग उद्योग) में उत्पादन की कीमत मूल्य से तथा मुनाफे की राशि अधिशेष मूल्य की राशि से अधिक होती है। इस अन्तर के स्रोत पूंजी के निम्न सांगठनिक संयोजन वाले उद्योग हैं। इन उद्योगों के मजदूरों द्वारा उत्पन्न अधिशेष मूल्य को पूंजी के उच्च सांगठनिक संयोजन वाले उद्योगों के मालिक हड़प जाते हैं।

इस तरह मजदूरों का शोषण उनको प्रत्यक्ष रूप से काम पर लगाने वाले पूंजीपति ही नहीं करते, अपितु सारा पूंजीपति वर्ग करता है। मजदूरों के शोषण

दर को बढ़ाने में सम्पूर्ण पूंजीपति वर्ग का स्वार्थ सधता है, क्योंकि इस तरह मुनाफे की औसत दर बढ़ती है। इसी वजह से सभी पूंजीपति एक मोर्चे में संयुक्त होकर मजदूरों के खिलाफ वर्ग संघर्ष चलाते हैं। पूंजीपति वर्ग द्वारा शोषित मजदूर वर्ग को भी चाहिए कि वह वर्ग एकता कायम करे और एक संयुक्त मोर्चे के अन्तर्गत संगठित हो। मजदूरों की कुछ श्रेणियों के हितों के लिए सिर्फ संघर्ष करने या पूंजीपति विशेष के विरुद्ध लड़ने से मजदूर वर्ग की स्थिति में कोई आमूल फर्क नहीं आ सकता। पूंजी के जुए को उतार फेंकने के लिए आवश्यक है कि मजदूर वर्ग पूंजीवादी शोषण व्यवस्था का उन्मूलन करे। इस निष्कर्ष में मार्क्स के औसत मुनाफे के सिद्धान्त और सर्वहारा के वर्ग संघर्ष का राजनीतिक महत्व छिपा है।

ऊपर हम देख चुके हैं कि पूंजीवाद के अन्तर्गत वस्तुएं अपने मूल्य पर नहीं, बल्कि अपने उत्पादन की कीमतों के अनुसार बेची जाती हैं। इसका यह कतई मतलब नहीं होता कि मूल्य का नियम कार्य नहीं करता। उत्पादन की कीमत वस्तु के मूल्य का ही परिवर्तित रूप है। कुछ पूंजीपति अपनी वस्तुओं को उनके मूल्य से ऊंची कीमतों पर बेचते हैं, जबकि दूसरे पूंजीपति अपनी वस्तुओं को उनके मूल्य से कम कीमतों पर बेचते हैं, किन्तु सभी पूंजीपतियों को अपनी वस्तुओं के पूरे मूल्य मिलते हैं। सम्पूर्ण पूंजीपति वर्ग के मुनाफे की कुल राशि समाज में उत्पन्न अधिशेष मूल्य की कुल मात्रा के बराबर होती है। सारे समाज के पैमाने पर उत्पादन की कीमतों का कुल योग वस्तुओं के कुल मूल्य-राशि के बराबर होता है तथा मुनाफे की मात्रा अधिशेष मूल्य की मात्रा के समतुल्य होती है। इस तरह मूल्य का नियम उत्पादन की कीमतों के माध्यम से सचालित होता है।

मुनाफे की दर गिरने की प्रवृत्ति

पूंजीवाद के विकास के साथ पूंजी का सागठनिक सयोजन भी बढ़ता है। इसका मतलब है कि उद्यमों में कच्चे माल, मशीन और उपकरण की मात्रा में वृद्धि होती है। उसी क्षण मजदूरों की सख्या में भी वृद्धि होती है, यद्यपि यह वृद्धि उतनी तेजी से नहीं होती, जितनी कच्चे माल, मशीन तथा उपकरण की वृद्धि होती है। अत. चल पूंजी अचल पूंजी की अपेक्षा कम तेजी से बढ़ती है। किन्तु पूंजी का सागठनिक सयोजन जितना ही अधिक होगा, मुनाफे की दर उतनी ही कम होगी। इसका मतलब यह नहीं है कि मुनाफे की मात्रा में भी निश्चित रूप से कमी होगी। एक उदाहरण लें। मान लें कि समाज की कुल पूंजी १०० अरब डालर है। इसमें से ७० अरब डालर अचल पूंजी और ३० अरब डालर चल पूंजी के रूप में है। कुल पूंजी २० वर्षों में दुगुनी हो जाती है। पूंजी का सागठनिक सयोजन भी बढ़ जाता है। २०० अरब डालर की कुल पूंजी में १६० अरब डालर अचल पूंजी और ४० अरब डालर चल पूंजी हो जाती है।

अगर अधिशेष मूल्य की दर १०० प्रतिशत हो, तो मुनाफे की मात्रा पहले उदाहरण में ३० अरब डालर और दूसरे मे ४० अरब डालर होगी, किन्तु मुनाफे की दर ३० प्रतिशत से घटकर २० प्रतिशत हो जायेगी। यद्यपि पूंजी के सांगठनिक सयोजन मे वृद्धि होने के साथ मुनाफे की दर में ह्रास अवश्यम्भावी है, तथापि ऐसे कई तत्व है जो इस प्रवृत्ति के प्रतिकूल काम करते हैं।

मुनाफे की दर की ह्रासोन्मुख प्रवृत्ति को रोकने वाले तत्वो मे प्रमुख है **मजदूरों के शोषण की मात्रा में वृद्धि।** हम उपर्युक्त उदाहरण को ही फिर देखें। मान लें कि दूसरी स्थिति मे शोषण की मात्रा बढकर २०० प्रतिशत हो गयी है। अब मुनाफे की कुल राशि ८० अरब डालर के बराबर होगी, जबकि मुनाफे की दर $\frac{८०}{१६०+४०} \times १००\% = ४०\%$ होगी। स्पष्ट है कि मजदूर वर्ग का तीव्र शोषण ही मुनाफे की दर में इस वृद्धि का कारण है।

मुनाफे की दर के ह्रास को रोकने वाले अन्य तत्व है : **श्रम-शक्ति के मूल्य से कम मजूरी देना, मजदूरों के स्वास्थ्य और जीवन की परवाह न कर अचल पूंजी का मितव्ययितापूर्ण उपयोग करना,** इत्यादि।

उपर्युक्त सभी तत्व मुनाफे की दर के ह्रास को खत्म नही कर देते, बल्कि उसे कम कर देते है, जिससे वह प्रवृत्ति मात्र रह जाती है।

मुनाफे की दर के ह्रास की प्रवृत्ति पूजीवाद के अन्तर्विरोधो को बुरी तरह उभार देती है। सर्वहारा और पूजीपति के अन्तर्विरोध तीव्र हो जाते हैं क्योंकि मुनाफे की दर के ह्रास को कम करने के लिए पूजीपति मजदूर वर्ग का जोर-शोर से शोषण करता है। पूजीवादी खेमे के भीतरी विरोध तेज हो जाते हैं। पूजीपति अपनी पूजी उन उद्योगो मे लगाते हैं, जिनमे मुनाफे की दर ऊची होती है। इस कारण पूजीपतियों मे परस्पर भयकर प्रतियोगिता होती है। नतीजा यह होता है कि कुछ पूजीपति बर्बाद हो जाते है और कुछ समृद्ध बन जाते हैं। पूजीवादी शक्तियो के आपसी विरोध उग्र रूप धारण कर लेते हैं। मुनाफे की ऊची दर की लालच से विकसित औद्योगिक देशो मे आर्थिक तौर पर अविकसित देशो को पूजी का निर्यात किया जाता है। इन अविकसित देशों मे श्रम-शक्ति सस्ती होती है और पूजी का सागठनिक सयोजन कम होता है।

पूजीवाद के अन्तर्विरोधो को तीव्र कर मुनाफे की दर की ह्रासोन्मुख प्रवृत्ति स्पष्ट तौर पर दिखलाती है कि उत्पादन की पूजीवादी पद्धति ऐतिहासिक दृष्टि से सीमित और प्रकृति से अस्थायी है।

३. व्यावसायिक मुनाफा

मजदूर वर्ग उत्पादन की प्रक्रिया मे अधिशेष मूल्य उत्पन्न करता है। अधिशेष मूल्य की राशि सर्वप्रथम औद्योगिक पूजीपति समूह को मिलती है जिसका उद्यम पर आधिपत्य होता है। इसी समूह से आगे चलकर व्यावसायिक पूजीपति समेत अन्य शोषक समूह अधिशेष मूल्य प्राप्त करते हैं। सवाल उठता है कि औद्योगिक पूजीपति अपने अधिशेष मूल्य की राशि का एक हिस्सा व्यवसायियो को क्यो दे देते हैं ? पूजीवादी समाज मे वस्तुओ का उत्पादन बिक्री के लिए होता है। इसलिए वस्तुओ का सिर्फ उत्पादन ही नही, बल्कि बिक्री भी जरूरी है। सामान्यतया औद्योगिक पूजीपति अपनी वस्तु को व्यवसायी के हाथो बेच देता है। यह व्यवसायी की जिम्मेदारी है कि वह वस्तु को उपभोक्ता तक पहुचाये।

औद्योगिक और व्यावसायिक पूंजी

वस्तु पूजी को मुद्रा पूजी के रूप मे परिवर्तित करना व्यावसायिक पूजीपति का काम है। व्यावसायिक पूजीपति की अनुपस्थिति मे उद्योगपति को व्यावसायिक क्षेत्र का प्रबन्ध करने, विक्रेताओ को काम पर लगाने आदि के लिए अतिरिक्त पूजी की आवश्यकता होगी। किन्तु अभी उद्योगपति ये सब काम व्यवसायी के जिम्मे छोड देता है। समाज के पैमाने पर व्यावसायिक पूजी औद्योगिक पूजी से अलग अतिरिक्त पूजी बन जाती है और व्यावसायिक पूजीपतियो की पूजी का रूप धारण कर लेती है। इन पूजीपतियो को मुनाफे का एक हिस्सा मिलता है। व्यावसायिक पूजीपतियो को मिलने वाले मुनाफे को व्यावसायिक मुनाफा कहते हैं।

व्यावसायिक मुनाफे का स्रोत

व्यावसायिक मुनाफा अधिशेष मूल्य की राशि का वह भाग है जिसे उत्पादक अपनी वस्तुओ की बिक्री के लिए व्यवसायी को दे देते है। औद्योगिक पूजीपति अपनी वस्तुओ को उत्पादन कीमतो से कम कीमतो पर बेचते है। व्यवसायी उन्हे उनकी उत्पादन कीमतो पर बेचते है और उन्हे एक राशि प्राप्त होती है। इस तरह के अन्तर के फलस्वरूप व्यावसायिक पूजीपतियो को उद्योगपतियो की तरह ही अपनी पूजी पर औसत मुनाफा प्राप्त होता है। अगर व्यवसायियो को अपनी पूजी पर औसत मुनाफा से कम मुनाफा मिले तो व्यवसाय अलाभकारी हो जायेगा और व्यवसायी अपनी पूजी को व्यवसाय के बदले उद्योग मे लगायेंगे। सामान्यतया उद्योगपति और व्यवसायी दोनो को औसत मुनाफा प्राप्त होता है, किन्तु इसका मतलब यह नही है कि दोनो को मुनाफे की समान राशि प्राप्त होती है। उद्योगपतियो को मुनाफे की एक बडी राशि प्राप्त

होना स्वाभाविक है, क्योंकि उत्पादन में वे व्यवसायियों की अपेक्षा अधिक पूंजी लगाते हैं। किन्तु पूंजी की समान मात्रा पर मुनाफे की समान राशि प्राप्त होती है।

अधिशेष मूल्य व्यावसायिक मुनाफे का रूप ले लेने पर अधिक छद्मावरित हो जाता है। व्यवसायी की पूंजी उत्पादन में कोई हिस्सा नहीं लेती, इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि मुनाफे का स्रोत व्यवसाय ही है। दूसरे शब्दों में, वह यह मुनाफा वस्तु वितरण की प्रक्रिया के कारण प्राप्त करता है।

वस्तुओं के वितरण की प्रक्रिया में एक निश्चित व्यय-राशि की आवश्यकता होती है। इसे वस्तु वितरण की लागत कहते हैं। पूंजीवाद में वस्तु वितरण लागत

वस्तु वितरण की लागत

दो तरह की होती है। वस्तु वितरण की शुद्ध लागत वस्तुओं की खरीद-बिक्री से प्रत्यक्षतः सम्बन्धित है। वस्तुओं को मुद्रा और मुद्रा को वस्तुओं के रूप में परिवर्तित करने की प्रक्रिया में होने वाला व्यय भी इस लागत में शामिल होता है। इसके अतिरिक्त इस लागत में व्यावसायिक कर्मचारियों की मजूरी, व्यावसायिक दफ्तरों, विज्ञापन, प्रतिद्वन्द्विता और सट्टेबाजी पर होने वाले खर्च भी आते हैं। वस्तु वितरण की शुद्ध लागत के कारण मूल्य में कोई वृद्धि नहीं होती। औद्योगिक पूंजीपतियों से प्राप्त अधिशेष मूल्य की राशि से इस लागत की व्यवस्था पूंजीपति करते हैं। पूंजीवादी व्यवसाय के अन्तर्गत होने वाले वस्तु वितरण व्यय में सबसे बड़ा हिस्सा शुद्ध लागत का होता है।

वस्तु वितरण के क्षेत्र में उत्पादन की प्रक्रिया का विस्तार होने से आवश्यक लागत में वे व्यय भी शामिल हैं, जो समाज के लिए जरूरी सक्रियाओं पर किये जाते हैं। ये व्यय पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं से स्वतन्त्र हैं। उदाहरण के लिए, वस्तुओं को भंडार में रखने, उनको अन्तिम रूप देने, परिवहन की व्यवस्था तथा पैकिंग पर होने वाले व्यय मुख्य हैं। उपभोक्ता के पास वस्तु के पहुंचने के बाद ही वह उसका इस्तेमाल कर सकता है। वस्तुओं को आखिरी रूप देने तथा उनके परिवहन और पैकिंग पर व्यय किया जाने वाला श्रम वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि करता है। इस दृष्टि से वस्तु वितरण लागत उत्पादन लागत से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं है।

पूंजीवाद के अन्तर्गत वस्तु वितरण लागत निरन्तर बढ़ती जाती है (विशेष कर वस्तु वितरण की शुद्ध लागत जिसमें विज्ञापन व्यय मुख्य है)। अमरीका ने १९६१ में विज्ञापन पर कुल मिलाकर १२ अरब डालर खर्च किये, जो १९५० में होने वाले व्यय का दुगुना था। वस्तु वितरण लागत में होने वाली वृद्धि पूंजीवादी समाज में परजीविता के बढ़ने का सूचक है। पूंजीवादी देशों में खुदरा व्यापार से

पास प्रतिस्थापन के लिए आवश्यक मात्रा मे मुद्रा नही हो जाती, तब तक अतिरिक्त मुद्रा उसके पास अस्थायी रूप से पड़ी रहेगी। कई वर्षों के बाद यह राशि नये उपकरणो की खरीद पर खर्च की जायेगी।

दूसरे समय पूजीपति को अतिरिक्त मुद्रा-राशि की आवश्यकता पड़ सकती है, अर्थात जब वह अपने तैयार माल को बेचने में असफल हो जाता है, लेकिन उसे कच्चा माल तत्काल खरीदना पड़ता है, तब उसे अतिरिक्त मुद्रा-राशि की जरूरत पडती है।

फलस्वरूप एक ही समय किसी पूजीपति के पास मुद्रा पूजी की अस्थायी तौर पर अधिकता रहती है, जबकि उसी समय किसी अन्य पूजीपति को उसकी जरूरत रहती है। जिस पूजीपति के पास अतिरिक्त मुद्रा रहती है, वह उसे अन्य पूजीपतियो को अस्थायी तौर पर इस्तेमाल के लिए कर्ज के रूप मे दे देता है। **ऋण पूंजी समय की एक विशेष अवधि के लिए एक निश्चित मुद्रा-राशि (मानी ब्याज) पर उधार दी जाने वाली मुद्रा पूंजी है।**

ब्याज मुनाफे का वह हिस्सा है जो उद्योगपति या व्यापारी से ऋण देने वाले पूजीपति को प्राप्त होता है। उद्योगपति या व्यापारी उधार ली गयी मुद्रा-राशि को उत्पादन या व्यापार मे लगाते हैं। अत ऋण पूजी का इस्तेमाल इसके स्वामी पूजीपति द्वारा नही किया जाता। उद्योगपति उधार ली गयी पूजी के माध्यम से मजदूरों को काम पर लगाते है और अधिशेष मूल्य प्राप्त करते हैं। वे इस अधिशेष मूल्य का एक भाग ऋण देने वाले पूजीपति को ब्याज के तौर पर दे देते हैं। इस तरह ऋण के ऊपर प्राप्त होने वाला ब्याज अधिशेष मूल्य का ही एक रूप है।

एक उदाहरण लें। मान लें कि किसी औद्योगिक पूजीपति ने एक लाख डालर उधार लिया है। अगर मुनाफे की औसत दर २० प्रतिशत हो, तो इस पूजी पर प्राप्त होने वाला कुल मुनाफा २०,००० डालर होगा। उद्योगपति मुनाफे की इस राशि मे से एक भाग ऋण देने वाले पूजीपति को ब्याज के रूप में देता है। अगर ऋण पर ब्याज की दर[1] ३ हो तब १ लाख डालर की पूंजी पर २० हजार डालर मुनाफे की प्राप्त राशि मे से ३ हजार डालर ब्याज के रूप मे दिया जायेगा। मुनाफे की शेष राशि (यानी १७ हजार डालर) उद्योगपति को प्राप्त होगी। मुनाफे के इस हिस्से को उद्यम का मुनाफा कहते हैं।

औसत मुनाफे का ब्याज और उद्यम के मुनाफे के रूप मे विभाजन का अनुपात ऋण पूजी की मांग और पूर्ति के सतुलन पर निर्भर करता है। मुद्रा पूंजी की माग जितनी ही अधिक होगी, ब्याज की दर उतनी ही ऊची होगी। अगर मुद्रा पूंजी की मांग कम होगी, तो ब्याज की दर भी कम होगी। ब्याज औसत

[1] "ब्याज की दर" ब्याज की राशि और उधार दी गयी पूंजी का अनुपात है।

मुनाफे का एक भाग होता है, इसलिए ब्याज की दर मुनाफे की औसत दर से अधिक नहीं हो सकती।

पूंजीवाद के विकास के साथ-साथ ब्याज की दर की ह्रासोन्मुख प्रवृत्ति देखने में आती है। ऐसा दो कारणों से होता है: १) मुनाफे की औसत दर की प्रवृत्ति गिरने की होती है, और २) ऋण पूंजी की कुल मात्रा उसकी मांग की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ती है।

पूंजीवादी साख। बैंक और बैंक मालिकों का मुनाफा ऋण पूंजी अधिकतर साख के रूप में दी जाती है। पूंजीवादी साख के दो रूप हैं व्यावसायिक साख और बैंक वालों की साख।

व्यावसायिक साख उस समय दी जाती है जब उद्योगपति और व्यापारी एक-दूसरे को साख पर वस्तुएं देते हैं। विक्रेता को वस्तु-विक्रय के समय एक हुण्डी मिलती है, जिसके आधार पर खरीदार एक निश्चित तिथि तक मुद्रा की एक निश्चित राशि विक्रेता को अदा करता है।

बैंक वालों की साख बैंक वाले उद्योग या व्यवसाय में कार्य करने वाले पूंजीपतियों को देते हैं। यह साख बैंकों द्वारा अस्थायी तौर पर जमा अनिष्क्रि मुद्रा पूंजी में से दी जाती है।

बैंक पूंजीवाद के अन्तर्गत पूंजीवादी संस्था होते हैं। इनका कार्य उधार लेने वालों के बीच बिचौलिये का है। बैंक अतिरिक्त, निष्क्रिय पूंजी और आय-राशि को संग्रहीत कर कार्यशील पूंजीपतियों और पूंजीवादी राज्य को प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त बैंक वाले प्रत्यक्ष रूप से औद्योगिक और व्यावसायिक उद्यमों में पूंजी लगाते हैं और स्वयं कार्यशील पूंजीपति बन जाते हैं।

अन्य पूंजीवादी उद्यमों की तरह ही बैंकों के परिचालन का उद्देश्य मुनाफा कमाना होता है। बैंकों के मुनाफे का स्रोत भी उत्पादन के क्षेत्र में निर्मित अधिशेष मूल्य है। उधार दी गयी ऋण पूंजी पर प्राप्त ब्याज-राशि और जमा राशि पर भुगतान की गयी ब्याज-राशि का अन्तर ही बैंक वालों का मुनाफा होता है। जमा राशि वह अस्थायी अतिरिक्त मुद्रा-राशि है जिसे पूंजीपति, व्यापारी, भूस्वामी और अन्य लोग बैंकों में रखते हैं। बैंक जमा राशि पर ऋण-राशि पर प्राप्त ब्याज से कम ब्याज देते हैं। वे दोनों के अन्तर को स्वयं रख लेते हैं। बैंकों में परिचालन पर होने वाला व्यय इसी राशि में आता है। अन्तिम तौर पर जो कुछ बच जाता है, वह बैंक मालिकों का मुनाफा होता है। पूंजीवादी प्रतिद्वन्द्विता के कारण यह मुनाफा बैंक मालिकों को अपनी पूंजी पर प्राप्त होने वाले मुनाफे की औसत दर पर आ जाता है। बैंकों की पूंजी का एक बड़ा भाग जमा राशि के आधार पर दी गयी उधार पूंजी होता है।

सारा प्रबन्ध में बिचौलिये के रूप में कार्य करने के अतिरिक्त बैंक पूंजीपतियों के आपसी लेखा-जोखा का भी निबटारा करते हैं। वे उनके लिए हर तरह के वित्तीय आयोग का कार्य सम्पादित करते हैं। कई पूंजीपतियो के लिए बैंक खजाची का कार्य करते हैं।

पूंजीवाद के अन्तर्गत बैंक मुद्रा के साधनों को अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखाओ मे स्वतः वितरित करने के विशिष्ट उपकरणों के रूप मे कार्य करते हैं। यह वितरण सामाजिक हितों को ध्यान मे रखकर नही होता, बल्कि पूंजीपतियो के हितो की दृष्टि से होता है। अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखाओं को एक-दूसरे से सम्बद्ध कर बैंक श्रम के समाजीकरण को प्रोत्साहित करते हैं। श्रम का यह समाजीकरण उत्पादन के साधनो के निजी स्वामित्व पर आधारित होता है। इस कारण साख का विकास उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति के अन्तर्विरोधो को तीव्र कर देता है और पूंजीवादी उत्पादन की अराजकता को बढाता है।

पूंजीवाद के प्रारम्भिक काल मे कारखाने व्यक्तिगत स्वामियों द्वारा शुरू किये गये। आगे चलकर रेलवे, बन्दरगाह वगैरह विशाल उद्यमों का व्यक्तिगत पूंजी द्वारा चलाया जाना असम्भव हो गया। उद्योग, रेल-निर्माण और बैंक उद्योग मे ज्वायन्ट-स्टाक कम्पनियां स्थापित होने लगी। १६वी सदी के उत्तरार्द्ध मे वे काफी व्यापक हो गयी। ज्वायन्ट-स्टाक कम्पनी उद्यम के उन रूप को कहते हैं जिसकी पूंजी कम्पनी के सदस्यों के अंशदान से बनती है। ये सदस्य अपने द्वारा लगायी गयी पूंजी के अनुसार शेयरो की एक निश्चित सख्या के स्वामी होते हैं।

ज्वायन्ट-स्टाक कम्पनिया

शेयर एक प्रकार की प्रतिभूति है, जो यह प्रमाणित करती है कि उसके मालिक ने उद्यम मे एक निश्चित धनराशि लगायी है। शेयर अपने मालिक को उद्यम की आय का एक हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार देता है। शेयर होल्डर को प्राप्त होने वाली राशि को लाभांश कहते हैं। स्टाक एक्सचेंज मे निश्चित कीमतो पर शेयर खरीदे और बेचे जाते हैं। इन निश्चित कीमतो को कथित मूल्य कहते हैं। स्टाक एक्सचेंज प्रतिभूतियो, विशेषकर शेयरों का बाजार है। यहा पर शेयरों की खरीद-बिक्री होती है और उनके कथित मूल्य दर्ज होते हैं।

कथित मूल्य या शेयरों की कीमतें दो बातों पर निर्भर करती हैं: १) जमा राशि पर बैंको द्वारा अदा किये जाने वाले ब्याज का स्तर, और २) प्रत्येक शेयर पर प्राप्त वार्षिक आय (यानी लाभांश)। अगर १०० डालर के एक शेयर पर १० डालर की वार्षिक आय प्राप्त हो तो इस शेयर को उस राशि पर बेचा जायेगा, जिस राशि को किसी बैंक मे जमा करने पर ब्याज के रूप मे प्रतिवर्ष १०

प्राप्त हो। मान लें, बैंक प्रतिवर्ष ५ प्रतिशत की दर से ब्याज अदा करते हैं। दशा में इस शेयर की कीमत २०० डालर होगी, क्योंकि इतनी राशि बैंक में रखने पर शेयर होल्डर को १० डालर प्रतिवर्ष ब्याज के रूप में प्राप्त हो।

प्रत्येक ज्वायन्ट-स्टाक उद्यम के नियन्त्रण और प्रबन्ध के लिए शेयर होल्डरों की सभा एक व्यवस्थापक परिषद चुनती है और पदाधिकारियों की नियुक्ति करती है। आमसभा में वोटों की संख्या प्राप्त शेयरों की संख्या पर निर्भर करती है। सामान्यतया बहुसंख्यक शेयर चन्द बड़े पूंजीपतियों के अधिकार में रहते हैं। अतः ये ही लोग वास्तविक तौर पर ज्वायन्ट-स्टाक कम्पनियों को नियन्त्रित और संचालित करते हैं। व्यवहार में हम पाते हैं कि किसी ज्वायन्ट-स्टाक उद्यम पर नियन्त्रण रखने के लिए कुल शेयरों के आधे से भी कम पर अधिकार रखना काफी है। अगर किसी व्यक्ति के पास इतने शेयर हैं कि वह अपनी इच्छानुसार निर्णय कर सकता है, तो कहा जाता है कि उसका नियन्त्रक हित है। यह बात कई लोगों के समूह के लिए भी लागू हो सकती है।

प्रतिभूतियों (शेयर, बौण्ड) के रूप में रहने वाली पूंजी जो पूंजीपतियों को आय प्रदान करती है, फर्जी पूंजी कही जाती है। प्रतिभूतियों का अपने आपमें कोई मूल्य नहीं होता। वे अप्रत्यक्ष रूप से वास्तविक पूंजी के रूप में कार्य करती हैं।

ज्वायन्ट-स्टाक कम्पनियों के प्रचलित हो जाने के कारण पूंजीपति अब शेयर और लाभांश के प्राप्तकर्ता मात्र रह गये हैं। औद्योगिक उत्पादन का प्रबन्ध उद्योगी मैनेजर, डायरेक्टर आदि देखते हैं। इस तरह पूंजीवादी स्वामित्व का परजीवी चरित्र अधिकाधिक स्पष्ट हो जाता है।

जनता के हर समूह के पास शेयर रहते हैं। यह पूंजीपतियों के लिए लाभदायक है, क्योंकि शेयरों के जितने ही अधिक खरीदार होंगे, शेयर होल्डरों के उच्च वर्ग के हाथों में उतनी ही अधिक पूंजी होगी। मेहनतकश जनता के भी कई सदस्यों के पास शेयर होने के कारण पूंजीवादी विचारक "पूंजी के जनवादीकरण" के सिद्धान्त का प्रचार करने लगे है। यह झूठा सिद्धान्त बतलाता है कि ज्वायन्ट-स्टाक कम्पनी के विकास के फलस्वरूप पूंजीवाद का चरित्र बदल रहा है और शेयर खरीदने वाला हर व्यक्ति कम्पनी का सहभागी बन गया है और उसके प्रबन्ध में भाग लेता है। किन्तु वास्तविकता कुछ और ही है। ज्वायन्ट-स्टाक कम्पनियों का नियन्त्रण बड़े पूंजीपतियों द्वारा ही होता है। कम्पनी की शेयर पूंजी से पूरा फायदा इन्हीं बड़े पूंजीपतियों को मिलता है। मेहनतकश जनता के सदस्यों का शेयरों के एक नगण्य भाग पर ही अधिकार रहता है। अतः न तो वे किसी ज्वायन्ट-स्टाक कम्पनी के प्रबन्ध में हिस्सा लेते हैं और न ले सकते है।

ऊपर हमने देखा है कि अधिशेप मूल्य किस प्रकार मुनाफे के रूप में परिवर्तित होता है और किस प्रकार उद्योगपति, व्यापारी और बैंकर उसे प्राप्त करते हैं। पूंजीवाद के अन्तर्गत शोपकों का एक और समूह—भूस्वामियों का समूह है। उन्हें भी अधिशेप मूल्य की राशि में हिस्सा प्राप्त होता है। वह पूंजीवादी भू-लगान के रूप में मिलता है।

५. पूंजीवाद के अन्तर्गत भू-लगान और कृषि-सम्बंध

भू-लगान कहां से मिलता है, कौन इसे उत्पन्न करता है और यह भूस्वामी को कैसे प्राप्त होता है? इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए मार्क्सवाद-लेनिनवाद मान लेता है कि पूंजीवादी कृषि व्यवस्था मौजूद है।

पूंजीवादी भू-लगान

पूंजीवादी कृषि मजदूरों के शोषण पर आधारित है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद विश्लेपण के लिए यह भी मानता है कि भूस्वामी और पूंजीपति दो भिन्न व्यक्ति हैं।

भूस्वामी स्वयं खेती नहीं करता। वह अपनी जमीन किसी पूंजीपति को पट्टे पर दे देता है। वह पूंजीपति कृषि उत्पादन में अपनी पूंजी का विनियोग करता है। पूंजीपति मजदूरों को काम पर लगाता है। वे मजदूर उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान अधिशेप मूल्य उत्पन्न करते हैं। यह अधिशेप मूल्य सर्वप्रथम पूंजीवादी कृपक काश्तकार को मिलता है, जो इसे दो भागों में विभाजित करता है: पहला भाग उसका मुनाफा होता है, जो उसके द्वारा लगायी गयी पूंजी के औसत मुनाफे के बराबर होता है और दूसरा भाग औसत मुनाफे की राशि के अतिरिक्त होता है तथा भूस्वामी को प्राप्त होता है। अधिशेप मूल्य का यह दूसरा भाग भू-लगान के रूप में होता है। क्यों और किस आधार पर भूस्वामी पूंजीवादी कृपक काश्तकार द्वारा मजदूरों को काम पर लगाने से उत्पन्न अधिशेप मूल्य का एक हिस्सा प्राप्त करता है? भूस्वामी भूमि का मालिक होता है और बिना उसकी अनुमति के कोई भी व्यक्ति उसकी जमीन पर खेती नहीं कर सकता। इसलिए उसको अधिशेप मूल्य का एक हिस्सा प्राप्त होता है। भू-लगान के माध्यम से जमीन का निजी स्वामित्व अभिव्यक्त होता है। अगर पूंजीपति स्वयं भूमि का स्वामी रहे, तो वह खेतिहर मजदूरों द्वारा उत्पन्न किये गये अधिशेप मूल्य को सम्पूर्ण रूप से प्राप्त करेगा।

पूंजीवादी भू-लगान सामन्तवादी भू-लगान से भिन्न होता है। सामन्तवाद के अन्तर्गत सब प्रकार के लगान (श्रम-लगान, वस्तु-लगान, मुद्रा-लगान) दो मुख्य वर्गों—भूस्वामियों और कमिया किसानों—के पारस्परिक सामन्तवादी उत्पादन-सम्बंधों को जाहिर करता है। पूंजीवाद के अन्तर्गत भू-लगान तीन वर्गों

भूस्वामियो, पूंजीवादी कृषक काश्तकारो और काम पर लगे खेतिहर मजदूरो के
बंध को अभिव्यक्त करता है। सामन्तवाद मे किसानो द्वारा उत्पन्न सम्पूर्ण अधिशेष
य भू लगान के रूप मे होता है। पूंजीवाद के अन्तर्गत अधिशेष मूल्य दो शोषक
र्गों—पूंजीवादी कृषक काश्तकारो और भूस्वामियो के बीच वितरित होता है।

दो प्रकार के लगान : अन्तरीय लगान और निरपेक्ष लगान मे फर्क करना
वश्यक है। लेनिन ने बताया कि दोनो प्रकार के लगान इजारेदारी के दोहरे
रूप से सम्बधित है। भूमि की इजारेदारी अन्तरीय लगान को जन्म देती है
योंकि भूमि आर्थिक क्रिया की वस्तु है। भूमि पर निजी स्वामित्व की इजारेदारी
कारण निरपेक्ष लगान का जन्म होता है।

अन्तरीय लगान

उद्योगों मे वस्तु का मूल्य और उत्पादन की कीमत का निर्धारण उत्पादन
ी औसत स्थितियो के द्वारा होता है, किन्तु कृषि के क्षेत्र मे कृषिगत वस्तुओं की
त्पादन कीमत का निर्धारण उत्पादन की औसत स्थितियो के कारण नही होता,
बल्कि सबसे ऊसर जमीन की उत्पादन स्थितियो के द्वारा
होता है। चूंकि जमीन का क्षेत्रफल सीमित है और उसे
अनिश्चित तौर पर बढाया नही जा सकता, इसलिए वे
श्तकार जिनके पास सबसे अच्छी या मध्यम कोटि की जमीन होती है, ऊसर जमीन
काश्तकारों से बेहतर स्थिति मे होते है। आर्थिक क्रियाकलापो के उद्देश्य से इजा-
दार काश्तकारो के पास हर प्रकार की जमीन रहती है। अत भिन्न प्रकार की
मीन से प्राप्त आय मे विषमता रहती है। अन्तरीय लगान औसत मुनाफे के
अतिरिक्त प्राप्त होने वाला मुनाफा होता है। यह उन फार्मों को प्राप्त होता
जिनमे उत्पादन की स्थितियां अधिक अनुकूल रहती हैं। किन्तु जमीन स्वय
लगान का स्रोत नही है। उर्वर जमीन पर लगाया जाने वाला श्रम अधिक उत्पादक
होता है और उससे अतिरिक्त मुनाफा प्राप्त होता है।

तीन तत्वो के कारण अन्तरीय लगान प्राप्त होता है। वे तत्व है 1)
विभिन्न भूखण्डों की उत्पादकता मे अन्तर; 2) बाजार की दृष्टि से भूखण्डों
की भिन्न स्थितियां; 3) भूमि मे अतिरिक्त पूंजी के विनियोग के कारण
उत्पादकता मे अन्तर।

जमीन की उत्पादकता और स्थिति मे अन्तर होने के कारण प्राप्त अन्तरीय
लगान को मार्क्स ने अन्तरीय लगान-1 कहा। आइए, हम इस पर विचार करे।

उदाहरण के लिए, समान आकार, लेकिन भिन्न उत्पादकता वाले तीन
भूखण्डो को ले। प्रत्येक भूखण्ड का काश्तकार मजदूरो को काम पर लगाने,
बीज और मशीन खरीदने इत्यादि के लिए 100 डालर खर्च करता है। इन भूखण्डो
की उत्पादकता मे अन्तर होने के कारण प्रत्येक भूखण्ड का अन्नोत्पादन बराबर नही

होता। भूखण्ड-१ पर १० बुसेल, भूखण्ड-२ पर १५ बुसेल और भूखण्ड-३ पर २० बुसेल अन्न का उत्पादन होता है।

मान लें कि मुनाफे की औसत दर २० प्रतिशत है। इस अवस्था में प्रत्येक भूखण्ड पर सम्पूर्ण अन्न की उत्पादन कीमत (उत्पादन लागत + औसत मुनाफा) १२० डालर होगी। किन्तु १ बुसेल अन्न की उत्पादन कीमत क्या होगी? भूखण्ड-१ पर एक बुसेल अन्न के उत्पादन की लागत १२ डालर (१२० : १०), भूखण्ड-२ पर ८ डालर (१२० : १५) और भूखण्ड-३ पर ६ डालर (१२० : २०) है।

बाजार में अन्न की कीमत का निर्धारण सबसे कम उर्वर भूखण्ड को ध्यान मे रखकर होता है। इस प्रकार १ बुसेल अन्न की कीमत १२ डालर होगी। अगर कीमत का निर्धारण मध्यम कोटि के भूखण्ड को ध्यान मे रखकर ८ डालर प्रति बुसेल किया जाये तो सबसे ऊसर जमीन के काश्तकार को सिर्फ ८० डालर मिलेंगे। इस तरह उसको अपनी पूंजी पर मुनाफा नहीं प्राप्त होगा। ऊसर जमीन के काश्तकार को खेती छोडने के लिए विवश होना पड़ेगा। वह मध्यम या प्रथम कोटि की जमीन पर खेती नही कर सकता, क्योंकि इस प्रकार की जमीन उपलब्ध नहीं है। सबसे ऊसर जमीन पर अन्न का उत्पादन बन्द कर देने के कारण कुल अन्नोत्पादन घट जायेगा। फलस्वरूप अन्न की कीमत बढ़ेगी और जब १२ डालर प्रति बुसेल हो जायेगी, तब सबसे ऊसर जमीन पर फिर खेती करना लाभदायक हो जायेगा।

अत. भूखण्ड-१ का काश्तकार अपनी कुल उपज १२० डालर, भूखण्ड-२ का काश्तकार १८० डालर और भूखण्ड-३ का काश्तकार २४० डालर में बेचेगा। उत्पादन की कीमत के अतिरिक्त प्राप्त राशि—भूखण्ड-२ पर ६० डालर और भूखण्ड-३ पर १२० डालर—अन्तरीय लगान होगी।

अधिक स्पष्टता के लिए हम उपर्युक्त उदाहरण को इस तालिका द्वारा प्रस्तुत कर सकते हैं.

भूखण्ड	पूंजी का व्यय, डालर	औसत मुनाफा, डालर	उपज, बुसेल	व्यक्तिगत उत्पादन कीमत, डालर		सामाजिक उत्पादन कीमत, डालर		अन्तरीय लगान १, डालर
				कुल उपज	१ बुसेल	१ बुसेल	कुल उपज	
१	१००	२०	१०	१२०	१२	१२	१२०	—
२	१००	२०	१५	१२०	८	१२	१८०	६०
३	१००	२०	२०	१२०	६	१२	२४०	१२०

उपर्युक्त तालिका देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि अन्तरीय लगान और
दूसरे के अतिरिक्त उत्पन्न करते है । इसका उत्पादन खेतिहर मजदूरों के श्रम
होता है । श्रमिकों का श्रम अगर भिन्न उर्वरता वाले भूखण्डों पर लगे तो श्र
उर्वरता में अन्तर होगा । इस कारण विभिन्न भूखण्डों में अधिशेष मूल्य
समान मात्रायें नहीं प्राप्त होंगी ।

अन्तरीय लगान-१ पर उर्वर भूखण्डों की स्थिति से सम्बंध रखता
शहरों, बड़ी नदियों, समुद्र तटों और रेलवे से दूरी का बड़ा असर पड़ता है ।
भूखण्ड बाजार के नजदीक होते हैं उनको अपनी उपज बाजार में ले जाने में
वाले भूखण्डों की अपेक्षा बहुत कम श्रम और साधन व्यय करने पड़ते हैं, किन्तु
अपनी उपज को उन्हीं कीमतों पर बेचते हैं, जिन पर दूर वाले बेचते हैं और
तरह अतिरिक्त मुनाफा प्राप्त करते हैं ।

अगर भूमि पर अतिरिक्त पूंजी लगायी जाये (कृत्रिम खादों का इस्तेमा
भूमि विकास, उन्नत मशीन वगैरह), तो भी अन्तरीय लगान प्राप्त हो सक
है । सघन खेती के फलस्वरूप प्राप्त अतिरिक्त मुनाफा को अन्तरीय लगान
कहते हैं ।

अन्तरीय लगान-१ और २ के अतिरिक्त निरपेक्ष लगान भी भूस्वामी
मिलता है ।

पूंजीवाद में जमीन पर व्यक्तिगत स्वामित्व होता है । अत कृषि में पू
लगाने से पहले भूस्वामी की अनुमति प्राप्त कर लेना आवश्यक होता है । जमीन
निजी स्वामित्व की इजारेदारी के कारण उद्योग से कृ
में पूंजी का मुक्त प्रवाह सम्भव नहीं है । इस कारण कृ
में उद्योग की तुलना में पूंजी का सांगठनिक समोजन क
होता है । इसका मतलब है कि पूंजी की समान मा
पर उद्योग की अपेक्षा कृषि से अधिशेष मूल्य की अधिक राशि प्राप्त होती है
अगर उद्योग से कृषि में पूंजी का मुक्त प्रवाह सम्भव हो जाये, तो पूंजी के नि
सांगठनिक समोजन के कारण कृषि में उत्पन्न होने वाला अतिरिक्त अधिशेष मू
उद्योग और कृषि के बीच बट जायेगा, किन्तु भूमि पर निजी स्वामित्व होने
कारण यह अतिरिक्त अधिशेष मूल्य पूंजीपतियों के बीच पुनर्वितरित नहीं
पाता । भूस्वामी कृषि में पूंजी लगाने वाले पूंजीपति से यह अतिरिक्त अधिशे
मूल्य प्राप्त कर लेता है ।

निरपेक्ष लगान । जमीन की कीमत

निरपेक्ष और अन्तरीय लगान

भूस्वामी को जमीन के इस्तेमाल के लिए बिना भुगतान किये पूंजीपति कृषि उत्पादन नही कर सकता। भूमि पर निजी स्वामित्व के अधिकार के आधार पर भूस्वामी को जो कुछ मिलता है, उसे निरपेक्ष लगान कहते हैं।

हम निम्नलिखित उदाहरण को देखें कि किस प्रकार निरपेक्ष लगान मिलता है। उद्योग मे अगर पूंजी का सागठनिक सयोजन ४:१ है और कुल पूंजी ८० अ. पू. + २० च. पू है, तो अधिशेष मूल्य की दर १०० प्रतिशत होने पर अधिशेष मूल्य की मात्रा २० डालर होगी। कुल उत्पादन का मूल्य १२० डालर होगा। कृषि मे पूंजी का सागठनिक सयोजन (६० अ. पू. + ४० च. पू. यानी १.५:१) उद्योग की अपेक्षा कम है। अगर अधिशेष मूल्य की दर १०० प्रतिशत हो, तो ४० डालर अधिशेष मूल्य उत्पादित होगा और कुल कृषि उत्पादन का मूल्य १४० डालर होगा। पूंजीवादी कृषक काश्तकार को उद्योगपति के समान ही २० डालर का औसत मुनाफा प्राप्त होगा। अत कृषि की उपज की उत्पादन कीमत (उत्पादन लागत + औसत मुनाफा) १२० डालर (१०० + २०) होगी, जबकि उपज का मूल्य (यानी जिस कीमत पर उपज बेची जा रही है) १४० डालर होगा। कृषि की उपज के मूल्य और उत्पादन कीमत का अन्तर (हमारे उदाहरण मे १४०—१२०= २०) निरपेक्ष लगान है। यह भूस्वामी को प्राप्त होता है। अत. निरपेक्ष लगान कृषि की उपज के मूल्य और उत्पादन की सामाजिक कीमत का अन्तर है।

इसलिए भूमि पर निजी स्वामित्व की इजारेदारी के कारण ही प्रत्येक प्रकार के भूखण्ड (बिना उसकी उत्पादकता और स्थिति पर विचार किये) से निरपेक्ष लगान प्राप्त होता है।

भूमि प्रकृति का एक उपहार है और उसका कोई मूल्य नही है, लेकिन पूंजीवाद के अन्तर्गत भूमि खरीदी और बेची जाती है। इस तरह पूंजीवाद मे

भूमि एक वस्तु बन जाती है। कौन-से तत्व जमीन के बेचते समय उसकी कीमत निर्धारित करते है ?

किसी भी भूखण्ड की कीमत दो बातों पर निर्भर होती है : १) उस भूखण्ड से प्राप्त वार्षिक आय (लगान), और २) ऋण पर ब्याज की दर। अगर भूस्वामी को प्रतिवर्ष जमीन से १०,००० डालर का लगान मिले तो वह जमीन को उतनी मुद्रा-राशि पर बेचेगा, जितनी किसी बैंक मे जमा करने पर उसे उतनी ही आय (१०,००० डालर प्रतिवर्ष) प्रदान करे। मान लें कि बैंक जमा राशि पर ४ प्रतिशत ब्याज दे रहे हैं, तब भूस्वामी उस भूखण्ड को २,५०,००० डालर पर बेचेगा, क्योंकि इस राशि को बैंक मे जमा करने पर उसे ४ प्रतिशत ब्याज की दर के हिसाब से १०,००० डालर की वार्षिक आय मिलेगी। अत भूमि की कीमत पूंजीकृत लगान है, अर्थात लगान को पूजी के रूप मे परिवर्तित करने पर ब्याज के रूप मे आय प्राप्त होती है। पूजीवाद के विकास के साथ जमीन की कीमत लगान मे वृद्धि होने पर बढ़ती है और ऋण पर ब्याज की दर घटने से घटती है।

कृषि में पूंजीवादी विकास के विशिष्ट लक्षण

कृषि मे पूजीवाद का विकास उन्ही नियमो के अनुसार होता है, जिन नियमो के अनुसार वह उद्योग मे विकसित होता है।

कृषि मे पूजीवाद का विकास कई तरह से मूर्त ऐतिहासिक स्थितियो के अनुसार होता है। दो प्रकार के पूजीवादी विकास ध्यान देने लायक हैं।

पहला : सामन्तवादी भूसम्पत्ति को बनाये रखना और उसे धीरे-धीरे पूजीवादी कृषि मे बदलना। जर्मनी, जारशाही रूस और इटली मे पूजीवाद का विकास कृषि के क्षेत्र मे इसी प्रकार हुआ।

दूसरा : पूजीवादी क्रान्ति द्वारा सामन्तवादी भूसम्पत्ति का उन्मूलन और जमीनों को सामन्तो से छीनकर किसानो के हाथो बेचना। ऐसे फार्म बनते हैं जिन पर पूजीवादी उत्पादन का विकास तेजी से हो। उदाहरण के तौर पर, अमरीका मे ऐसे फार्म बनाये गये जिनमे पूजीवादी उत्पादन का तेजी से विकास हुआ।

किन्तु जिस तरह भी कृषि मे पूजीवाद का विकास हुआ हो, सदा ही बड़े पूजीपतियो के हाथो मे भूसम्पत्ति का केन्द्रीकरण हुआ। छोटे कृषको और सामन्ती जमीदारो के स्वामित्व की जगह पूजीवादी निजी स्वामित्व कायम हुआ। उदाहरण के तौर पर, अमरीका मे १९५४ मे ७३.४ फार्मों के अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल का १९ ९ था, जबकि २६.६ फार्मों के अन्तर्गत ८०.४ जमीन थी, जिसमे से ४५ ९ भूमि सबसे बड़े कृषि उद्यमो (कुल २.७ फार्मों) के पास थी।

निरपेक्ष और अन्तरीय लगान

भूस्वामी को जमीन के इस्तेमाल के लिए बिना भुगतान किये पूंजीपति कृषि उत्पादन नही कर सकता। भूमि पर निजी स्वामित्व के अधिकार के आधार पर भूस्वामी को जो कुछ मिलता है, उसे निरपेक्ष लगान कहते हैं।

हम निम्नलिखित उदाहरण को देखें कि किस प्रकार निरपेक्ष लगान मिलता है। उद्योग मे अगर पूजी का सांगठनिक संयोजन ४:१ है और कुल पूंजी ८० अ. पू +२० च. पू. है, तो अधिशेष मूल्य की दर १०० प्रतिशत होने पर अधिशेष मूल्य की मात्रा २० डालर होगी। कुल उत्पादन का मूल्य १२० डालर होगा। कृषि मे पूजी का सागठनिक सयोजन (६० अ. पू. +४० च. पू. यानी १.५:१) उद्योग की अपेक्षा कम है। अगर अधिशेष मूल्य की दर १०० प्रतिशत हो, तो ४० डालर अधिशेष मूल्य उत्पादित होगा और कुल कृषि उत्पादन का मूल्य १४० डालर होगा। पूजीवादी कृषक काश्तकार को उद्योगपति के समान ही २० डालर का औसत मुनाफा प्राप्त होगा। अतः कृषि की उपज की उत्पादन कीमत (उत्पादन लागत +औसत मुनाफा) १२० डालर (१००+२०) होगी, जबकि उपज का मूल्य (यानी जिस कीमत पर उपज बेची जा रही है) १४० डालर होगा। कृषि की उपज के मूल्य और उत्पादन कीमत का अन्तर (हमारे उदाहरण मे १४०—१२०= २०) निरपेक्ष लगान है। यह भूस्वामी को प्राप्त होता है। अतः निरपेक्ष लगान कृषि की उपज के मूल्य और उत्पादन की सामाजिक कीमत का अन्तर है।

इसलिए भूमि पर निजी स्वामित्व की इजारेदारी के कारण ही प्रत्येक प्रकार के भूखण्ड (बिना उसकी उत्पादकता और स्थिति पर विचार किये) से निरपेक्ष लगान प्राप्त होता है।

फिर

भूमि प्रकृति का एक उपहार है और
पूंजीवाद के अन्तर्गत भूमि खरीदी और

को प्राप्त होते हैं। भूमि का निजी स्वामित्व निरपेक्ष लगान का स्रोत है। निरपेक्ष लगान की इस राशि को उद्योग क्षेत्र की तरफ [illegible] लेते हैं। इस प्रकार भूमि का निजी स्वामित्व पूंजीवाद की उत्पादक शक्तियों के विकास के मार्ग में बाधक होता है। इसलिए भूमि पर से निजी स्वामित्व खत्म होना जरूरी है। इसका एक रास्ता भूमि का राष्ट्रीयकरण, यानी भूमि को राजकीय सम्पत्ति में बदलने का होगा।

पूंजीवाद के प्रारम्भिक काल में पूंजीपति वर्ग के कुछ प्रतिनिधि भूमि के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में थे। उन दिनों भूमि मुख्य रूप से सामन्ती जमींदारों के अधिकार में थी। उन्होंने सुझाव दिया कि भूमि के निजी स्वामित्व को खत्म कर उसे पूंजीवादी राज्य के अधिकार में लाया जाये। पूंजीवादी स्थितियों के अन्तर्गत ऐसा कदम उठाने पर क्या परिणाम होगा? भूमि पर राज्य का नियंत्रण होते ही निरपेक्ष लगान का अस्तित्व समाप्त हो जाता क्योंकि निरपेक्ष लगान का स्रोत भूमि पर निजी स्वामित्व है।

पूंजीवादी राज्य द्वारा भूमि का राष्ट्रीयकरण पूंजीवाद और उसकी उत्पादक शक्तियों का विकास त्वरित कर देता, किन्तु पूंजीवादी राज्य ऐसा नहीं करना चाहता था। प्रथम, भूमि पर से निजी स्वामित्व का उन्मूलन पूंजीवादी सम्पत्ति समेत तमाम निजी सम्पत्ति के पाये को हिला देता। द्वितीय, पूंजीवाद के विकास के साथ पूंजीपति वर्ग ने भी भूमि प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया और इस प्रकार पूंजीपति वर्ग और भूस्वामियों के हित एक-दूसरे से बंध गये।

विकसित पूंजीवाद के युग में भूमि पर से निजी स्वामित्व का उन्मूलन वही वर्ग कर सकता है, जो हर प्रकार की निजी सम्पत्ति को खत्म करने के लिए संघर्ष-रत है। ऐसा वर्ग क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग है। सर्वहारा वर्ग द्वारा भूमि के राष्ट्रीयकरण से पूंजीवाद के विकास का मार्ग प्रशस्त नहीं होता, बल्कि इसके विपरीत पूंजीवाद के उन्मूलन की प्रक्रिया का प्रारम्भ होता है।

सोवियत संघ में भूमि का राष्ट्रीयकरण कर एक ही बार में भूमि पर से निजी स्वामित्व और निरपेक्ष लगान को खत्म कर दिया गया। बड़े पैमाने की कृषि के समाजवादी रूप के द्रुत विकास के लिए यह कदम अत्यन्त आवश्यक था।

* * *

अब तक हमने पूंजी के संदर्भ में अधिशेष मूल्य द्वारा अपनाये गये विभिन्न रूपों को देखा है। हम स्पष्ट कर चुके हैं कि पूंजीपति वर्ग के सभी समूहों तथा भूस्वामियों की आय का एकमात्र स्रोत भाड़े के मजदूरों द्वारा उत्पन्न अधिशेष

्धिशेष मूल्य कई रूप धारण कर लेता है और इस प्रकार ये रूप पूंजी-
के बुनियादी वर्ग अन्तर्विरोधों (पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग के
पर परदा डाल देते हैं या उन्हें धुंधला बना देते हैं।

धिशेष मूल्य के उत्पादन, पूंजी-संचय, सर्वहारा वर्ग की दरिद्रता और अधि
द वितरण की प्रक्रियाओं का विश्लेषण करते समय मार्क्स ने सर्वहारा
पूंजीपति वर्ग के अन्तर्विरोधों—पूंजीवाद के बुनियादी वर्ग अन्तर्विरोधों
म्भव दृष्टि से विचार किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सर्वहारा वर्ग
इन असाध्य अन्तर्विरोधों को हल करना, यानी उत्पादन के पूंजीवादी ढंग
षण को सदा के लिए समाप्त कर देना है।

अध्याय ६

सामाजिक पूंजी का पुनरुत्पादन और आर्थिक संकट

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे कई स्वतन्त्र उद्यम शामिल रहते हैं। प्रत्येक पूंजीपति प्रदत्त समय मे अधिकतम मुनाफा देने वाली वस्तुओं को उत्पन्न करता है। फलस्वरूप उत्पादन अनियोजित ढग से चलता है। पूजीवादी समाज में उत्पादन की अराजकता होने के कारण वस्तुओ की बिक्री के मार्ग मे दिक्कतें आती हैं। फलस्वरूप अत्युत्पादन का आर्थिक संकट पैदा हो जाता है।

आर्थिक सकटो के कारण मेहनतकश जनता को असह्य यातनाए सहनी पडती हैं। आर्थिक संकट पूंजीवाद के अन्तर्विरोधो को तीव्र बना देते हैं। वे याद दिलाते हैं कि पूजीवाद का विध्वस अवश्यम्भावी है।

आइए, सामाजिक पूजी के पूंजीवादी पुनरुत्पादन की प्रक्रिया को सम्पूर्ण रूप मे देखें।

१. सामाजिक पूंजी का पुनरुत्पादन

पूजीवाद के अन्तर्गत सामाजिक उत्पादन एकीकृत नही होता। यह कई पूजीवादी उद्यमो मे विभक्त रहता है। इनमे से प्रत्येक उद्यम पर किसी न किसी पूजीपति का निजी तौर पर स्वामित्व रहता है। वह अन्य उद्यमो से अलग एक स्वतन्त्र इकाई के रूप मे कार्य करता है। साथ ही हर उद्यम मे पुनरुत्पादन अन्य उद्यमो के पुनरुत्पादन पर निर्भर करता है—यथा, मोटरगाडी के कारखाने मे पुनरुत्पादन तभी हो सकता है, जब अन्य पूजीपति सब प्रकार के मशीनी

व्यक्तिगत और सामाजिक पूंजी

औज़ार, उपकरण, सहायक पदार्थ, ईंधन, मजदूरों के लिए उपभोक्ता वस्तु इत्यादि
का उत्पादन करें।

अलग-अलग (व्यक्तिगत) पूंजी का कुल योग, पूंजीपतियों की अन्योन्या-
श्रितता और पारस्परिक सम्बन्ध के सन्दर्भ में, सामाजिक पूंजी है। पूंजीवाद के
अन्तर्गत पुनरुत्पादन समाज की कुल पूंजी के अलग-अलग स्वतन्त्र हिस्सों की इसी
अन्तर्सम्बद्धता के सन्दर्भ में होता है। पुनरुत्पादन की प्रक्रिया चले, इसके लिए आव
यक है कि समाज के सभी पूंजीपति बाजार में अपनी कुल वस्तुओं को बेच स
और अपनी जरूरत की वस्तुओं को खरीद सकें।

यह देखने के लिए कि सम्पूर्ण सामाजिक पूंजी का उत्पादन किस प्र
होता है, हमें समग्र सामाजिक उत्पादन के संयोजन को देखना चाहिए।

समाज में एक निश्चित काल (उदाहरण के लिए एक साल) के द
समग्र सामाजिक उत्पादन — उत्पन्न भौतिक धन (मशीनी साज-सामान,
ईंधन, खाद्य एवं वस्त्र आदि) की सम्पूर्ण
समग्र सामाजिक उत्पादन होती है।

मूल्य के रूप में समग्र सामाजिक उत्पादन का विभाजन १)
गयी अचल पूंजी को प्रस्थापित करने वाला मूल्य (यानी वह मूल्य जो
की घिसावट, प्रयुक्त कच्चे और सहायक माल इत्यादि के मूल्य के ब
है), २) चल पूंजी को प्रतिस्थापित करने वाला मूल्य (यानी श्रम
मूल्य) और ३) अधिशेष मूल्य में होता है। दूसरे शब्दों में, समग्र सामा
दन का मूल्य होता है = अ. पू + च पू + अ. (अचल पूंजी + च
अधिशेष मूल्य)।

समग्र सामाजिक उत्पादन का प्रत्येक भाग पुनरुत्पादन की प्र
हिस्सा अदा करता है। अचल पूंजी सदा उत्पादन की प्रक्रिया में व
चल पूंजी मजूरी के रूप में परिवर्तित होती है, जिसे मजदूर अप
सन्तुष्टि के लिए व्यय करते हैं, यानी श्रम शक्ति के पुनरुत्पादन प
साधारण पुनरुत्पादन में सम्पूर्ण अधिशेष मूल्य पूंजीपतियों द्वारा
जरूरतों की सन्तुष्टि के लिए इस्तेमाल किया जाता है। विस्तारि
अधिशेष मूल्य का एक भाग पूंजीपति इस्तेमाल करते हैं और
बड़ा हिस्सा, उत्पादन के अतिरिक्त साधनों को खरीदने और अति
भाड़े पर रखने के लिए व्यय किया जाता है।

पुनरुत्पादन और कुल सामाजिक पूंजी के प्रचलन का
लिए समग्र सामाजिक उत्पादन के भौतिक रूप पर ध्यान देना

भौतिक रूप की दृष्टि मे समग्र सामाजिक उत्पादन के दो हिस्से हैं : उत्पादन के साधन और उपभोक्ता वस्तुए। सम्पूर्ण सामाजिक उत्पादन दो महत्वपूर्ण हिस्सो मे बाटा जा सकता है : विभाग १ जिसमे उत्पादन के साधन उत्पन्न किये जाते है और विभाग २ जिसमे उपभोक्ता वस्तुओ का उत्पादन होता है।

समग्र सामाजिक उत्पादन के इन हिस्सो के भौतिक रूप भिन्न होते हैं और पुनरुत्पादन की प्रक्रिया मे वे भिन्न हिस्सा अदा करते है। उत्पादन के साधन आगे के उत्पादन मे सहायक होते है और उपभोक्ता वस्तुए व्यक्तिगत जरूरतो को पूरा करती है।

सामाजिक पूजी का पुनरुत्पादन इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्तिगत पूजी और फलस्वरूप सम्पूर्ण सामाजिक पूजी को निरन्तर अपने आवर्त को पूरा करना चाहिए। कहने का मतलब यह हुआ कि सम्पूर्ण सामाजिक पूजी को

मूल्य वसूली की समस्या का सार

मुद्रा से उत्पादन-रूप, उत्पादन-रूप से वस्तु-रूप और वस्तु-रूप से मुद्रा-रूप मे परिवर्तित होते रहना चाहिए। यह आवर्तन तभी हो सकता है, जब सब पूजीपति सम्मिलित रूप से और उनमे से प्रत्येक अलग-अलग अपने तैयार माल का मूल्य प्राप्त कर सके, यानी अपने माल को बेच सके। मूल्य वसूली की प्रक्रिया का अर्थ यह है कि वार्षिक सामाजिक उत्पादन के प्रत्येक अवयव का—मूल्य और भौतिक रूप दोनो दृष्टियो से—सम्पूर्ण विनिमय होना है और उत्पादन की प्रक्रिया मे प्रत्येक अवयव का अपना कार्य होता है।

सम्पूर्ण वार्षिक उत्पादन के मूल्य की वसूली के लिए कौन-सी स्थितिया होनी चाहिए? पुनरुत्पादन का मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त उन स्थितियो पर प्रकाश डालता है और बतलाता है कि पूजीवादी उत्पादन ज्यो-ज्यो विकसित होता है, त्यो-त्यो इन स्थितियो का अनिवार्य रूप से और निरन्तर उल्लघन होता है तथा अत्युत्पादन का आर्थिक सकट पैदा हो जाता है।

साधारण पूजीवादी पुनरुत्पादन मे मूल्य वसूली की स्थितिया

साधारण पुनरुत्पादन मे उत्पादन की प्रक्रिया पिछले काल के पैमाने पर ही दुहरायी जाती है और सम्पूर्ण अधिशेष मूल्य पूजीपतियो की व्यक्तिगत आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए खर्च किया जाता है।

अब हम साधारण पुनरुत्पादन के सन्दर्भ मे समग्र सामाजिक उत्पादन की मूल्य वसूली पर विचार करें। मान लें कि विभाग १ मे अचल पूजी का मूल्य (१० लाख डालर के रूप मे अभिव्यक्त करने पर) ४,०००, चल पूजी का मूल्य १,००० और अधिशेष मूल्य १,००० है। मान लें कि विभाग २ मे अचल पूजी का मूल्य

पूंजी का मूल्य ५०० और अधिशेष मूल्य

त्पादन के निम्नलिखित हिस्से होते हैं :

भाग १ : ४,००० अ. पू. + १,००० च. पूं. + १,००० अ. = ६,०००

भाग २ : २,००० अ. पू. + ५०० च. पूं. + ५०० अ. = ३,०००

विभाग १ में सम्पूर्ण उत्पादन का मूल्य ६,००० है। यह वर्ष के अन्त में कच्चे माल इत्यादि के रूप में रहता है। किन्तु इस विभाग के मजदूरों औ यों को सिर्फ उत्पादन के साधनों की ही जरूरत नहीं है, बल्कि उपभोक्त की भी आवश्यकता है। उत्पादन की प्रक्रिया का आगे बढ़ना उपभो ओं की प्राप्ति पर निर्भर है। विभाग १ का तैयार माल जरूर बिकना चाहि वसूली की प्रक्रिया किस प्रकार चलती है?

विभाग १ के उत्पादन का एक हिस्सा (४,००० अ. पूं. के बराबर) उसी ाग के उद्यमों के हाथों बेच दिया जाता है, जिसके द्वारा इस्तेमाल की गयी ल पूंजी को प्रस्थापित किया जाता है। विभाग १ के उत्पादन का दूसरा भाग १,००० च. पू. + १,००० अ.) उत्पादन के साधनों के रूप में उपभोक्ता स्तुओं को उत्पन्न करने वाले उद्यमों के हाथों बेच दिया जाता है। उत्पादन के ये ाधन जो २,००० के बराबर हैं, विभाग २ में इस्तेमाल की गयी अचल पूंजी को पूरा करते हैं।

विभाग २ के सम्पूर्ण उत्पादन का मूल्य ३,००० है। यह उत्पादन उप-भोक्ता वस्तुओं (वस्त्र, जूता, खाद्यान्न, इत्यादि) के रूप में है। विभाग २ में उत्पन्न २,००० के बराबर उपभोक्ता वस्तुएं विभाग १ में उत्पन्न २,००० के बराबर उत्पादन के साधनों के साथ विनिमय की जाती हैं। विभाग २ के उत्पा का शेष भाग चल पूंजी (५०० च. पू.) के पुनरुत्पादित मूल्य तथा नव-उत्पा अधिशेष मूल्य (५०० अ.) के बराबर होता है। इसे उसी विभाग के मजदूरों अ पूंजीपतियों के हाथों बेच दिया जाता है।

इस तरह सम्पूर्ण सामाजिक उत्पादन का मूल्य वसूल हो जाता है। साधारण पूंजीवादी पुनरुत्पादन में मूल्य वसूली के लिए आवश्यक है कि विभाग १ की चल पूंजी और अधिशेष मूल्य मिलकर विभाग २ की अचल पूंजी के बराबर हो।

अगर विभाग के अन्दर ही बिकने वाले हिस्सों को त्रिभुजों से और दूसरे विभाग से विनिमय किये जाने वाले हिस्सों को आयतों द्वारा प्रदर्शित करें और उनको मिलाते हुए एक रेखा खींचें तो हमें निम्नलिखित चित्र मिलेगा :
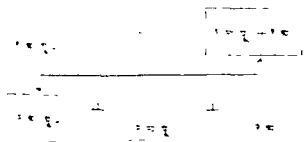
इस रेखाचित्र से स्पष्ट है कि साधारण पुनरुत्पादन में मूल्य वसूली के लिए १ (च.पू + अ) = २ अ.पू होनी चाहिए।

विस्तारित पुनरुत्पादन या संचय पूंजीवाद की एक विशेषता है। उत्पादन बढ़ाने के लिए वर्तमान उद्यम का विस्तार या नये उद्यम की स्थापना आवश्यक है। दोनों स्थितियों में उत्पादन के कुछ नये साधनों को काम पर लगाना जरूरी है। चूंकि विभाग १ में उत्पादन के साधन उत्पन्न किये जाते हैं, इसलिए विभाग १ के उत्पादन का वह हिस्सा जो नये उत्पन्न मूल्य १ (च.पू + अ) के बराबर है, विभाग २ की अचल पूंजी (२ अ.पू) से अधिक होना चाहिए। इसी स्थिति में उत्पादन के अतिरिक्त साधन प्राप्त हो सकते हैं, जिन्हें दोनों विभागों में उत्पादन बढ़ाने के लिए काम पर लगाया जा सकता है।

विस्तारित पूंजीवादी पुनरुत्पादन में मूल्य वसूली की स्थितियां

निम्नलिखित उदाहरण इसी आधार पर है :

विभाग १ : ४,००० अ.पू + १,००० च.पू + १,००० अ. = ६,०००
विभाग २ : १,५०० अ.पू + ७५० च.पू. + ७५० अ = ३,०००

विस्तारित पुनरुत्पादन में प्रत्येक विभाग का अधिशेष मूल्य दो भागों में बांटा जाता है : वह भाग जिसका पूंजीपति उपभोग करते हैं और वह भाग जिसका वे संचय करते हैं। अधिशेष मूल्य के संचित भाग को उत्पादन के अतिरिक्त साधनों को प्राप्त करने और अतिरिक्त श्रम-शक्ति को काम पर लगाने के लिए व्यय किया जाता है।

मान लें कि विभाग १ के पूंजीपति अपने अधिशेष मूल्य का आधा भाग यानी ५०० संचित करते हैं। इसका मतलब है कि उन्हें अचल पूंजी में ४०० और चल पूंजी में १०० जोड़ना चाहिए, यानी संचित अधिशेष मूल्य को उसी अनुपात में बांटना चाहिए, जिस अनुपात में प्रारम्भिक पूंजी फलस्वरूप

विभाग १ मे दूसरे वर्ष उत्पादन प्रारम्भ करने के समय पूजी का सयोजन ४,४०० अ पू + १,१०० च.पू. होना चाहिए।

विभाग १ के कुल उत्पादन (६,०००) में से ४,४०० के बराबर तैयार माल उसी विभाग मे बिक जायेगा। शेष १,६०० के बराबर तैयार माल का विभाग २ की वस्तुओं के साथ विनिमय होना चाहिए। किन्तु अगर विभाग २ के पूजीपति १,६०० के मूल्य के उत्पादन के साधन खरीदते हैं (गत साल १,५०० खर्चा किया था), तो उन्हें अपनी अचल पूजी को अपने विभाग के अधिशेष मूल्य द्वारा १०० से वढाना होगा। प्रारम्भ मे विभाग २ मे अचल और चल पूजी का अनुपात २ : १ था। अतः अचल पूजी १०० से वढाने का मतलब है कि चल पूजी मे ५० की वृद्धि करनी होगी। परिणामस्वरूप अगले वर्ष उत्पादन प्रारम्भ करने के समय विभाग २ की कुल पूजी १,६०० अ पू.+८०० च पू. होगी।

विभाग १ और २ के भीतर उत्पादन के साधनो और उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण को निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :

उत्पादन की मूल्य वसूली इस प्रकार होती है · विभाग १

... दूसरे से ४,४०० के मूल्य के उत्पादन के साधन खरीद

के साधनों के शेष भाग (१,६००) का विनिमय विभाग २ से उपभोक्ता वस्तुएं प्राप्त करने के लिए होना है। इस विनिमय के द्वारा विभाग १ के पूंजीपति १,६०० के मूल्य की उपभोक्ता वस्तुएं प्राप्त करते है, जबकि विभाग २ के पूंजीपति उतने ही *मूल्य के उत्पादन के साधन प्राप्त करते हैं। शेष उपभोक्ता वस्तुओं (१,४००)* की बिक्री विभाग २ के अन्दर ही होती है।

इन विभागों के पारस्परिक विनिमय की प्रक्रिया को इस प्रकार दिखाया सकता है:

१. ४,४०० अ.पू. + | १,१०० च.पू. + ५०० अ. | = ६,०००
↑ ↓
२. | १,६०० अ.पू. | + ८०० च.पू. + ६०० अ. = ३,०००

विस्तारित पुनरुत्पादन की शर्त यह है: चल पूंजी का मूल्य (१,०००) -संचित अधिशेष मूल्य का वह भाग जिसे चल पूंजी के रूप मे परिवर्तित करते (१००) + अधिशेष मूल्य का वह हिस्सा जिसका पूंजीपति उपभोग करते हैं ५००) = अचल पूंजी का मूल्य (१,५००) + संचित अधिशेष मूल्य का वह ाग (१००) जिसे विभाग २ की अचल पूंजी मे जोडते हैं।

दूसरे वर्ष उत्पादन का नया चक्र अधिक पूंजी के आधार पर प्रारम्भ होगा ार अधिशेष मूल्य की दर १०० प्रतिशत होने पर उस वर्ष समग्र सामाजिक पादन होगा:

भाग १ : ४,४०० अ पू + १,१०० च पू + १,१०० अ. = ६,६००
भाग २ : १,६०० अ पू + ८०० च पू + ८०० अ = ३,२००

इसी प्रकार विस्तारित पूंजीवादी पुनरुत्पादन की प्रक्रिया चलती है और ही विस्तारित पुनरुत्पादन की प्रवृत्ति को पूर्वनिर्धारित करने वाली मूल्य वसूली ो आवश्यक स्थितियां है।

विस्तारित पुनरुत्पादन मे सामाजिक श्रम का वह हिस्सा जिसे उत्पादन के ाधनों को उत्पन्न करने के लिए किया जाता है, उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन लिए लगाये जाने वाले हिस्से की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ता है।

विस्तारित पुनरुत्पादन का आर्थिक नियम यह है कि उत्पादन के साधनों ा उत्पादन उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ता है।

"उत्पादन के साधनों के अपेक्षाकृत अधिक तेजी से बढ़ने के इस नियम का सम्पूर्ण अर्थ और [illegible] है कि [illegible], नों

अगर किसी देश में एक वर्ष के दौरान ६० अरब डालर के मूल्य की वस्तुएं उत्पन्न की जायें और उसमें से ६० अरब डालर के बराबर मूल्य की वस्तुए उस वर्ष इस्तेमाल किये गये उत्पादन के साधनो को पूरा करने के लिए हो, तो शेष ३० अरब डालर उस वर्ष उत्पन्न राष्ट्रीय आय होगी।

भौतिक रूप मे राष्ट्रीय आय के अन्दर व्यक्तिगत उपभोग की वस्तुए और उत्पादन के साधनो का वह भाग जो उत्पादन के विस्तार के लिए इस्तेमाल किया जाता है, शामिल रहता है।

भौतिक उत्पादन के क्षेत्र मे काम करने वाले लोग राष्ट्रीय आय को उत्पन्न करते हैं। इस क्षेत्र मे उद्योग, कृषि, निर्माण, परिवहन, इत्यादि वे सभी शाखाए आती हैं, जिनमे भौतिक धन की सृष्टि होती है। उत्पादन के क्षेत्र मे प्रत्यक्ष रूप से काम करने वाले मजदूर, किसान, दस्तकार और बुद्धिजीवी राष्ट्रीय आय का उत्पादन करते हैं।

गैर-उत्पादक क्षेत्र मे किसी भी प्रकार की राष्ट्रीय आय का उत्पादन नही होता। इस क्षेत्र के अन्तर्गत राजकीय यत्र, साख व्यवस्था, व्यवसाय (उत्पादन की प्रक्रिया के वितरण के क्षेत्र मे विस्तारस्वरूप आवश्यक व्यापारिक सक्रियाओ को छोडकर) फौज, मेडिकल सस्थाएं, मनोरंजन के साधन, इत्यादि आते हैं। इन शाखाओ पर होने वाले सभी व्यय उत्पादन के क्षेत्र मे उत्पन्न राष्ट्रीय आय की राशि से आते हैं।

जहा तक भौतिक उत्पादन के क्षेत्र मे राष्ट्रीय आय के सृजन का सवाल है, इसकी वृद्धि के लिए आवश्यक है कि उत्पादन मे लगे लोगो की सख्या मे वृद्धि हो, उनके श्रम की उत्पादकता बढे।

राष्ट्रीय आय का वितरण

पूजीवाद के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय के वितरण का आधार वर्ग है। यह वितरण शोषको के हित मे और मेहनतकश जनता के विरुद्ध होता है। राष्ट्रीय आय के प्रारम्भिक और गौण वितरण मे भेद करना आवश्यक है।

राष्ट्रीय आय सर्वप्रथम पूजीपतियो के हाथो मे आती है। राष्ट्रीय आय का प्रारम्भिक वितरण पूजीपतियो और मजदूरो के बीच होता है। मजदूरो को मजूरी मिलती है और पूजीपतियो को अधिशेष मूल्य। अधिशेष मूल्य का वितरण उद्योग-पतियो, व्यापारियो, बैंक-मालिको और बडे भूस्वामियो के बीच होता है। इस वितरण को निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा देखा जा सकता है (प्रत्येक इकाई १ अरब डालर की है):
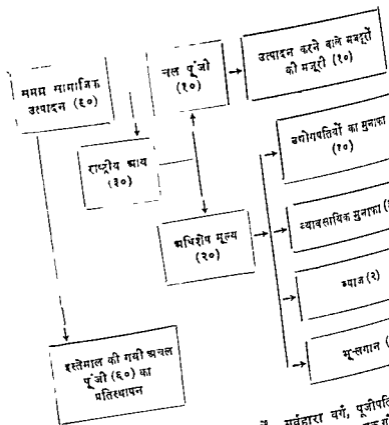
पूजीवादी समाज के बुनियादी वर्गों—सर्वहारा वर्ग, पूजीपति
भूस्वामियो के बीच राष्ट्रीय आय का वितरण हो जाने के उपरान्त एक गं
या पुनर्वितरण होता है।

राष्ट्रीय आय का पुनर्वितरण किस प्रकार होता है? हम दे
अर्थव्यवस्था की गैर-उत्पादक शाखाओ (मेडिकल सस्थाओं, सार्वज
और सुविधाओ, मनोरजन के साधनो, इत्यादि) मे कोई राष्ट्रीय आय
होती। किन्तु इन उद्यमो और सस्थाओ को नियत्रित करने वाले पूंजी
लगे लोगो (डाक्टरो, अभिनेताओ, आदि) को वेतन देते हैं और उ
पर खर्च करते हैं तथा मुनाफा भी प्राप्त करते हैं। व्यय की इन
उत्पादन के क्षेत्र मे उत्पन्न राशि से इन सेवाओ (चिकित्सा,
जनिक सेवाओ और सुविधाओं, इत्यादि) के लिए भुगतान लेकर पू
सेवाओ के लिए किया गया भुगतान उद्यमो के अनुरक्षण-व्यय को पू
क्षेत्र के पूजीपतियों को औसत मुनाफा प्रदान करता

मजदूरों की आय का एक हिस्सा राजकीय बजट द्वारा पुनर्वि
है और इसका इस्तेमाल शासक वर्ग के हित में होता है।

पूंजीवादी राज्य की अपनी फौज, पुलिस, दण्डालय और कचहरि
यां आदि होते हैं। इन सबका पोषण राजकीय बजट द्वारा होना
पर लगाया गया कर राजकीय आय का मुख्य स्रोत है। इसका मतलब है
आय के पुनर्वितरण द्वारा मजदूरी मिल जाने के बाद सर्वहारा वर्ग को राज
अदा करना पड़ता है। इस तरह सर्वहारा वर्ग को प्राप्त होने वाला रा
का हिस्सा कम हो जाता है।[1]

पूंजीवाद के विकास के साथ करों का बोझ भी बढ़ता जाता है।
के लिए, १९१३ में ब्रिटेन में राष्ट्रीय आय का ११ प्रतिशत, १९२४ में २
और १९५६ में ३५ प्रतिशत कर के रूप में लिया गया। फ्रांस में
१३ प्रतिशत १९२४ में २१ प्रतिशत और १९५६ में २७ प्रतिशत क
लिया गया। ट्रूमैन प्रशासन के दौरान अमरीका में इतने अधिक कर
तने ट्रूमैन के पहले १५६ वर्षों में कभी किसी राष्ट्रपति के शासन-का
ये गये थे।

राष्ट्रीय आय का इस्तेमाल किस प्रकार होता है ?

पूंजीवाद के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय के वितरण
चरित्र होता है। राष्ट्रीय आय उपभोग और
व्यय की जाती है।

मजदूरों को राष्ट्रीय आय का इतना कम हिस्सा मिलता है कि वे
भोग कर पाते हैं। उनके बहुत बड़े समुदाय को भी जीवन-यापन का
र प्राप्त नहीं हो पाता है। लाखों मजदूरों की आवास स्थितियां बदतर
की यथार्थ आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं होती और न उनके
क्षा ही मिल पाती है।

राष्ट्रीय आय का एक बहुत बड़ा हिस्सा शोषक वर्ग हड़प लेते हैं।
का एक अंश विलास की वस्तुओं समेत व्यक्तिगत उपभोग तथा नौकरों
ी संख्या पर खर्च करते हैं। दूसरा हिस्सा उत्पादन की वृद्धि या संचय में ल

पूंजीपति भी कर देते हैं। किन्तु उस कर का एक भाग उन्हें भुगतान के रूप
कर दिया जाता है। सरकार को वस्तुएं और सेवाएं देने के लिए पूंजीप
ऊंचा भुगतान मिलता है। कर का दूसरा भाग राज्यतंत्र, फौज, आदि के भर
पर खर्च होता है, जिसका उद्देश्य मुख्यतया उन्हीं पूंजीपतियों के हितों
करना होता है।

अतः पूंजीवादी समाज में न सिर्फ राष्ट्रीय आ
भी शोषक वर्गों के हितों में होता है।

किन्तु समाज की सम्भावनाओ और जरूरतो के सदर्भ में यह अश अपेक्षाकृत कम होता है। सचय की अल्पमात्रा के लिए अनुत्पादक विज्ञापन, अर्थव्यवस्था के सैन्यी- करण, व्यर्थ बढाये गये राज्ययंत्र के पोषण, आदि पर होने वाले खर्च जिम्मेदार हैं।

चूकि पूजीवाद के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय का एक वर्ग-चरित्र होता है, इस- लिए उत्पादन के बढते हुए पैमाने की तुलना मे मजदूर वर्ग की क्रय-शक्ति पीछे रह जाती है। कभी-कभी इनमे बहुत बडा अन्तर हो जाता है और अत्युत्पादन का आर्थिक सकट खड़ा हो जाता है।

३. आर्थिक संकट

सकटों का स्वभाव और उनके बुनियादी कारण आर्थिक संकटो द्वारा प्रकट अन्तर्विरोधो के सम्ब फ्रास के यूटोपियन समाजवादी फौरियर ने कहा विपुलता जरूरत और दरिद्रता का स्रोत हो जाती

अत्युत्पादन के सकट के प्रथम मुख्य लक्षण व्यापार मे कटौती, बाज बिकी हुई फालतू वस्तुए, कारखाने मे काम का ठप्प हो जाना है। काम ठप्प हो जाने के कारण मजदूरो को गुजारे के साधन प्राप्त नही होते

क्या यह सही है कि पूजीवादी समाज मे भोजन, वस्त्र, ईंधन "बहुत बडी" मात्रा मे उत्पन्न होते हैं ? नही, वास्तविकता कुछ और ही खड़ा करने वाला अत्युत्पादन निरपेक्ष नही, सापेक्ष होता है। सिर्फ प्रभा तुलना में ही वस्तुओ की अधिकता रहती है, न कि समाज की वास्तवि की दृष्टि मे। सकट के समय समाज की जरूरतें नही घटतीं, बल्कि मेहनतक जनता के बहुसख्यक सदस्यों की क्रय-शक्ति घट जाती है। सकट के दौरान अनिवार्य आवश्यकताओ की पूर्ति भी नही हो पाती।

पूजीवाद के अन्तर्गत अत्युत्पादन के आर्थिक सकट का मुख्य कारण पूजी- वाद का बुनियादी अन्तर्विरोध—उत्पादन के सामाजिक चरित्र और उत्पादन के फल की प्राप्ति के निजी रूप का अन्तर्विरोध—है।

पूजीवादी उत्पादन श्रम के सामाजिक विभाजन पर आधारित रहता है। पूजीवाद के विकास के साथ श्रम का अधिकाधिक विभाजन होता है। विशिष्ट- प्राप्त शाखाओं की सख्या दिनोदिन बढती है और उत्पादन का कार्य उन्ही के द्वा होता है। बडे उद्यमों मे हजारो मजदूर काम करते हैं और वे सभी उद अन्तसम्बद्ध होते हैं तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बाजारो के लिए उत्पा करते हैं। इस प्रकार श्रम को बडे पैमाने पर केन्द्रित कर पूजीवाद उत्पाद सामाजिक चरित्र प्रदान करता है। प्रत्येक वस्तु हजारों मजदूरो के सामाजिक का परिणाम होती है।

किन्तु पूंजी उत्पादन को एक अत्यन्त प्रतिरोधी रूप मे सामाजिक चरित्र प्रदान करती है। उत्पादन का उत्तरोत्तर समाजीकरण पूंजीपतियो के हित मे होता है। पूंजीपतियो का उद्देश्य अपना मुनाफा बढाना मात्र होता है। उत्पादन के जिन साधनो मे लाखो लोग काम करते हैं, वे पूंजीपतियो की निजी सम्पत्ति होते हैं। फलस्वरूप लाखो लोगो के श्रम का फल मुट्ठीभर पूंजीपतियों की सम्पत्ति बन जाता है।

पूंजीवाद का बुनियादी अन्तर्विरोध अलग-अलग उद्यमों के उत्पादन सगठन और सम्पूर्ण समाज के उत्पादन मे व्याप्त अराजकता के बीच मुख्य रूप से परिलक्षित होता है। प्रत्येक पूंजीपति अधिकतम मुनाफा प्राप्त करने की कोशिश करता
नाफे की ऊंची दर प्राप्त करने की इच्छा से पूंजीपति सम्पूर्ण समाज की
यकताओ पर बिना ध्यान दिये उत्पादन का विस्तार करता है (या अन्य
लाभदायक उद्यमो मे अपनी पूंजी हस्तान्तरित करने के उद्देश्य से उत्पादन
नी करता है)। उद्योग की शाखाओ के पारस्परिक आनुपातिक सम्बन्धो
डा-मरोडा जाता है जिसके कारण सामाजिक उत्पादन की पूर्ण बिक्री कठिन
सम्भव हो जाती है।

पूंजीवाद का बुनियादी अन्तर्विरोध पूंजीवाद मे उत्पादन के असीमित
र की निहित प्रवृत्ति और पूंजीवाद द्वारा मुख्य उपभोक्ताओ (मेहनतकश
) की क्रय-शक्ति पर लादी गयी सीमाओ मे अन्तर्विरोध के रूप मे जाहिर
है।

उत्पादन के असीमित विकास की प्रवृत्ति का मुख्य कारण पूंजीवाद का
दी आर्थिक नियम—अधिशेष मूल्य का नियम—है। मुनाफे की आकांक्षा
त होकर प्रत्येक पूंजीपति पूंजी-सचय करता है, उत्पादन का विस्तार करता
नालाजी को उन्नत करता है, नयी मशीनें लगाता है, अधिक मजदूरों को
पर लगाता है और और नयी वस्तुओ का उत्पादन करता है। किन्तु उत्पादन
का असीमित विस्तार के साथ उपभोग मे अनुकूल विस्तार होना कोई जरूरी नहीं
है। अधिकतम मुनाफे की आकांक्षा पूंजीपतियो को मजूरी घटाने और शोषण की
मात्रा बढ़ाने के लिए बाध्य करती है, लेकिन अधिक शोषण और मेहनतकश जनता
की दरिद्रता का अर्थ प्रभावी मांग और वस्तुओ के बेचने के अवसर मे सापेक्षिक
कमी है। इन सबका नतीजा होता है अत्युत्पादन का आर्थिक सकट।

पूंजीवाद का बुनियादी अन्तर्विरोध सर्वहारा और पूंजीपति के पारस्परिक वर्ग-विरोध के रूप मे भी दृष्टिगोचर होता है। पूंजीवाद ने पूंजीपतियो के हाथो मे केन्द्रित उत्पादन के साधनो और श्रम-शक्ति के अतिरिक्त अन्य साधनो से विहीन प्रत्यक्ष उत्पादको को एक-दूसरे से अलग कर दिया है। अत्युत्पादन के सकट के

दौरान यह अलगाव काफी स्पष्ट हो जाता है। उस समय एक ओर तो उत्पादन के साधनों और वस्तुओं की अत्यधिक बहुलता होती है, तो दूसरी ओर फालतू श्रम-शक्ति तथा निर्वाह के साधनों से विहीन बेरोजगार जन-समूह होते हैं।

पूंजीवादी चक्र और उसके दौर

समय-समय पर अत्युत्पादन का संकट आता रहता है। पहला औद्योगिक संकट इंगलैंड में १८२५ में आया। १८४७-४८ का संकट पहला विश्व आर्थिक संकट था। इसकी चपेट में अमरीका और कई यूरोपीय देश आये। १९वीं सदी का सबसे गम्भीर संकट १८७३ में आया। इस संकट ने पूर्व-एकाधिकार से एकाधिकारी पूंजीवाद—साम्राज्यवाद—की ओर संक्रमण का सूत्रपात किया। २०वीं शताब्दी का सबसे भयंकर संकट १९२९-३३ के दौरान आया।

एक संकट से दूसरे संकट के बीच के काल को चक्र कहते हैं और इसके चार दौर होते हैं: संकट, मंदी, पुनर्प्राप्ति और उत्कर्ष।

संकट चक्र का मुख्य दौर है। इस दौर में वस्तुओं का अधिक उत्पादन होता है, कीमतों में तेजी के साथ गिरावट आती है, दिवालियापन की अनगिनत घटनाएं होती हैं, उत्पादन में स्पष्ट कटौती होती है, बेरोजगारी बढ़ती है, मजूरी घटती है, वस्तुओं, मशीनों और उद्यमों को जान-बूझकर नष्ट कर दिया जाता है और घरेलू तथा विदेश व्यापार में कमी आती है। इस दौर में उत्पादन की बढ़ती हुई सम्भावनाओं और सापेक्ष रूप से घटी प्रभावी मांग का अन्तर्विरोध विस्फोटक एवं विध्वंसकारी रूपों में जाहिर होता है। उत्पादक शक्तियों का अत्यन्त विकसित स्तर उत्पादन के पूंजीवादी सम्बन्धों के तंग चौखटे में समा नहीं पाता। उत्पादन के पूंजीवादी सम्बन्धों का तंग चौखटा उत्पादक शक्तियों के भावी विकास के मार्ग में बाधक होता है।

दिवालियापन, बहुत से उद्यमों की बर्बादी और उत्पादक शक्तियों का आंशिक तौर पर नष्ट किया जाना—इन कुछ तरीकों से संकट के दौरान उत्पादन की मात्रा समाज की तत्कालीन प्रभावी मांग के स्तर पर बलात लायी जाती है। इसके बाद संकट से मंदी की ओर संक्रमण प्रारम्भ होता है।

मंदी चक्र का दूसरा दौर है। इस दौर में संकट की गहराई रुक जाती है, लेकिन औद्योगिक उत्पादन तब भी जड़ अवस्था में रहता है, वस्तुओं की कीमतें बहुत नीचे स्तर पर रहती हैं, व्यापार मंद रहता है तथा मुनाफे की दर बहुत कम होती है। बेरोजगारी और मजूरी संकट वाले स्तर पर ही रहती है। वस्तुओं के संचित भंडार को आंशिक तौर पर नष्ट कर दिया जाता है और बाकी को घटी कीमतों पर बेच दिया जाता है। पूंजीवादी उत्पादन तब तक मंदी के दौर में रहता

...ज प्रतिद्वंद्विता और बाजार तथा कच्चे माल के स्रोतों के लिए संघर्ष ...नियों को उद्योग को पुनर्सज्जित करने और उनकी अचल पूजी के नवीकरण ..., प्रोत्साहित नहीं करते। वे उत्पादन को सस्ता करने और सकट के फल- ...कम कीमतों पर भी उसे लाभदायक बनाने के लिए सब प्रकार के तकनीकी ...ों का इस्तेमाल करते हैं। उत्पादन के विस्तार के प्रोत्साहन के साथ पूजीगत ...ों के लिए माग बढती है। शनै-शनै चक्र के दूसरे दौर – पुनर्प्राप्ति की ओर ...के लिए पूर्व-स्थितिया तैयार हो जाती हैं।

पुनर्प्राप्ति के दौरान सफलतापूर्वक सकट को पार करने वाले उद्यम अपनी पूजी का नवीकरण करते हैं और धीरे-धीरे उत्पादन का विस्तार प्रारम्भ ...। उत्पादन की मात्रा सकट प्रारम्भ होने के समय के स्तर पर पहुच कर आगे बढ जाती है। व्यापार मे सुधार होता है, वस्तुओं की कीमतें बढती हैं, ... बढता है और धीरे-धीरे बेरोजगारी घटती है।

जब पूजीवादी उत्पादन की मात्रा सकट के पूर्व प्राप्त अधिकतम उत्पादन ...त्रा से भी अधिक हो जाती है तो उत्कर्ष (तेजी) के दौर का प्रारम्भ ...।

उत्कर्ष (तेजी) चक्र का अन्तिम दौर है। इस दौर मे उत्पादन के ...न विकास की प्रवृत्ति पूरी तरह परिलक्षित होती है। एक बार फिर एक- ... आगे बढने की भावना से प्रेरित होकर पूजीपति उत्पादन का विस्तार ..., नयी निर्माण योजनाए प्रारम्भ होती हैं और बाजार मे वस्तुओं की ...धिक मात्रा आती है। उत्पादन का तीव्र विकास प्रभावी माग से आगे ... जाता है। छिपे हुए रूप मे प्रारम्भ होकर अत्युत्पादन धीरे-धीरे बढता है ...स्तुओं की फालतू मात्राए जमा होती जाती है। तेजी के इस उच्च स्तर पर ...क यह पता लगता है कि बाजार मे जरूरत से अधिक वस्तुएं पडी हुई हैं, ... लिए कोई प्रभावी माग नही है और फिर कीमतें गिरने लगती हैं तथा ...ुरू हो जाता है। पुन. पूरा चक्र एक बार फिर चलता है।

अत: पूजीवादी उत्पादन निर्बाध नही, बल्कि तीव्र उतार-चढाव से होकर ...त होता है। जिस चक्रीय रूप मे पूजीवादी उत्पादन विकसित होता है, वह ...क शक्तियों और उत्पादन के सम्बन्धों के तीव्र अन्तर्विरोधों का परिणाम ...वलन्त प्रमाण है। यह स्पष्ट कर देता है कि पूजीवाद स्वय अपने विकास के ... बाधाए खडी करता है और अविराम गति से अपने पतन की ओर बढता है।

पूजीवादी देशो मे औद्योगिक सकट के अतिरिक्त कृषि संकट, यानी ... वस्तुओं के अत्युत्पादन का सकट आता है।

आम तौर पर कृषि सकट दीर्घकालिक होते हैं। इसका कारण उद्योग की अपेक्षा कृषि का अधिक पिछड़ापन है। भूमि पर निजी एकाधिकार कृषि के क्षेत्र में पूजी के मुक्त प्रवाह के मार्ग मे रोड़े अटकाता है। कृषि के क्षेत्र मे लगी अचल पूंजी का पुनर्नवीकरण नही हो पाता और कृषि संकट लम्बे काल तक चलता है। साथ ही छोटे वस्तु-उत्पादक सकट के दौरान उत्पादन के पुराने पैमाने को बनाये रखने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करते हैं जिससे वे भूमि पर अपना अधिकार कायम रख सकें। वे कभी-कभी अत्यधिक कृषि उत्पादन को बढाने की भी कोशिश करते हैं और इस तरह सकट की समाप्ति नही होने देते।

कृषि सकट का मुख्य बोझ किसानो के एक बहुत बड़े समूह पर पड़ता है और उन पर बर्बादी ढाता है।

सकट और पूजीवाद के अन्तर्विरोधों का तीव्र होना

सकटों से स्पष्ट हो जाता है कि पूजीवाद ने जिन शक्तियों को जन्म दिया है, उनको वह नियंत्रित नही कर सकता। प्रत्येक आर्थिक संकट के उपरान्त उत्पादन मे बड़ी कटौती और घरेलू तथा विदेश व्यापार में कमी की जाती है।

उदाहरण के लिए, ब्रिटेन मे १६२६-३३ के संकट के दौरान कोयले का उत्पादन ३५ वर्ष पूर्व के स्तर पर, इस्पात का उत्पादन २३ वर्ष पूर्व के स्तर पर, लोहे का उत्पादन ७६ वर्ष पहले के स्तर पर और विदेश व्यापार ३६ वर्ष पहले के स्तर पर चला गया।

संकट काल के दौरान बहुत धन नष्ट किया जाता है, जबकि उसी समय दूसरी ओर मेहनतश जनता के बहुत बडे समूह की अत्यन्त आवश्यक जरूरतें भी पूरी नही की जाती। १६२६-३३ के दौरान अमरीका मे ६२, ब्रिटेन मे ७२ और जर्मनी मे २८ धमन भट्टियां तोड़ दी गयीं। १६३३ मे अमरीका मे १०४ लाख एकड कपास नष्ट कर दी गयी।

सकट के दौरान समाज की सबसे महत्वपूर्ण उत्पादक शक्ति—श्रम शक्ति बर्बाद होती है। सकट लाखो लोगो का रोजगार लेता है। मेहनतकशों को बलात लादी गयी बेकारी और उद्देश्यविहीनता के अस्तित्व को स्वीकार करने के लिए मजबूर कर देता है।

सकट सर्वहारा वर्ग और पूजीपति वर्ग, कृषक समुदाय और उसके शोषक भूस्वामी समुदाय, महाजन समूह, इत्यादि के वर्ग अन्तर्विरोध को भड़काता है। सकट के दौरान सर्वहारा वर्ग को उन बहुत-से फायदो से हाथ धोना पड़ता है जिन्हें उसने पूंजीपतियो के विरुद्ध सघर्ष कर प्राप्त किया है।

सर्वहारा वर्ग के व्यापक तबके संकट द्वारा लायी गयी अपार दरिद्रता से पीड़ित होकर वर्ग-चेतना और क्रान्तिकारी संकल्प प्राप्त कर लेते हैं। मजदूर इस निष्कर्ष पर आते हैं कि गरीबी और भुखमरी से पिण्ड छुड़ाने का एकमात्र मार्ग वर्तमान आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था को बदलना है, यहा तक कि मेहनतकश जनता के पिछड़े हुए तबके भी शोषकों के विरुद्ध संघर्ष की आवश्यकता समझने लगते हैं।

इन आर्थिक संकट स्पष्ट रूप से पूंजीवाद से समाजवाद की ओर क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता बतलाते हैं। यह परिवर्तन पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्विरोधों को समाप्त कर समाज की उत्पादक शक्तियों के असीमित विकास के लिए मार्ग प्रशस्त कर देता है।

ख. एकाधिकारी पूजीवाद—साम्राज्यवाद

१९वी सदी के तृतीय चरण के दौरान पूजीवाद अपनी चरम और अन्तिम अवस्था—साम्राज्यवाद के रूप मे सामने आया। मुक्त प्रतिद्वन्द्विता का एकाधिकार द्वारा प्रतिस्थापन इस अवस्था को अन्य अवस्थाओ से अलग करता है। इस काल में उत्पादक शक्तियां बहुत तेजी से विकसित हुईं। बेसीमर, मार्टिन और टामस द्वारा लोहा और इस्पात उद्योग मे लोहा पिघलाने के नये तरीके प्रारम्भ किये गये। फलस्वरूप इस्पात के बडे-बडे कारखानों का जन्म हुआ। उस काल मे कई बहुत महत्वपूर्ण आविष्कार (१८६७ मे डाइनेमो, १८७७ मे अन्तर्दहन इंजिन, १८८३-१८८५ मे भाप-टर्बाइन) हुए, जिन्होने उद्योग और परिवहन के विकास को तेज किया। नये प्रकार की चालन-शक्ति के कारण परिवहन के नये तरीके आये, जैं १८७९ मे बिजली से संचालित ट्राम, १८८५ मे मोटरगाडियां, १८९१ मे डिज इंजिन और १९०३ में हवाई जहाज बने। विज्ञान और टेक्नालाजी की तरक ने बिजली के उत्पादन और इस्तेमाल के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया।

प्रारम्भ मे हल्के उद्योगो का ही बोलबाला था, लेकिन १९वी सदी के तृ चरण मे भारी उद्योग सामने आये। भारी उद्योग की शाखाए इतनी तेजी से कि १८७० की तुलना मे १९०० तक विश्व का इस्पात उत्पादन ५६ गुना, का उत्पादन २५ गुना और कोयले का उत्पादन तिगुना हो गया। बडे पैमाने के उत्पादन की ओर १८७३ के आर्थिक सकट के बाद तेजी से प्रगति हुई।

उत्पादक शक्तियो और उत्पादन के विकास के साथ पूंजीवाद के अन्तर्विरोध दिनोंदिन तीव्र होते गये। अत्युत्पादन के आर्थिक सकट बार-बार आने लगे और वे विध्वंसकारी भी होते गये। बेरोजगारी निरन्तर बढती गयी। पूंजी-वादी राज्यो में परस्पर युद्ध होने लगे, जिसके कारण मेहनतकश जनता को अकथनीय यातनाएं सहनी पडी। यद्यपि मेहनतकश जनता की स्थिति बदतर होती

गयी, तथापि पूजीपतियो की समृद्धि अभूतपूर्व तेजी से बढती गयी। परिणामस्वरूप मजदूर वर्ग का आर्थिक और राजनीतिक संघर्ष तेज हो गया।

मजदूर आन्दोलन के अन्दर पूजीपति वर्ग के समर्थकों ने घोषणा की कि पूजीवादी दुनिया मे एकाधिकारो की स्थापना के कारण पूंजीवाद के विकास का नया युग प्रारम्भ हो गया और पूजीवाद जनहित-विरोधी नहीं रहा, अपितु वह "संगठित", "संकटो से मुक्त" और "शान्तिपूर्ण" हो गया। कौटस्की और हिल्फर्डिग ने कहा कि विभिन्न देशो के पूजीपति पारस्परिक समझौते द्वारा उत्पादन की अराजकता और युद्ध को दूर कर सकते हैं। इन सभी सिद्धान्तो का एकमात्र उद्देश्य पूजीवाद के अन्तर्विरोध पर परदा डालना और मजदूर वर्ग को क्रान्तिकारी संघर्ष से विमुख करना था।

मजदूर वर्ग के सिद्धान्तकारो के लिए जरूरी हो गया कि २०वी सदी के प्रारम्भ मे पूजीवाद के अन्तर्गत आये विशिष्ट तत्वो का समुचित अध्ययन कर साम्राज्यवाद का एक सुस्पष्ट वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करें। पूजी के जुए से मजदूर वर्ग को मुक्त करने के लिए उसे सही सैद्धान्तिक हथियार देना जरूरी हो गया।

लेनिन ने यह कार्य अपनी अमर रचना **साम्राज्यवाद, पूजीवाद की चरम अवस्था** (१९१६) तथा कई अन्य रचनाओं द्वारा सम्पन्न किया। उन्होंने दिखलाया कि साम्राज्यवाद मे पूजीवाद के सभी बुनियादी तत्व मौजूद हैं। साम्राज्यवाद के अन्तर्गत उत्पादन के साधनों पर पूजीपतियो का निजी स्वामित्व और मेहनतकश जनता तथा पूजीपतियो के बीच शोषण के सम्बध भी विद्यमान हैं। वही वितरण व्यवस्था कायम रहती है जिसके अन्तर्गत कुछ लोगो के हाथो मे धन बढता जाता है और दूसरी ओर अन्य सब लोगो की स्थिति बदतर होती जाती है। पूजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग के बीच अमैत्रीपूर्ण सम्बध भी मौजूद रहते है।

फलस्वरूप पूजीवाद के सभी आर्थिक नियम (अधिशेष मूल्य का नियम, पूजीवादी संचय का सामान्य नियम, प्रतिद्वन्द्विता और उत्पादन की अराजकता का नियम, इत्यादि) काम करते है, हालांकि साम्राज्यवाद मे इन नियमो के परिचालन से कतिपय विशिष्ट लक्षण हमारे सामने आते है।

लेनिन द्वारा साम्राज्यवाद के विश्लेषण से स्पष्ट हो गया कि पूजीवाद की एकाधिकार वाली अवस्था के निम्नलिखित मूल आर्थिक लक्षण है "१) उत्पादन तथा पूजी का सकेन्द्रण विकसित होकर इतनी ऊची अवस्था मे पहुच गया है कि उसने एकाधिकारियो को जन्म दिया है। इन एकाधिकारियो की आर्थिक जीवन मे एक निर्णायक भूमिका है। २) बैंको की पूजी और उद्योगो की पूजी मिलकर एक

हो गयी हैं, और इस "वित्तीय पूंजी" के आधार पर एक वित्तीय अल्पतंत्र ने ज
लिया है। ३) पूंजी के निर्यात ने (जो माल के निर्यात से भिन्न है) असाधार
महत्व धारण कर लिया है। ४) अन्तर्राष्ट्रीय एकाधिकारी पूंजीवादी संघों क
निर्माण हुआ है। इन संघों ने दुनिया को आपस में बांट लिया है तथा सबसे ब
पूंजीवादी ताकतों के बीच सम्पूर्ण संसार का क्षेत्रीय विभाजन पूरा हो गया है।"[1]

---

१. व्ला. इ. लेनिन, "संकलित रचनाएं", खंड ११, पृष्ठ ११६ ।

अध्याय ७

साम्राज्यवाद की मूल आर्थिक विशेषताएं

१. उत्पादन का संकेन्द्रण और एकाधिकार

उत्पादन का संकेन्द्रण

साम्राज्यवाद से पहले मुक्त प्रतिद्वन्द्विता का ही बोलबाला था। मुक्त प्रतिद्वन्द्विता के काल में एक ही तरह की वस्तु कई पूंजीपति उत्पन्न करते थे। हर पूंजीपति कोशिश करता था कि वह वस्तु को ऐसी कीमत पर बेचे, जिससे अधिकतम मुनाफा प्राप्त हो सके। मुक्त प्रतिद्वन्द्विता के चलते कमजोर पूंजीपति बर्बाद हो गये, जबकि मजबूत पूंजीपति धनी हो गये और उत्पादन का विस्तार किया। एंगेल्स के अनुसार "मुक्त प्रतिद्वन्द्विता सबके खिलाफ चलायी जाने वाली सबकी लड़ाई (जिसका आधुनिक सभ्य समाज में बोलबाला है) की पूर्ण अभिव्यक्ति है।"[1] मुक्त प्रतिद्वन्द्विता कुछ लोगों को धनी बनाकर और अन्य लोगों को बर्बाद कर हजारों मजदूरों को काम पर लगाने वाले बड़े उद्यमों में उत्पादन को संकेन्द्रित करती है। अपने विकास के एक निश्चित चरण में उत्पादन का संकेन्द्रण एकाधिकार को जन्म देता है और साम्राज्यवाद की अवस्था में संकेन्द्रण अपने विकास की आखिरी अवस्था में पहुंच जाता है।

उदाहरण के लिए, जर्मनी में १८८२ में ५० से अधिक मजदूरों से काम लेने वाले उद्यमों में कुल काम पर लगे लोगों का २२ प्रतिशत, १८९५ में ३० प्रतिशत, १९०७ में ३७ प्रतिशत, १९२५ में ४७.२ प्रतिशत और १९३९ में ४९.९ प्रतिशत था। १९५५ में पश्चिम जर्मनी में ८७.१ प्रतिशत कुल रोजगार प्राप्त लोग उन उद्यमों में लगे थे जिनमें हर उद्यम ५० से अधिक मजदूरों से काम लेता

१. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, "आन ब्रिटेन", मास्को, पृष्ठ १०९।

था। अमरीका में १० [illegible] औद्योगिक उत्पादन करने वाले उद्यमों में [illegible] कुल [illegible] का [illegible] प्रतिशत लगा था। उनमें ३३.१ प्रतिशत [illegible] काम करते थे और अमरीका के कुल उत्पादन के [illegible] प्रतिशत [illegible] था। १९६९ में अमरीका में [illegible] प्रतिशत [illegible] था। [illegible] प्रतिशत मजदूर काम करते थे और कुल औद्योगिक उत्पादन का [illegible] प्रतिशत [illegible] था। १९६३ में अमरीका के २०० औद्योगिक कारपोरेशन कुल औद्योगिक उत्पादन का आधा उत्पादन करते थे और उनके पास कुल [illegible] का [illegible] प्रतिशत [illegible] था। सबसे बड़े १० कारपोरेशन [illegible] प्रतिशत [illegible] अमरीकी औद्योगिक उद्योग के कुल उत्पादन का [illegible] उत्पादन करते थे।

आज अमरीका की १०० बड़ी कम्पनियां और अन्य [illegible] देशों की १०० कम्पनियां विश्व के कुल पूंजीवादी उत्पादन के दो-तिहाई को नियंत्रित करती है।

पूंजी के संकेन्द्रण के अतिरिक्त पूंजी का केन्द्रीकरण भी होता है। जब कई अलग पूंजियों का एक बड़ी पूंजी में विलयन होता है और पूंजी की मात्रा बढ़ती है, तो हम कहते है कि पूंजी का केन्द्रीकरण हुआ है। केन्द्रीकरण समझौतों के फलस्वरूप (जैसे ज्वाइन्ट-स्टाक कम्पनियों का निर्माण) या जोर-जबरदस्ती (जैसे प्रतिद्वंद्विता के कठिन संघर्ष में बड़े पूंजीवादी उद्यम छोटे पूंजीवादी उद्यमों को बर्बाद कर देते है या उनको हड़प जाते है) के कारण होता है।

प्रतिद्वंद्विता प्रत्येक पूंजीपति को अपनी वस्तुओं को सस्ता करने के लिए बाध्य करती है। बड़े पूंजीपति ही वस्तुओं को सस्ता कर सकते है। प्रतिद्वंद्विता में न टिक पाने वाले छोटे उद्यम दिवालिया हो जाते है या किसी बड़े पूंजीपति के कब्जे में चले जाते है। यह प्रक्रिया निरन्तर जारी रहती है।

उत्पादन और पूंजी के संकेन्द्रण और केन्द्रीकरण के कारण मजदूरों की विशाल जनसंख्या बड़े उद्यमों में लग जाती है। इस कारण मजदूर वर्ग की एकता और पूंजी के विरुद्ध उनका संगठन सम्भव हो जाता है। मजदूर वर्ग जोरदार संघर्ष चलाने में सक्षम एवं शक्तिशाली ताकत बन जाता है। पूंजी और उत्पादन के संकेन्द्रण और केन्द्रीकरण के फलस्वरूप श्रम का बड़े पैमाने पर समाजीकरण होता है तथा मजदूरों और पूंजीपतियों के बीच वर्ग संघर्ष तेज हो जाता है।

उत्पादन के संकेन्द्रण के कारण प्रत्यक्ष रूप से एकाधिकार के रूप का जन्म होता है। बड़ी पूंजी वाले उद्यम प्रतिद्वंद्विता में एक-दूसरे को हरा नहीं पाते। इसलिए इन स्थितियों में बड़े पूंजीपतियों के लिए एकाधिकार के रूप बाजार और कच्चे माल के स्रोत में साझेदारी, कीमत

पूजीपतियों का चालू खाता देखते-देखते बड़े बैंक उनकी स्थिति के सम्बध मे जानकारी प्राप्त कर लेते है और उन पर नियत्रण रखते हैं। साख की उपलब्धि को आमान या कठिन बनाकर वे औद्योगिक पूजीपतियों को अपने अधिकार मे रखते है और उनके क्रियाकलापों का निर्देशन करते है।

अत. भुगतान के क्षेत्र में बैंक साधारण बिचौलिये से बढ़कर सर्वशक्तिमान वित्तीय केन्द्र हो गये है।

बैंको के सर्वशक्तिमान एकाधिकार के रूप मे परिवर्तित हो जाने के बा उत्पादन के सकेन्द्रण की प्रक्रिया तेज हो जाती है क्योकि बैंक एकाधिकार के सद (बड़े उद्यमों) को साख की सुविधाए प्रदान करने मे प्राथमिकता देते हैं। बैं एकाधिकार की प्रगति मे दिलचस्पी रखते हैं, इसलिए वे उनके शेयर भी खरीद हैं। वे पर्याप्त मात्रा मे शेयर खरीदकर एकाधिकार मे अपनी निर्णायक स्थिति बन लेते हैं।

वित्तीय पूजी

वित्तीय पूजी के चरित्र के सम्बध मे लेनिन ने लिखा: "उत्पादन का सकेन्द्रण, उससे उत्पन्न होने वाले एकाधिकार, बैंको का उद्योगो के साथ मिल जाना या उनका एक-दूसरे मे विलीन हो जाना—यह है वित्तीय पूजी के उत्थान का इतिहास और इस अवधारणा का सार।"[1]

बैंक उद्योग, व्यवसाय, परिवहन, बीमा और अन्य एकाधिकारो के शेयर खरीदकर उनके सह-स्वामी हो जाते हैं। औद्योगिक एकाधिकार भी सम्बद्ध बैंकों के शेयर खरीदते हैं। नतीजा यह होता है कि एकाधिकार बैंक और औद्योगिक पूजी एक सूत्र मे बध जाते हैं या परस्पर मिल जाते हैं। इस आधार पर नये प्रकार की पूजी—वित्तीय पूंजी का जन्म होता है।

बैंक पूंजी और औद्योगिक पूजी का मेल कई रूपो मे होता है। इसका बहुत स्पष्ट रूप व्यक्तिगत सम्मिलन है। जब एक ही लोग बैंक, उद्योग, व्यवसाय और अन्य एकाधिकार के प्रमुख होते हैं तभी यह सम्भव होता है। बैंक के मुख्य सचालक औद्योगिक एकाधिकार के प्रबन्ध मे घुम जाते हैं और औद्योगिक एकाधिकार के प्रतिनिधि बैंक की सचालक परिषद में महत्वपूर्ण स्थानों पर आसीन हो जाते हैं।

अमरीका मे ४०० उद्योगपतियों और बैंक मालिको का एक छोटा समूह २५० बड़े कारपोरेशनो के डायरेक्टर की १,२०० जगहो पर अधिकार रखता है। लारेन्स राकफेलर इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। वे १० से भी अधिक कारपोरेशनों के डायरेक्टर हैं।

पूंजीपतियों का चालू खाता देखते-देखते बड़े बैंक उनकी स्थिति के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त कर लेते हैं और उन पर नियंत्रण रखते हैं। साख की उपलब्धि को आसान या कठिन बनाकर वे औद्योगिक पूंजीपतियों को अपने अधिकार मे रखते है और उनके क्रियाकलापो का निर्देशन करते हैं।

अत: भुगतान के क्षेत्र मे बैंक साधारण बिचौलिये से बढ़कर सर्वशक्तिमान वित्तीय केन्द्र हो गये हैं।

बैंको के सर्वशक्तिमान एकाधिकार के रूप में परिवर्तित हो जाने के कारण उत्पादन के सकेन्द्रण की प्रक्रिया तेज हो जाती है क्योकि बैंक एकाधिकार के सदस्य (बड़े उद्यमो) को साख की सुविधाएं प्रदान करने में प्राथमिकता देते हैं। बैंक एकाधिकार की प्रगति मे दिलचस्पी रखते हैं, इसलिए वे उनके शेयर भी खरीदते हैं। वे पर्याप्त मात्रा मे शेयर खरीदकर एकाधिकार मे अपनी निर्णायक स्थिति बना लेते हैं।

वित्तीय पूंजी

वित्तीय पूंजी के चरित्र के सम्बध में लेनिन ने लिखा: "उत्पादन का सकेन्द्रण, उससे उत्पन्न होने वाले एकाधिकार, बैंकों का उद्योगो के साथ मिल जाना या उनका एक-दूसरे में विलीन हो जाना—यह है वित्तीय पूंजी के उत्थान का इतिहास और इस अवधारणा का सार।"[1]

बैंक उद्योग, व्यवसाय, परिवहन, बीमा और अन्य एकाधिकारो के शेयर खरीदकर उनके सह-स्वामी हो जाते हैं। औद्योगिक एकाधिकार भी सम्बद्ध बैंकों के शेयर खरीदते हैं। नतीजा यह होता है कि एकाधिकार बैंक और औद्योगिक पूंजी एक सूत्र में बध जाते है या परस्पर मिल जाते हैं। इस आधार पर नये प्रकार की पूंजी—वित्तीय पूंजी का जन्म होता है।

बैंक पूंजी और औद्योगिक पूंजी का मेल कई रूपों मे होता है। इसका बहुत स्पष्ट रूप व्यक्तिगत सम्मिलन है। जब एक ही लोग बैंक, उद्योग, व्यवसाय और अन्य एकाधिकार के प्रमुख होते हैं तभी यह सम्भव होता है। बैंक के मुख्य सचालक औद्योगिक एकाधिकार के प्रबन्ध में घुस जाते हैं और औद्योगिक एकाधिकार के प्रतिनिधि बैंक की सचालक परिषद मे महत्वपूर्ण स्थानो पर आसीन हो जाते हैं।

अमरीका मे ४०० उद्योगपतियो और बैंक मालिको का एक छोटा समूह २५० बड़े कारपोरेशनों के डायरेक्टर की १,२०० जगहों पर अधिकार रखता है। लारेन्स राकफलेर इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। वे १० से भी अधिक कम्पनियों के डायरेक्टर हैं।

---

१. व्ला. इ. लेनिन, "संग्रहीत रचनाएं", खंड २२, पृष्ठ २२६।

पूजीपतियों का चालू खाता देखते-देखते बड़े बैंक उनकी स्थिति के सम्बध मे जानकारी प्राप्त कर लेते है और उन पर नियत्रण रखते हैं। साख की उपलब्धि को आसान या कठिन बनाकर वे औद्योगिक पूजीपतियों को अपने अधिकार मे रखते है और उनके क्रियाकलापो का निर्देशन करते है।

अत. भुगतान के क्षेत्र मे बैंक साधारण बिचौलिये से बढकर सर्वशक्तिमान वित्तीय केन्द्र हो गये हैं।

बैंको के सर्वशक्तिमान एकाधिकार के रूप में परिवर्तित हो जाने के कारण उत्पादन के सकेन्द्रण की प्रक्रिया तेज हो जाती है क्योंकि बैंक एकाधिकार के सदस्य (बडे उद्यमो) को साख की सुविधाए प्रदान करने मे प्राथमिकता देते हैं। बैंक एकाधिकार की प्रगति मे दिलचस्पी रखते हैं, इसलिए वे उनके शेयर भी खरीदते है। वे पर्याप्त मात्रा मे शेयर खरीदकर एकाधिकार मे अपनी निर्णायक स्थिति बना लेते हैं।

वित्तीय पूजी

वित्तीय पूजी के चरित्र के सम्बध मे लेनिन ने लिखा: "उत्पादन का सकेन्द्रण, उससे उत्पन्न होने वाले एकाधिकार, बैंको का उद्योगो के साथ मिल जाना या उनका एक-दूसरे मे विलीन हो जाना—यह है वित्तीय पूजी के उत्थान का इतिहास और इस अवधारणा का सार।"[1]

बैंक उद्योग, व्यवसाय, परिवहन, बीमा और अन्य एकाधिकारो के शे खरीदकर उनके सह-स्वामी हो जाते हैं। औद्योगिक एकाधिकार भी सम्बद्ध बैं के शेयर खरीदते हैं। नतीजा यह होता है कि एकाधिकार बैंक और औद्योगिक पू एक सूत्र मे बध जाते है या परस्पर मिल जाते है। इस आधार पर नये प्रकार पूजी—वित्तीय पूंजी का जन्म होता है।

बैंक पूजी और औद्योगिक पूजी का मेल कई रूपो मे होता है। इसका बहु स्पष्ट रूप व्यक्तिगत सम्मिलन है। जब एक ही लोग बैंक, उद्योग, व्यवसाय और अन्य एकाधिकार के प्रमुख होते है तभी यह सम्भव होता है। बैंक के मुख्य सचालक औद्योगिक एकाधिकार के प्रबन्ध मे घुस जाते हैं और औद्योगिक एकाधिकार के प्रतिनिधि बैंक की सचालक परिषद मे महत्वपूर्ण स्थानो पर आसीन हो जाते हैं।

अमरीका मे ४०० उद्योगपतियो और बैंक मालिको का एक छोटा समूह २५० बडे कारपोरेशनो के डायरेक्टर की १,२०० जगहो पर अधिकार रखता है। लारेन्स राकफलेर इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। वे १० से भी अधिक कम्पनियो के डायरेक्टर हैं।

---

१. व्ला. इ. लेनिन, "सगृहीत रचनाएं", खंड २२, पृष्ठ २२६।

१६० जगहों पर है। इन कम्पनियों की शाखाओं और अनुपंगी ... सम्पूर्ण समूह पर अधिकार है।

... बहुत बड़े बैंक डियूट्स्चे बैंक के ५४ प्रतिनिधि द्वितीय विश्व युद्ध ... कम्पनियों में डायरेक्टर की ७०७ जगहों पर बैठे थे। १९५८ ... प्रतिनिधि पश्चिम जर्मनी की १२६ बड़ी कम्पनियों की ६६२ ... आसीन थे। बैंक की सचालक परिषद के अध्यक्ष हरमन ऐब्स अन्य ... कम्पनियों तथा औद्योगिक संस्थाओं की सलाहकार समितियों ... ४० जगहों पर हैं। हिटलर के शासन-काल में वे ऐसी ४२ जगहों ...

... अल्पतंत्र का आधिपत्य वित्तीय पूंजी की शक्ति की मूर्त अभि-

... और वित्तीय पूंजी के विकास के फलस्वरूप बड़े बैंक मालिकों ... का एक छोटा मंडल बन जाता है। इस मंडल का प्रभाव देश के सम्पूर्ण आर्थिक और राजनीतिक जीवन पर रहता है। इस तरह वित्तीय अल्पतंत्र (यानी थोड़े-से धनपतियों की शक्ति और आधिपत्य) का उदय होता है। अर्थव्यवस्था ... शाखाओं और पूंजीवादी देशों के राजनीतिक यत्र पर पूरी तरह ... का कब्जा हो जाता है।

... की अर्थव्यवस्था में निर्णायक भूमिका आठ वित्तीय समूहों— ...र, ड्यूपौन्ट, मेलान, दी बैंक आफ अमरीका, दी शिकागो बैंक, दी ...और दी फर्स्ट नेशनल सिटी बैंक की है। १९५५ में २१,८५,००० ... कुल पूंजी पर इन समूहों का नियंत्रण था। इनमें सबसे बड़ा समूह ...राकफेलर का है। १९५५ में मारगन के प्रभाव क्षेत्र के बैंकों और ... कुल पूंजी ६,५३,००० डालर थी। इनके अन्तर्गत ५ सबसे बड़े बैंक,

रेलरोड कम्पनिया, कई टेली-कम्युनिकेशन एकाधिकार, दी यू. एस. स्टील
ोरेशन, जेनरल इलेक्ट्रिक, आदि थे। उसी वर्ष राकफेलर के प्रभाव क्षेत्र के
ांत विशाल स्टैंन्डर्ड आयल एकाधिकार, रेलरोड, इस्पात और अन्य एकाधिकार
जितने बैंक और कारपोरेशन थे उनकी कुल पूंजी ६,१४,००० लाख डालर
अमरीका की जनसख्या मे १० लाख डालर से अधिक की सम्पत्ति वाले सिर्फ
तिशत हैं, लेकिन सारे देश की कुल सम्पत्ति का ६० प्रतिशत उनके नियत्रण
।

वड़े वित्तीय समूहों के अधिकार में पूंजी
(००० मिलियन डालर में)

	निजी पूंजी	नियत्रित पूंजी
...गन	७.०	६५.३
...फेलर	३.५	६१.४
...न्ट	४.७	१६.०
...न	३.८	१०.५

निजी पूंजी

नियत्रित पूंजी
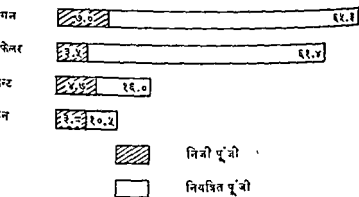
ब्रिटेन की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे आठ वित्तीय समूहों की ही निर्णायक
ा है। वहा के मुख्य उद्योग उनके नियत्रण मे हैं और ब्रिटेन के भूतपूर्व
विशो को आर्थिक रूप से जकड़े हुए हैं।

अन्य पूजीवादी देशो मे भी इसी तरह वित्तीय अल्पतत्र का बोलबाला है।

होल्डिंग की व्यवस्था द्वारा वित्तीय अल्पतत्र आर्थिक क्षेत्र पर कब्जा जमाते
हैं। यह व्यवस्था इस प्रकार काम करती है : एक बड़ा वित्तीय साधन सम्पन्न
पूंजीपति (या उनका एक समूह) अपने नियत्रक हित या अन्य तरीके से मुख्य
ट-स्टाक कम्पनी के ऊपर नियत्रण पा लेता है। यह "मूल कम्पनी" होती है।
म्पनी अन्य कम्पनियो के शेयर प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार नियत्रक हित
पर वह "अनुजात कम्पनियो" पर अधिकार कर लेती है। इन अनुजात कम्प-
के द्वारा अन्य कम्पनियो पर नियत्रण प्राप्त कर लिया जाता है। होल्डिंग की
वस्था के द्वारा १ अरब डालर की पूजी वाला कोई पूजीपति कई गुनी ज्यादा

ग्वाद के पूर्व देशों के पारस्परिक आर्थिक सम्बंध के मुख्य रूप
और वस्तु निर्यात थे। साम्राज्यवाद के अन्तर्गत विश्व व्यापार का
फैलाव होता है और पूंजी निर्यात अधिक महत्वपूर्ण हो
जाता है। पूंजी निर्यात से चन्द बड़े साम्राज्यवादी देश
पूंजीवादी दुनिया के एक बड़े भाग का शोषण करते हैं।

कार का बोलबाला होने पर काफी विकसित पूंजीवादी देशों में
इकट्ठा हो जाती है। अगर एकाधिकारी अपनी पूंजी का इस्तेमाल
ा के जीवमान के स्तर को ऊंचा उठाने और कृषि को आधुनिक
रें, तो निस्सदेह कोई "फालतू" पूंजी नहीं रहेगी। इस अवस्था में
ाद नहीं रहेगा। पूंजीपतियों का उद्देश्य अपनी पूंजी को इस तरह
हे अधिकतम मुनाफा प्राप्त हो।

ा दो रूपों—ऋण पूंजी और उत्पादक पूंजी—में बाहर निर्यात
पूंजी का निर्यात तब होता है जब किसी अन्य देश की सरकार या
ा दिया जाता है। ऋण प्राप्त करने वाले देश ब्याज देते हैं। ऋणी
द्वारा उत्पन्न अधिशेष मूल्य पूंजी निर्यात करने वाले देश में ब्याज
ाता है।

ा पूंजी का निर्यात तब होता है जब पूंजीपति दूसरे देशों में औद्यो-
ार्ग आदि का निर्माण करते हैं। मान लें कि किसी लैटिन अमरीकी
बनाने के लिए अमरीका में एक ज्वायन्ट-स्टाक कम्पनी बनती है।
ेयर अमरीकी पूंजीपति खरीदते हैं। शेयर की बिक्री से प्राप्त पूंजी
ब्ध देश में तेल कूप बनाने के लिए होता है, किन्तु तेल कूपों से
ल्डरों (यानी अमरीकी पूंजीपतियों) को मिलता है। दोनों स्थितियों
का उद्देश्य अधिकतम एकाधिकार मुनाफा प्राप्त करना है।

सामान्यता आर्थिक दृष्टि से अविकसित देशों ...होती है, क...
न देशों के पास बहुत कम पूजी होती है, उनकी जमीन सस्ती होती है। फलस्वरूप वहां पूजी
की बहुलता होती है और मजूरी की दर कम होती है। अभी अफ्रीका और मध्यपूर्व के देशों को जोर-
ा काफी लाभदायक होता है। औद्योगिक रूप से विकसित देशों को भी पूजी
से पूजी निर्यात हो रहा है। पूजी का निर्यात और आयात करने वाले देशो के लिए इसके
ति होता है। पूजी का निर्यात और आयात करने वाले देशो के लिए इसके
कर परिणाम होते है।

पूजी का आयात करने वाले देश मे पूजीवाद के अन्तर्विरोधो—जनता की
रिद्रता और बर्बादी, भूमि और अन्य प्रकार के राष्ट्रीय धन के अपव्यय सहित
वरित पूजीवादी विकास होता है। वित्तीय पूजी अल्पविकसित देशों की अर्थव्यव-
थाओ को विकृत करती है, फलस्वरूप उन देशो मे मुख्यतः निर्यात के लिए खान
उद्योग और कृषि का विकास होता है।

पूजी का निर्यात करने वाले देशों के लिए इसके दो नतीजे होते हैं। एक
ओर ये देश अपनी धनराशि मे वृद्धि करते हैं, यानी विदेश मे स्थित अपने उद्यमो
से मुनाफे के रूप मे या ऋण पर ब्याज के रूप मे अधिशेष मूल्य प्राप्त करते हैं।
दूसरी ओर पूजी निर्यात के कारण स्वदेश मे विनियोग की सम्भावनाएं कम हो
जाती हैं।

पूजी निर्यात व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बधो को जन्म देता है।
इन व्यापक सम्बधों का अर्थ है आर्थिक रूप से अविकसित देशो का विकसित
देशो द्वारा शोषण।

पूजीवादी सिद्धान्तकार यह दिखलाने की कोशिश करते हैं कि साम्राज्य-
वाद के युग मे पूजी निर्यात अल्पविकसित देशो के लिए एक प्रकार की "सहायता"
और "वरदान" है। उपनिवेशों के विघटन का एक सिद्धान्त सामने रखा गया है।
संक्षेप मे इस सिद्धान्त का सार यह है : साम्राज्यवाद ने उपनिवेशो के आर्थिक विकास
को आगे बढाया है, महानगरो पर उनकी निर्भरता कम की है। इस सिद्धान्त का
उद्देश्य पूजी निर्यात के साम्राज्यवादी चरित्र पर परदा डालना है। वास्तविकता
यह है कि पूजी निर्यात उपनिवेशों के विघटन को प्रेरित नही करता, बल्कि कुछ
देशों द्वारा अन्य देशो को गुलामी की जजीर मे जकड़े रहने का साधन है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पूजी निर्यात की कई नयी विशेषताएं सामने
आयी। यूरोप और एशिया के अनेक देशो के पूजीवादी चगुल से मुक्त हो जाने के
कारण पूजीवादी विनियोग का क्षेत्र सकुचित हो गया।

पूजी का असम निर्यात काफी स्पष्ट हो गया। ब्रिटेन और फ्रास का पूजी
निर्यात काफी कम हो गया। दूसरी ओर अमरीका का पूजी निर्यात बढ़ा। १९४...

अमरीकी विदेशी पूजी विनियोग अन्य सभी पूजीवादी देशो के सम्मिलित पूजी निवेश मे अधिक था। १९३९-१९५५ की अवधि मे अमरीका का विदेशी विनियोग चार गुना बढा।

अमरीका सरकारी ऋण और साख के रूप मे लैटिन अमरीका, एशिया और अफ्रीका के अल्पविकसित देशो को तथा पश्चिमी यूरोप के ब्रिटेन, फ्रास, पश्चिम जर्मनी आदि विकसित औद्योगिक देशो को उत्तरोत्तर अधिक पूजी का निर्यात कर रहा है। अमरीका सम्पूर्ण पूजीवादी विश्व के वित्तीय शोषण का केन्द्र है।

राजकीय ऋण और साख का राजनीतिक और फौजी पहलुओ के अतिरिक्त आर्थिक पक्ष भी है।

पूजी निर्यात के माध्यम से अत्यन्त विकसित पूजीवादी देशो का अल्पतन्त्र पूजी आयात करने वाले देशो के सम्पूर्ण आर्थिक जीवन को अपने नियन्त्रण मे कर लेता है।

अनेक देश पूजी का निर्यात करते हैं। हर साम्राज्यवादी देश यह कोशिश करता है कि उसका पूजी निर्यात उन देशो को हो, जिनसे उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो। इस कारण न सिर्फ पूजीपतियो, बल्कि साम्राज्यवादी देशो के बीच प्रतिद्वन्द्विता और दुश्मनी होती है और समस्त पूजीवादी विश्व मे अन्तर्विरोध तीव्र हो जाते हैं।

पूजीपतियों के गठजोड़ के बीच विश्व का आर्थिक विभाजन

पूजीवादी देशो के एकाधिकार सर्वप्रथम घरेलू बाजार पर एकछत्र आधिपत्य कायम करने के लिए प्रयास करते हैं। वे घरेलू बाजार का विभाजन कर लेते हैं, कीमत को कृत्रिम रूप से ऊचे स्तर पर रखते हैं और अपार मुनाफा कमाते हैं। ऊची कीमतो को बनाये रखकर एकाधिकार विदेशी प्रतिद्वन्द्विता के मुकाबले घरेलू बाजार को सुरक्षित रखते हैं। इस उद्देश्य से ऊची चुगी लगायी जाती है। कभी-कभी कुछ वस्तुओ के आयात पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है। कई बार आयात चुगी वस्तुओ के मूल्य से भी अधिक होती है। इस तरह घरेलू बाजार पर एकाधिकार का आधिपत्य पक्का हो जाता है।

घरेलू बाजार सीमित होते हैं। वे विशाल कन्सर्नों द्वारा उत्पन्न वस्तुओ को खपा नही पाते। इसलिए एकाधिकार उन्हे विदेशी बाजारो मे बेचने के लिए अधिकाधिक प्रयास करते हैं। यहा प्रश्न उठता है कि जब ये बाजार भी आयात चुगियो द्वारा सुरक्षित कर लिये गये हो, तो ऐसा करना किस प्रकार सम्भव है?

आयात चुंगी से बचने के लिए वे पूंजी का ही निर्यात करते हैं। पूंजीपति अन्य देशों में कारखाने बनाते हैं और उनके बाजार को वस्तुओं से भर देते हैं। बाजार को वस्तुओं से भर कर भी पूंजीपति ऊंची आयात चुंगी से बचते हैं और विदेशी बाजारों पर कब्जा करते हैं। बाजार को वस्तुओं से पाटने का मतलब उन्हें कम कीमतों पर बेचना है। कभी-कभी वे वस्तुओं को उत्पादन लागत से भी कम कीमत पर निर्यात करते हैं। कम कीमतें प्रतिद्वन्द्वियों को बाजार से बाहर कर देती हैं और उसके बाद एकाधिकार कीमतें बढ़ा देते हैं।

विदेशी बाजार, कच्चे माल के स्रोत और पूंजी विनियोग के क्षेत्र के लिए विभिन्न एकाधिकारों के बीच उनके प्रभाव क्षेत्रों के रूप में विश्व का आर्थिक विभाजन होता है। अपने राज्य विशेष की सीमा के बाहर एकाधिकार के प्रसार से उत्पादन और पूंजी के संकेन्द्रण का एक नया और ऊंचा चरण आता है। इस चरण को लेनिन ने अतिएकाधिकार कहा है।

जब किसी उद्योग में कुछ ट्रस्ट या सिंडिकेट सारे विश्व के पैमाने पर निर्णायक स्थान प्राप्त कर लेते हैं तब अन्तर्राष्ट्रीय एकाधिकार के निर्माण की स्थितियां उत्पन्न की जाती हैं। बाजार और कच्चे माल के स्रोत के विभाजन, उत्पादन कोटा, मूल्य-नीति इत्यादि के सम्बंध में विभिन्न देशों के बड़े एकाधिकार परस्पर समझौता कर अन्तर्राष्ट्रीय एकाधिकार कायम करते हैं।

प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय एकाधिकारों का उदय १९वीं सदी के छठे और आठवें दशकों में हुआ। १९वीं सदी की समाप्ति के समय ४० और द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ (१९३९) के समय ३०० से अधिक अन्तर्राष्ट्रीय एकाधिकार थे। आजकल इनकी संख्या करीब ३५० है। पूंजीवादी देशों के बड़े एकाधिकार अन्तर्राष्ट्रीय एकाधिकार हो जाते हैं।

लेनिन ने बतलाया कि किस प्रकार प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व अमरीका और जर्मनी का सारे विश्व के पैमाने पर इलेक्ट्रिक इंजीनियरिंग पर एकाधिकार था। जर्मनी में जर्मन इलेक्ट्रिक कम्पनी (ए. ई. जी.) थी, जिसके उद्यम और शाखाएं यूरोप और अमरीका के कई देशों में फैली थीं। अमरीका में इलेक्ट्रिक इंजीनियरिंग पर जनरल इलैक्ट्रिक कम्पनी का एकाधिकार था। इसके उद्यम सम्पूर्ण अमरीका और यूरोप में फैले थे। १९०७ में विश्व के पैमाने पर प्रभाव क्षेत्र के वितरण के लिए इन एकाधिकारों के बीच समझौता हुआ। जर्मन कम्पनी को यूरोप के बाजार और एशियाई बाजार का एक भाग मिला, जबकि अमरीकी महादेश के बाजार पर अमरीकी कम्पनी का आधिपत्य हो गया।

प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व विश्व तैल बाजार का विभाजन अमरीकी स्टैन्डर्ड आयल और रायल डच शेल, एंग्लो-डच कम्पनी के बीच हुआ।

अन्तर्राष्ट्रीय एकाधिकार हथियार उत्पादन सहित उद्योग की समस्त शाखाओं पर आधिपत्य कायम कर लेते हैं। ब्रिटेन के विकरस आर्मस्ट्राग, फ्रांस के श्नीडर-क्रेसट और जर्मनी के क्रूप एक लम्बे समय तक परस्पर सम्बद्ध रहे हैं। इन फर्मों ने विश्व बाजार का आपस में बटवारा कर लिया और ऊंची कीमतें देने वालों को हथियार दिये। लड़ाई के दौरान भी इनके सम्बध नहीं टूटे।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद कई अन्तर्राज्यीय एकाधिकार बने। इनमें यूरोपियन कोल एण्ड स्टील कम्युनिटी (जिसके अधिकार में फ्रांस, पश्चिम जर्मनी, बेल्जियम, हालैंड, लक्जेमबर्ग और इटली के लोहा तथा इस्पात उद्योग हैं) यूरोपियन इकानामिक कम्युनिटी (कामन मार्केट) और यूरोपियन फ्री ट्रेड एसोसिएशन (ई. एफ. टी. ए.) सबसे शक्तिशाली हैं जिसमें सात देश—आस्ट्रिया, ब्रिटेन, डेनमार्क, नार्वे, पुर्तगाल, स्विटजरलैण्ड और स्वीडन है।

पूंजीवादी देशों के असम विकास के कारण अन्तर्राष्ट्रीय एकाधिकारों के पारस्परिक शक्ति सम्बध निरन्तर बदल रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय एकाधिकार के बनने का मतलब न तो विश्व के बटवारे के लिए होने वाले संघर्ष का अन्त है और न साम्राज्यवादी देशों में परस्पर शान्तिपूर्ण सहयोग की ओर संक्रमण ही है, अपितु यह संघर्ष के उग्रतर होने का सूचक है।

अत. पूंजी के निर्यात और अन्तर्राष्ट्रीय एकाधिकार के निर्माण के द्वारा वित्तीय पूंजी के बड़े-बड़े मालिक दुनिया को अपने बीच आर्थिक तौर पर बांट लेते हैं, यानी अलग-अलग प्रभाव क्षेत्र बना लेते हैं। विश्व के आर्थिक विभाजन के फलस्वरूप विश्व के क्षेत्रीय विभाजन के लिए संघर्ष शुरू हो जाता है।

विश्व का क्षेत्रीय विभाजन और उसके पुनर्विभाजन के लिए संघर्ष

साम्राज्यवाद की ओर संक्रमण के काल में उपनिवेश तेजी से हड़पे जाते है। १८७६ और १९१४ के बीच बड़ी शक्तियों ने २५० लाख वर्ग किलोमीटर औपनिवेशिक क्षेत्र (यानी साम्राज्यवादी देशों के क्षेत्रफल से डेढ़ गुना अधिक) हड़प लिया। ब्रिटेन ने सबसे अधिक भूमि पर कब्जा कर लिया। १८७६ में ब्रिटेन के उपनिवेशों का क्षेत्रफल २२५ लाख वर्ग किलोमीटर था। वहां कुल जनसंख्या २,५१९ लाख थी। १९१४ तक ब्रिटिश उपनिवेशों के क्षेत्रफल में ११० लाख वर्ग किलोमीटर और उनकी जनसंख्या में १,४१६ लाख वृद्धि हुई। १८७६ में जर्मनी, अमरीका और जापान का कोई उपनिवेश नहीं था। फ्रांस की भी करीब-करीब यही स्थिति थी। किन्तु १९१४ तक इन चार राष्ट्रों ने १० करोड़ जनसंख्या वाले ४१ लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल पर अपना अधिकार जमा लिया।

२०वी सदी के प्रारम्भ तक विश्व का क्षेत्रीय विभाजन पूर्ण हो चुका था और कोई भी "स्वतन्त्र" क्षेत्र उपलब्ध नही था। पुराने स्वामियो से छीनकर ही क्षेत्र प्राप्त किये जा सकते थे। विश्व के पुनर्विभाजन की बात जोर-शोर से चल रही थी।

१८६८ में अमरीका और स्पेन के बीच विश्व के पुनर्विभाजन के लिए पहली लड़ाई हुई। इस लड़ाई के द्वारा अमरीकी साम्राज्यवादियों ने फिलिपाइन, प्युरेटोरिको, गुआम, क्यूबा, हवाई और सामोआ पर कब्जा कर लिया।

विश्व को पुनर्विभाजित करने के लिए ही साम्राज्यवादियों ने पहला और दूसरा विश्वयुद्ध छेड़ा।

साम्राज्यवाद के उदय के साथ विश्व पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था का निर्माण पूरा हो गया। ताकतवर साम्राज्यवादी शक्तियों ने आर्थिक तौर पर कमजोर देशों पर कब्जा कर लिया। साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था विश्व पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था का अंग बन गयी।

साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था के अन्तर्गत साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा शोषित और पीड़ित उपनिवेश, अर्द्ध-उपनिवेश और पराधीन देश आये।

साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था

१६वी सदी के अन्तिम तीन दशकों और २०वीं सदी के प्रारम्भ में साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा विश्व का आर्थिक और क्षेत्रीय विभाजन किये जाने के फलस्वरूप साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था का जन्म हुआ।

पूंजीवादी सिद्धान्तकारों का दावा है कि साम्राज्यवाद ने उपनिवेशों तथा पराधीन देशों की कौमों का सांस्कृतिक स्तर ऊंचा कर उन्हें सभ्य बनाया। वास्तविकता की दृष्टि से इस तरह के दावे सत्य से कोसों दूर हैं। उपनिवेशों और पराधीन देशों में सांस्कृतिक विकास की बात तो दूर रही, वहां क्रमांकित पूर्ण अशिक्षा, चिकित्सा सेवाओं का अभाव और आर्थिक पिछड़ापन है। साम्राज्यवादी जान बूझ कर उपनिवेशों और पराधीन देशों का विकास नहीं होने देते। इस तरह वे अपना शासन कायम रखते हैं। उपनिवेशों पर कब्जा जमाने का उद्देश्य उन्हें सभ्य बनाना नहीं, बल्कि अधिक एकाधिकार मुनाफा कमाना था।

साम्राज्यवाद के युग में साम्राज्यवादी राष्ट्रों के लिए बाजार के रूप में उपनिवेशों और पराधीन देशों का महत्व बहुत बढ़ गया। ब्रिटेन ने अपने उपनिवेशों को १९३० में अपने कुल निर्यात का ४३.५ प्रतिशत और १९३८ में ४९ प्रतिशत भेजा। साम्राज्यवादी सहकरनीति द्वारा अपने उपनिवेशों और

राधीन देशों के चारों ओर महसूलदीवारें खड़ी कर उन्हें प्रतिद्वन्द्वियों से सुरक्षित रखते है और घटिया किस्म की वस्तुओं को ऊची कीमत पर बेचते हैं।

उपनिवेशों और पराधीन देशों का महत्व पूजी विनियोग के क्षेत्र के रूप मे ी बढ गया है। वहा साम्राज्यवादियों को बाहरी प्रतिद्वन्द्विता का सामना नही करना पडता। उन्हें सस्ता श्रम और कच्चा माल प्राप्त हो जाता है। अत लगायी गयी पूजी पर मुनाफे की भारी रकम मिलने की उन्हें पूरी आशा होती है। सामान्यतया वे पूंजी खान उद्योग और विशिष्ट शाखाओं तथा कोई एक फसल (रबड, काफी, रुई, इत्यादि) पैदा करने वाली औपनिवेशिक कृषि मे लगाते है। अत उपनिवेशों का विकास विकृत और बेढगे रूप मे होता है। उपनिवेश कृषि-प्रधान हो जाते है और साम्राज्यवादी शक्तियों को कच्चा माल देने वाले पिछलग्गू बन जाते है।

पूजीवादी एकाधिकार कच्चे मालो की अधिकतम सम्भावित मात्रा पर नियत्रण प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। उदाहरण के लिए, १९६२ के अन्त मे पूंजीवादी देशों का ज्ञात तेल साधन ३,८७,५५० लाख टन था जिसमे से २,६६,८६० लाख टन (यानी कुल का करीब ६६ प्रतिशत) मध्यपूर्व के देशों मे था। सिर्फ ०.६ प्रतिशत ही पश्चिमी यूरोप के देशों मे था। मध्यपूर्व के तेल-साधनो को पाने के लिए अमरीका, ब्रिटेन, फ्रास, इटली, जापान, आदि के इजारेदार परस्पर लड रहे हैं। कच्चे माल के स्रोतो पर कब्जा कर औद्योगिक इजारेदार विश्व बाजार मे कीमतो का मनमाना निर्धारण कर अधिक मुनाफा प्राप्त करने मे समर्थ हो जाते हैं।

पराधीन देशों और उपनिवेशों का फौजी और सामरिक महत्व बहुत बढ गया है। साम्राज्यवादी शक्तिया उनका उपयोग मजबूत मोर्चे बनाने और समुद्री तथा हवाई अड्डे बनाने के लिए करती है।

साम्राज्यवादी देशों की वित्तीय पूजी उपनिवेशों तथा पराधीन देशों का क्रूरतापूर्ण शोषण करती है। सामान्यतया इन देशों मे कोई श्रम कानून नही होते, बच्चो के श्रम का व्यापक रूप से इस्तेमाल होता है, औरतो को पुरुषों की अपेक्षा कम मजूरी मिलती है, कार्य-दिवस १२-१४ या उससे भी अधिक घटो के होते है और मजूरी भुखमरी के स्तर पर रहती है। मेहनतकश जनता की असहाय स्थिति के कारण भुखमरी और महामारी फैलती है और धीरे-धीरे आबादी नष्ट होती जाती है।

साम्राज्यवादी उत्पीड़न और शोषण से बाध्य होकर उपनिवेशों तथा पराधीन देशों की जनता विरोध का झडा बुलन्द करती है। फलस्वरूप राष्ट्रीय स्वतत्रता के लिए सघर्ष शुरू होते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उपनिवेशों की

जनता का राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन काफी व्यापक हो गया और इस तरह साम्राज्यवादी औपनिवेशिक व्यवस्था का विघटन शुरू हुआ।

४ एकाधिकार मुनाफा—पूंजीवादी एकाधिकार की प्रेरक शक्ति

अपने हर चरण में पूंजीवाद का बुनियादी आर्थिक नियम अधिशेष मूल्य का नियम है। यह नियम सम्पूर्ण पूंजीवादी ढांचे के विकास की दिशा निर्धारित करता है। इससे स्पष्ट होता है कि अपने अधिशेष मूल्य की मात्रा को बढ़ाने के लिए भुगतान न किए श्रम को हड़पने के लिए किस प्रकार पूंजीपति कोशिशें करते हैं। पूंजीवाद का बुनियादी नियम पूंजीवाद के विभिन्न चरणों में अलग-अलग रूप में जाहिर होता है।

एकाधिकार मुनाफा

साम्राज्यवाद के आने से पहले मुक्त प्रतियोगिता का बोलबाला था। उस समय अधिकतम मुनाफा प्राप्त करने की आकांक्षा और एक उद्योग से दूसरे उद्योग में पूंजी का स्थानांतरण मुक्त प्रवाह एक साथ पाये जाते हैं। फलस्वरूप मुनाफे की एक औसत दर निर्धारित हो जाती थी।

साम्राज्यवाद में मुक्त प्रतियोगिता की जगह एकाधिकार का बोलबाला हो गया। उद्योग की जिन शाखाओं में एकाधिकार रहता है वहां ऐसी आर्थिक स्थितियां बनायी जाती हैं कि इजारेदार अधिकतम मुनाफा पा सकें। औसत मुनाफे के अतिरिक्त उच्च एकाधिकार मुनाफे के अन्तर्गत इजारेदारों को उत्पादन या विनिमय के क्षेत्र पर आधिपत्य के कारण अतिरिक्त मुनाफा भी मिलता है।

साम्राज्यवाद के अन्तर्गत एकाधिकार द्वारा उत्पन्न वस्तुएं उत्पादन कीमतों पर नहीं, बल्कि एकाधिकार कीमतों पर बेची जाती हैं। एकाधिकार कीमत में उत्पादन लागत और उच्च एकाधिकार मुनाफा भी शामिल रहता है।

प्रश्न उठता है पूंजीपति किस प्रकार उच्च एकाधिकार मुनाफा प्राप्त करते हैं?

अन्य पूंजीवादी मुनाफे की तरह ही उच्च एकाधिकार मुनाफे का स्रोत अधिक शोषण की प्रक्रिया में मजदूरों से हड़पा गया अधिशेष मूल्य है। उत्पादन व्यवस्था में विभिन्न प्रकार की अतिश्रामण विधियां अपनायी जाती हैं। इन अतिश्रामण विधियों द्वारा अधिशेष मूल्य की दर और मात्रा बढ़ायी जाती है। अतिश्रामण विधियों में स्वयंचालन, विवेकीकरण और तीव्र श्रम मुख्य हैं।

एकाधिकार मुनाफे का स्रोत

मजदूर को मजूरी मिल जाने के बाद पूंजीपति का दूसरा हिस्सा (भूस्वामी, व्यापारी, आदि) उसका और भी शोषण करता है।

कृषक वर्ग का शोषण भी उच्च एकाधिकार मुनाफे का स्रोत है। एकाधिकार तैयार वस्तुओ को अधिकांश किसानो के हाथो ऊंची कीमतो पर बेचते हैं और उनके कृषि उत्पादन के लिए बहुत कम कीमत देते है। जब किसान कर्ज मे लद जाते हैं और उनके फार्म बेकार हो जाते है, तब बिना कोई भुगतान किये एकाधिकार उनकी भूमि और जायदाद हड़प जाते हैं।

पूंजीवादी देशो मे सर्वहारा वर्ग, मेहनतकश किसान और कम मजूरी पाने वाले लोग ही बड़े एकाधिकारो द्वारा समर्थित पूंजीवादी राज्य के शोषण का शिकार होते है। **अतिरिक्त शोषण टैक्स, सरकारी ऋण और कागजी मुद्रा के अवमूल्यन** द्वारा होता है। इस अमानवीय शोषण के कारण अधिकांश जनता की स्थिति तेजी से बदतर हो जाती है।

उपनिवेशों और अल्पविकसित देशों की जनता का शोषण कर एकाधिकार अपार धन प्राप्त कर लेते हैं। मजूरी इतनी नही होती कि मजदूर जीवन की अनिवार्य वस्तुए भी प्राप्त कर सकें। मेहनतकश जनता कर के बोझ से दबी रहती है। कृषि और उद्योग दोनो मे बलात श्रम का इस्तेमाल किया जाता है। एकाधिकार मुनाफा पाने के लिए वस्तुओ को ऊंची कीमतो पर बेचा जाता है और कच्चे माल और खाद्य पदार्थ कम कीमतो पर खरीदे जाते है। इस विषम विनिमय के कारण अल्पविकसित देशो को हर साल २० अरब डालर (यानी समग्र राष्ट्रीय उत्पादन का छठा भाग) खोना पड़ता है।

युद्ध और फौजी अर्थव्यवस्था उच्च एकाधिकार मुनाफे की प्राप्ति सुनिश्चित करते है। युद्ध के समय मजदूरो का शोषण काफी बढ़ जाता है। उस समय औद्योगिक उद्यमों पर अनिवार्य श्रमिक अनुशासन लादा जाता है। इसके अतिरिक्त करो और कीमतो मे वृद्धि होती है। इन सबके द्वारा पूंजीपतियो को अपार मुनाफा प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए, द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अमरीका के एकाधिकारो के मुनाफे सात गुना से भी अधिक बढ़ गये। शान्ति काल मे अर्थव्यवस्था का सैन्यीकरण (उद्योग मे लड़ाई के सामानो के निर्माण को अधिक स्थान देना) भी मुनाफे की मात्रा को बढ़ाता है। अमरीका मे युद्ध का सामान बनाने वाले एकाधिकार गैर फौजी उद्योगो की तुलना मे ५० प्रतिशत से १०० प्रतिशत अधिक मुनाफे की दर से मुनाफा प्राप्त कर रहे है। युद्ध उत्पादन के इजारेदार अपार मुनाफा कमाते है, लेकिन दूसरी ओर मेहनतकश जनता को

उपर्युक्त मुख्य विधियों से एकाधिकार पूंजी को उच्च एकाधिकार मुनाफा मिलता है। साम्राज्यवादी युग में पूंजीवाद का बुनियादी नियम एक आधार प्रदान करता है, जिस पर आम जनता—मजदूर, किसान और उपनिवेशों एवं पराधीन देशों की जनता—एकाधिकार पूंजी के खिलाफ लड़ सकें और साम्राज्यवाद का शीघ्र पूरी तरह विनाश कर सकें।

अध्याय ८

इतिहास में साम्राज्यवाद का स्थान— विश्व पूंजीवाद का आम संकट

१. इतिहास में साम्राज्यवाद का स्थान

साम्राज्यवाद पूंजीवाद की चरम अवस्था है। इतिहास में साम्राज्यवाद का स्थान निश्चित करते हुए लेनिन ने बताया कि यह पूंजीवाद की एक विशेष अवस्था है। इस अवस्था की तीन विशेषताएं हैं १) पूंजीवादी एकाधिकार, २) परजीवी या क्षयोन्मुख पूंजीवाद और ३) मरणासन्न पूंजीवाद।

साम्राज्यवाद एकाधिकार पूंजीवाद है

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, आर्थिक दृष्टि से साम्राज्यवाद एकाधिकार पूंजीवाद है। एकाधिकार-आधिपत्य उसकी मुख्य विशेषता है। यही विशेषता इतिहास में साम्राज्यवाद का स्थान निश्चित करती है।

लेनिन ने अपनी रचना साम्राज्यवाद, और समाजवाद में फूट में बताया कि पूंजीवादी एकाधिकार मुख्यतया चार तरह से प्रकट होता है।

प्रथम, जब उत्पादन का संकेन्द्रण काफी ऊंचे स्तर पर पहुंच गया तब एकाधिकार विकसित हुए। एकाधिकार के अन्तर्गत पूंजीपतियों के एकाधिकार संगठन—कार्टेल, सिंडिकेट, ट्रस्ट, कन्सर्न आते हैं। पूंजीवादी देशों के आर्थिक जीवन में ये निर्णायक भूमिका अदा करते हैं। उत्पादन के संकेन्द्रण द्वारा एकाधिकारों का जन्म और पूंजीवादी देशों के आर्थिक और राजनीतिक जीवन पर उनका आधिपत्य पूंजीवादी विकास के नये चरण, साम्राज्यवाद की विशेषता है।

द्वितीय, एकाधिकार बैंकों के जरिए विकसित हुए। बैंक साधारण बिचौलिए से बढ़कर सर्वशक्तिमान वित्तीय केन्द्र हो गये। प्रत्येक विकसित पूंजी-

वादी देश मे पाच-दस बड़े बैंको ने औद्योगिक और बैंक पूजी का एक पारस्परिक "व्यक्तिगत सघ" बना लिया है। ये सघ मुद्रा की एक बहुत बडी राशि पर नियत्रण रखते हैं। वित्तीय पूजी और वित्तीय अल्पतत्र राष्ट्र के आर्थिक और राजनीतिक जीवन को अपने अधीन कर लेते है। लखपतियों और करोड़पतियों का एक छोटा-सा समूह देश के सम्पूर्ण धन को खर्च करता है, किन्तु वह अपने सिवा अन्य किसी के प्रति जिम्मेदार नही है।

तृतीय, एकाधिकारो ने कच्चे माल के स्रोत, बाजार और पूजी विनियोग के क्षेत्र को जबर्दस्ती हडपना शुरू किया है। उनका बोलबाला विभिन्न देशो, यहा तक कि सम्पूर्ण महादेश पर हो जाता है। इस प्रकार के एकाधिकार-नियत्रण से वित्तीय सेठो के एक लघु समूह का बोलबाला बढ़ता है और परिणामस्वरूप पूजीवादी शिविर के भीतर अन्तर्विरोध भडक उठते हैं।

चतुर्थ, एकाधिकार साम्राज्यवादी शक्तियो की औपनिवेशिक नीति के कारण विकसित हुए। भूखण्डो को "मनमाने हडपने" के युग के स्थान पर उपनिवेशो की गुलामी के कारण उन पर एकाधिकार-नियत्रण कायम हो जाता है। पूजी और वस्तुओ के निर्यात के द्वारा जनता को आर्थिक और राजनीतिक तौर पर गुलाम बनाया जाता है।

इस तरह एक ऐसी अवस्था आ जाती है जहा सिर्फ एक एकाधिकार सारे विशाल उद्यमों को इकाई के रूप मे सगठित करता है, लाखों मजदूरो को एक साथ लाता है, बाजार और कच्चे माल के स्रोत पर सदा नियत्रण रखता है तथा सभी उपलब्ध विशेषज्ञो और वैज्ञानिको को अपनी नौकरी मे रखता है। एकाधिकार उत्पादन के विशेषीकरण को अन्तिम सीमा तक विकसित करते हैं। उत्पादन के इस व्यापक विशेषीकरण का आधार उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व है। इसके द्वारा मुट्ठीभर पूजीपतियो का स्वार्थ सिद्ध होता है। जनता के अपार समूह को उत्पादक शक्तियो के अपार विकास से कोई लाभ नही पहुचता है, बल्कि इसके विपरीत सिर्फ गरीबी और शोषण बढ़ता है।

फलस्वरूप एकाधिकारो का शासन पूजीवाद के बुनियादी अन्तर्विरोध (उत्पादन के सामाजिक चरित्र और उत्पादन के फल की प्राप्ति के निजी पूजीवादी तरीको में अन्तर्विरोध) को उग्र कर देता है। साम्राज्यवाद की अवस्था मे पहुचकर पूजीवाद मानव समाज के विकास को पीछे खीचने वाली एक प्रतिक्रियावादी ताकत बन जाता है।

लेनिन ने बताया कि एकाधिकार के कारण उत्पादन का अधिकतम बहुमुखी विशेषीकरण होता है। [illegible] विकास का

सबूत यह तथ्य है कि समाज के समाजवादी परिवर्तन के लिए सभी भौतिक उपादान वर्तमान हैं।

साम्राज्यवाद के अन्तर्गत समाज की उत्पादक शक्तियां ऐसे स्तर पर पहुंच गयी हैं कि श्रम-फल प्राप्त करने के निजी पूंजीवादी तरीकों से उनका विरोध हो गया है। परिणामस्वरूप उत्पादक शक्तियां बहुत मन्द गति से विकसित हो रही हैं। आर्थिक सकटों के समय वे पीछे भी धकेल दी जाती हैं।

एकाधिकार साम्राज्यवाद के काल में मेहनतकश जनता के उत्पीड़न को अन्तिम सीमा तक पहुंचा देते हैं। सर्वहारा वर्ग संघर्ष में शामिल होता है, ताकतवर और लड़ाई में पक्का हो जाता है। इस प्रकार शक्ति की बागडोर थामने में सर्वहारा वर्ग सक्षम हो जाता है।

लेनिन ने बताया कि पूंजीवाद के अन्तर्गत पूंजीवाद में एक उच्चतर सामाजिक-आर्थिक सरचना की ओर सक्रमण के युग के आसार विकसित और प्रत्यक्ष हो गये हैं। साम्राज्यवाद पूंजीवाद की चरम अवस्था है। यही तथ्य इतिहास में इसका स्थान निश्चित करता है।

साम्राज्यवाद परजीवी या क्षयोन्मुख पूंजीवाद है

साम्राज्यवाद न सिर्फ एकाधिकार पूंजीवाद है, बल्कि परजीवी, क्षयोन्मुख पूंजीवाद भी है। साम्राज्यवाद का परजीवी चरित्र इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि पूंजीपतियों की बहुत बड़ी सख्या का उत्पादन प्रक्रिया से कोई सम्बध नहीं है। वे आलसपूर्ण परजीवी जिन्दगी बिताते है। एकाधिकार

पूंजी द्वारा उपलब्ध उत्पादक शक्तियों का पूरी तरह इस्तेमाल न करना, बेरोजगारों को काम न देना और उत्पादन क्षमताओं का पूर्ण उपयोग न कर पाना— ये सभी पूंजीवाद के क्षय के सूचक हैं। सबसे धनी पूंजीवादी देश, अमरीका बहुत हद तक निरन्तर बेरोजगारी और उत्पादन क्षमता के अर्द्ध-उपयोग का देश है।

मेहनतकश जनता का अधिकांश पूंजीपति वर्ग की व्यर्थ आवश्यकताओं को पूरा करने वाले अनुत्पादक कार्यों में और स्वय उसका दमन करने के लिए बनाये गये राजकीय यंत्र में लगाया जा रहा है। इससे एकाधिकार पूंजीवाद का निरन्तर क्षय और परजीवीपन स्पष्ट है।

पूंजीवाद का परजीवी चरित्र पूंजी के निर्यात, सैन्यीकरण के विकास और लड़ाई द्वारा भी जाहिर होता है। साधनों की बहुत बड़ी मात्रा भौतिक धन के उत्पादन के लिए नहीं, वरन उत्पादक शक्तियों और खासकर समाज की मुख्य

उत्पादक शक्ति, मानवजाति के विनाश के लिए उपयोग में लायी जाती है। उदाहरण के लिए, प्रथम विश्वयुद्ध मे १ करोड़ लोग मारे गये और २ करोड़ लोग जख्मी हुए। लाखों लोग भुखमरी और महामारी के शिकार हुए। द्वितीय विश्वयुद्ध मे करीब ५ करोड़ लोग मारे गये। इस प्रकार मानवजाति को साम्राज्यवादियों द्वारा अपने अन्तर्विरोधों को युद्ध द्वारा हल करने की कोशिशों के लिए कीमत चुकानी पड़ी।

साम्राज्यवादी चरण मे पूंजीवाद का क्षय अवश्यम्भावी हो जाता है, क्योंकि स्वयं एकाधिकार (जिस हद तक वे कृत्रिम रूप से ऊंची कीमतें रखकर अधिक मुनाफे की राशि की गारंटी कर लेते हैं) उत्पादन टेक्नालाजी को उन्नत करने के प्रोत्साहन को कम कर देते हैं। ऐसे कई उदाहरण हैं जिनसे पता चलता है कि एकाधिकार संगठन नये आविष्कारो को इस्तेमाल करने के लिए नही, बल्कि दूसरो को इस्तेमाल न करने देने के लिए खरीदते हैं।

अभी मानवजाति ने वैज्ञानिक और तकनीकी क्रान्ति के युग मे प्रवेश ही किया है। इस युग का प्रारम्भ आणविक इंजीनियरिंग, अन्तरिक्ष अभियान, रसायनशास्त्र मे तीव्र प्रगति, स्वचालित उत्पादन प्रक्रिया और कई प्रमुख वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियो से हुआ है। किन्तु उत्पादन के पूंजीवादी सम्बधो के कारण वैज्ञानिक और तकनीकी क्रान्ति की प्रगति असम्भव है। साम्राज्यवाद तकनीकी प्रगति का उपयोग सैनिक कार्यों के लिए कर रहा है, मानवीय प्रतिभा की उपलब्धियों को मानवता के विरुद्ध उपयोग मे ला रहा है।

किन्तु इसके बावजूद अधिक एकाधिकार मुनाफे की आकाक्षा पूंजीपतियो को पुरानी टेक्नालाजी की अपेक्षा अधिक उत्पादक नयी टेक्नालाजी को काम मे

के जीवन-यापन का स्तर नीचे गिरता है।

अत साम्राज्यवाद की दो मुख्य विरोधी प्रवृत्तिया हैं: एक तरफ तकनीकी विकास को प्रोत्साहित करना और दूसरी तरफ उसको रोकना।

पूंजीवाद का क्षय इस तथ्य से भी जाहिर होता है कि साम्राज्यवादी पूंजीपति वर्ग अपने मुनाफे का एक भाग दक्ष मजदूरो की ऊपरी श्रेणी (तथाकथित श्रमिक अभिजात श्रेणी) को अलग से देता है। पूंजीपति वर्ग के समर्थन से श्रमिक अभिजात श्रेणी ट्रेड यूनियनों और अन्य मजदूर सगठनो मे ऊची जगहे प्राप्त करने के लिए कोशिश करती है। छोटे पूंजीपतियो सहित ये तत्व मजदूर आन्दोलन के लिए गम्भीर खतरा हैं।

श्रमिक अभिजात श्रेणी के माध्यम से पूंजीपति वर्ग पूंजीवाद को "सुधारने" और "वर्ग शान्ति" स्थापित करने के मार्ग की वकालत करता है और इस तरह मजदूरों के दिमाग में जहर भरने के लिए प्रयत्न करता है। श्रमिक अभिजात श्रेणी मजदूर वर्ग में फूट डालकर पूंजीवाद के विरुद्ध मजदूरों की शक्तियों के संगठन के कार्य को कठिन बना देती है।

गृह और परराष्ट्र नीतियों में पूंजीवादी जनवाद से राजनीतिक प्रतिक्रिया की ओर मोड़ आना साम्राज्यवादी युग की एक विशेषता है।

कम्युनिस्ट और मजदूर-विरोधी कानून, कम्युनिस्ट पार्टियों पर प्रतिबन्ध, कम्युनिस्टों और अन्य प्रगतिशील मजदूरों की बहुत बड़ी संख्या में बर्खास्तगी, काली सूची में नाम लिखना, कार्यालयों में काम करने वालों की वफादारी की जांच, जनतांत्रिक प्रेस का पुलिस द्वारा दमन, हड़तालों को कुचलने के लिए फौज का इस्तेमाल—ये सब साम्राज्यवादियों द्वारा अपना आधिपत्य बनाये रखने के आम तरीके हैं। एकाधिकार पूंजी की परजीविता और क्षय के ये बुनियादी तत्व हैं।

जिन देशों में पूंजीवाद का काफी विकास हो चुका है वहां पूंजीवाद का परजीवीपन और निरन्तर क्षय स्पष्ट नजर आता है। एक समय ऐसा था जब ब्रिटेन सबसे अधिक विकसित पूंजीवादी देश समझा जाता था। किन्तु उसके बाद सबसे अधिक विकसित पूंजीवादी देशों में अमरीका शामिल हुआ। अमरीकी पूंजीवाद का विकास स्पष्ट रूप से संकेत करता है कि पूंजीवादी जगत में अमरीका निरन्तर क्षय और परजीवीपन का केन्द्र हो गया है।

लेनिन ने बताया कि साम्राज्यवाद मरणासन्न या ठूठ पूंजीवाद है।

साम्राज्यवाद मरणासन्न (ठूठ) पूंजीवाद है

इसका अर्थ है कि साम्राज्यवाद स्वभावतः नश्वर है। साम्राज्यवाद पूंजीवाद के अन्तर्विरोधों को बेहद उग्र कर देता है। उसके बाद ही सर्वहारा क्रान्ति की शुरूआत होती है।

मुख्य अन्तर्विरोध पूंजी और श्रम के बीच रहता है। एकाधिकार पूंजीवाद के काल में मेहनतकश जनता का अभूतपूर्व पैमाने पर शोषण होता है।

शोषण के पुराने तरीकों के पूरक के रूप में नये तरीके अपनाये जाते हैं। बड़े पूंजीपतियों की एकाधिकार स्थिति श्रम की अभूतपूर्व तीव्रता, बेरोजगारों की विशाल स्थायी फौज के कारण श्रम-शक्ति की कम एकाधिकार कीमत पर खरीद, उपभोक्ता वस्तुओं की ऊंची एकाधिकार कीमतों द्वारा मेहनतकश जनता की लूट, कर लगाने, इत्यादि के लिए अवसर देती है। साम्राज्यवाद के अन्तर्गत तीव्र गति से बढ़ा शोषण, मजदूरों की वास्तविक स्थिति में गिरावट और सर्वहारा वर्ग का बढ़ता

राजकीय एकाधिकार पूंजीवाद

राजकीय एकाधिकार पूंजीवाद के मुख्य लक्षण हैं : उत्पादन का अत्यधिक समाजीकरण, निजी और राजकीय अधिकारों का परस्पर गुंथना और राजकीय यंत्र के साथ वित्तीय अल्पतंत्र का आत्मसात्करण। एकाधिकार अधिक धन पाने तथा देश की अर्थव्यवस्था में हस्तक्षेप करने के लिए राजकीय यंत्र के साथ आत्मसात हो गये हैं।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का कार्यक्रम बतलाता है : "राजकीय एकाधिकार पूंजीवाद एकाधिकारों और राज्य की ताकतों को एक यंत्र में एकीकृत करता है, जिसका उद्देश्य एकाधिकारों को समृद्ध करना, मजदूर वर्ग आन्दोलन और राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष का दमन करना, पूंजीवादी व्यवस्था की रक्षा करना और आक्रामक युद्ध छेड़ना है।"[1]

साम्राज्यवाद के दौरान पूंजीवादी देशों की सरकारों में शासक एकाधिकारों के विश्वस्त प्रतिनिधि या स्वयं एकाधिकारी रहते हैं। मंत्रियों, फौजी अफसरों और कूटनीतिज्ञों को बहुधा प्रमुख एकाधिकारों में महत्वपूर्ण और लाभ वाली जगहें दी जाती हैं।

उदाहरण के लिए, १९५५ के मध्य में अमरीका के राजकीय यंत्र की अत्यन्त महत्वपूर्ण २७२ जगहों में से १५० पर बड़े पूंजीपति और ३० पर कारपोरेशन के वकील थे। सरकार में रॉकफेलर ग्रुप का प्रतिनिधित्व विदेश मंत्री जान फास्टर डलेस कर रहे थे। डलेस एक कानूनी फर्म के प्रधान और १५ औद्योगिक और वित्तीय फर्मों के डायरेक्टर थे। बहुत लम्बे काल तक सरकार में डुपोन्ट ग्रुप का प्रतिनिधित्व जनरल मोटर्स के भूतपूर्व अध्यक्ष रक्षा मंत्री चार्ल्स विलसन ने किया। जानसन प्रशासन में फोर्ड मोटर्स का प्रतिनिधित्व रक्षा मंत्री मैकनमारा, आदि कर रहे हैं। अन्य पूंजीवादी देशों में भी यही स्थिति है। स्पष्ट है कि राजकीय यंत्र को बड़े एकाधिकारों ने अपने अधीन कर लिया है। राज्य एकाधिकारी वर्ग के मामलों की देखभाल करने वाली एक कमिटी बन गया है।

वर्तमान समय में राजकीय एकाधिकार के मुख्य रूप कौन-से हैं ? राजकीय एकाधिकार विभिन्न प्रकार के राजकीय नियंत्रण और देशों के आर्थिक जीवन को नियन्त्रित करने वाली विधियों, एकाधिकारों के हित में राजकीय सम्पत्ति के उपयोग, सरकार द्वारा सरकारी माग के माध्यम से एकाधिकारों को दी गयी सहायता, राज्य के जरिए पूंजी निर्यात के रूप में देखे जाते हैं। इन सभी का लक्ष्य वित्तीय अल्पतंत्र को समृद्ध बनाना है।

१. "कम्युनिज्म का मार्ग" ("सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २२वीं कांग्रेस की दस्तावेजें"), मास्को, १९६१, पृष्ठ ४७१।

समृद्धि पाने का एक महत्वपूर्ण जरिया बजट के साधनों द्वारा राजकी उद्यमो को बनाना और निजी उद्यमों का राष्ट्रीयकरण कर उन्हें राजकीय सम्पि बना देना है। निजी एकाधिकारों को सरकारी निर्माण योजनाओ के लिए अनुकू शर्तों पर ठेके दिये जाते हैं। पूरा होने पर ये उद्यम बहुत कम भाडे पर शोषण लिए उन्हे दे दिये जाते हैं या उनके हाथ कम कीमत पर बेच दिये जाते हैं साम्राज्यवादी सरकार निजी उद्यमों का राष्ट्रीयकरण पूजीपतियो के हित मे ह करती है। राष्ट्रीयकरण किये जाने वाले उद्यमों के स्वामियों को उद्यमो के मूल्य से अधिक मुआवजे की रकम दी जाती है। राष्ट्रीयकरण के बाद इन उद्यमो का सचालन एकाधिकार करते हैं। इस प्रकार दोनों स्थितियों मे राजकीय उद्यमो का सचालन पूजीपति वर्ग के हित मे होता है।

राजकीय एकाधिकार पूजीवाद मजदूर वर्ग के शोषण मे वृद्धि करता है और सम्पूर्ण मेहनतकश जनता को जीवन-यापन का निम्न स्तर प्रदान करता है। राजकीय यन्त्र द्वारा समर्थित एकाधिकार के कारण सर्वहारा वर्ग के शोषण की दर बढती है। वे सम्पूर्ण मेहनतकश जनता को दिन-प्रतिदिन ऊचे कर तथा ऊची कीमतो द्वारा चूसते हैं। इस प्रकार श्रम और पूजी के पारस्परिक अन्तर्विरोध और संघर्ष उग्र रूप धारण कर लेते हैं।

पूजीवाद के अन्तर्गत राजकीय एकाधिकार पूजीवाद उत्पादन के समाजीकरण की चरम अवस्था है। यह समाजवाद के निर्माण के लिए पूर्ण भौतिक तैयारी की अवस्था है। वास्तव मे यह समाजवाद की देहरी है, किन्तु समाजवाद की ओर सक्रमण के लिए मजदूर वर्ग के हाथो मे सत्ता का हस्तान्तरण अनिवार्य है।

राजकीय एकाधिकार पूजीवाद विभिन्न काल, देश और अर्थव्यवस्था की शाखा मे असम रूप से विकसित होता है। विश्वयुद्ध और आर्थिक सकट, सैन्यवाद और राजनीतिक उथल-पुथल एकाधिकार पूजीवाद को राजकीय एकाधिकार पूजीवाद के रूप मे तेजी से विकसित करते हैं।

दक्षिणपथी समाजवादी और सशोधनवादी यह दिखलाने की कोशिश करते हैं कि राजकीय एकाधिकार पूजीवाद का चरित्र बदल गया है। उनका दावा है कि पूजीवादी देशों की अर्थव्यवस्था मे राज्य निर्णायक शक्ति बन गया है, वह सम्पूर्ण समाज के हित मे अर्थव्यवस्था के नियोजित सचालन की गारटी दे सकता है, इत्यादि। जीवन के अनुभव बतलाते हैं कि यह सर्वथा गलत है।

राजकीय एकाधिकार पूजीवाद साम्राज्यवाद के स्वभाव को कतई नही बदल सकता। वह सामाजिक उत्पादन व्यवस्था मे बुनियादी वर्गों की भूमिका मे भी कोई परिवर्तन नही लाता है, बल्कि इसके विपरीत पूजी और श्रम तथा बहुसख्यक राष्ट्रो और एकाधिकारो के बीच की खाई को चौड़ी कर देता है। पूजीवादी

अर्थव्यवस्था के राजकीय नियमन द्वारा प्रतिद्वन्द्विता, उत्पादन और विकास की अरा-जकता रोक नहीं सकती और न राष्ट्र के पैमाने पर अर्थव्यवस्था के नियोजित विकास की व्यवस्था ही सम्भव है, क्योंकि उत्पादन का आधार हर हालत में पूंजी-वादी स्वामित्व और श्रम का शोषण रहता है।

वर्तमान पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास की प्रवृत्ति "नियोजित, संकट-मुक्त पूंजीवाद" सम्बन्धी पूंजीवादी सिद्धान्तों के विरुद्ध है। राजकीय पूंजीवाद पूंजीवादी व्यवस्था को ताकतवर बनाने के बदले पूंजीवाद के अन्तर्विरोधों को उग्र करता और उसके नाश को द्रुत कर देता है।

कई अर्द्धविकसित देशों—जिन्होंने आर्थिक स्वतन्त्रता का मार्ग अपनाया है (भारत, इंडोनेशिया, इत्यादि)—में राज्य कतिपय आर्थिक कदमों के लिए जिम्मेदार है और भारी उद्योगों का विस्तार कर रहा है, किन्तु वहां राजकीय एकाधिकार पूंजीवाद का नहीं, बल्कि राजकीय पूंजीवाद का विकास हो रहा है। आर्थिक दृष्टि से अर्द्धविकसित देशों में यह एक प्रगतिशील कदम है। इसके द्वारा अर्थव्यवस्था के विकास में मदद मिलती है और अर्थव्यवस्था साम्राज्यवादियों के चंगुल से स्वतंत्र होती है।

असम आर्थिक और राजनीतिक विकास का नियम

सम्पूर्ण पूंजीवादी युग की यह एक खास विशेषता है कि विभिन्न उद्यमों, उद्योगों और देशों का असम विकास होता है। असम विकास प्रतिद्वन्द्विता और पूंजीवादी उत्पादन की अरा-जकता के कारण होता है। एकाधिकार के उदय के पहले पूंजीवाद अपेक्षाकृत समरूप से विकसित होने में समर्थ था। एक लम्बे काल में कुछ देश अन्य देशों से आगे बढ़ गये। पूंजीवाद के असम विकास का स्वरूप भी साम्राज्यवाद के आने के साथ बदला। अलग-अलग देश अबाध गति से विकसित होने लगे। टेक्नालाजी के अभूत-पूर्व विकास के कारण कुछ देश अपने प्रतिद्वन्द्वियों से आगे निकल गये। आगे बढ़े देशों ने कच्चे माल की अधिकतम सम्भव मात्रा, नये बाजार और पूंजी विनियोग के क्षेत्रों को हथियाने की कोशिश की, किन्तु ऐसा कोई मुक्त क्षेत्र नहीं था जिस पर कब्जा किया जाये, क्योंकि विश्व का विभाजन पूर्ण हो चुका था।

साम्राज्यवादी शक्तियों के पारस्परिक आर्थिक और फौजी शक्ति-संतुलन में परिवर्तन होने के कारण टकराव शुरू हुआ। विभाजित विश्व के पुनर्विभाजन के लिए संघर्ष शुरू हुआ। शक्ति-संतुलन में परिवर्तन के कारण पूंजीवादी विश्व परस्पर-विरोधी समूहों में बंट गया। साम्राज्यवादी शिविर के उग्र अन्तर्विरोधों के कारण साम्राज्यवादी परस्पर कमजोर हो गये। साम्राज्यवादी मोर्चे पर जहां कम-

और कड़ी थी, और उन देशों में जहां मजदूर वर्ग की विजय के लिए अत्यन्त अनुकूल परिस्थितियां मौजूद थीं, वहां साम्राज्यवाद का मोर्चा टूटना सम्भव हुआ।

साम्राज्यवादी युग में पूंजीवादी देशों के असम आर्थिक विकास के फलस्वरूप उनका असम राजनीतिक विकास हुआ। हर देश में वर्ग अन्तर्विरोध समान स्तर पर नहीं थे। मजदूर वर्ग की राजनीतिक चेतना और क्रान्तिकारी निश्चय तथा बहुसंख्यक किसानों को अपने साथ एकजुट करने की क्षमता का भी असम विकास हुआ। स्पष्ट है कि विभिन्न देशों में सर्वहारा क्रान्ति की राजनीतिक स्थितियां असम रूप से परिपक्व हुईं।

साम्राज्यवाद के अन्तर्गत पूंजीवादी देशों के असम आर्थिक और राजनीतिक विकास के नियम को प्रारम्भ-बिन्दु के रूप में लेकर लेनिन ने सर्वप्रथम सिर्फ एक या कई पूंजीवादी देशों में समाजवाद की विजय की सम्भावना और सभी देशों में एक साथ समाजवाद की विजय की असम्भावना के सम्बंध में ऐतिहासिक निष्कर्ष निकाला। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी बताया कि समाजवादी क्रान्ति के लिए किसी भी देश को अवश्यम्भावी रूप से काफी विकसित पूंजीवादी देश होना आवश्यक नहीं है।

एक देश में समाजवादी क्रान्ति की विजय विश्व समाजवादी क्रान्ति की शुरूआत थी।

मार्क्स और एंगेल्स का जमाना पूंजीवाद का पूर्व-एकाधिकार काल था। उनका ख्याल था कि सर्वहारा क्रान्ति के विजयी होने के लिए जरूरी है कि वह एक ही समय में अधिकांश अत्यन्त विकसित देशों में हो। उस जमाने में यह निष्कर्ष बिलकुल सही था। किन्तु साम्राज्यवाद के युग में सर्वहारा क्रान्ति एक देश में भी विजयी हो सकती है। इस सम्बध में पहले महायुद्ध के समय लेनिन ने कहा: "असमान आर्थिक और राजनीतिक विकास पूंजीवाद का एक निरपेक्ष नियम है। इसलिए समाजवाद की विजय सर्वप्रथम कई देशों में या सिर्फ एक देश में भी सम्भव है।"[1]

लेनिन के इन निष्कर्षों ने विभिन्न देशों के सर्वहारा वर्ग के सामने एक क्रान्तिकारी सम्भावना रखी, उनकी पहल करने की शक्ति को मुक्त किया और समाजवादी व्यवस्था की अवश्यम्भावी विजय में उनके विश्वास को दृढ किया। इस तथ्य से कि समाजवाद की विजय विभिन्न देशों में विभिन्न समय पर होगी, एक विश्व समाजवादी अर्थव्यवस्था संगठित करने की आवश्यकता और समाजवादी तथा पूंजीवादी व्यवस्थाओं के बीच स्थायी शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की सम्भावना पैदा होती है।

[1] लेनिन, "संग्रहीत रचनाएं", खंड २१, पृष्ठ ३४२।

महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की विजय ने समाजवादी क्रान्ति के
दी सिद्धान्त की पुष्टि की। इस क्रान्ति को लेनिन के नेतृत्व मे कम्युनिस्ट
सफल बनाया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद कई एशियाई और यूरोपीय देश सफल क्रान्ति
राज्यवादी व्यवस्था से अलग हो गये। ये देश अब समाजवाद का निर्माण
हैं। इस तथ्य से समाजवादी क्रान्ति के लेनिनवादी सिद्धान्त की और भी
पुष्टि होती है।

२. विश्व पूंजीवाद का आम संकट

"हमारा युग, जिसका मुख्य तत्व महान अक्तूबर क्रान्ति से अनुप्रेरित
वाद से समाजवाद की ओर सक्रमण है, दो परस्पर-विरोधी समाज
व्यवस्थाओं के सघर्ष, समाजवादी और राष्ट्रीय मुक्ति
क्रान्तियो, साम्राज्यवाद के विघटन और औपनिवेशिक
व्यवस्था के उन्मूलन, अधिकाधिक जनगण के समाज-
वादी मार्ग की ओर सक्रमण और विश्व के पैमाने पर
समाजवाद और कम्युनिज्म की विजय का युग है।"[१]

जीवाद के आम
कट का मूल तत्व
र उसके चरण

ो मे हुए कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियो के सम्मेलन के कार्यक्रम मे प्रति-
त यह सिद्धान्त पूंजीवाद के आम संकट का मूल तत्व सामने लाता है।

१९१७ मे रूस में महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की विजय पूजीवाद के
सकट की शुरुआत थी। पूजीवाद अब विश्व की एकमात्र व्यवस्था नहीं रहा।
या के छठे भाग मे उत्पादन के साधनो के निजी स्वामित्व नहीं, बल्कि समाजी-
, सामाजिक स्वामित्व पर आधारित राज्य की स्थापना हुई। रूस मे सर्वहारा
न्ति की विजय के साथ पूजीवाद की समाप्ति और समाजवाद की विजय का युग
हो गया। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान लेनिन ने कहा था कि साम्राज्यवादी युग मे
जवाद विभिन्न देशो मे एक साथ विजयी नही होगा। कालक्रम से एक के बाद
देश मे क्रान्ति होगी और वे विश्व पूजीवादी व्यवस्था से अलग होते जायेंगे।

हम आर्थिक सकटो की चर्चा पहले कर चुके हैं। पूजीवाद के अन्तर्गत
र्थिक सकट का मुख्य रूप अत्युत्पादन है। यह सकट आर्थिक क्षेत्र मे आता है,
न्तु राजनीतिक जीवन पर भी इसका एक निश्चित प्रभाव पड़ता है। पूंजीवाद
ा आम सकट पूंजीवादी देशों मे जीवन के सभी क्षेत्रो—आर्थिक और राज-
नीतिक—को प्रभावित करता है। यह पूरी विश्व पूजीवादी व्यवस्था का चतुर्दिक
संकट है। मरणासन्न पूजीवाद और नवजात समाजवाद का आपसी सघर्ष इस युग

१. "[illegible]", "[illegible]", पृष्ठ १८।

की खास विशेषता है। पूंजीवाद के आम संकट का मूल तत्व पूंजीवाद से समाजवाद की ओर संक्रमण है।

पूंजीवाद का आम सकट दो दौरो से गुजरकर आज तीसरे दौर में पहुंचा है। इसका पहला चरण प्रथम विश्वयुद्ध के समय शुरू हुआ और अक्तूबर क्रान्ति के परिणाम में स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुआ। दूसरा चरण द्वितीय विश्वयुद्ध और यूरोप तथा एशिया के कई देशों की समाजवादी क्रान्तियों में विकसित हुआ। बीसवी सदी के पाचवें दशक के उत्तरार्द्ध में विश्व पूजीवाद ने आम सकट के एक नये चरण—तीसरे चरण—में प्रवेश किया। इस चरण की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसका विकास विश्वयुद्ध के सदर्भ मे नही हुआ, बल्कि शक्ति-संतुलन समाजवाद के अनुकूल हो जाने पर दो व्यवस्थाओं की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता और सघर्ष की स्थिति में हुआ।

पूजीवाद के आम सकट की मूल विशेषताएं ये हैं: पूजीवाद से अधिकाधिक देशो का खिसकना, समाजवाद के साथ आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता मे साम्राज्यवाद की स्थिति का कमजोर होना, साम्राज्यवाद की उपनिवेश व्यवस्था में सकट और उसका विघटन, राजकीय एकाधिकार पूजीवाद और बढ़ते हुए सैन्यीकरण की परिस्थितियो मे साम्राज्यवादी अन्तर्विरोधो का तीव्र होना, बढ़ता हुआ आन्तरिक अस्थायित्व और पूजीवादी अर्थव्यवस्था का क्षय जो उत्पादक शक्तियो (आर्थिक विकास की नीची दर, आवर्त्ती सकट, स्थायी तौर पर उपलब्ध क्षमता का आंशिक इस्तेमाल, सतत आम बेरोजगारी) के सम्पूर्ण इस्तेमाल किये जाने मे पूजीवाद की निरन्तर असमर्थता द्वारा अभिव्यक्त होता है, श्रम और पूजी के पारस्परिक सघर्ष मे वृद्धि, विश्व पूजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्विरोधों का उग्र होना, हर जगह राजनीतिक प्रतिक्रिया मे अभूतपूर्व रूप से वृद्धि, कई देशो मे पूजीवादी स्वतत्रता का हरण और कई देशो मे फासिस्ट शासन-व्यवस्था की स्थापना और पूजीपति वर्ग की राजनीतिक विचारधारा मे गम्भीर सकट।

अब हम देखेंगे कि पूजीवाद के आम संकट के कारण ये विशेषताए किस प्रकार अभिव्यक्त होती हैं।

साम्राज्यवादी शक्तियो द्वारा विश्व को पुनर्विभाजित करने के सघर्ष के दौरान उनके अन्तर्विरोधों के उग्र हो जाने के कारण ही प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४-१८) छिड़ा। युद्ध ने साम्राज्यवाद को कमजोर कर दिया और उसके मोर्चे की एक कडी के टूटने के लिए अनुकूल स्थिति पैदा हो गयी। रूस में साम्राज्यवाद धराशायी हुआ। रूस विश्व साम्राज्यवाद की शृखला मे एक कमजोर कडी था। उस समय रूस

विश्व का दो व्यवस्थाओं में विभाजन

रूसी कम्युनिस्टों का केन्द्र बिन्दु ही बना था। रूस में समाजवादी क्रान्ति की विजय के परिणामस्वरूप विश्व दो व्यवस्थाओं—पूंजीवादी और समाजवादी—में बंट गया।

अल्पकाल में ही समाजवादी आर्थिक व्यवस्था ने पूंजीवाद की तुलना में अपनी श्रेष्ठता दिखा दी। १९३७ तक औद्योगिक उत्पादन की मात्रा की दृष्टि से सोवियत संघ ने यूरोप में पहला और विश्व में दूसरा स्थान प्राप्त कर लिया था।

द्वितीय विश्वयुद्ध की तैयारी अत्यन्त प्रतिक्रियावादी शक्तियों ने की। इस लड़ाई की शुरुआत फासिस्ट राज्यों—जर्मनी, इटली और जापान—के समूह ने की। युद्ध का अन्त फासिस्ट आक्रमणकारियों की पराजय से हुआ। इनको पराजित करने में सोवियत संघ ने निर्णायक भूमिका अदा की। इसके फलस्वरूप समस्त विश्व में क्रान्तिकारी और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों का अभूतपूर्व विकास हुआ।

यूरोप और एशिया में कई देश पूंजीवादी व्यवस्था से अलग हो गये और परिणामस्वरूप अब १ अरब (विश्व की एक-तिहाई जनसंख्या) से भी अधिक लोग पूंजीवादी जुए से मुक्त होकर सफलतापूर्वक समाजवाद का निर्माण कर रहे हैं। इस तथ्य ने समाजवाद और पूंजीवाद के पारस्परिक शक्ति-सन्तुलन में काफी परिवर्तन कर दिया है। यह शक्ति-सन्तुलन समाजवाद के अनुकूल और पूंजीवाद के प्रतिकूल है।

अतः युद्ध ने पूंजीवाद के आम संकट को और भी गहरा बना दिया। तब दूसरा चरण शुरू हुआ। एक देश के चौखटे से निकलकर समाजवाद ने एक विश्व व्यवस्था का रूप ले लिया। आज विश्व समाजवादी व्यवस्था के देश भूमंडल के एक-चौथाई में फैले हैं।

थोड़े समय में ही विश्व समाजवादी व्यवस्था ने पूंजीवाद की तुलना में अपनी श्रेष्ठता दिखा दी है। समाजवादी देशों की अर्थव्यवस्था पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था की तुलना में बड़ी तेजी से विकसित होती है। १९३७ की अपेक्षा १९६२ में समाजवादी देशों ने अपने औद्योगिक उत्पादन की मात्रा ७ गुनी बढ़ायी, जबकि पूंजीवादी देशों का औद्योगिक उत्पादन इस दौरान ढाई गुना ही बढ़ा।

पूंजीवाद के आम संकट का नया, तीसरा चरण प्रारम्भ हो गया है। इस चरण की मुख्य विशेषता यह है कि विश्व समाजवादी व्यवस्था मानव समाज के विकास में निर्णायक शक्ति होती जा रही है। फलस्वरूप दो विश्व व्यवस्थाओं में गम्भीर प्रतिद्वन्द्विता में समाजवाद की स्थिति निरन्तर मजबूत होती जा रही है, जबकि साम्राज्यवाद दिनोदिन कमजोर होता जा रहा है।

अक्तूबर क्रान्ति से प्रभावित होकर उपनिवेशों के जनगण का राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष काफी मजबूत हो गया और साम्राज्यवाद की उपनिवेश व्यवस्था का संकट

साम्राज्यवादी उपनिवेश व्यवस्था में संकट और उसका विघटन

शुरू हुआ। यह संकट साम्राज्यवादी शक्तियों और उप निवेशों एवं पराधीन देशों के अन्तर्विरोधों के गम्भी होने का सूचक था। राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के परिणाम स्वरूप उपनिवेशों और पराधीन देशों ने अपने आपको साम्राज्यवादी जुए से मुक्त कर लिया। राष्ट्रीय मुक्ति की शक्तियों का जन्म हुआ और वे अपने आपको विक सित करने लगीं। सर्वहारा वर्ग—आधुनिक समाज का सबसे क्रान्तिकारी वर्ग—की संख्या बढ़ने लगी। सर्वहारा वर्ग ने औपनिवेशिक आबादी के एक बहुत बड़े हिस्से—कृषक वर्ग को साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष में अपने साथ शामिल किया। राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग भी (जिसके हितों और विदेशी एकाधिकारों के शासन में परस्पर विरोध था) बढ़ने लगा।

पहले महायुद्ध के दौरान बड़े साम्राज्यवादी देश उपनिवेशों को तैयार माल देने में असमर्थ थे, क्योंकि उद्योगों में लड़ाई के लिए सामानों का उत्पादन हो रहा था। इस वजह से उपनिवेशों में उद्योगों, विशेषकर कपड़ा उद्योग का तेजी से विकास हुआ। पुराने कारखानों का विस्तार किया गया और नये कारखानों ने जन्म लिया। उपनिवेशों के आर्थिक विकास तथा अक्तूबर क्रान्ति के प्रभाव के कारण राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन ने महायुद्ध के पहले की अपेक्षा अधिक विशाल रूप धारण कर लिया। लेनिन ने लिखा : "थोड़े में कह सकते हैं कि पहली साम्राज्यवादी लड़ाई के फलस्वरूप पूर्वी देश निश्चित रूप से क्रान्तिकारी आन्दोलन में—विश्व क्रान्तिकारी आन्दोलन के भवर में खिंच आये हैं।"[1]

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद शायद ही ऐसा कोई उपनिवेश या पराधीन राष्ट्र था जहां साम्राज्यवाद के खिलाफ कमोबेश गम्भीर विद्रोह नहीं हुए। राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन ने खासकर चीन में व्यापक रूप धारण कर लिया। वहां साम्राज्यवाद-सामन्तवाद-विरोधी एक जन-क्रान्ति १६२४ में हुई। आगे चलकर उसने क्रान्तिकारी युद्धों की एक शृंखला का रूप धारण कर लिया। इस क्रान्ति ने कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में जन-मुक्ति फौज को जन्म दिया और देश के कुछ हिस्सों में सोवियत सरकार बन गयी। भारत, इंडोनेशिया और अन्य देशों में भी राष्ट्रीय मुक्ति के लिए एक प्रबल आन्दोलन चल रहा था। साम्राज्यवाद के खिलाफ उत्पीड़ित जनगण के इस राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में मजदूर वर्ग जिसने लाखों किसानों, पूंजीपति वर्ग के जनवादी प्रतिनिधियों, इत्यादि से गठबन्धन किया था, अग्रणी शक्ति था।

---

१. लेनिन, "संकलित रचनाएं", खंड ३, पृष्ठ ८४०।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद कई उपनिवेशो और पराधीन देशो के जनगण ने मुक्ति प्राप्त कर स्वतन्त्र विकास करना शुरू कर दिया। इस प्रकार साम्राज्यवाद की उपनिवेश व्यवस्था का विघटन शुरू हो गया। चीनी, कोरियाई और वियतनामी जनगण के वीरतापूर्ण सघर्ष ने विदेशी साम्राज्यवादियो तथा शोषक वर्गों के आधिपत्य को उखाड फेंका और जनता के जनवादी राज्यों—चीन लोक जनतन्त्र, कोरिया लोक जनवादी जनतन्त्र और वियतनाम जनवादी जनतन्त्र—की स्थापना की।

राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के सामने मजबूर होकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद को १९४७ मे भारत को एक स्वतन्त्र राज्य के रूप मे मानना पडा। भारत के साथ ही अन्य देशों—इडोनेशिया, बर्मा, श्रीलका ने स्वतन्त्र विकास के मार्ग पर प्रयाण किया। युद्ध के बाद पूर्वी अरब और अफ्रीका के कई राज्यो ने राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। युद्ध के बाद के वर्षों मे १ अरब ५० करोड से भी अधिक लोगों ने औपनिवेशिक और अर्द्ध-औपनिवेशिक पराधीनता के चगुल से मुक्ति पायी। अमरीका से सिर्फ ९० मील की दूरी पर स्थित और अमरीका के एकाधिकारो के आधिपत्य मे फसे एक छोटे से देश—क्यूबा ने समाजवादी क्रान्ति का मार्ग अपनाया। १९३९ मे ६९·२ प्रतिशत विश्व जनसख्या औपनिवेशिक जनसख्या थी, जो १९६४ मे घटकर १·३ प्रतिशत हो गयी। स्पष्ट है कि शर्मनाक उपनिवेश व्यवस्था ढह चुकी है।

नवस्वतत्र राष्ट्रों के सम्मुख एक बुनियादी सवाल यह है कि वे विकास के किस मार्ग—पूजीवादी या गैर-पूजीवादी—को चुनें।

पूजीवाद इन राष्ट्रो को भला क्या दे सकता है?

पूंजीवाद जनता की मुसीबतो का मार्ग है। यह न तो द्रुत आर्थिक विकास की गारटी करता है और न दरिद्रता का ही उन्मूलन करता है। ग्रामीण क्षेत्रों का पूजीवादी विकास कृषक के लिए बर्बादी लाता है। मेहनतकश जनता के भाग्य मे पूजीवादियो की समृद्धि के लिए कठिन परिश्रम और बेरोजगारी लिखी होती है। बडी पूजी के साथ प्रतिद्वन्द्विता मे छोटे पूजीपति पिस जाते हैं। सस्कृति और शिक्षा आम जनता की सामर्थ्य के बाहर होती है। बुद्धिजीवियो को अपने ज्ञान का सौदा करना पडता है।

समाजवाद इन लोगो को क्या दे सकता है?

समाजवाद जनता की स्वतंत्रता और खुशहाली का मार्ग है। समाजवाद बडी तेजी से अर्थव्यवस्था और सस्कृति को समुन्नत करता है। एक पीढी के जीवनकाल मे ही एक पिछडे हुए मुल्क को औद्योगिक मुल्क के रूप मे बदल देता है। मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण पर आधारित सामाजिक विषमता को खत्म कर

देता है। बेरोजगारी पूर्णतया समाप्त हो जाती है। समाजवाद सभी किसानों को जमीन देता है, उनको अपने फार्म विकसित करने के लिए सहायता देता है, स्वैच्छिक आधार पर उन्हें सहकारी समितियों में संगठित करता है तथा उन्हें आधुनिक कृषि-टेक्नालाजी और कृषि-कला मुहैया करता है। समाजवाद मजदूर वर्ग और समस्त मेहनतकश जनता को जीवन-यापन का ऊंचा भौतिक और सांस्कृतिक स्तर प्रदान करता है।

जनगण अपने पसन्द का मार्ग अपने आप चुन लेंगे। विश्व के रंगमंच पर शक्तियों के वर्तमान सतुलन और विश्व समाजवादी व्यवस्था से जोरदार समर्थन पाने की वास्तविक सम्भावना के कारण भूतपूर्व उपनिवेशों के जनगण अपने हितों को ध्यान में रखकर निर्णय करने के लिए स्वतंत्र हैं। उनकी पसन्द वर्ग शक्तियों के उनके सम्बन्ध पर निर्भर है। मजदूर वर्ग, समस्त मेहनतकश जनता और आम जनवादी आन्दोलन गैर-पूजीवादी मार्ग द्वारा प्रगति को निश्चित बना देते हैं। यह इन राष्ट्रों के हित में है।

उपनिवेशवाद को उत्पीड़ित जनता के प्रबल मुक्ति आन्दोलन से बड़ा धक्का लगा है, किन्तु वह अभी मरा नहीं है।

आज उपनिवेशवादी न सिर्फ खुला हथियारबन्द संघर्ष करते हैं, बल्कि नव-स्वतंत्र देशों में छिपे तौर पर घुसपैठ करने की कोशिश करते हैं। उनका उद्देश्य इन देशों को आर्थिक और राजनीतिक तौर पर साम्राज्यवादी शक्तियों पर अवलम्बित रखना है।

आज अमरीका उपनिवेशवाद का मुख्य गढ़ है। अमरीका के नेतृत्व में साम्राज्यवादी भूतपूर्व उपनिवेशों के शोषण के नये रूपों और तरीकों का ताबड़तोड़ प्रयोग करते हैं। लैटिन अमरीका, एशिया और अफ्रीका में आर्थिक नियंत्रण और राजनीतिक प्रभाव को कायम रखने के लिए एकाधिकार जी-जान से कोशिशें कर रहे हैं। वे नवस्वतंत्र देशों की अर्थव्यवस्था में अपना पुराना स्थान बनाये रखना तथा आर्थिक "सहायता" का नकाब ओढ़कर नये स्थानों पर कब्जा जमाना चाहते हैं। वे इन देशों को फौजी संधियों में घसीटना, उन पर फौजी तानाशाही लादना और उनके प्रदेश पर फौजी अड्डे कायम करना चाहते हैं।

उपनिवेश व्यवस्था का विघटन अवश्यम्भावी रूप से पूजीवादी देशों की आर्थिक और राजनीतिक कठिनाइयां बढ़ाता है और सम्पूर्ण साम्राज्यवाद की जड़ें हिला देता है।

उपनिवेशवाद का पूरी तरह ढहना अवश्यम्भावी है। राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के उदय के फलस्वरूप औपनिवेशिक गुलामी का विघटन ऐतिहासिक महत्व की दृष्टि से विश्व समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के बाद दूसरी बड़ी घटना है।

पूंजीवाद के आम सकट की एक महत्वपूर्ण बात बाजार और पूं
विनियोग के क्षेत्र की दिनो दिन गम्भीर होती हुई समस्या है। इसका कार

बाजार की समस्या का गम्भीर होना—सतत बेरोजगारी और अल्प-उत्पादन की अवस्था

वस्तुओ के उत्पादन और उनकी बिक्री की सम्भाव के बीच निरन्तर बढती हुई खाई है। पूंजीवाद के अ सकट के प्रथम चरण मे रूस जैसे देश के पूंजीवा व्यवस्था मे अलग हो जाने के कारण पूंजीवादी देशो बीच बाजार और पूंजी विनियोग के क्षेत्र के लिए सघ तेज हो गया। पूंजीवाद के आम सकट के दूसरे चर मे विश्व समाजवादी व्यवस्था के उदय के कारण पूंजी वाद को और भी बडे बाजारो और पूंजी विनियोग के क्षेत्रो को खोना पडा।

विश्व समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना ने विश्व समाजवादी बाज को जन्म दिया। अब दो बाजार—समाजवादी देशो का बाजार और पूंजीवा देशो का बाजार बन गये हैं।

पूंजीवादी शोपण का सकुचित क्षेत्र, साम्राज्यवाद की औपनिवेशि व्यवस्था का वर्तमान विघटन, मेहनतकश जनता की बदतर स्थिति और अ व्यवस्था का सैन्यीकरण विश्व पूंजीवादी बाजार मे अन्तर्विरोध को गम्भीर ब रहे हैं।

नव-विकासशील देशो की प्रतिद्वन्द्विता बाजार के लिए होने वाले तीव्र सघ का एक दूसरा कारण है। ये देश अपनी वस्तुओ के लिए औद्योगिक दृष्टि से विकसि देशो के साथ उत्तरोत्तर प्रतिद्वन्द्विता कर रहे हैं। हलके उद्योगो मे बनी वस्तुओ लिए यह विशेष रूप से सही है।

बाजार और पूंजी विनियोग के क्षेत्र के लिए सघर्ष के कारण पूंजीवा एकाधिकार सगठनो और साम्राज्यवादी राज्यो के भीतर टकराव पैदा हो जाते है

औद्योगिक उद्यम की कार्यक्षमता मे निरन्तर ह्रास और स्थायी आ बेरोजगारी बाजार तथा पूंजी विनियोग के क्षेत्रो की उग्र समस्याओ से घनिष्ठ रू मे जुडी हुई है।

पूंजीवादी विकास के पूर्व-एकाधिकार काल मे सिर्फ आर्थिक सकटो दौरान ही औद्योगिक उद्यम बड़े पैमाने पर अपनी कार्यक्षमता का पूर्ण उपयोग न कर पाते थे। किन्तु अब पूंजीवाद के आम सकट काल मे सयत्रो की पूरी का क्षमता का निरन्तर उपयोग नही हो पाता। १६२५-२६ के उत्कर्ष काल मे अम रीका के प्रोसेसिंग उद्योग की उत्पादन क्षमता का सिर्फ ८० प्रतिशत और १६३ ३४ मे सिर्फ ६० प्रतिशत काम मे लाया गया। १६६४ मे अमरीका अपने इस्पा उद्योग की उत्पादन क्षमता का सिर्फ ८० प्रतिशत इस्तेमाल कर रहा था।

औद्योगिक उद्यमों द्वारा क्षमता के अपूर्ण उपयोग के कारण पूंजीवाद के आम सकट काल मे बेरोजगारी का स्वभाव भी बदला है। पहले आर्थिक सकट के दौरान बेरोजगारों की फौज बढ़ती थी और पुनर्प्राप्ति या उत्कर्ष के काल मे सबको रोजगार मिल जाता था, किन्तु वर्तमान समय मे आम बेरोजगारों की स्थायी फौज बनती जा रही है। अधिकृत आंकड़ों के अनुसार १९६३ में कनाडा में ५.५ प्रतिशत, डेनमार्क मे ४.३ प्रतिशत और ब्रिटेन में २.६ प्रतिशत और अमरीका मे ५.७ प्रतिशत कार्यशील जनसख्या बेरोजगार थी। १९६३ तक बेरोजगारो की सख्या अमरीका मे करीब ५० लाख थी।

कई देशों में आम बेरोजगारी एक वास्तविक राष्ट्रीय संकट बन गयी है।

पूंजीवादी चक्र मे परिवर्तन

स्मरण रहे कि एक आर्थिक सकट के प्रारम्भ होने से लेकर दूसरे आर्थिक सकट के प्रारम्भ होने तक के काल को चक्र कहते हैं। चक्र के चार दौर होते हैं: सकट, मदी, पुनर्प्राप्ति और उत्कर्ष।

पूंजीवाद का आम सकट प्रारम्भ हो जाने के बाद पूंजीवादी चक्र में भी परिवर्तन होता है। चक्र की अवधि छोटी हो जाने के कारण सकट बहुधा आते हैं। प्रथम विश्वयुद्ध के पहले हर ८-१२ वर्ष पर आर्थिक सकट आया करता था। दो विश्वयुद्धो के बीच की अवधि (१९१९-३८) में तीन आर्थिक सकट आये। इसका अर्थ हुआ कि हर ६-७ वर्ष पर एक सकट आया। सकट और पुनर्प्राप्ति के दौर लम्बे थे और उत्कर्ष कम स्थायी था। पहले सकट प्रायः १८ महीने से लेकर २ वर्षों तक रहता था, किन्तु १९२९-३३ का सकट चार सालो से अधिक रहा। पूंजीवाद के आम सकट के काल मे आर्थिक सकट बार-बार आते है।

उदाहरण के लिए अमरीका को देखें। पूंजीवादी विश्व के कुल औद्योगिक उत्पादन मे अमरीका का हिस्सा ४४.७ प्रतिशत है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमरीका के उद्योगो को १९४९ मे एक आर्थिक सकट का मुकाबला करना पड़ा जो पूरे सालभर गम्भीर रूप मे रहा। १९५३ के उत्तरार्द्ध मे एक नया आर्थिक सकट शुरू हुआ। इसके कारण औद्योगिक उत्पादन की मात्रा मे कमी और माग की मात्रा मे कटौती हुई, बेरोजगारी बढ़ी और गोदामो मे वस्तु-भडार बढा। यह सकट १९५४ के दौरान भी रहा। १९५७ के मध्य मे अमरीका मे अत्युत्पादन का एक नया सकट शुरू हुआ। १९५८ मे इसने गम्भीर रूप धारण कर लिया। १९५८ के पहले छः महीनो मे १९५७ के पहले छः महीनो की तुलना में कच्चे लोहे के उत्पादन मे ३८.३ प्रतिशत, इस्पात के उत्पादन मे ३६.५ प्रतिशत और मोटर-गाड़ियो के उत्पादन मे ३३.६ प्रतिशत की कमी हुई। यह आर्थिक सकट अन्य देशो मे भी फैला।

१९५७-५८ के सकट के बाद से अब तक अमरीकी उद्योग मे दीर्घकालीन उत्कर्ष नही आया है। दो वर्ष बीतने के पूर्व ही १९६० मे अमरीका को एक अन्य सकट का मुकाबला करना पडा।

इस प्रकार युद्धोत्तर काल मे अमरीका की अर्थव्यवस्था मे चार बार आर्थिक सकट आये। चक्र के दौरो का सामान्य क्रम गडबड हो गया। कुछ दौर सदा के लिए लुप्त हो गये। उदाहरण के लिए, सकट से पुनर्प्राप्ति की ओर सक्रमण बहुधा मदी के दौर को छोड देना है और पुनर्प्राप्ति के दौर के बाद उत्कर्ष का दौर ...ग्या नही आता है, बल्कि उत्कर्ष के बाद एक नया सकट शुरू होता है। इसके ...तिरिक्त कई स्थितियो मे अब सकट की ओर एकाएक सक्रमण नही होता, बल्कि ...रे-धीरे सकटपूर्ण जड़ता का एक लम्बा काल शुरू होता है। अब स्टाक एक्सचेंज ...र बैंक विफल नही होते। युद्धोत्तर काल मे सकट उतने स्थायी नही रहे, जितने ...तीय विश्वयुद्ध के पूर्व थे।

युद्ध के बाद पूजीवादी चक्र मे इन परिवर्तनो के क्या कारण हैं? मुख्य ...रण यह है कि पूजीवादी व्यवस्था ने कुछ शाखाओ और प्राय सभी देशो मे ...त जडता और क्षय के काल मे प्रवेश किया है। विकास की आम दर कम हुई है।

कई अन्य कारण भी हैं जिनकी वजह से पूजीवादी चक्र मे युद्धोत्तरकालीन ...रिवर्तन हुए हैं :

१. अर्थव्यवस्था के सैन्यीकरण के फलस्वरूप पूजीवादी चक्र पर दो ...रस्पर-विरोधी असर पडे हैं। सैन्यीकरण हथियार उत्पादन से सम्बधित ...ाखाओ मे एक अस्थायी उत्कर्ष लाता है, लेकिन दूसरी ओर पूजीवादी पुनरुत्पा-दन के अन्तर्विरोधो को भडकाता है और ऐसे तत्व उत्पन्न करता है जो और भी गम्भीर सकट लाते हैं।

२. राजकीय एकाधिकार पूंजीवाद भी कुछ हद तक पूजीवादी चक्र को प्रभावित करता है। इसका मतलब है कि राज्य आर्थिक दृष्टि से एकाधिकारो के लिए (औद्योगिक और कृषि उत्पादनो की राजकीय खरीद, एकाधिकारो को राजकीय अनुपूर्ति और साख प्रदान कर, इत्यादि) उत्पादन की एक निश्चित वृद्धि और स्थिर पूजी के नवीकरण के लिए अवश्यम्भावी तौर पर महत्वपूर्ण है। राजकीय नियामक विधियों के जरिए पूजीवादी एकाधिकार आर्थिक सकटो की विध्वसात्मक शक्ति का असर कम करना चाहते हैं। यद्यपि राजकीय एकाधिकार पूजीवाद पूजीवादी चक्र को प्रभावित करता है, तथापि यह अत्युत्पादन के आर्थिक सकट का उन्मूलन नही करता।

३. आधुनिक वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति पूजीवादी चक्र को प्रभावित करती है। यह प्रगति स्थिर पूजी के द्रुत अप्रचलन की पूर्व मान्यता पर आधारित

है। अत. सकट के दौरान पूजी विनियोग में कटौती हो सकती है और तब भी वह सापेक्षिक तौर पर ऊचे स्तर पर रह सकता है। इस कारण चक्र के विकास को एक नया रूप मिलता है।

४ पूजीवादी देशो के वर्ग संघर्ष का चक्र पर बहुत अधिक प्रभाव पडता है। वर्ग सघर्ष में मजदूर जितने ही सफल होते है, पूजीपति वर्ग आर्थिक रियायतें देने के लिए उतना ही अधिक मजबूर होता है। इस कारण घरेलू बाजार विस्तृत होता है और अत्युत्पादन के सकट को गहरा होने से रोकता है।

५. औपनिवेशिक साम्राज्य का विघटन भी पूजीवादी चक्र को प्रभावित करता है, क्योकि जिन देशो ने राजनीतिक स्वतत्रता प्राप्त की है उन्होने अपनी आर्थिक स्वतत्रता को मजबूत करना शुरू कर दिया है। उनके लिए औद्योगीकरण ही आर्थिक स्वतत्रता का मार्ग है। वर्तमान काल में पूजीवादी देशों और खासकर पश्चिमी यूरोप से निर्यात किये गये उपकरणो का आधा भाग अर्द्धविकसित देशो को जाता है। इस कारण पश्चिमी यूरोप के इजीनियरिंग उद्योगो के उत्पादन मे वृद्धि हुई है और वह युद्धोत्तर काल मे पूजीवादी चक्र मे सहायक हुआ।

वर्तमान समय मे पूजीवादी चक्र की प्रवृत्ति को प्रभावित करने वाले ये कुछ तत्व हैं। इन्ही तत्वो के कारण ऐसी स्थिति आ गयी है जिसमे पूजीवादी देशो की अर्थव्यवस्था में सकटो की पुनरावृत्ति बढ गयी है, परन्तु ये सकट १९२९-३३ के सकट की तुलना मे कम गम्भीर होते है।

औद्योगिक उद्यम अपनी पूरी क्षमता का उपयोग नही कर पाते, स्थायी बेरोजगारी रहती है और आर्थिक सकट जल्दी-जल्दी आते हैं। ये सब बातें बतलाती है कि पूजीवाद अपने भीतर विकसित अपार उत्पादक शक्तियो का पूर्ण उपयोग करने मे असमर्थ है। मानवजाति के विकास के मार्ग मे पूजीवाद एक बहुत बडी बाधा बनकर खडा हो गया है। पूजीवाद फौजी होड और अर्थव्यवस्था के सैन्यीकरण द्वारा अपने आर्थिक और राजनीतिक अन्तर्विरोध हल करना चाहता है।

अर्थव्यवस्था के सैन्यीकरण का मतलब है कि उद्योग के एक बड़े भाग को असैनिक उत्पादन से हटाकर हथियारो के उत्पादन मे सामरिक आरक्षित भडार के रूप मे भौतिक मूल्यो को जमा करने के लिए लगाया जाता है। उदाहरण के लिए, अमरीका मे द्वितीय विश्वयुद्ध के समय सघीय प्रशासन का प्रत्यक्ष सैनिक व्यय कुल बजट व्यय का १४ प्रतिशत था, किन्तु १९५१ से लेकर अब तक प्रत्यक्ष सैनिक व्यय प्रतिवर्ष वार्षिक सघीय बजट-राशि का दो-तिहाई रहा है। १९६८-६९ मे सैनिक व्यय ५१ अरब २० करोड़ डालर था। दूसरे

अर्थव्यवस्था का सैन्यीकरण और मेहनतकश जनता की बिगड़ती हुई हालत

महायुद्ध के बाद ब्रिटेन और फ्रांस में कुल बजट व्यय का एक-तिहाई प्रतिवर्ष सेना पर खर्च किया जाता रहा है।

अर्थव्यवस्था का सैन्यीकरण और फौजी होड़ युद्ध का खतरा पैदा करते है। अत सोवियत सघ, अन्य समाजवादी देश और समस्त शान्तिप्रेमी मानवजाति आम और पूर्ण निरस्त्रीकरण के लिए लगातार सघर्ष कर रही है।

फिर भी साम्राज्यवादी शक्तिया आम और पूर्ण निरस्त्रीकरण के लिए तैयार नही है। क्यो? क्योकि फौजी होड के कारण एकाधिकारो के मुनाफे मे अभूतपूर्व रूप मे वृद्धि होती है। उदाहरण के लिए, अमरीकी एकाधिकारो का मुनाफा १९३८ और १९५९ के बीच ३ अरब ३० करोड डालर से बढकर ५१ अरब डालर हो गया, यानी १५ गुनी वृद्धि हुई। २५० कारपोरेशनो का कुल मुनाफा १९६१ मे ७ अरब ५० करोड डालर था, जो १९६२ मे ८ अरब ८०करोड डालर हो गया। इस तरह इसमे १६.४ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

इतना होते हुए भी पूजीवाद के सिद्धान्तकार यह दावा करते हैं कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का सैन्यीकरण और फौजी होड पूजीवादी अर्थव्यवस्था को आर्थिक सकटो और बेरोजगारी से मुक्त रखता है। किन्तु तथ्य यह है कि अर्थव्यवस्था का सैन्यीकरण उत्पादन क्षमताओ और जनता की सकुचित होती हुई प्रभावी मागो के बीच की खाई को बढाकर अवश्यम्भावी रूप से नये, अधिक गहरे आर्थिक सकट लाता है।

फौजी होड सर्वहारा वर्ग और समस्त मेहनतकश जनता पर एक भारी बोझ है। उदाहरण के लिए, अमरीका मे प्रति व्यक्ति सैनिक व्यय १९१३-१४ के आर्थिक साल मे ३.५ डालर, १९२९-३० के आर्थिक साल मे ७ डालर और १९५४-५५ मे २५० डालर था। इस प्रकार १९१३-१४ और १९५४-५५ के दौरान सैनिक व्यय ७० गुना बढा। ब्रिटेन का प्रति व्यक्ति सैनिक व्यय १९१३-१४ मे १ पौंड १४ शिलिंग था जो १९५४-५५ मे बढकर २९ पौंड ६ शिलिंग हो गया। इस बड़े व्यय को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करो को बढाकर पूरा किया जाता है। अमरीका के १९५९-६० के आर्थिक साल मे १९३७-३८ की तुलना मे (मुद्रा के अवमूल्यन के लिए छूट देने पर भी) प्रत्यक्ष करो मे १५ गुनी वृद्धि हुई। इसी अवधि मे इटली मे प्रत्यक्ष कर दुगुने और ब्रिटेन तथा फ्रास मे तिगुने हो गये।

युद्धोत्तरकालीन फौजी होड़ पूजीवादी देशो मे मुद्रा-स्फीति ले आया, जिसके चलते कागजी मुद्रा की क्रय-शक्ति मे भारी कमी आयी। १९३७ मे अमरीका की कुल प्रचलित मुद्रा की राशि ५ अरब ६० करोड़ डालर थी, जो १९५८ के आरम्भ मे बढकर २७ अरब ४० करोड़ डालर हो गयी। १९३७ मे ब्रिटेन की कुल कागजी मुद्रा-राशि ४६ करोड़ पौंड थी, जो १९५८ के आरम्भ मे १ अरब

८५ करोड़ पौंड हो गयी। इटली की कुल कागजी मुद्रा १९३७ में १८ अरब लीरा थी, जो १९५८ में १८५२ अरब लीरा की विशाल राशि पर पहुंच गयी।

बढ़े हुए कर-भार और मुद्रा-स्फीति के बावजूद एकाधिकार मौद्रिक मजूरी को अपरिवर्तित रखने (यानी एक स्थिर स्तर पर रखने) के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। इसका मतलब है वास्तविक मजूरी में कमी और मेहनतकश जनता की बदहाली। इस कारण सर्वहारा वर्ग को पूजीवादी यंत्रणा के खिलाफ कठिन सघर्ष करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। हड़ताल-आन्दोलन का बढ़ता हुआ क्षेत्र इसका स्पष्ट सबूत है। अधिकृत आकड़ों (जो स्पष्ट तौर पर कम करके दिखाये गये हैं) के अनुसार ११ देशों—अमरीका, ब्रिटेन, फ्रास, पश्चिम जर्मनी, जापान, कनाडा, आस्ट्रिया, स्वीडेन, बेल्जियम, हालैंड और अर्जेन्टाइना में १९३०-३९ की तुलना मे १९५४-५५ में हड़तालों की सख्या ६७,००० से बढ़कर १०१,००० हो गयी। उनमें भाग लेने वाले मजदूरों की संख्या २ करोड़ १० लाख से बढ़कर ७ करोड ३० लाख हो गयी। १९३०-३९ में २४ करोड़ कार्यदिवसों की हानि हुई थी, जबकि १९५४-५५ के दौरान ६७ करोड़ २० लाख कार्यदिवस नष्ट हुए।

सर्वहारा वर्ग का संघर्ष मन्द होने के बदले भयंकर रूप से फैल रहा है। १९६१ मे हड़तालो मे भाग लेने वाले लोगो की सख्या ५ करोड़ से ५ करोड़ ३० लाख के बीच थी। १९६३ मे यह सख्या बढकर ५ करोड ८० लाख हो गयी।

युद्धोत्तर काल मे पूजीवादी देशो के सर्वहारा वर्ग ने अपने को आर्थिक सघर्ष तक ही सीमित नही रखा है, बल्कि युद्ध के पहले की अवधि की तुलना मे अधिक दृढता के साथ घरेलू और विदेश नीतियो के बुनियादी सवालो पर वह सक्रिय भूमिका अदा करता रहा है। वह शान्ति तथा जनवादी स्वतत्रताओ के लिए जन-सघर्ष के अगले दस्ते मे है।

सर्वहारा वर्ग के सघर्ष का नेतृत्व मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्तो पर आधारित कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टिया कर रही हैं। उनकी ताकत और जीवनी-शक्ति की पुष्टि वर्तमान युग के अनुभवो से हुई है।

हमारे युग मे इसके वैज्ञानिक निष्कर्षों की पुष्टि पूजीवाद को सदा के लिए उखाड फेंकने वाली एक-तिहाई मानवजाति के अनुभवो द्वारा हुई है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि पूजीवाद के स्थान पर नयी व्यवस्था—समाजवाद—जरूर स्थापित होगी। सिर्फ समाजवाद ही सर्वहारा वर्ग समेत समस्त मेहनतकश जनता को अन्तिम तौर पर मुक्त कर सकता है। समाजवाद के अन्तर्गत ही मेहनतकश जनता अपनी मेहनत का फल भोग सकती है।

एकाधिकार राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध कार्य करते हैं

आज की परिस्थितियों में साम्राज्यवादी देशों के भीतर एकाधिकार पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग तथा समूचे राष्ट्रीय हितों में अपरिहार्य टक्कर होती है।

एकाधिकार पूंजी सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनता के अन्य समूहों—किसान और दस्तकार—के शोषण को तीव्र कर देती है। पूंजीवाद के आम संकट के वर्तमान चरण में मजदूरों और किसानों की हालत चिन्ताजनक हो गयी है। अमरीका में एकाधिकारों ने कीमतें इतनी बढ़ा दी हैं कि १९५६ में किसानों को अपनी खरीद की वस्तुओं के लिए १९५० की अपेक्षा १२ प्रतिशत अधिक कीमतें देनी पड़ी, हालांकि उसी दौरान किसानों की वस्तुओं की कीमतें ७ प्रतिशत घटीं। औद्योगिक और कृषि वस्तुओं की कीमतों में अन्तर, कर्ज का बोझ, एकाधिकारी राज्य द्वारा लादा गया करों का भार किसानों को बर्बादी की ओर ले जा रहा है। अमरीका में हर साल करीब १,४०,००० फार्म बन्द हो जाते हैं और उनके मालिक बेरोजगारों या फार्म मजदूरों की फौज में शामिल हो जाते हैं। १९५४ से १९६२ तक साल में २,४२,००० फार्म "लुप्त" हो गये। किन्तु सबसे बुरा हाल लैटिन अमरीकी देशों और एशिया तथा अफ्रीका के अधिकांश देशों के किसानों का है।

एकाधिकार के हित न सिर्फ सर्वहारा वर्ग के हितों से टकराते हैं, बल्कि छोटे और मझोले पूंजीपति वर्ग के स्वार्थों से भी टकराते हैं। राज्य के जरिए एकाधिकार करारोपण, साख, टैरिफ और कीमतों की ऐसी नीति अपनाते हैं, जो अधिशेष मूल्य को उनके हित में पुनर्विभाजन की गारंटी करती है। छोटे और मझोले पूंजीपतियों को मुनाफे में हिस्सा नहीं मिलता और वे बर्बाद हो जाते हैं।

सर्वहारा वर्ग के स्वार्थों की तरह ही छोटे पूंजीपति वर्ग और मध्यम श्रेणी के लोगों के स्वार्थ एकाधिकार पूंजीपति वर्ग, उसकी पार्टी और उसके संरक्षक राज्य के स्वार्थों से टकराते हैं। यही कारण है कि सर्वहारा वर्ग, किसान, बुद्धिजीवी और छोटे तथा मध्यम शहरी पूंजीपति एकाधिकारों के शासन के उन्मूलन के लिए तत्पर हैं। इन शक्तियों को एकजुट करने की अनुकूल स्थितियां बन रही हैं।

आज की परिस्थितियों में राष्ट्र की सारी शक्तियां शान्ति, राष्ट्रीय स्वतंत्रता, जनवाद की रक्षा, अत्यन्त महत्वपूर्ण उद्योगों के राष्ट्रीयकरण और उनकी जनवादी व्यवस्था तथा जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के इस्तेमाल के जरिए एकाधिकारों के विरुद्ध एकजुट की जा सकती हैं।

एकाधिकारों के शासन के विरुद्ध संघर्ष में कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियां अगुआ रहती हैं और जनता को एकजुट कर उसे संघर्ष में निर्देशित करने के लिए पुरजोर कोशिशें करती हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध ने पूंजीवादी देशों के असम विकास को तेज कर दिया। जर्मनी, जापान और इटली को फौजी हार माननी पड़ी। उनकी अर्थव्यवस्थाओं की कमर टूट गयी। फ्रांस को, दमन हो जाने पर, बहुत बर्बादी सहनी पड़ी। ब्रिटेन बहुत कमजोर हो गया। सिर्फ अमरीका को लड़ाई से फायदा पहुंचा। १९४८ में पूंजीवादी विश्व के कुल औद्योगिक उत्पादन में अमरीका का हिस्सा ५६.६ प्रतिशत, ब्रिटेन का ११.५, पश्चिम जर्मनी का ६, फ्रांस का ४, कनाडा का ३.५, इटली का २ और जापान का १.५ प्रतिशत था। फलस्वरूप पूंजीवादी विश्व में शक्तियों के सन्तुलन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। इसके कारण क्या है?

पूंजीवादी देशों के पारस्परिक अन्तर्विरोधों में वृद्धि

पहला, विश्व पूंजीवादी उत्पादन और व्यापार में अमरीका अपनी निरपेक्ष श्रेष्ठता खो चुका है। १९४८ से विश्व औद्योगिक उत्पादन में उसका हिस्सा १० प्रतिशत कम हो गया है। १९६४ में उसका हिस्सा ४४.५ प्रतिशत था। उसका निर्यात २३.४ प्रतिशत से घटकर १७ प्रतिशत और सुरक्षित स्वर्ण ७४.५ प्रतिशत से घटकर ३५ प्रतिशत पर आ गया है। अन्य पूंजीवादी शक्तियों के बीच अमरीका की करीब-करीब वही स्थिति है, जो दूसरे विश्वयुद्ध के पूर्व थी।

दूसरा, ब्रिटेन और फ्रांस स्पष्ट रूप से कमजोर हो गये हैं। ये देश लगातार अपने उपनिवेश खो रहे हैं। विश्व औद्योगिक उत्पादन में ये देश अपने युद्धपूर्व के स्थान को पुन पाने में असमर्थ हैं। १९३७ में पूंजीवादी औद्योगिक उत्पादन में उनका हिस्सा १८·५ प्रतिशत था जो १९६४ में १३·४ प्रतिशत रह गया।

तीसरा, पराजित देश, विशेषकर पश्चिम जर्मनी और जापान बड़ी तेजी से आगे बढ़े हैं। पश्चिम जर्मनी, जापान और इटली मिलकर पूंजीवादी विश्व के औद्योगिक उत्पादन का १७.४ प्रतिशत पैदा करते हैं।

आर्थिक शक्तियों का सतुलन बदल जाने के कारण साम्राज्यवादी देशो मे बाजार के लिए पारस्परिक सघर्ष भयकर रूप से शुरू हो गया है।

अमरीका अपनी आर्थिक श्रेष्ठता का फायदा उठाकर अन्य देशो को पूर्णतया या आशिक तौर पर अधीनस्थ करने की कोशिशें कर रहा है। वह युद्ध के बाद के प्रारम्भिक वर्षों में विश्व पूजीवादी बाजार पर अपना कब्जा जमाने मे सफल हो गया है, किन्तु पश्चिम जर्मनी, ब्रिटेन, फ्रान्स और इटली द्वारा अपनी अर्थव्यवस्थाओ को पुनर्निर्मित कर लेने के बाद अमरीका को विश्व बाजार मे इन देशो की प्रतिद्वन्द्विता का सामना करना पड़ रहा है। फलस्वरूप अमरीका, ब्रिटेन, पश्चिम जर्मनी और अन्य देशों के एकाधिकार सगठनो के बीच बाजार के लिए भयकर सघर्ष शुरू हो गया। बाजार, कच्चे माल के स्रोतो और प्रभाव क्षेत्रो के

इस संघर्ष में अमरीका को पश्चिमी यूरोप के साम्राज्यवादियों के अधिकाधिक प्रतिरोध का सामना करना भी करना पड़ रहा है। पश्चिमी यूरोप के एकाधिकार अपने उच्च मुनाफ़ों पर आंच नहीं आने देना चाहते हैं।

एकाधिकारों के पारस्परिक संघर्ष के कारण पूंजीवादी देशों के अन्तर्विरोध बढ़े हैं। अमरीका और ब्रिटेन के पारस्परिक अन्तर्विरोध साम्राज्यवादी देशों के आपसी गहरे अन्तर्विरोधों के एक उदाहरण हैं। अमरीका की एकाधिकार पूंजी ब्रिटेन के परम्परागत बाजारों और प्रभाव क्षेत्रों पर हमला बोल रही है। अमरीका आर्थिक सहायता के साथ ब्रिटेन के डोमिनियनों और उपनिवेशों के साथ उसके बहुपक्षीय आर्थिक सम्बन्धों को तोड़ रहा है। विदेशी व्यापार और कच्चे माल के स्रोतों को लेकर ब्रिटेन और अमरीका का संघर्ष उग्र होता जा रहा है।

फ्रांस और अमरीका के पारस्परिक अन्तर्विरोध बढ़ रहे हैं। कई अमरीकी फर्मों ने फ्रांस में औद्योगिक उद्यम खोल रखे हैं। विदेशी व्यापार के क्षेत्र में भी प्रतिद्वन्द्वात्मक संघर्ष बढ़ रहा है। अमरीका फ्रांस के परम्परागत उत्तरी अफ्रीकी बाजारों पर हमला कर रहा है। ऐसे गम्भीर आसार दिखायी दे रहे हैं जिनसे यह स्पष्ट है कि अमरीका फ्रांस को अफ्रीकी बाजारों से खदेड़ना चाहता है। प्रभावशाली अमरीकी क्षेत्र राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों के "प्रायोजक" का नकाब ओढ़कर कार्य करते हैं और अफ्रीकी देशों पर फ्रांसीसी आधिपत्य के बदले अमरीकी आधिपत्य कायम करना चाहते हैं, जैसा कि उन्होंने दक्षिण वियतनाम में किया है। इस कारण फ्रांस के शासक क्षेत्रों में चिन्ता व्याप्त है।

विश्व बाजार में पश्चिम जर्मनी और जापान के प्रवेश के बाद साम्राज्यवादी देशों के पारस्परिक अन्तर्विरोध भयंकर हो गये हैं। युद्धोत्तर काल में अमरीका पश्चिम जर्मनी के एकाधिकारों को अपने वश में करने और वहां की अर्थव्यवस्था की महत्वपूर्ण शाखाओं में सुदृढ़ स्थान पाने की कोशिश कर रहा है। ब्रिटेन भी इसी दिशा में प्रयत्नशील है। अपनी बढ़ती हुई औद्योगिक क्षमता के आधार पर पश्चिम जर्मनी के एकाधिकारों ने एक विस्तारवादी कार्यक्रम शुरू किया है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के प्रारम्भिक वर्षों में निर्यात की दृष्टि सेपश्चिम जर्मनी का स्थान पूंजीवादी देशों में बहुत नीचे था, किन्तु अब अमरीका के बाद दूसरा है।

साम्राज्यवादियों के आन्तरिक अन्तर्विरोध समाधान से परे हैं। लेनिन ने बताया था कि पूंजीवादी शिविर में अन्तर्विरोध अचानक नहीं पैदा हो गये हैं, बल्कि वे "साम्राज्यवादियों के आर्थिक स्वार्थों के अवश्यम्भावी टकराव की अभिव्यक्ति हैं।" उन्होंने कहा कि "पूंजीवादी शक्तियों की मैत्री...डाकुओं की मैत्री है, प्रत्येक दूसरे से कुछ छीनना चाहता है।"[1]

१. लेनिन, "समग्र रचनाएं", रूसी संस्करण, खंड ३१, पृष्ठ ४३६, २६८-२६६।

पूंजीवाद के बुनियादी अन्तर्विरोध—उत्पादन का सामाजिक चरित्र और पूजीपतियो द्वारा फल प्राप्त करने का निजी रूप—से ही अन्तर्साम्राज्यवादी अन्तर्विरोध पैदा हुए है। किसी भी करार, लेन-देन, सधि या समझौते द्वारा साम्राज्यवादियो के पारस्परिक अन्तर्विरोध खत्म नही किये जा सकते।

वर्तमान युग का मुख्य अन्तर्विरोध—प्रगतिशील समाजवाद और मरणासन्न पूजीवाद का पारस्परिक सघर्ष—पूजीवादी शिविर के आन्तरिक विरोधो का उन्मूलन नही कर देता। हमारे युग के इस मुख्य अन्तर्विरोध का अन्तर्साम्राज्यवादी सम्बधो पर दुहरा असर पड़ता है। यह एक तरफ पूजीवादी देशों की एकता को बढ़ावा देता है, नाटो, सियाटो, सेन्टो, आदि खेमों की स्थापना के लिए आधार प्रस्तुत करता है और साम्राज्यवादियो के बीच सशस्त्र टकराव को मुश्किल बना देता है, तो दूसरी तरफ वर्तमान विश्व विकास की बुनियादी समस्याओ के सदर्भ मे पूंजीवादी देशो के बीच अन्तर्विरोधो और टकराव के नये स्रोत पैदा करता है।

अन्तर्साम्राज्यवादी अन्तर्विरोध अवश्यम्भावी रूप से विश्वयुद्ध नही ला सकते। जब पूजीवाद विश्व पर छा जाने वाली शक्ति था, तब अन्तर्साम्राज्यवादी अन्तर्विरोधो और देशों के बीच शक्ति-सतुलन बदलने के कारण विश्वयुद्ध शुरू होते थे। आज पूजीवाद एकमात्र राजकीय व्यवस्था के रूप मे अपना स्थान खो चुका है। आज विश्व समाजवादी व्यवस्था भी है, जो मानवीय विकास का निर्णायक तत्व बनती जा रही है। अब एक नयी ऐतिहासिक स्थिति आ गयी है, जिसने विश्व की संगठित शक्तियो को विश्व समाजवादी व्यवस्था के नेतृत्व मे आक्रामक शक्तियो पर अकुश लगाने और सामाजिक जीवन से विश्वयुद्ध को सदा के लिए दूर कर देने का अवसर दिया है।

× × ×

हमने मजूरी-श्रम के शोषण पर आधारित पूजीवादी उत्पादन व्यवस्था का अध्ययन कर लिया। पूजीवाद के अन्तर्गत, खासकर उसके विकास की चरम सीमा पर, श्रम और पूजी, साम्राज्यवादी देशो तथा उपनिवेशो और स्वय साम्राज्यवादी शक्तियो के बीच अन्तर्विरोध बेहद उग्र हो गये हैं। इन सकटो के गहरे होने के कारण पूजीवादी विश्व को नवीन आर्थिक और सामाजिक उथल-पुथल का सामना करना पड़ता है और अन्ततोगत्वा क्रान्ति द्वारा पूजीवाद के स्थान पर समाजवाद आता है।

मार्क्स ने आज से १०० साल पहले कहा था कि पूजीवादी उत्पादन व्यवस्था का ऐतिहासिक तौर पर पतन अवश्यम्भावी है। वर्तमान तथ्य इस निष्कर्ष की जोरदार पुष्टि करते हैं।

उत्पादन की कम्युनिस्ट पद्धति

कई पीढियो से मेहनतकश जनता एक सुरक्षित और सुखी जीवन का सपना देखती आयी है। एक लम्बे समय तक ये सपने साकार नही हो सके, क्योंकि जनता स्वतंत्रता के मार्ग से अनभिज्ञ थी। सर्वहारा वर्ग के महान नेताओं—मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन—ने मेहनतकश जनता को कम्युनिज्म का मार्ग, मानवजाति के उज्ज्वल भविष्य का रास्ता दिखलाया।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में लिखा है. "कम्युनिज्म सब लोगों को सामाजिक विषमता, हर तरह के उत्पीड़न और शोषण तथा युद्ध की विभीषिका से मुक्त कराने का ऐतिहासिक कार्य सम्पन्न करता है और ससार की सम्पूर्ण जनता के लिए शान्ति, श्रम, आजादी, समता, भाईचारा और समृद्धि लाता है।"[1]

कम्युनिस्ट समाज को विकास के दो दौरो से गुजरना पडता है। पहले दौर को समाजवाद और दूसरे को (जो श्रेष्ठतर है) कम्युनिज्म कहते हैं।

हर देश की मेहनतकश जनता के मुक्ति सघर्ष का आखिरी उद्देश्य कम्युनिज्म का निर्माण करना है। लेनिन ने लिखा है: "समाजवाद की ओर सक्रमण करते समय हमें साफ तौर पर समझ लेना चाहिए कि कम्युनिस्ट समाज का निर्माण हमारा अन्तिम लक्ष्य है।..."[2]

मार्क्सवाद-लेनिनवाद बतलाता है कि पूजीवाद के बाद तुरन्त ही कम्युनिस्ट सामाजिक-आर्थिक सरचना पके-पकाये रूप मे नही मिल सकती।

सर्वहारा वर्ग द्वारा राजसत्ता प्राप्त करते ही कम्युनिस्ट समाज नही बन सकता। कम्युनिज्म के निर्माण के लिए समय की एक लम्बी अवधि और सर्वहारा वर्ग, कृषक वर्ग और बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा कठिन प्रयास की आवश्यकता है।

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ४५०।
२ लेनिन, "संकलित रचनाएं", खंड २६, पृष्ठ १२७।

ाजवाद कम्युनिज्म के रूप में विकसित हो सकता है।

कम्युनिस्ट सामाजिक-आर्थिक संरचना का वर्णन करते हुए वैज्ञानिक
म के प्रतिपादक कार्ल मार्क्स ने गोथा कार्यक्रम की आलोचना में लिखा
जवाद और कम्युनिज्म एक ही उत्पादन व्यवस्था की आर्थिक परिपक्वता
त के दो भिन्न चरण है। कार्ल मार्क्स ने समाजवाद को कम्युनिज्म का
र बताया और कहा कि इस अवस्था मे हम अपने पाये पर विकसित
ट समाज के बारे में विचार नही करते हैं, बल्कि एक ऐसे समाज के विषय
करते हैं जिसका उदय पूंजीवाद के भीतर से होता है और जो इस कारण
—आर्थिक, नैतिक और बौद्धिक—से पुराने समाज के अवशेषों से
लेनिन ने इस बात पर जोर दिया कि "समाजवाद और कम्युनिज्म में
वैज्ञानिक अन्तर यह है कि पहला शब्द पूंजीवाद के भीतर से जन्म लेने
समाज के पहले चरण को सूचित करता है, जबकि दूसरा शब्द बाद के
रण का द्योतक है।"[1]

माजवाद के विकास के परिणामस्वरूप समाज द्वितीय उच्चतर चरण—
की ओर बढ़ता है।

स प्रकार समाजवाद और कम्युनिज्म एक ही कम्युनिस्ट समाज के दो
ौर हैं।

ाधित रचनाएं", खंड २, पृष्ठ ४८३।
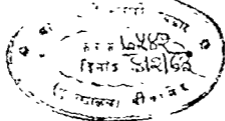
ाजवाद—कम्युनिस्ट समाज का पहला दौर

अध्याय ६

जवाद का उदय और उसकी स्थापना

ाद से समाजवाद की ओर संक्रमण काल के सम्बंध में मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण

के आर्थिक विकास की धारा पर विचार करते समय मार्क्सवाद-
निनवादकों ने पूंजीवाद के उदय, विकास और पतन सम्बंधी नियम
ढूंढ़ निकाले। मार्क्स ने लिखा कि आर्थिक गरीबी और
माजवाद राजनीतिक उन्माद से युक्त पुराने समाज के स्थान पर
न्तिकारी एक नये समाज का आना अवश्यम्भावी है। शान्ति इस
ा नये समाज की अन्तर्राष्ट्रीय नीति होगी, क्योंकि तब
प्रत्येक राष्ट्र का एक ही स्वामी होगा—श्रम। ऐसे
समाजवाद कहते हैं। ऐसे समाज की स्थापना दुनिया में पहली बार
हुई।

ट जर्मनी और सैन्यवादी जापान की द्वितीय विश्वयुद्ध (जिसमें
निर्णायक भूमिका अदा की थी) में पराजय और समाजवादी
जय के बाद दूसरे देशों के जनगण ने समाजवाद का निर्माण शुरू

अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की विजय (जो मानव समाज के
नये युग की शुरूआत थी) ने साबित कर ...ूंजीवाद के

दिन लद गये हैं और उत्पादन के पूंजीवादी सम्बंध उत्पादक शक्तियों के विकास के मार्ग में बाधक हो गये हैं।

यूरोप, एशिया और अमरीका के देशों में समाजवादी क्रान्तियों ने विश्व पूंजीवाद को एक जबर्दस्त धक्का दिया। अक्तूबर क्रान्ति के बाद विश्व इतिहास में ये महानतम घटनाएं हैं। पूंजीवाद को अवश्यम्भावी रूप से नये समाज—समाजवादी समाज—के लिए जगह खाली करनी होगी।

किन्तु समाजवाद स्वतः पूंजीवाद को हटाकर उसकी जगह पर नहीं आ सकता। पूंजीवादी व्यवस्था को सम्पूर्ण जनता के दृढ़ संघर्ष—सर्वहारा क्रान्ति—के द्वारा ही खत्म किया जा सकता है और पूंजीपतियों के शक्ति-स्रोतों तथा जनता के शोषण और उत्पीड़न को समाप्त किया जा सकता है। मार्क्स ने लिखा है कि "...क्रान्ति के बिना समाजवाद नहीं हासिल किया जा सकता। उसके लिए इस राजनीतिक कार्य की उतनी ही जरूरत है, जितनी पुराने समाज के ध्वंस और विनाश की।"

निजी स्वामित्व के उन्मूलन के लिए क्रान्ति अत्यावश्यक है। क्रान्ति द्वारा ही पूंजीपतियों के हाथों से उत्पादन के बुनियादी साधनों को छीनकर सम्पूर्ण जनता को दिया जा सकता है और इस तरह समाजवादी स्वामित्व कायम किया जा सकता है।

पूंजीवाद से समाजवाद की ओर क्रान्तिकारी संक्रमण दो तरीकों—शान्तिपूर्ण और गैर-शान्तिपूर्ण—से हो सकता है।

सर्वहारा वर्ग और उसका कम्युनिस्ट हिरावल दस्ता शान्तिपूर्ण तरीकों से समाजवादी क्रान्ति करना चाहते हैं। यह सर्वहारा वर्ग और सम्पूर्ण जनता के हितों के अनुकूल ही है।

समाजवादी क्रान्ति के शान्तिपूर्ण तरीके के पीछे यह पूर्वमान्यता है कि सर्वहारा वर्ग ने बिना गृह-युद्ध के राजसत्ता हासिल कर ली है।

विशाल बहुसंख्यक जनता को अपने नेतृत्व में संगठित कर सर्वहारा वर्ग पार्लियामेंट में स्थायी बहुमत प्राप्त कर सकता है और इस तरह पार्लियामेंट को पूंजीपति वर्ग के वर्ग-स्वार्थों की पूर्ति के यंत्र से सर्वहारा के वर्ग-स्वार्थों की पूर्ति के यंत्र के रूप में बदल सकता है। इस तरह की पार्लियामेंट समाजवादी परिवर्तनों को सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकती है। यह सब बड़े इजारेदार पूंजीपतियों और प्रतिक्रिया के विरुद्ध व्यापक सामाजिक सुधार, शान्ति और जनवाद के लिए मजदूर वर्ग और तमाम अन्य बहुसंख्यक जनता के संघर्ष के व्यापक और निर्बाध विकास पर निर्भर है।

निरन्तर विकसित होने वाली विश्व समाजवादी व्यवस्था जो मानव समाज के विकास की दृष्टि से निर्णायक होती जा रही है, उपर्युक्त प्रक्रिया को तेज करती है। विश्व पूंजीवादी व्यवस्था के कमजोर होने और उसमें अन्तर्विरोधों का अभूतपूर्व रूप से उग्र होने, साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था के विघटन, पूंजीवादी देशों में मजदूर वर्ग की बढ़ती हुई सागठनिक शक्ति और वर्ग चेतना तथा कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई प्रतिष्ठा ने मजदूर वर्ग की लड़ाई को और आगे बढ़ाया है।

यह सम्भव है कि समाजवाद की ताकतों की उत्तरोत्तर वृद्धि मजदूर वर्ग आन्दोलन की बढ़ती हुई मजबूती और साम्राज्यवाद की दिनोदिन बदतर होती हुई स्थिति के कारण कतिपय देशों में, जैसाकि मार्क्स और लेनिन ने बताया, ऐसी स्थिति आ जाये, जब पूंजीपति वर्ग अपने हित को देखते हुए उत्पादन के बुनियादी साधनों के सर्वहारा वर्ग द्वारा खरीदे जाने के लिए तैयार हो जाये और सर्वहारा वर्ग भी उसे इस तरह "मिटा दे।"

जहां शोषक वर्ग जनता के विरुद्ध हिंसा का सहारा लेते हैं, वहा समाजवाद की ओर संक्रमण की अन्य सम्भावना को भी ध्यान मे रखना चाहिए। लेनिनवाद की यह शिक्षा है कि सत्ताधारी वर्ग स्वेच्छा से सत्ता का त्याग नही कर सकते। इतिहास के अनुभवों ने इस शिक्षा की पुष्टि कर दी है। इस स्थिति में क्रान्तिकारी बल-प्रयोग आवश्यक हो जाता है। समाजवाद की ओर गैर-शान्तिपूर्ण संक्रमण के लिए जरूरी है कि हथियारबन्द बगावत हो, गृह-युद्ध छिड़े और पूंजीपति वर्ग से जबर्दस्ती राजनीतिक शक्ति छीन ली जाये।

किसी भी देश में वहा की मूर्त ऐतिहासिक स्थितिया ही समाजवादी क्रान्ति के स्वरूप का निर्धारण करती हैं। क्रान्ति की सफलता इस बात पर निर्भर है कि किस हद तक मजदूर वर्ग और उसकी पार्टी ने संघर्ष के सभी तरीकों—शान्तिपूर्ण और गैर-शान्तिपूर्ण—के विषय में ज्ञान प्राप्त कर लिया है और किस सफलता के साथ वे संघर्ष के एक तरीके को छोड़कर तेजी से और एकाएक दूसरे तरीके को अपना सकते है।

आज की स्थितियों में समाजवादी देशों के समर्थन के फलस्वरूप समाजवादी क्रान्ति एक पिछड़े हुए मुल्क में भी सफल हो सकती है। अत्यन्त विकसित समाजवादी देशों की सहायता का सहारा लेकर पिछड़े हुए मुल्क भी विकास के पूंजीवादी चरण से गुजरे बिना समाजवाद की ओर जा सकते हैं। ऐसी बात मंगोलिया में हुई है।

शान्तिपूर्ण या गैर-शान्तिपूर्ण—जिस ढंग से भी समाजवादी क्रान्ति हो, उसका मतलब घिसे-पिटे पूंजीवादी सम्बन्धों को तेजी से तोड़ना और उनकी जगह

संघर्ष उन्हें एक अटूट मैत्री के सूत्र में बांध देता है। सर्वहारा वर्ग के अधिनायक
का सबसे बड़ा सिद्धान्त यह है कि मजदूर वर्ग और मेहनतकश कृषक वर्ग में
मैत्री हो।

सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व का मतलब आर्थिक व्यवस्था, राजकाज अ
सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन के सभी क्षेत्रों के मार्ग-दर्शन के कार्यों में भा
तादाद में मेहनतकश जनता का प्रत्यक्ष, सक्रिय सहयोग है।

समाजवादी क्रान्ति के परिणामस्वरूप निर्मित राजनीतिक ऊपरि-संरच
के एक अंग के रूप में सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व का कार्य मेहनतकश जनता क
दमन और शोषण करने वाले पुराने राज्य-यन्त्र को तोड़ना है। सर्वहारा वर्ग राज
सत्ता का इस्तेमाल पूंजीपति वर्ग के आर्थिक शासन और मनुष्य के द्वारा मनुष्य के
सभी प्रकार से होने वाले शोषण को खत्म करने के लिए करता है।

किन्तु सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व का मतलब बल-प्रयोग के अतिरिक्त
कुछ और भी है। सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व मुख्य रूप से बल-प्रयोग नहीं है।
इसका मूल उद्देश्य बल-प्रयोग नहीं, बल्कि रचनात्मक कार्य—समाजवादी समाज
का निर्माण और समाजवाद के शत्रुओं से इसकी रक्षा— है। सर्वहारा वर्ग के
अधिनायकत्व को वस्तुगत परिस्थितियों—पूंजीपति वर्ग के प्रतिरोध—के कारण
ही बल-प्रयोग करना पड़ता है। बल-प्रयोग सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व का एक
आवश्यक कार्य है। शोषक वर्गों द्वारा स्वेच्छा से सर्वहारा वर्ग को राजसत्ता न सौंप
देने के कारण ही बल-प्रयोग जरूरी हो जाता है।

सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व समाजवाद के निर्माण का एक साधन है।
सर्वहारा वर्ग का राज्य एक समाजवादी अर्थव्यवस्था कायम करने के लिए प्रयत्न-
शील रहता है। आर्थिक क्षेत्र में राज्य के कामों के फलस्वरूप उत्पादन-सम्बंधों की
एक नयी व्यवस्था जन्म लेती है। इन सम्बंधों के आधार के रूप में उत्पादन के
साधनों का समाजवादी स्वामित्व, सौहार्दपूर्ण सहयोग और शोषणमुक्त जनता के
बीच पारस्परिक समाजवादी मदद है।

कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियां—समाजवाद और कम्युनिज्म के निर्माण
के लिए मेहनतकश जनता के संघर्ष का हिरावल दस्ता—सर्वहारा वर्ग के अधि-
नायकत्व का नेतृत्व और निर्देशन करने वाली शक्ति हैं।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद के अनुसार पूंजीवाद से समाजवाद की ओर संक्रमण
के कई राजनीतिक रूप हो सकते हैं, किन्तु मूलतः सभी एक होते हैं। सभी सर्वहारा
वर्ग के अधिनायकत्व के ही रूप हैं।

समाज-विकास के नियमों से स्वाभाविक तौर पर स्पष्ट है कि सर्वहारा
वर्ग के अधिनायकत्व के विभिन्न रूप हो सकते हैं। लेनिन ने लिखा कि 'पूंजीवाद

से कम्युनिज्म की ओर सक्रमण के कई राजनीतिक रूप हो सकते हैं, किन्तु सबका सार एक ही—सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व—होगा।"[1]

सोवियत सघ मे अक्तूबर क्रान्ति की विजय के फलस्वरूप सोवियतों के रूप मे सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की स्थापना हुई। दो रूसी क्रान्तियो (१९०५ और १९१७ की) के अनुभव के आधार पर लेनिन ने सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के राजकीय रूप के लिए सोवियत सत्ता को उपयुक्त बताया।

सोवियत सघ मे समाजवाद की जीत और द्वितीय विश्वयुद्ध मे फासिज्म की पराजय के फलस्वरूप पैदा हुई नयी ऐतिहासिक स्थितियो मे जनवादी जनतंत्र (पीपुल्स डेमोक्रेसी) यूरोप और एशिया के कई देशो मे विजयी हुआ। जनता का जनवाद समाज के राजनीतिक सगठन का एक रूप है। यह मूलत सर्वहारा का अधिनायकत्व है। कमजोर पड़े साम्राज्यवाद और समाजवाद के पक्ष मे बदले शक्ति-सतुलन की स्थिति मे यह समाजवादी क्रान्ति के विशिष्ट लक्षणो का द्योतक था। इसके द्वारा अलग-अलग देशो की ऐतिहासिक और राष्ट्रीय स्थितियो की अभिव्यक्ति हुई।

समाजवादी क्रान्ति के फलस्वरूप आने वाला सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व समाजवाद की विजय की गारटी करता है, हालाकि समाजवादी निर्माण के दौरान इसके चरित्र मे परिवर्तन होता है। शोषक वर्गों के उन्मूलन के कारण उनको दमन करने की आवश्यकता नही रह जाती, किन्तु समाजवादी निर्माण के दौरान उसे आर्थिक सगठन को विकसित करने, सास्कृतिक प्रगति और शिक्षा के प्रसार के लिए नये कदम उठाने पडते हैं। समाजवाद की पूर्ण और अन्तिम जीत हासिल कर लेने के बाद सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व का कार्य खत्म हो जाता है। उसका ऐतिहासिक अभियान पूरा हो जाता है और आन्तरिक विकास के कार्यों की दृष्टि से उसका कोई महत्व नही रह जाता। सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के रूप मे कार्य करने वाला राज्य सम्पूर्ण जनता के राज्य के रूप मे परिवर्तित हो जाता है और उसके हितो और इच्छाओ की अभिव्यक्ति होता है। राज्य के लुप्त हो जाने के पहले ही सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व समाप्त हो जाता है। कम्युनिस्ट निर्माण के दौरान राज्य के विकास का यही द्वन्द्वात्मक नियम है।

समाजवाद का मार्ग अपनाने वाले सभी देशों में पूंजीवाद से समाजवाद की ओर सक्रमण समान रास्तो से होता है। वे हैं क) मजदूर वर्ग द्वारा राजसत्ता हासिल करना, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व—मजदूर वर्ग ...की
स्थापना, मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी की ...
बहुसख्यक कृषक वर्ग

१. लेनिन, "सं

समाजवादी क्रान्ति के विकास और समाजवादी निर्माण के मुख्य नियम

पूंजीवादी स्वामित्व का उन्मूलन और उत्पाद बुनियादी साधनों के ऊपर सार्वजनिक स्वामित्व स्थापना, घ) सहकारिता के आधार पर कृषि में धीरे समाजवादी परिवर्तन, च) समाजवाद और क निज्म के निर्माण तथा मेहनतकश जनता के जीवन-स के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का नियोजित विकास, विचारधारा और संस्कृति के क्षेत्र में समाजवादी क्रान्ति की विजय तथा मज वर्ग, सभी मेहनतकश जनता और समाजवाद में निष्ठा रखने वाले बुद्धिजीवि का बहुत बड़ी संख्या में प्रशिक्षण, ज) कौमी उत्पीड़न का खात्मा और कौमो बीच समान अधिकार तथा सौहार्दपूर्ण मैत्री की स्थापना, झ) समाजवादी राज्य मजबूत बनाना और उसका विकास करना, भीतरी और बाहरी दुश्मनों समाजवादी उपलब्धियों की रक्षा करना, ट) उस देश विशेष के मजदूर वर्ग साथ मैत्री अर्थात सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की स्थापना।

समाजवादी क्रान्ति और समाजवादी निर्माण के मुख्य नियम यह बता हैं कि समाजवादी क्रान्ति के दौरान प्रत्येक देश में मुख्य तौर पर समान कार्य— पूंजीपतियों का उन्मूलन और समाजवाद का निर्माण—होता है।

समाजवादी क्रान्ति के विकास और समाजवादी निर्माण में सम्बन्धि मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त समाजवादी देशों की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों की नीति के आधार हैं। समाजवादी समाज का सफल निर्माण इस आध सुनिश्चित हो जाता है।

समाजवाद के निर्माण के रूप और तरीके देश विशेष की मूर्त ऐतिहासिक स्थितियों के अनुसार अलग-अलग होंगे। यद्यपि सभी देशों के लिए मुख्य कार्य समान हैं, तथापि ऐतिहासिक तौर पर निर्धारित राष्ट्रीय विशेषताओं और परम्पराओं की विभिन्नता के कारण समाजवादी क्रान्ति के विकास और सम वाद के निर्माण के लिए कतिपय विशिष्ट स्थितियों की आवश्यकता होती है। लेनिन ने बताया कि "सब देश समाजवाद तक पहुंचेंगे। यह अवश्यम्भावी है। किन्तु सब एक ही रास्ते से नहीं जायेंगे। हर देश जनवाद का अपना रूप, सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व अपनी तरह से कायम करेगा और सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समाजवादी परिवर्तन की दर अलग-अलग होगी।"[1]

किन्तु देश विशेष की [illegible] इस तथ्य को नहीं बदल सकती कि समाजवादी क्रान्ति और समाजवादी निर्माण का विकास [illegible] होता है। समाजवादी निर्माण के [illegible] [illegible]

[1] लेनिन, [illegible] खंड २३, पृष्ठ ७०।

नायकत्व और उत्पादन के प्रबन्ध के रूपो तथा कृषि मे सहकारिता के विभिन्न तरीकों में देखी जाती हैं, किन्तु सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व, उत्पादन के साधनो पर से निजी स्वामित्व का उन्मूलन, कृषि मे सहकारिता, इत्यादि वे आवश्यक तत्व है जिनके बिना समाजवादी व्यवस्था का सफल विकास नही हो सकता।

समाजवादी क्रान्ति और समाजवादी निर्माण के मुख्य वस्तुगत नियमो को त्याग देने के कारण तथा राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय विशेषताओ को बढा-चढाकर रखने की वजह से समाजवाद के निर्माण के दौरान क्षति ही उठानी पडती है।

२. संक्रमण काल की अर्थव्यवस्था

संक्रमण काल की अर्थव्यवस्था को न तो पूजीवादी कहा जा सकता है और न समाजवादी। यह कई आर्थिक क्षेत्रो का मिला-जुला रूप है। आर्थिक क्षेत्र उत्पादन के साधनो के स्वामित्व के एक या दूसरे रूप पर आधारित हैं और प्रत्येक देश विशेष के विकास के एक निश्चित काल के लिए विशिष्ट है।

संक्रमण काल के दौरान हर देश की अर्थव्यवस्था में भिन्न आर्थिक क्षेत्र हो सकते है। यह समाजवाद के रास्ते पर उन्मुख देश की मूर्त आर्थिक स्थितियो पर निर्भर है, किन्तु पूजीवाद से समाजवाद की ओर संक्रमण काल मे देश की अर्थव्यवस्था मे तीन मुख्य क्षेत्रो—समाजवादी, लघु वस्तु-उत्पादक और पूजीवादी—का होना लाजिमी है।

समाजवादी क्षेत्र

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे समाजवादी क्षेत्र की स्थापना उत्पादन के साधनों के समाजवादी समाजीकरण के द्वारा होती है।

सर्वहारा वर्ग के राज्य द्वारा इस दिशा मे पहला और महत्वपूर्ण कदम समाजवादी राष्ट्रीयकरण का होता है। इसके द्वारा वह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में अपनी प्रमुख स्थिति बना लेता है।

समाजवादी राष्ट्रीयकरण का मतलब सर्वहारा वर्ग के राज्य द्वारा शोषक वर्गों की सम्पत्ति को क्रान्तिकारी तरीको से छीन कर राजकीय, समाजवादी सम्पत्ति (सम्पूर्ण जनता की सम्पत्ति) मे बदल देना है। पूंजीपति वर्ग के सम्पूर्ण धन का सृजन मजदूर वर्ग की कई पुश्तो के द्वारा किया गया है। जब समाजवादी क्रान्ति के दौरान मजदूर वर्ग पूंजीपतियो से उत्पादन के साधन छीन लेता है, तब उसके इस न्यायपूर्ण कार्य द्वारा ऐतिहासिक न्याय प्रतिष्ठित होता है। जिसे जनता ने मेहनत ने बनाया है, उस पर जनता का अधिकार होना ही चाहिए।

उत्पादन के साधनो का समाजवादी राष्ट्रीयकरण पूजीवाद के बुनियादी अन्तर्विरोध—उत्पादन के सामाजिक चरित्र और पूंजीपतियों द्वारा फल-प्राप्ति के

संक्रमणकालीन अर्थव्यवस्था में समाजवादी क्षेत्र प्रमुख भूमिका अदा करता है, क्योंकि इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख शाखाएं शामिल रहती हैं और वह अत्यन्त आधुनिक और कुशल तकनीकी साज-सामान का प्रयोग करता है। इस क्षेत्र में अत्यन्त प्रगतिशील उत्पादन-सम्बंध पाये जाते हैं।

समाजवादी उद्यमों में मनुष्य का मनुष्य के द्वारा कोई शोषण नहीं होता और श्रम-शक्ति वस्तु के रूप में नहीं रहती। मजदूर का श्रम उसके और समाज के कल्याण का साधन बन जाता है। समाजवादी क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली प्रत्येक चीज पर सम्पूर्ण मेहनतकश जनता का अधिकार रहता है।

समाजवादी क्षेत्र, जहां उत्पादन के साधनों के समाजवादी स्वामित्व का बोलबाला रहता है, नयी आर्थिक स्थितियों को जन्म देता है। उनके आधार पर समाजवाद के नये आर्थिक नियम जन्म लेते और विकसित होते हैं। धीरे-धीरे उनके परिचालन का क्षेत्र विस्तृत होता है। पूंजीवादी आर्थिक नियम धीरे-धीरे अपनी ताकत खो देते हैं और अन्ततोगत्वा उनका परिचालन बन्द हो जाता है।

लघु वस्तु क्षेत्र और पूंजीवादी क्षेत्र

लघु वस्तु क्षेत्र के अन्तर्गत किसानों के छोटे फार्म, दस्तकार और शिल्पकार आते हैं। उनकी अर्थव्यवस्था का आधार उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व और उनका व्यक्तिगत श्रम है। वे सब कमोबेश बाजार से सम्बद्ध रहते हैं। लघु वस्तु-उत्पादन निजी स्वामित्व पर आधारित होने के कारण पूंजीवादी उत्पादन के नजदीक पड़ता है। दूसरी ओर, छोटे किसान सभी प्रकार के शोषण का उन्मूलन करना चाहते हैं। वे मेहनतकश किसान होते हैं और इस तरह वे सर्वहारा वर्ग के नजदीक पड़ते हैं।

संक्रमण काल के प्रारम्भिक चरणों में बहुत-से समाजवादी देशों की बहुसंख्यक जनता लघु वस्तु-उत्पादन के क्षेत्र में थी। समाजवाद के निर्माण के दौरान लघु वस्तु-उत्पादन सहकारी समितियों की स्थापना के जरिए समाजवादी उत्पादन में बदल जाता है।

पूंजीवादी क्षेत्र के अन्तर्गत उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व और भाड़े के श्रम पर आधारित आर्थिक उद्यम आते हैं। देहातों का धनी कृषक वर्ग (कुलक) और शहरों के छोटे और मझोले पूंजीवादी उद्यमों (जिनका राष्ट्रीयकरण अब तक नहीं हुआ है) के स्वामी आते हैं। यहां शोषण वर्तमान रहता है और श्रम-शक्ति वस्तु के रूप में रहती है। अधिशेष मूल्य को उत्पादन के साधनों के स्वामी हड़प जाते हैं।

समाजवादी राज्य सर्वप्रथम पूंजीवादी क्षेत्र पर, विशेषकर श्रम के शोषण पर, प्रतिबन्ध लगाता है और उसके बाद अपनी नीति उसके पूर्णतया उन्मूलन के लिए बनाता है।

संक्रमण काल के दौरान समाजवादी, लघु वस्तु और पूंजीवादी क्षेत्र प्रमुख होते है। इनके अतिरिक्त पितृसत्तात्मक कृषक अर्थव्यवस्था (प्राकृतिक अर्थव्यवस्था) और राजकीय पूंजीवाद भी रहता है। ये अंश (यद्यपि कोई आवश्यक नहीं है) वर्तमान रह सकते है।

सोवियत संघ में संक्रमण काल के दौरान पितृसत्तात्मक कृषक अर्थव्यवस्था भी और उसके साथ ही विदेशी पूंजीपतियों को सोवियत सरकार द्वारा दी गयी सहूलियतों के रूप में राजकीय पूंजीवाद भी था, यह सोवियत अर्थव्यवस्था में बहुत दूर तक विकसित नहीं हो सका था।

राजकीय पूंजीवाद चीन लोक जनतन्त्र और कई अन्य जनवादी जनतंत्रों में काफी विकसित हुआ है।

संक्रमण काल का कार्य समाजवादी क्षेत्र का पूर्ण विकास करना, पूंजीवादी क्षेत्र का पूर्ण उन्मूलन करना और लघु वस्तु क्षेत्र का अर्थव्यवस्था के समाजवादी रूप (जिसका अर्थव्यवस्था पर पूर्ण आधिपत्य होना चाहिए) में बदलना और इस तरह समाजवाद का आधार तैयार करना है।

संक्रमण काल में वर्ग

संक्रमण काल के आर्थिक क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व वर्ग विशेष करते हैं:

समाजवादी क्षेत्र : सहकारी उद्यमों में एक साथ सम्मिलित मजदूर वर्ग और कृषक वर्ग,

लघु वस्तु क्षेत्र : छोटे और मझोले ग्रामीण किसान, शहरी दस्तकार और शिल्पकार;

पूंजीवादी क्षेत्र : शहरी पूंजीपति वर्ग और धनी किसान।

पूंजीवाद से समाजवाद की ओर संक्रमण के काल में वर्गों का ढांचा उपर्युक्त होता है।

इस काल में वर्गों की स्थिति पूंजीवाद की तुलना में पूर्णतया भिन्न होती है।

सर्वहारा वर्ग जो पूंजीवाद के अन्तर्गत उत्पीड़ित और शोषित वर्ग रहता है, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की स्थापना के बाद समाज में मुख्य भूमिका अदा करता है। वह शासक वर्ग बन जाता है, राजसत्ता का प्रयोग करता है और अन्य सारी मेहनतकश जनता के साथ उत्पादन के समाजीकृत साधनों को नियंत्रित करता है।

कृषक वर्ग को समाजवादी राज्य से जमीन प्राप्त होती है, बड़े भूस्
पर उसकी निर्भरता समाप्त हो जाती है, धनी किसानों के शोषण से उसक
की जाती है और सहकारी समितियां बनाने के लिए उसे सहायता दी जाती

संक्रमण काल में समाजवादी राज्य की कृषक वर्ग सम्बधी नी
आधार लेनिनवादी सूत्र—मझोले किसानों के साथ मैत्री, गरीब किसानों
भरोसा और धनी किसानों के विरुद्ध संघर्ष—होता है। इस नीति के अ
के फलस्वरूप, बहुसंख्यक किसान समाजवाद के निर्माण के कार्य में मजदूर
सहयोगी हो जाते हैं।

संक्रमण काल में मजदूर वर्ग और किसान वर्ग ही मुख्य वर्ग होते हैं
दूर वर्ग किसानों के अतिरिक्त मेहनतकश जनता के सभी अन्य समूहों—श्र
बुद्धिजीवियों, शहरी दस्तकारों और हस्तशिल्पियों—को अपने इर्द-गिर्द
करता है।

राजसत्ता और उत्पादन के बुनियादी साधनों पर से अधिकार खत्
के बाद पूंजीपति वर्ग संक्रमण काल में प्रमुख वर्ग के रूप में अपनी हस्ती ख
है, यद्यपि बहुत वर्षों तक वह ताकतवर रहता है। इसका कारण यह है कि
वस्तु-उत्पादन स्वतः एक बड़े पैमाने पर पूंजीवाद को बढ़ाता है। इसके अति
अपना आधिपत्य खो देने के बाद भी पूंजीपति वर्ग को अन्तर्राष्ट्रीय पूं
समर्थन प्राप्त रहता है।

संक्रमण काल के अन्तर्विरोध

संक्रमण काल की बहुसंरचनात्मक अर्थव्यवस्था
परस्पर-विरोधी वर्गों की उपस्थिति के कारण कई
विरोध पैदा हो जाते हैं।

इस काल में समाजवादी क्षेत्र सर्वव्यापी नहीं होता और न उसके अन्
राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्र ही आते हैं, उसके अन्तर्गत खासकर सम्पूर्ण
नहीं आती है। इसीलिए लेनिन ने बताया कि पूंजीवाद से समाजवाद को
संक्रमण का काल "मरणासन्न पूंजीवाद और नवजात कम्युनिज्म—या यो
कि पूंजीवाद जो पराजित हो गया है किन्तु नष्ट नहीं हुआ है, और कम्यु
जिसका जन्म हो चुका है, लेकिन अभी बहुत कमजोर है, के आपसी संघर्
दौर है।"[1]

समाजवाद और पूंजीवाद का पारस्परिक अन्तर्विरोध ही संक्रमण
का मुख्य अन्तर्विरोध है। कौन किसको हरायेगा, इसका फैसला कटु वर्ग संघर
दौरान ही होता है। संघर्ष का नतीजा इस बात पर निर्भर करता है कि कृषक
किसका साथ देता है।

1. लेनिन, "संकलित रचनाएं," खंड 3, पृष्ठ 208।

कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों की सही नीति—मजदूर वर्ग और कृषक वर्ग के बीच स्थायी आर्थिक और राजनीतिक मैत्री—के कारण मजदूर वर्ग अपने नेतृत्व मे कृषक वर्ग को लाने में सफल हो जाता है। इस तरह संघर्ष का परिणाम समाजवाद के पक्ष मे होता है।

संक्रमण काल मे अन्य अन्तर्विरोध भी होते हैं। उदाहरण के लिए, कई देशो मे विकसित राजनीतिक व्यवस्था और तकनीकी एव आर्थिक पिछड़ेपन के बीच अन्तर्विरोध होता है। सक्रमण काल के दौरान यह अन्तर्विरोध सोवियत सघ मे भी था। कमोबेश यह बहुसख्यक जनवादी जनतंत्रों मे मौजूद है। इसके अतिरिक्त वहां बड़े पैमाने के एकीकृत समाजवादी उद्योग और छोटे बिखरे हुए निजी स्वामित्वाधीन कृषक-अर्थव्यवस्था के बीच भी अन्तर्विरोध रहता है।

सक्रमण काल के दौरान इन सभी अन्तर्विरोधो का हल समाजवादी राज्य की आर्थिक नीति के द्वारा किया जाता है।

३. संक्रमण काल के दौरान आर्थिक नीति। समाजवाद के निर्माण के लिए लेनिनवादी योजना

समाजवाद के निर्माण के लिए समुचित आर्थिक नीति (पूजीवादी तत्वों के निराकरण और समाजवाद की विजय की गारटी के लिए समाजवादी राज्य द्वारा उठाये जाने वाले कदम) निर्धारित करना और कार्यान्वित करना होता है।

सक्रमण काल के दौरान समाजवादी राज्य का लक्ष्य मजदूर वर्ग और कृषक वर्ग की मैत्री को सुदृढ करना, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को मजबूत करना, देश की उत्पादक शक्तियों को विकसित करना, शोषक वर्गों का उन्मूलन करना और समाजवाद का निर्माण करना है।

समाजवादी मार्ग अपनाने वाले प्रत्येक देश की आर्थिक नीति का निर्धारण सक्रमण काल में अर्थव्यवस्था की स्थिति और वर्ग-शक्तियों के सतुलन द्वारा होता है। किन्तु उसके मुख्य सिद्धान्त समाजवाद के निर्माण में सलग्न सभी देशो मे समान रूप से लागू होते हैं।

सोवियत सरकार ने १९१८ के वसन्त मे इस नीति का अनुसरण प्रारम्भ किया, किन्तु फौजी हस्तक्षेप, गृह-युद्ध के परिणामों तथा बर्बादियों के कारण उसे "युद्ध कम्युनिज्म" की नीति अपनाने के लिए बाध्य होना पड़ा।

"युद्ध कम्युनिज्म" के काल मे सोवियत सरकार ने हिरावल दस्ते की मदद के लिए पिछले दस्ते का समर्थन प्राप्त किया। छोटे और मझोले उद्योग समेत सम्पूर्ण उद्योग क्षेत्र का राष्ट्रीयकरण किया गया, निजी व्यापार पर रोक लगा दी गयी, अतिरिक्त अन्न को ले लिया गया (तात्पर्य यह कि फौज और मजदूरों की

[illegible] की पूर्ति करने के लिए किसानों से उनका अतिरिक्त कृषि उत्पादन ले लिया गया)। गृह-युद्ध और विदेशी सशस्त्र हस्तक्षेप से उत्पन्न कठिन स्थितियों के कारण सोवियत सरकार को खाद्यान्न संग्रहण और मजदूरों की आम अनिवार्य भरती करनी पड़ी। यह एक संकटकालीन अस्थायी नीति थी और उसका मुख्य उद्देश्य गृह-युद्ध और विदेशी सशस्त्र हस्तक्षेप की कठिन परिस्थितियों में सोवियत राज्य की विजय हासिल करना था।

गृह-युद्ध और विदेशी हस्तक्षेप के समाप्त होते ही १९२१ में सोवियत सरकार ने १९१८ के वसन्त में घोषित अपनी नीति को फिर अपनाना शुरू किया। "युद्ध कम्युनिज्म" से इस नीति को अलग करने के लिए इसे नवीन आर्थिक नीति (नव) कहा गया। अतिरिक्त खाद्यान्न वसूली के स्थान पर खाद्य कर लगाया गया। वसूली के अन्तर्गत ली गयी खाद्यान्न की मात्रा की अपेक्षा इस कर की मात्रा कम थी। राज्य को खाद्य कर अदा करने के बाद किसान अपने शेष उत्पादन का अपनी इच्छानुसार इस्तेमाल कर सकता था। वह अपने अतिरिक्त उत्पादन को स्वतन्त्रतापूर्वक बाजार में बेच सकता था।

कृषि को उन्नत करने के लिए किसानों को आर्थिक प्रोत्साहन प्रदान करने, हल्के और भारी उद्योगों के पुनर्निर्माण और आवश्यक शक्ति और साधन जुटाकर देश में पूंजीवाद के अवशेषों के विरुद्ध प्रबल प्रहार करने के लिए खाद्य कर और निजी व्यापार करने की अनुमति जरूरी थी।

सक्रमणकालीन सोवियत आर्थिक नीति का निर्माण पूजीवादी घेरे से उत्पन्न परिस्थिति और एक देश में समाजवाद के निर्माण के सदर्भ में हुआ। जिस प्रकार नीति को कार्यान्वित किया गया, उससे यह स्पष्ट जाहिर है।

सक्रमणकालीन सोवियत आर्थिक नीति के मुख्य सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय महत्व रखते हैं। विभिन्न देश सक्रमण काल में अपनी आर्थिक नीतियों के कार्यान्वयन के विशेष रूप और तरीके अपनाते हैं। ये रूप और तरीके उनके विकास की परिस्थितियों पर निर्भर होते है। समाजवादी देश अपनी आर्थिक नीतियों का कार्यान्वयन अपेक्षाकृत अनुकूल परिस्थितियों में कर रहे हैं। हर देश सोवियत सघ के अनुभव भडार, उसकी वैज्ञानिक, तकनीकी और आर्थिक सहायता तथा समाजवादी बिरादरी के अन्य देशों के अनुभव और सहायता का इस्तेमाल कर सकता है।

सक्रमणकालीन आर्थिक नीति समाजवाद के निर्माण की लेनिनवादी योजना की मूर्त अभिव्यक्ति थी।

सोवियत सघ मे समाजवाद के निर्माण के लिए लेनिन ने एक वैज्ञानिक योजना बनायी। इस योजना का लक्ष्य देश के तकनीकी और आर्थिक पिछड़ेपन को

खत्म करना, समाजवादी औद्योगीकरण, कृषि में समाजवादी परिवर्तन करना और सांस्कृतिक क्रान्ति लाना था।

समाजवादी औद्योगीकरण

समाजवादी औद्योगीकरण समाजवाद के निर्माण की लेनिनवादी योजना का एक मुख्य अंग है। समाजवाद का निर्माण अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओं में बड़े पैमाने के मशीनी उत्पादन के आधार पर ही हो सकता है।

लेनिन ने लिखा : "कृषि को पुनस्संगठित करने में, सक्षम बड़े पैमाने का मशीन उद्योग ही समाजवाद के निर्माण के लिए सम्भव भौतिक आधार है।"[1]

किन्तु समाजवाद का मार्ग अपनाने वाले बहुसंख्यक देशों को पूंजीवाद से अत्यन्त विकसित भौतिक और तकनीकी आधार की विरासत नहीं मिली है। पूंजीवाद अपने लम्बे अस्तित्व काल में सिर्फ कुछ देशों का ही औद्योगीकरण कर सका है। इन देशों की जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या के १५ प्रतिशत से भी कम है। इसलिए समाजवाद के निर्माण का मार्ग अपनाने वाले बहुसंख्यक देशों के लिए औद्योगीकरण बहुत आवश्यक है।

समाजवादी औद्योगीकरण में उत्पादन के साधन—धातु, ईंधन, मशीन और साज-सामान, इमारती सामान—उत्पन्न करने वाले भारी उद्योगों के विकास की प्राथमिकता मुख्य कड़ी का काम करती है। आधुनिक इंजीनियरिंग उद्योग की स्थापना औद्योगीकरण के लिए विशेष महत्व रखती है।

समाजवादी औद्योगीकरण की प्रक्रिया के दौरान उद्योग और कृषि के क्षेत्र में राजकीय और सहकारी उद्यमों के विकास के लिए भौतिक आधार तैयार किया जाता है। पूंजीवादी और लघु वस्तु-उत्पादन के ऊपर अन्तिम विजय प्राप्त करने के लिए इन्हें औद्योगीकरण से आवश्यक तकनीकी साज-सामान प्राप्त होते हैं।

सोवियत संघ के लिए समाजवादी औद्योगीकरण का विशेष महत्व था।

समाजवादी औद्योगीकरण समाजवाद के निर्माण के सभी कार्यों—पूंजीवादी क्षेत्र का पूर्ण निराकरण, कृषि में समाजवादी परिवर्तन, देश के तकनीकी और आर्थिक पिछड़ेपन का खात्मा—की पूर्ति की कुंजी है।

समाजवादी औद्योगीकरण की नीति सोवियत संघ में १९२५ में कम्युनिस्ट पार्टी की १४वीं कांग्रेस में अपनायी गयी। इस कांग्रेस ने इस बात को दुहराया कि मुख्य कार्य देश का कम-से-कम समय में औद्योगीकरण करना है।

१. लेनिन, "संकलित रचनाएं", खंड ३, पृष्ठ ६७५।

यह दो कारणो से आवश्यक हो गया था। प्रथम, सोवियत सघ अन्य विक-
पूंजीवादी देशो की तुलना मे तकनीकी और आर्थिक तौर पर पिछडा हुआ
यह छोटे किसानो का देश था, जहा पर आर्थिक आधार समाजवाद की अपेक्षा
वाद के विकास के लिए अधिक अनुकूल था। द्वितीय, सोवियत राज्य उसे नष्ट
(या कमजोर करने) के लिए प्रयत्नशील पूजीवादी राज्यो से घिरा था।

इन सबके कारण अत्यन्त द्रुत समाजवादी औद्योगीकरण आवश्यक हो
। समाजवादी अर्थव्यवस्था के फायदो और औद्योगीकरण की समाजवादी
थ (रास्ते) की विशेषताओ के कारण इसकी सफलता के प्रति सभी
वस्त थे।

उत्पादन के साधनो के ऊपर समाजवादी स्वामित्व होने के कारण देश का
योगीकरण भारी उद्योगो के विकास से सम्भव हो सका। इसके विपरीत पूजी-
दी देशो मे औद्योगीकरण का आधार हलके उद्योगो का विकास रहा है। समाज-
दी आर्थिक व्यवस्था के फलस्वरूप आन्तरिक साधनो को जुटाकर उन्हे सर्वप्रथम
पैमाने के मशीन उद्योग मे लगाया जा सका।

सोवियत संघ के औद्योगीकरण के लिए आवश्यक कोष राष्ट्रीयकृत उद्योग,
पि, घरेलू और विदेशी व्यापार तथा बैको की आय से प्राप्त हुआ। आन्तरिक
चय के इन सभी स्रोतो मे करोडो रूबल प्राप्त हुए। इस तरह उद्योग और
मिलकर भारी उद्योग मे बडी पूजी का विनियोग करना सम्भव हो सका।

लडाई के पहले की पचवर्षीय योजनाओ (१९२९-४१) के दौरान उद्योग
नयी शाखाए—ट्रैक्टर, मोटरगाडी, रसायन, मशीनी औजार, उड्डयन,
त्यादि—बनी। हजारो कारखाने बने और उनमे उत्पादन होने लगा। नये उद्यमो
प्रधान भूमिका अदा करना शुरू किया। औद्योगिक उत्पादन मे उनका बहुत
डा हिस्सा हो गया।

औद्योगिक कार्यक्रम की सफलता के फलस्वरूप पहली दो पचवर्षीय योज-
नाओ के दौरान (१९२९-३७) सोवियत सघ एक पिछडे हुए कृषि-प्रधान देश से
एक शक्तिशाली औद्योगिक शक्ति के रूप मे बदल गया। उसने पूजीवादी देशो के
चगुल से अपने को आर्थिक दृष्टि से पूर्णतया आजाद कर लिया और अपनी प्रतिरक्षा
क्षमता को काफी बढ़ा लिया। समग्र औद्योगिक उत्पादन मे उत्पादन के साधनो
का हिस्सा १९१३ मे ४२.१ प्रतिशत था जो १९३७ मे बढकर ७५.८ प्रतिशत
हो गया। दूसरी पचवर्षीय योजना के अन्त (१९३७) तक सोवियत सघ ने
औद्योगिक उत्पादन के परिमाण की दृष्टि से यूरोप मे पहला और विश्व मे दूसरा
स्थान प्राप्त कर लिया।

सोवियत संघ के सफल औद्योगीकरण ने दुनिया की अत्यन्त विक
राजकीय व्यवस्था और जारशाही रूस से विरासत के रूप में प्राप्त दकिया
तकनीकी और आर्थिक आधार के पारस्परिक अन्तर्विरोध को दूर कर दिया।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे लिखा है : "सोवि
संघ का औद्योगीकरण मजदूर वर्ग और सम्पूर्ण जनता द्वारा सम्पन्न एक ब
बड़ा चमत्कार था। उन्होंने कोई कोशिश उठा न रखी और देश को पिछड़ेपन
अवस्था से ऊपर उठाने के लिए उन्होंने सचेत मन से सब तरह के बलिद
किये।"[१]

अन्य समाजवादी देशों के लिए समाजवादी औद्योगीकरण का कम मह
नही है।

जनवादी जनतत्रो का औद्योगीकरण सोवियत संघ की तुलना मे का
अनुकूल स्थितियो में हो रहा है। कम विकसित देश सोवियत संघ और औद्योगि
तौर पर विकसित समाजवादी राज्यों की सब प्रकार की मदद पर भरोसा कर
हैं और यह मदद उनके औद्योगिक विकास के मार्ग को प्रशस्त करती तथा उसक
गति को तेज करती है।

कृषि मे समाजवादी परिवर्तन

समाजवाद का मार्ग अपनाने वाले देशो की सर्वहारा सरकारो का पहल
कदम कृषि मे सुधार करना है। शोषको से जमीन छीन
कर मेहनतकश किसानो को दे दी जाती है।

लेनिन ने जब पार्टी का कृषि सम्बन्धी कार्यक्रम बनाया, तभी उन्होंने
बतलाया कि विभिन्न देशो मे भूमि सुधार सम्पूर्ण जमीन का राष्ट्रीयकरण या भूमि
को किसानों की निजी सम्पत्ति बनाकर किया जा सकता है। लेनिन की भविष्य-
वाणी सोलहो आने सही साबित हुई है।

उदाहरण के लिए सोवियत सघ को ले। वहा समाजवादी क्रान्ति की
विजय के तुरत बाद सम्पूर्ण जमीन का राष्ट्रीयकरण कर लिया गया। किसानो को
हमेशा के लिए जमीन निःशुल्क इस्तेमाल के लिए दे दी गयी, किन्तु राज्य जमीन
का स्वामी बना रहा। जनवादी जनतत्रो मे बड़े भूस्वामियो की जमीन छीन ली
गयी। इसका अधिकाश किसानो की निजी सम्पत्ति के रूप मे परिवर्तित हो गया।
जमीन के सिर्फ एक हिस्से का ही राष्ट्रीयकरण किया गया और उस भाग पर
राजकीय उद्यम खुले।

जमीन का राष्ट्रीयकरण और उसका किसानो के बीच वितरण अपने आप
देहातो में समाजवादी उत्पादन-सम्बन्धो को जन्म नही देता है।

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ४५८।

भूमि सुधार के बाद अर्थव्यवस्था का मुख्य रूप लघु, निजी स्वामित्व की कृषक खेती होता है, किन्तु समाजवाद के लिए कृषि और उद्योग दोनों क्षेत्रों में उत्पादन के साधनों का समाजीकरण जरूरी है।

कृषि में बड़े पैमाने के समाजवादी उत्पादन का कारण स्पष्ट है। समाजवाद का निर्माण दो विरोधी आधारों (बड़े पैमाने के समाजवादी उद्योग और बिखरी हुई, पिछड़ी, छोटे पैमाने की कृषक खेती) पर नहीं हो सकता। छोटे-छोटे फार्मों में बहुत कम उत्पादन होता है और उन पर काम करने वाले मजदूरों की उत्पादकता बहुत कम होती है। इस प्रकार के छोटे, खण्डित, बिखरे हुए कृषक फार्म कृषि की मशीनों और विकसित तकनीकों के इस्तेमाल के मार्ग में बाधक होते हैं।

इस स्थिति में नये औद्योगिक नगरों की जनसंख्या के लिए पर्याप्त मात्रा में खाना जुटाना असम्भव हो जाता है। उद्योग को पर्याप्त मात्रा में कच्चे माल नहीं मिल पाते हैं। किसानों की खुशहाली बढ़ाना सम्भव नहीं होता है।

लेनिन ने सहकारिता पर आधारित कृषि के समाजवादी परिवर्तन के रास्ते

में लागू की जाये। कृषक वर्ग उपभोक्ता, पूर्ति और विपणन, साख और साधार उत्पादक सहकारी समितियों की स्थापना कर अपनी समाजवादी यात्रा प्रारम्भ कर सकता है। बाद में समाजवादी ढंग के सहकारी उद्यम भी बनाये जा सकते हैं।

पूर्ति, विपणन और साख के क्षेत्र में सहकारिता के सरल रूपों का विकास और सामूहिक एवं राजकीय फार्मों पर कार्य के अनुभव किसानों के लिए बड़े माने की समाजवादी खेती के लाभ व्यावहारिक रूप से स्पष्ट कर देते हैं। सामूहिक फार्मों की देखरेख के लिए उन्हें व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त होता है।

कृषि में सहकारिता की सफलता के लिए मजदूर वर्ग को अपने नेतृत्व में देहातों में समाजवादी निर्माण-कार्य शुरू करना चाहिए और सर्वहारा राज्य को दूर सम्भव सुविधा देनी चाहिए। राजकीय सहायता कई रूपों (किसानों के लिए खेती की मशीनों की व्यवस्था, कर्ज या बीज की व्यवस्था, इत्यादि) में दी जा सकती है।

लेनिन की सहकारी योजना को सबसे पहले सोवियत संघ में कार्यान्वित किया गया। कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत सरकार के शैक्षणिक और सांगठनिक कार्यों का ही यह नतीजा था कि १९२९ के उत्तरार्द्ध में किसान बड़ी तेजी से सामूहिक खेती की ओर उन्मुख हुए। बहुसंख्यक किसान सामूहिक खेती में शामिल हुए। समूहीकरण के कारण सबसे बड़ा शोषक वर्ग (कुलक) खत्म हो गया। "कौन किसको पराजित करेगा?"—इस प्रश्न का फैसला हर जगह, देहात हो या शहर, समाजवाद के पक्ष में हो गया।

समूहीकरण ने सोवियत राज्य को कृषि के क्षेत्र में एक समाजवादी आधार प्रदान किया। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की यह शाखा अत्यन्त विस्तृत और महत्वपूर्ण होने के साथ ही सबसे अधिक पिछड़ी हुई थी। उद्योग की तरह ही कृषि का विकास भी उत्पादन के साधनों के समाजवादी स्वामित्व के आधार पर हुआ।

किसान वर्ग ने कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में मजदूर वर्ग की सहायता और समर्थन से समाजवाद का रास्ता अपनाया।

सोवियत संघ में सामूहिक खेती का मुख्य रूप कृषि आरटेल थे। यह सामूहिक फार्म व्यवस्था का एक रूप है, जो उत्पादन के बुनियादी साधनों के समाजीकरण और किसानों के सामूहिक श्रम पर आधारित होता है, किन्तु इसके अन्तर्गत हर किसान अपने व्यक्तिगत गौण फार्म को रखने के लिए स्वतंत्र होता है। कृषि सहकारिता सामूहिक फार्मों में शामिल किसानों के निजी और सामाजिक हितों में उचित सामंजस्य स्थापित करती है और उत्पादक शक्तियों के विकास को प्रोत्साहित करती है।

सोवियत संघ में समूहीकरण के कारण कुछ ही वर्षों में विकसित टेक्नालॉजी पर आधारित विशाल समाजवादी कृषि का निर्माण सम्भव हो सका। फलस्वरूप देश की वस्तुओं की उपलब्धि बड़ी मात्रा में होने लगी। सामूहिक फार्मों पर काम करने वाले किसानों की खुशहाली में काफी वृद्धि हुई।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में बतलाया गया है. "सोवियत संघ के देहात में बड़े पैमाने की समाजवादी कृषि के निर्माण का मतलब था कृषक वर्ग के आर्थिक सम्बन्धों तथा उसके जीवन-यापन के ढंग में क्रान्तिकारी परिवर्तन। समूहीकरण ने देहात को कुलक-गुलामी, वर्ग-विभेद, बर्बादी और गरीबी से सदा के लिए मुक्त कर दिया। लेनिन की सहकारी योजना के फलस्वरूप ही किसानों की स्थायी समस्या का समाधान हो सका।"[1]

अब जनवादी जनतंत्रों के किसान सोवियत संघ के मेहनतकश किसानों द्वारा दिखाये गये मार्ग पर दृढ़तापूर्वक बढ़ रहे हैं। बहुसंख्यक समाजवादी देशों में कृषि क्षेत्र में समाजवादी परिवर्तन अब तक पूरा हो चुका है।

सोवियत संघ और अन्य समाजवादी देशों के अनुभवों से स्पष्ट है कि लेनिनवादी सहकारी योजना के बुनियादी सिद्धान्त आज भी समाजवाद का रास्ता अपनाने वाले हर देश के लिए सही हैं। विभिन्न समाजवादी देशों में कृषि सहकारिता की अपनी अलग विशेषताएं भी हो सकती हैं।

अतः कृषि के समाजवाद की ओर संक्रमण के काल में समाजवादी देशों में जहां भूमि निजी सम्पत्ति के रूप में किसानों के बीच बांटी गयी थी, सोवियत संघ की तुलना में सहकारी खेती के अलग संक्रमणकालीन रूप सामने आये। इन फार्मों में भूमि सहकारी किसानों की सम्पत्ति के रूप में रही और आय का वितरण किये गये कार्य के आधार पर नहीं हुआ बल्कि सहकारी समिति में दी गयी जमीन के क्षेत्रफल और किस्म के आधार पर हुआ।

कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों ने अपने देश की मूर्त स्थितियों को ध्यान में रखकर लेनिन की सहकारी योजना की बुनियादी बातों को सृजनात्मक रूप से व्यवहार में लागू किया है। इस प्रकार उन्होंने मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त को बढ़ाने में अपना योगदान किया है और समाजवाद के निर्माण के क्रम में प्राप्त अनुभवों से उसे समृद्ध बनाया है।

सांस्कृतिक क्रान्ति

समाजवादी देशों की मेहनतकश जनता की शिक्षा में उन्नति होती है। ऐसा करना समाजवाद का स्वभाव ही है। मेहनतकश जनता सत्ता की बागडोर इसलिए

[1]. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ४५८।

अपने हाथों में लेती है कि उसे नये भौतिक और आध्यात्मिक मूल्य प्राप्त हो सकें।

समाजवादी उत्पादन की वास्तविक जरूरतों को देखते हुए मेहनतकश जनता के सांस्कृतिक और शैक्षणिक स्तर को ऊंचा उठाना अत्यन्त आवश्यक है। समाजवादी उत्पादन के विकास के लिए राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में काफी दक्ष, शिक्षित और सामाजिक चेतनायुक्त मजदूरों की जरूरत होती है। इसलिए हम इस सवाल को जिस तरह भी देखें, एक ही निष्कर्ष निकलता है: सत्ता प्राप्त करते ही मेहनतकश जनता को शिक्षा की ओर ध्यान देना चाहिए और समाजवाद के निर्माताओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए।

समाजवादी राज्य को पूंजीवादी व्यवस्था और उससे भी अधिक सामन्तवादी व्यवस्था से विरासत के रूप में अशिक्षा और निरक्षरता मिली। इसलिए मजदूर वर्ग को प्रारम्भ से ही सारे देश के पैमाने पर आम मेहनतकश जनता की निरक्षरता और संस्कृति के अभाव को दूर करने के लिए ठोस, क्रान्तिकारी कदम उठाने पड़े। इसीलिए लेनिन ने निरक्षरता के उन्मूलन व्यापक शिक्षा-प्रसार और सांस्कृतिक प्रबुद्धता के लिए उठाये गये कदमों को "सांस्कृतिक क्रान्ति" का नाम दिया।

सांस्कृतिक क्रान्ति के द्वारा आम मेहनतकश जन-समूह को संस्कृति की सभी उपलब्धियां प्राप्त होती हैं। अतीत में ये उपलब्धियां सिर्फ शोषक वर्गों को ही प्राप्त थी।

इतिहास के एक छोटे काल में सोवियत संघ में प्रौढ़ निरक्षरता मिटा दी गयी और सार्वजनिक शिक्षा की व्यवस्था लागू की गयी। प्राथमिक, सप्तवर्षीय तथा माध्यमिक स्कूलों के रूप में आम शिक्षा दी जाने लगी। सभी स्कूलों में मातृभाषा में मुफ्त शिक्षा दी जाने लगी।

उच्च शिक्षा और माध्यमिक विशेषीकृत शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रभावकारी कदम उठाये गये। थोड़े समय में ही इस क्षेत्र ने नये सोवियत बुद्धिजीवी वर्ग का निर्माण कर दिया है। वैज्ञानिक संस्थानों की स्थापना बड़े पैमाने पर हुई है। मजदूर वर्ग के ज्ञान का व्यावसायिक तथा प्राविधिक स्तर ऊपर उठा है। प्रेस, रेडियो, टेलीविजन, फिल्म उद्योग, साहित्य और कला तथा आम जनता के बीच सांस्कृतिक कार्य में काफी प्रगति हुई है।

सांस्कृतिक क्रान्ति ने मेहनतकश जनता को आध्यात्मिक गुलामी और अज्ञानता से मुक्त कर दिया। वह मानवजाति द्वारा संचित सांस्कृतिक समृद्धि के नजदीक आयी।

दन संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में कहा गया है ...
ध्यक जनसंख्या अशिक्षित थी, आज विज्ञान तथा संस्कृति के क्षेत्र
क प्रगति कर रहा है।"[१]

४. समाजवाद की विजय

ोनों की ी समाप्ति — अर्थव्यवस्था, राजनीति और संस्कृति में संक्रमणकालीन आमूल क्रान्तिकारी परिवर्तनों के परिणामस्वरूप नये, समाजवादी समाज का निर्माण हुआ। इस तरह समाजवाद विजयी हुआ।

ाजवाद की विजय के फलस्वरूप उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व
ाजिक स्वामित्व कायम किया गया है। बहुरूपी अर्थव्यवस्था का स्थान
क्षेत्र ने ले लिया है। समाजवादी क्षेत्र का ही बोलबाला कायम हो गया
ादी क्षेत्र ने यन्त्रीकृत उद्यमों का रूप ले लिया है। इस प्रक्रिया में शोषक
गये हैं और मानव के शोषण का अन्त हो गया है।

ाजवाद की विजय के बाद देश के सम्पूर्ण आर्थिक जीवन का निर्धारण
न राजकीय नियोजन द्वारा होने लगता है। प्रतिस्पर्द्धा, उत्पादन की
और संकट सदा के लिए खत्म हो जाते हैं। सामाजिक उत्पादन का
गों की बढ़ती हुई भौतिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति
लिए होता है।

माजवाद में आय का वितरण लोगों के श्रम की मात्रा और किस्म के
ता है। यह सिद्धान्त स्थापित किया जाता है कि "हर एक से उसकी
अनुसार काम लिया जाये और हर एक को उसके काम के आधार पर
दिया जाये।" इस सिद्धान्त के कारण समाजवादी समाज के सदस्य अपने
तिफल में दिलचस्पी रखते हैं। व्यक्तिगत और सामाजिक हितों का सबसे
न्वय होता है। इस तरह यह सिद्धान्त श्रम-उत्पादकता को बढ़ाने और
आर्थिक स्थिति और खुशहाली में वृद्धि के लिए प्रोत्साहन देता है।
जनता को यह एहसास रहता है कि वह शोषकों के लिए नहीं, बल्कि
काम कर रही है। इसके चलते श्रम, आविष्कार, पहल तथा समाजवादी
ों के लिए एक नया जोश उभरता है।

१९३३-३७ के दौरान सोवियत संघ में समाजवादी परिवर्तनों के पूर्ण हो
समाजवादी समाज का निर्माण-कार्य मुख्य रूप से पूरा हो गया।

ुनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ४५८-५९।

समाजवाद की विजय के फलस्वरूप समाज के वर्ग-ढाचे मे आमूल परिवर्तन हुए। मजदूर वर्ग अब उत्पादन के साधनो से वंचित न रहा। वह शोषणमुक्त होकर सम्पूर्ण जनता के साथ उत्पादन के साधनों का मालिक हो गया। वह प्रमुख वर्ग तथा सामाजिक विकास की अग्रणी शक्ति बन गया।

किसान वर्ग छोटे, बिखरे हुए उत्पादकों का वर्ग नही रहा। वह शोषण से मुक्त एक पूर्णतया नये वर्ग के रूप मे उभरा। मजदूर वर्ग के साथ सामूहिक फार्म पर काम करने वाले मेहनतकश समाजवादी राज्य के सचालन मे सक्रिय हिस्सा लेते है। स्वामित्व के दोनो रूपो के समाजवादी होने के कारण मजदूर वर्ग और किसान वर्ग मे मैत्री हो जाती है। उनका सम्बन्ध सुदृढ तथा अक्षुण्ण हो जाता है।

जनता के बीच से एक नये बुद्धिजीवी वर्ग ने जन्म लिया है। यह वर्ग समाजवाद मे निष्ठा रखता है। जनता के हित मे अपने ज्ञान का रचनात्मक उपयोग करने के लिए इस वर्ग को पूर्ण अवसर प्राप्त है। बुद्धिजीवी वर्ग मजदूर वर्ग तथा कृषक वर्ग के साथ देश के मामलो के संचालन मे सक्रिय रूप से शामिल है।

समाजवाद की विजय ने राष्ट्रो की आपसी राजनीतिक और आर्थिक विषमता, शहर और देहात के बीच तथा शारीरिक और मानसिक श्रम के बीच के पहले के विभेद खत्म कर दिये हैं।

चूंकि मजदूरो, किसानो और बुद्धिजीवियो के बुनियादी हित समान हैं, इसलिए सोवियत जनता के बीच सामाजिक-राजनीतिक और सैद्धान्तिक एकता, कौमो के बीच मित्रता और सोवियत देशभक्ति की भावना विद्यमान है।

सोवियत सघ मे समाजवाद की विजय के बाद आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रो मे होने वाले गहन परिवर्तनों को कानूनी तौर पर १६३६ मे स्वीकृत सोवियत सघ के सविधान मे शामिल किया गया।

समाजवादी राज्य के सम्पूर्ण जीवन का निर्माण व्यापक जनवाद के आधा पर हुआ है। सोवियतो, ट्रेड यूनियनो और अन्य सामूहिक सगठनो के जरिए मेहनत कश जनता राजकीय कार्यों के सचालन तथा आर्थिक और सास्कृतिक निर्माण क समस्याओ के समाधान मे सक्रिय रूप से हिस्सा लेती है। समाजवादी समाज म व्यक्ति की स्वतन्त्रता सुरक्षित रहती है।

विश्व मे सर्वप्रथम समाजवाद की मशाल प्रज्वलित करने वाली सोवियत जनता पर सामाजिक विकास के नये मार्ग के निर्माण मे अग्रदूत होने का ऐतिहासिक उत्तरदायित्व है।

सोवियत सघ मे समाजवाद की विजय का व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव पडा। विश्व पूजीवादी व्यवस्था को इससे बहुत बड़ा धक्का लगा। इतिहास के अल्पकाल मे ही समाजवाद ने पूजीवाद के ऊपर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर दी।

फलस्वरूप मेहनतकश जनता का मजदूर वर्ग और समाजवाद की विश्वव्यापी विजय मे अटूट विश्वास हो गया।

समाजवादी बिरादरी के देशो मे समाजवाद विजय पर विजय प्राप्त करता जा रहा है।

समाजवादी औद्योगीकरण और कृषि मे समाजवादी सहयोग की योजनाओ की सफलता के फलस्वरूप बहुसख्यक देशो की अर्थव्यवस्थाओ मे क्षेत्रो की बहु-तायत का खात्मा हो गया है और समाजवादी उत्पादन-सम्बध प्रमुख हो गये हैं।

इसका मतलब है कि इन देशो ने पूजीवाद से समाजवाद के बीच सक्रमण काल को तय कर लिया है या करने ही वाले हैं।

जनवादी जनतन्त्रो मे समाजवादी क्रान्तियो की विजय का मतलब यह है कि समाजवाद ने एक देश—सोवियत सघ—की सीमाओ को पार कर विश्व व्यवस्था का रूप धारण कर लिया है।

समाजवादी देशो मे पूजीवाद को पुनस्स्थापित करने की सम्भावना का अन्त

सोवियत सघ मे समाजवाद की विजय पूर्ण थी। इसका मतलब है कि देश की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था मे समाजवादी उत्पादन-सम्बध स्थापित किये गये और पूजीवादी सम्बधो तथा शोषक वर्गों का उन्मूलन किया गया। समाजवाद की पूर्ण विजय के फलस्वरूप देश मे नये समाज का अखण्ड राज्य हो गया।

परन्तु सोवियत सघ मे समाजवाद की जीत अन्तिम नही थी। सोवियत सघ समाजवाद का निर्माण करने वाला अकेला देश था। वह पूजीवादी घेरे के बीच पडा था। साम्राज्यवादी ताकतवर थे। इसलिए खतरा था कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियावादी ताकतें पूजीवादी भूस्वामी व्यवस्था को पुनस्स्थापित न कर दें।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व की स्थिति बदली। देशो की एक बहुत बडी सख्या ने समाजवाद का रास्ता अपनाया। समाजवाद का निर्माण समाप्त कर सोवियत सघ ने पूरे पैमाने पर कम्युनिस्ट निर्माण का काम शुरू किया। पूजीवादी घेरा अब न रहा।

सोवियत सघ की बढी हुई आर्थिक और राजनीतिक ताकत तथा विश्व समाजवादी व्यवस्था के दृढ सगठन के कारण समाजवादी उपलब्धियों को मिटा देने का सवाल अब नही उठता। अब सोवियत सघ मे समाजवाद की अन्तिम विजय हो गयी है। न सिर्फ सोवियत सघ मे, बल्कि अन्य समाजवादी देशो मे पूजीवाद के पुनस्स्थापन की सामाजिक-आर्थिक सम्भावनाए खत्म हो चुकी हैं।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे बताया गया है: "समाजवादी खेमे की सयुक्त शक्ति साम्राज्यवादी प्रतिक्रिया के विरुद्ध प्रत्येक समाजवादी

लिए एक पक्की गारंटी है। समाजवादी देशों का एक संघ के अन्तर्गत संगठन, बढ़ती हुई एकता तथा स्थायी रूप से बढ़ती हुई शक्ति इस सम्पूर्ण व्यवस्था टे के अन्दर समाजवाद और कम्युनिज्म की पूर्ण विजय को सुनिश्चित है।"[१]

समाजवाद की कामयाबियां महान ऐतिहासिक महत्व रखती हैं। मेहनत-जनता को पूरा विश्वास होता जा रहा है कि नया समाज पूंजीवाद का स्थान करने के लिए निश्चित रूप से आ रहा है। यह समाज पुरानी दुनिया की मे श्रेष्ठ है।

सिर्फ समाजवादी समाज में जनता को सच्ची आजादी और खुशहाली है। समाजवाद ही आदमी को उत्पीड़न से मुक्त करता है और उसे व्यापक ार देता है तथा मनुष्य का भविष्य में विश्वास हो जाता है।

यही कारण है कि समाजवाद की शानदार कामयाबियां पूंजीवादी देशों हनतकश जनता को अपने अधिकारों, आजादी और पूंजीवादी उत्पीड़न से के लिए संघर्ष करने के वास्ते प्रोत्साहित करती हैं।

सोवियत संघ में समाजवाद का पूर्ण निर्माण और जनवादी जनतंत्रों में वाद की सफल स्थापना मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्तों की विजय का प्रमाण है। मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त पूंजीवादी दासता से मेहनतकश की मुक्ति और नयी सामाजिक संरचना—कम्युनिज्म—की ओर संक्रमण ों को प्रकाशित करते हैं।

कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ४६५।

अध्याय १८

समाजवादी समाज में उत्पादक शक्तियां और उत्पादन-सम्बंध

पिछले अध्याय में हमने समाजवाद की विजय और एक भिन्न व्यवस्था के रूप में उसके स्वरूप पर विचार किया। समाजवाद के आर्थिक नियमों और कोटियों के बारे में विचार करने के पूर्व आवश्यक है कि हम समाजवादी समाज की उत्पादक शक्तियों और उत्पादन-सम्बंधों का एक सामान्य विवरण प्रस्तुत करें।

१. उत्पादक शक्तियां

समाजवादी समाज में उत्पादक शक्तियों के प्रतिनिधि स्वरूप राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओं में प्रयुक्त उच्चतम तकनालाजी और शोषण से मुक्त मजदूरों के श्रम पर आधारित बड़े पैमाने के मशीनी उत्पादन को ले सकते हैं।

समाजवाद के अन्तर्गत बड़े पैमाने का मशीनी उत्पादन नियोजित तौर पर विकसित होता है और समस्त मेहनतकश जनता की भौतिक खुशहाली को बढ़ाता है और सांस्कृतिक स्तर को ऊंचा उठाता है। समाजवादी और पूंजीवादी उत्पादन में यही मौलिक विभेद है।

समाजवादी समाज में बड़े पैमाने के मशीनी उत्पादन की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसका उच्च तकनीकी स्तर तथा तीव्र गति से निर्बाध प्राविधिक प्रगति है।

तकनीकी प्रगति

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में तकनीकी प्रगति का अर्थ है विज्ञान और तकनीक का स्थायी विकास तथा मेहनतकश जनता के सांस्कृतिक और तकनीकी स्तरों में सुधार, उत्पादन का सर्वोत्तम संगठन और उनके आधार पर सामाजिक श्रम की उत्पादकता में हर सम्भव वृद्धि।

समाजवाद के अन्तर्गत उत्पादन की विभिन्न शाखाओं में नियोजित रूप से निरन्तर तकनीकी प्रगति होती है। विज्ञान की सबसे आधुनिक उपलब्धियों तथा समस्त मेहनतकश जनता के रचनात्मक प्रयासों का प्रयोग होता है। तकनीकी प्रगति जनता के जीवन-यापन के स्तर को स्थायी तौर पर ऊपर उठाने के उद्देश्य से सामाजिक धन मे वृद्धि करने का शक्तिशाली साधन है। वह वस्तुओ की कोटि और प्रकार मे वृद्धि के लिए नये अवसर प्रस्तुत करती है। इस तरह वह सामाजिक श्रम की ऊची उत्पादकता और उपभोक्ता की बढ़ती माग को सतुष्ट करती है।

समाजवाद के अन्तर्गत तकनीकी प्रगति की मुख्य प्रवृत्तियां हैं: उत्पादन के उपकरणों मे सुधार और प्राविधिक प्रगति, श्रम की प्रक्रियाओ का यत्रीकरण तथा स्वयचालन, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे विद्युतीकरण, उत्पादन मे रसायन विज्ञान का व्यापक प्रयोग, शान्तिपूर्ण उद्देश्यो की पूर्ति के लिए अणु शक्ति का इस्तेमाल। ये प्रवृत्तिया घनिष्ठ रूप से एक-दूसरे से सम्बद्ध और अन्योन्याश्रित हैं। स्वयचालन के लिए यत्रीकरण एक पूर्वस्थिति है। यत्रीकरण और स्वयचालन का विकास उद्योग और कृषि के आधार पर होता है। किन्तु व्यापक यत्रीकरण और स्वयचालन के बिना विद्युतीकरण की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इसी तरह यत्रीकरण, स्वयचालन और विद्युतीकरण के बिना उद्योग और कृषि का रसायनीकरण असम्भव है। साथ ही यत्रीकरण, स्वयचालन और विद्युतीकरण बहुत हद तक रसायनीकरण पर निर्भर करते है।

उत्पादन के उपकरणो में सुधार तकनीकी प्रगति का आधार है। इसके अन्तर्गत कम खर्चीली और अधिक उत्पादक मशीनो के आविष्कार और प्रयोग आते हैं। यह टेक्नालाजी के विकास के साथ अभिन्न रूप से सम्बद्ध है। टेक्नालाजी के अन्तर्गत कच्चे और अन्य मालो के निष्कर्षण के तरीके, प्रोसेसिंग और इस्तेमाल, नये प्रकार के कच्चे और अन्य मालो के प्रयोग, उच्च और अति उच्च प्रवेगो, शक्ति और तापमानो तथा उत्पादन प्रक्रियाएं तीव्र करने के अन्य तरीको के व्यवहार आते हैं।

साज-सामान के आधुनिकीकरण का तकनीकी प्रगति के लिए काफी महत्व है। प्रयोग मे आने वाले साज-सामान की घिसी-पिटी इकाइयो, भागो, आदि का प्रतिस्थापन किया जाता है। इस प्रकार व्यवहार मे आने वाले साज-सामान मे सुधार और पुनर्नवीकरण की प्रक्रिया को आधुनिकीकरण कहते हैं। आधुनिकीकरण उत्पादन की मात्रा को बढाता है और अपेक्षाकृत कम लागत से उद्यमों के कार्य मे सुधार लाता है। उत्पादन के उपकरणो मे सुधार देश की उत्पादक शक्तियो के निरन्तर विकास का आधार है।

श्रम की प्रक्रियाओ के यंत्रीकरण का समाजवाद के अन्तर्गत उत्पादन बढाने की दृष्टि से काफी महत्व है। इसमे हाथ की अपेक्षा मशीनो से काम लिया जाता है। मशीने काम को हलका और अधिक उत्पादक बनाती है। वे समाजवादी अर्थव्यवस्था के विकास की गति को अधिक तेज कर देती हैं।

१९६२ मे सोवियत संघ की इंजीनियरिंग और धातु-प्रोसेसिंग इकाइयों ने १९१३ की अपेक्षा ३५० गुना अधिक उत्पादन किया। इस कारण राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओ मे व्यापक यंत्रीकरण सम्भव हो सका।

समाजवाद के अन्तर्गत व्यापक यंत्रीकरण का विकास होता है। इसका मतलब है कि सभी अन्तस्सम्बद्ध उत्पादन प्रक्रियाओं (बुनियादी और सहायक दोनो) का यंत्रीकरण होता है। व्यापक यंत्रीकरण श्रम-उत्पादकता को बढाता तथा उत्पादन मे स्वयचालन के लिए आधार तैयार करता है।

स्वयचालन (स्वय नियमित होने वाली स्वयचालित मशीनो का प्रयोग जो हाथो से काम करने की आवश्यकता को समाप्त कर देती है) यंत्रीकरण का एक ऊंचा चरण है।

समाजवादी उत्पादन मे स्वयचालन का व्यवहार श्रम को आसान बनाता तथा बचाता है। वह किस्म को सुधारने और लागत को कम करने मे सहायता देता है। स्वयचालन (विशेषकर व्यापक स्वयचालन का सभी उत्पादन प्रक्रियाओ मे प्रयोग) के कारण साज-सामान की जिन्दगी बढ जाती है और उसका टिकाऊ-पन अधिक हो जाता है। शक्ति का व्यय कम मात्रा मे होता है। उत्पादन के स्तर ऊंचे हो जाते हैं तथा देखरेख करने वाले कर्मचारियो की संख्या मे कमी हो जाती है। फलस्वरूप सामाजिक श्रम की उत्पादकता काफी बढ जाती है।

पूंजीवाद मे यंत्रीकरण और स्वयचालन के चलते लाखो मजदूर बेकार हो जाते है और बेरोजगारी मे वृद्धि होती है। इसके विपरीत समाजवाद मे यंत्री-करण और स्वयचालन न तो बेरोजगारी लाते हैं और न ला सकते हैं। समाजवादी समाज मे उत्पादन-प्रक्रियाओं का व्यापक यंत्रीकरण और स्वयचालन मेहनतकश जनता के हित मे होता है। लाखो मजदूरो के काम आसान हो जाते हैं। काम का स्वरूप बदल जाता है। उत्पादकता बढती है तथा कार्य-दिवस छोटा हो जाता है। मानसिक और शारीरिक काम का बुनियादी विभेद खत्म हो जाता है।

उत्पादन प्रक्रियाओ का यंत्रीकरण और स्वयचालन विद्युतीकरण से अभिन्न रूप मे सम्बद्ध है। विद्युतीकरण का मतलब राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओं और दैनिक जीवन मे बिजली का इस्तेमाल है। आधुनिक टेक्नालाजी मे शक्ति का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत बिजली है। यह अत्यन्त आधुनिक टेक्नालाजी का आधार है। यह उत्पादन प्रक्रियाओ की गति को तेज करती है। बिजली के आधार

पर उद्योग की नयी शाखाएं (विद्युत-धातु विज्ञान, विद्युत-रसायन विज्ञान और धातु-प्रोसेसिंग के नये तरीके) पनपी हैं।

१९६५ में सोवियत संघ का कुल विद्युत-शक्ति उत्पादन ५२,००० करोड़ किलोवाट से अधिक था। १९१३ में यह उत्पादन १९० करोड़ किलोवाट था। शक्ति क्षमताओं के विकास को तेज करने के लिए सस्ते कोयले, प्राकृतिक गैस और भविष्य में कच्चे तेल से चलने वाले ताप-बिजलीघरों के निर्माण को प्राथमिकता दी जायेगी। साथ ही बड़े पन-बिजलीघरों के निर्माण का काम भी चलेगा।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की तकनीकी उन्नति मे सबसे बड़ा तत्व रसायनीकरण है। इसके लिए जरूरी है कि उत्पादन के रासायनिक तरीकों का विकास हो और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओं में उनका इस्तेमाल हो। व्यापक पैमाने पर रसायनों एव रासायनिक वस्तुओं के इस्तेमाल से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओं में तीव्र विकास को बढ़ावा मिलता है।

उत्पादन के क्षेत्र मे क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए रसायनशास्त्र को विद्युत-शक्ति का सहारा लेना पड़ता है। प्राकृतिक पदार्थों के गुण में परिवर्तन करने, प्रकृति मे न पाये जाने वाले गुणों से युक्त नये पदार्थों का निर्माण करने, यानी श्रम की वस्तु में कई गुनी वृद्धि करने तथा उद्योग एव कृषि के क्षेत्र मे उत्पादन प्रक्रियाओं को तेज करने मे लोगों को यह सक्षम बनाता है।

कृत्रिम पदार्थों के उत्पादन ने इजीनियरिंग की नयी शाखाओं (जैसे अणु शक्ति का विकास, रेडियो इलेक्ट्रानिक्स, राकेट विज्ञान आदि) के विकास का मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

धातु विज्ञान, मशीन निर्माण, विद्युत-शक्ति सम्बन्धी इंजीनियरिंग, निर्माण, कृषि, परिवहन, सचार, सार्वजनिक स्वास्थ्य, इत्यादि का और ज्यादा विकास नये रासायनिक पदार्थों और रासायनिक तरीको के बिना नही हो सकता। उच्च कोटि की विविध उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पादन के लिए रसायनशास्त्र असीमित सम्भावनाएं प्रदान करता है। आलकारिक भाषा मे कहे तो रसायनशास्त्र जनता को न सिर्फ भोजन प्रदान करता है बल्कि कपडा भी देता है और साथ ही बहुत सारी सुविधाजनक सस्ती और बडी व्यावहारिक वस्तुए भी प्रदान करता है।

अणुशक्ति के इस्तेमाल से तकनीकी विकास अपने उच्चतम बिन्दु पर पहुच गया है। सोवियत सघ मे एक शक्तिशाली अणु उद्योग की स्थापना हुई है। इसका भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है।

तकनीकी प्रगति की ये मुख्य प्रवृत्तिया सोवियत जनता के साहसपूर्ण श्रम के परिणामस्वरूप आयी हैं। दुनिया का पहला अणुशक्ति केन्द्र सोवियत सघ मे बना। पहले कृत्रिम उपग्रह तथा चन्द्रमा एव सौरमडल के अन्य ग्रहो पर अन्तरिक्ष

राकेट सोवियत सघ ने ही भेजे। लेनिन अणुशक्ति बर्फ-तोड़क भी वही बना। सोवियत विज्ञान और टेक्नालाजी की उपलब्धियो के ये मापदण्ड हैं।

आदमी को अन्तरिक्ष मे भेजना सोवियत वैज्ञानिको और इजीनियरो की शानदार उपलब्धि है।

समाजवादी देशो की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टिया सदैव तेज टेक्नालाजिकल प्रगति चाहती हैं। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २२वी कांग्रेस ने सोवियत सघ की तकनीकी प्रगति के लिए एक शानदार कार्यक्रम बनाया। विज्ञान और टेक्नालाजी द्वारा सृजित प्रत्येक चीज के पूर्ण उपयोग की आवश्यकता पर जोर दिया गया। उद्योग के व्यापक यत्रीकरण और स्वयचालन की गति तेज करने, अत्यन्त आधुनिक मशीनी औजार बनाने, उत्पादन स्तर निश्चित करने, स्वयचालन लाने तथा उत्पादन प्रक्रियाए उन्नत करने पर जोर दिया गया।

समाजवाद का भौतिक और तकनीकी आधार

समाज का भौतिक और तकनीकी आधार उत्पादक शक्तियो के विकास के स्तर पर निर्भर करता है। वह उत्पादन के प्रभावी सम्बधो के अनुकूल होता है।

समाजवाद अपना भौतिक और तकनीकी आधार बनाता है। वह धीरे-धीरे कम्युनिज्म के आधार के रूप मे विकसित हो जाता है। समाजवाद का भौतिक और तकनीकी आधार राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओं में नियोजित ढग से विकसित होने वाले बड़े पैमाने के मशीनी उत्पादन पर निर्भर है। बड़े पैमाने के मशीनी उत्पादन के विकास मे उत्पादन के साधनो के उत्पादन को प्राथमिकता दी जाती है।

बड़े पैमाने के मशीनी उत्पादन के होने पर श्रम के आधुनिक उपकरणो, वैज्ञानिक और तकनीकी उपलब्धियो तथा विकसित टेक्नालाजी का [illegible] समाजवादी समाज के पैमाने पर इस्तेमाल सम्भव है। इस तरह बड़े पैमाने का मशीनी उत्पादन श्रम-उत्पादकता के निरन्तर विकास को प्रोत्साहित करता है। इस तरह समाजवादी समाज श्रम के बोझ को हल्का करता है और काम-दिवस छोटा बनाता है। इस प्रकार समाजवादी समाज औद्योगिक कमियो व [illegible] और तकनीकी स्तर मे स्थायी सुधार लाने के लिए पर्याप्त अवसर को [illegible] करता है।

उद्योग मे संकेन्द्रण के रूप मे समाजीकरण का ऊचा स्तर, विशेषीकरण और सहयोग समाजवाद के भौतिक और तकनीकी आधार के विशिष्ट लक्षण हैं। संकेन्द्रण न सिर्फ उत्पादन का होता है, बल्कि श्रम-शक्ति और उत्पादन [illegible] होने वाले उद्यमो के उत्पादन का भी होता है। समाजवादी उत्पादन में संकेन्द्रण का स्तर विश्व में सबसे अधिक है। संकेन्द्रण का एक रूप [illegible] है।

एक-दूसरे से उत्पादन प्रक्रिया द्वारा सम्बद्ध उद्योग की विभिन्न शाखाओं के एक विशाल उद्यम में संकेन्द्रण को उत्पादन का संयोजन कहते हैं। उदाहरण के लिए, मैग्नीतोगोर्स्क मैटेलर्जिकल कम्बाइन के अन्तर्गत लोहे और इस्पात के उत्पादन का पूरा चक्र आता है। चक्र का मतलब खनन और कोक भट्टी उत्पादन के लिए विशाल लोह और इस्पात खानों और औद्योगिक उद्यमों, गलनरोधियों (रिफैक्टरीज), इत्यादि से है। संयोजन एक समन्वित टेक्नालाजिकल उत्पादन इकाई होता है।

संयोजन का एक और उदाहरण तेल की व्यापक रासायनिक प्रोसेसिंग के लिए तेल और रासायनिक कम्बाइनें भी हैं। ये पेट्रोल और चिकनाई (लूब्रिकेन्ट्स) कृत्रिम रबड और स्प्रिट, एसेटिक तेजाब, एसीटोन, प्लास्टिक और अन्य जैव रासायनिक वस्तुएं उत्पन्न करती हैं। लकड़ी और कागज, खाद्य, कपड़ा और अन्य उद्योगों में उत्पादन संयोजन काफी प्रचलित हैं।

विस्तृत, नियोजित विशेषीकरण और सहयोग समाजवाद के भौतिक और तकनीकी आधार के विशिष्ट लक्षण है। विशेषीकरण उस प्रकार के उद्यमों को अलग कर लेने की प्रक्रिया है, जिसमें स्वभावतः खास प्रकार के साज-सामान, उत्पादन प्रक्रियाएं और विशेष प्रशिक्षित कर्मचारी होते हैं जो खास तरह के तैयार माल या उनके हिस्सों को बनाते हैं।

विशेषीकरण उद्यमों के बीच श्रम-विभाजन पर निर्भर होता है। विशेषीकृत उद्यमों में अत्यधिक उत्पादक साज-सामानों, मानकीकरण तथा विस्तृत स्वयसंचालन और यंत्रीकरण का बड़ी मात्रा में पंक्ति-प्रवाही उत्पादन के प्रयोग के लिए काफी अवसर होते हैं। विशेषीकरण से श्रम-उत्पादकता में स्थायी वृद्धि होती है।

विशेषीकृत उद्यमों में पारस्परिक घनिष्ठता आवश्यक है। यह सम्बंध सहयोग द्वारा स्थापित होता है। समाजवाद के अन्तर्गत कई उद्यम एक साथ मिलकर कोई वस्तु उत्पन्न करते हैं, यद्यपि वे उद्यम आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होते है। ऐसे उद्यमों के बीच स्थायी सम्बंधों की नियोजित स्थापना ही सहयोग है।

क्षेत्रों के भीतर सहयोग और क्षेत्रों के बीच सहयोग में अन्तर करना आवश्यक है। जब एक ही आर्थिक क्षेत्र में स्थित उद्यमों के बीच सम्बंध स्थापित किये जाते हैं, तो पहले प्रकार का सहयोग होता है, किन्तु जब भिन्न आर्थिक प्रशासकीय क्षेत्रों में स्थित उद्यमों के बीच उत्पादन-सम्बंध होते हैं, तो दूसरे प्रकार का सहयोग देखने में आता है।

समाजवादी उद्योग के विशेषीकरण के उपर्युक्त स्वरूप कृषि समेत उसकी सभी शाखाओं में मिलते हैं। कृषि की फैली हुई व्यवस्था उत्पादन के विशेषीकरण से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है।

उत्पादन का विशेषीकरण और सहयोग न सिर्फ एक देश में विकसित होता बल्कि समाजवादी देशों के बीच भी होता है।

वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में प्राप्त च तकनीकी स्तर समाजवाद के भौतिक और तकनीकी आधार का विशिष्ट ण है। समाजवादी अर्थव्यवस्था में जहां भी मशीन का प्रयोग लाभप्रद होता है ानी श्रम की बचत होती है और काम आसान हो जाता है), वहां उसे काम लाया जाता है।

अत्यन्त विकसित तकनीक पर आधारित बड़े पैमाने के उद्यम समाजवादी माज में उत्पादक शक्तियों का एक पक्ष हैं। दूसरे पक्ष का प्रतिनिधित्व श्रम-मतासम्पन्न लोग करते हैं।

भौतिक धन के उत्पादन के दौरान लोग श्रम के उपकरणों को उन्नत करते , मशीनों का आविष्कार करते है और प्राकृतिक वैभव का इस्तेमाल करते है।

मेहनतकश जनता—समाज की मुख्य उत्पादक शक्ति

इस प्रकार वे अपने अनुभव और तकनीकी जानकारी को बढ़ाते हैं और पूर्ण करते हैं। अकेले लोग नयी तकनीक प्रारम्भ करते हैं। इस प्रकार उत्पादन को बढ़ाने में जनता ही निर्णायक भूमिका अदा करती है। लेनिन ने कहा था कि मानवजाति की पहली उत्पादक शक्ति मेहनतकश हैं। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओं में बड़े पैमाने के मशीनी उत्पादन और तकनीकी प्रगति के लिए बड़ी संख्या में दक्ष और प्रशिक्षित मजदूरों की आवश्यकता होती है। समाजवादी समाज को इस बात में दिलचस्पी रहती है कि लोगों की तकनीकी योग्यता और सामान्य सांस्कृतिक स्तर क्रमिक रूप में ऊंचे उठें। सोवियत संघ में राजकीय व्यावसायिक और तकनीकी स्कूलों के द्वारा दक्ष मजदूरों को नियोजित रूप से प्रशिक्षित किया जाता है। विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम और कक्षाओं तथा सामूहिक और व्यक्तिगत प्रशिक्षण के फलस्वरूप प्रतिवर्ष बहुत बड़ी संख्या में प्रशिक्षित दक्ष कर्मचारी कारखानों में भेजे जाते हैं।

सायंकालीन कक्षाओं, तकनीकी स्कूलों और उच्चतर शैक्षणिक संस्थानों द्वारा नौजवान मजदूरों की एक बहुत बड़ी संख्या को विशेषीकृत और सामान्य शिक्षा दी जाती है। सामान्य शिक्षा के पुनस्संगठन द्वारा स्कूली पाठ को उत्पादक कार्य के साथ जोड़ दिया गया है। सोवियत संघ में अत्यन्त शिक्षित और दक्ष कर्मचारियों के प्रशिक्षण को उन्नत करने में इसका काफी हाथ है।

समाजवाद के द्वारा पूरी मेहनतकश जनता सांस्कृतिक और तकनीकी विकास के उच्चतम शिखर पर पहुंच जाती है। यह मेहनतकश जनता के व्यवसाय के बदलते ढांचे और शिक्षा के उच्च स्तर द्वारा जाहिर है। विशेषीकृत माध्यमिक

या उच्चतर शिक्षा (नौकरी पेशे वालों को छोड़कर) पाये लोगों की संख्या रूस में १६१३ में १,६०,००० थी, जो १६६२ में बढ़कर ६६,५६,००० हो गयी।

बड़े पैमाने के मशीनी उत्पादन के विकास के फलस्वरूप मजदूर वर्ग की सख्यात्मक सरचना भी बदली है। सोवियत संघ में मेहनतकशों और अन्य रोजगार प्राप्त लोगों की कुल सख्या १६२८ में १ करोड़ ८ लाख थी। यह संख्या १६६५ में ७ करोड़ ३० लाख तक पहुच गयी।

लोगो के अभूतपूर्व सृजनात्मक कार्यकलाप के लिए समाजवादी व्यवस्था ही जिम्मेदार है। समाजवाद के अन्तर्गत काम करने वाले प्रत्येक व्यक्ति की दिलचस्पी श्रम-उत्पादकता को बढ़ाने में और उत्पादक शक्तियों के स्थायी और द्रुत विकास मे होती है, क्योंकि वहां प्रत्येक व्यक्ति अपने और अपने समाज के लिए कार्य करता है।

२. उत्पादन-सम्बंध

समाजवादी उत्पादन-सम्बध पूंजीवादी तथा उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व पर आधारित अन्य सामाजिक सरचनाओं के उत्पादन-सम्बधो से मूलतः भिन्न होते है।

समाजवादी उत्पादन-सम्बंधों का आधार

समाजवादी उत्पादन-सम्बधों का आधार उत्पादन के साधनो का सामाजिक स्वामित्व है। राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की सभी शाखाओं मे उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व होता है।

उत्पादन के साधनों और उपभोग की सामग्रियो के ऊपर स्वामित्व सदा रहा है और रहेगा। झूठ बोलने वाले ही कहते हैं कि कम्युनिस्ट सब प्रकार के स्वामित्व को खत्म कर देना चाहते हैं। वैज्ञानिक समाजवाद के कार्यक्रम सम्बधी सबसे पहली दस्तावेज कम्युनिस्ट घोषणापत्र में मार्क्स और एगेल्स ने लिखा था: "कम्युनिज्म की मुख्य विशेषता सब प्रकार की सम्पत्ति का उन्मूलन नहीं, बल्कि पूजीवादी सम्पत्ति का उन्मूलन है।"[१]

उत्पादन-सम्बधों की किसी व्यवस्था में यह बात बहुत महत्व रखती है कि मजदूर किस रूप मे उत्पादन के साधनो से सम्बद्ध हैं। पूजीवाद के अन्तर्गत दोनों एक-दूसरे से सम्बद्ध नही रहते। चूकि उत्पादन के साधन पूजीपतियो की सम्पत्ति होते हैं, इसलिए मजदूरो और उत्पादन के साधनों के बीच विरोध रहता है। फलस्वरूप मेहनतकश जनता पूजीवाद के अन्तर्गत निजी स्वामित्व के उन्मूलन के लिए अविराम सघर्ष करती रहती है।

१. मार्क्स और एंगेल्स, "संकलित रचनाएं", खंड १, पृष्ठ ४७।

समाजवादी समाज में मेहनतकशों का उत्पादन के साधनों से कोई विरोध नहीं होता। इसीलिए समाजवाद में मेहनतकश लोग समाजीकृत स्वामित्व को दृढ़ और मजबूत बनाने और विकसित करने में दिलचस्पी रखते हैं।

उत्पादन के साधनों के समाजीकृत स्वामित्व का क्या मतलब है? सर्वप्रथम इसका मतलब यह है कि उत्पादन के साधनों पर काम करने वाले लोगों का अधिकार रहता है। उत्पादन के साधन समाजवादी समाज में न पूंजी होते हैं और न ही शोषण के साधन।

उत्पादन के साधनों का समाजीकरण, समाजवादी स्वामित्व ही लोगों के आर्थिक उत्पादन, विनिमय और वितरण-सम्बंधों को निश्चित करता है। शोषणमुक्त लोगों के बीच सौहार्दपूर्ण सहयोग और समाजवादी पारस्परिक सहायता तथा "हर एक को उसके कार्य के अनुसार" वेतन के सिद्धान्त के आधार पर वस्तुओं का मेहनतकश जनता के हित में वितरण इन सम्बंधों में मुख्य हैं।

जब उत्पादन के साधनों पर मेहनतकश जनता का अधिकार होता है और समाज का प्रत्येक सदस्य तथा पूरा समाज उत्पादन को बढ़ाने में दिलचस्पी लेता है तो लोगों के सम्बंध निस्सन्देह मैत्रीपूर्ण होते हैं। उपभोग के लिए अधिकाधिक वस्तुओं के उत्पादन के प्रयास में लोग एक-दूसरे की दिल खोलकर सहायता करते हैं जिससे सभी सफलता प्राप्त की जा सके। समाजवादी समाज के शोषणमुक्त वर्गों—मजदूर वर्ग, किसान वर्ग और बुद्धिजीवी वर्ग—के हितों की समानता मैत्रीपूर्ण सहयोग और समाजवादी पारस्परिक सहायता का आधार है। ये सम्बंध उद्यमों के भीतर, विभिन्न उद्यमों के बीच, राजकीय उद्यमों और सामूहिक फार्मों के बीच और मजदूर वर्ग तथा किसान वर्ग के बीच विकसित होते हैं। मैत्रीपूर्ण सहयोग और पारस्परिक सहायता तथा सृजनात्मक क्रियाशीलता के सम्बंध उत्पादक शक्तियों के विकास के लिए असीमित अवसर प्रदान करते हैं।

उत्पादन के सामाजिक चरित्र और उत्पादन के फल प्राप्त करने के निजी पूंजीवादी रूप के अन्तर्विरोध को समाजवाद दूर करता है। समाजवाद में श्रम के उत्पादन का सामाजिक उपभोग उत्पादन के सामाजिक चरित्र के अनुकूल होता है। इसीलिए उत्पादन के समाजवादी सम्बंध उत्पादक शक्तियों के द्रुत, निर्बाध विकास के लिए महान अवसर प्रदान करते हैं।

इनके विकास के साथ उत्पादन के समाजवादी सम्बंध धीरे-धीरे बदलते और उन्नत होते हैं। वे उत्पादक शक्तियों की दृष्टि से निष्क्रिय नहीं रहते। वे उन्नत होकर उत्पादक शक्तियों के विकास के लिए असीमित अवसर प्रदान करते हैं।

पूंजीवाद से समाजवाद की ओर संक्रमण काल के दौरान समाजवादी
सम्पत्ति का जन्म होता है। मजदूर वर्ग द्वारा राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर लेने के
बाद एक ओर बड़े पैमाने की पूंजीवादी सम्पत्ति होती

समाजवादी सम्पत्ति के दो रूप

है। वह उसका राष्ट्रीयकरण कर उसे समाजवादी राज
को सौंप देना है। यही राजकीय समाजवादी सम्पत्ति की

किसानों,
और मझोले वस्तु-उत्पादक उत्पादक सहकारी समितियों में स्वेच्छा से शामिल हो
जाते हैं। उनकी सम्पत्ति सहकारी सिद्धान्तों के आधार पर समाजीकृत हो जाती
है। यह सामूहिक फार्म और सहकारी सम्पत्ति की शुरुआत है।

स्पष्ट है कि समाजवाद के अन्तर्गत सामाजिक सम्पत्ति के दो रूप होते हैं:
१) **राजकीय (सार्वजनिक) सम्पत्ति,** यह समस्त जनता की सम्पत्ति होती है।
२) **सामूहिक फार्म और सहकारी सम्पत्ति,** यानी सामूहिक फार्मों और सहकारी
संगठनों की सम्पत्ति। समाजवादी सम्पत्ति के दो रूप होने के कारण समाजवादी
उद्यमों के दो रूप—राजकीय तथा सामूहिक फार्म और सहकारी उद्यम—होते हैं।
इनका सामाजिक स्वरूप समान होता है। सभी समाजवादी देशों में राजकीय (सार्व-
जनिक) सम्पत्ति ही सम्पत्ति का मुख्य रूप होती है।

सोवियत संघ में राजकीय (सार्वजनिक) सम्पत्ति के अन्तर्गत भूमि, खनिज
सम्पदा, पानी, वन, कारखाने, खान, जल और वायु परिवहन, बैंक, संचार व्यवस्था,
राजकीय फार्म, मरम्मती और सर्विसिंग स्टेशन, राजकीय व्यापार और अन्य उद्यम,
सामुदायिक सुविधाएं, शहरों तथा मजदूरों की रिहाइशी बस्तियों में कुल आवास-
व्यवस्था और राजकीय उद्यमों के उत्पादन आते हैं।

सोवियत संघ में २,००,००० राजकीय औद्योगिक उद्यम हैं। इनके अति-
रिक्त सम्पूर्ण रेल व्यवस्था (१९६२ में स्थायी मार्गों की कुल लम्बाई १,२७,७
किलोमीटर थी), वायु परिवहन और नौपरिवहन, करीब ८,६०० राजकीय फा
इत्यादि पर सम्पूर्ण जनता का अधिकार है।

सोवियत संघ में सामूहिक फार्म और सहकारी सम्पत्ति के अन्त
४०,५०० सामूहिक फार्म—खेती की मशीनें (ट्रैक्टर, कम्बाइनें, इत्यादि), फ
की इमारतें, सामूहिक स्वामित्व के अन्तर्गत रहने वाले भारवाही पशु, मांस अ
दूध देने वाले पशु, कच्चे मालों को प्रोसेस करने वाले सहायक उद्यम, सामूहि
बिजलीघर, सांस्कृतिक सुख-सुविधाओं तथा सामुदायिक सेवाओं की विस्तृ
व्यवस्था और सामूहिक फार्मों और अन्य सहकारी उद्यमों के उत्पादन—आते हैं।

फार्म और सहकारी सम्पत्ति राजकीय सम्पत्ति मे मिल जायेगी और सामाजिक स्वामित्व पर आधारित कम्युनिस्ट सम्पत्ति का एक ही रूप रह जायेगा।[1]

व्यक्तिगत सम्पत्ति

समाजवाद में सामाजिक सम्पत्ति के अन्तर्गत उत्पादन के साधन और उनके उत्पादन आते हैं। इस उत्पादन का एक भाग उपभोक्ता वस्तुओं के रूप मे होना है। इस भाग का वितरण मेहनतकश जनता के बीच होता है। इस वितरण का आधार कार्य की मात्रा और कोटि होता है। भुगतान के रूप मे प्राप्त उत्पादन लोगो की निजी सम्पत्ति होता है।

समाजवाद के अन्तर्गत व्यक्तिगत सम्पत्ति का तात्पर्य व्यक्तिगत उपभोग की चीजो पर निजी स्वामित्व से है। सोवियत सघ मे व्यक्तिगत सम्पत्ति मे अर्जित आय और व्यक्तिगत बचत, आवास स्थान का एक भाग, घरेलू और पारिवारिक वस्तुए, व्यक्तिगत इस्तेमाल तथा सहूलियत की वस्तुएं, इत्यादि आती हैं।

समाजवाद के अन्तर्गत व्यक्तिगत सम्पत्ति का एक विशेष रूप सामूहिक फार्म पर काम करने वाले किसान की घर-गृहस्थी है। इस सम्पत्ति में उसका घर, फार्म की इमारतें, पालतू मवेशी और मुर्गीखाना और खेत की जुताई के लिए खेती के औजार होते है। व्यक्तिगत खेत को सामूहिक फार्म पर काम करने वाला किसान और उसका परिवार जोतता है। इसका अर्थव्यवस्था मे गौण स्थान है। सामूहिक फार्म की अर्थव्यवस्था के विकास के साथ ऐसी सम्पत्ति का महत्व खत्म हो जायेगा।

समाजवादी समाज मे व्यक्तिगत सम्पत्ति का स्रोत सामाजिक उत्पादन मे सहयोग है। समाजवाद के अन्तर्गत उत्पादन के साधनो का समाजवादी स्वामित्व ही वह दृढ़ आधार है, जिससे मेहनतकश जनता की जरूरते अधिकाधिक पूरी होती जायेंगी और उसकी निजी सम्पत्ति मे वृद्धि होती जायेगी। कार्य की मात्रा और कोटि के अनुसार भुगतान किया जाता है। इस तरह व्यक्तिगत भौतिक प्रोत्साह" के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप मे सुनिश्चित किया जाता है। किन्तु, व्यक्तिग सम्पत्ति मे वृद्धि भी एक सीमा है।

समाजवाद के अन्तर्गत व्यक्तिगत सम्पत्ति का इस्तेमाल नागरिकों य सम्पूर्ण राज्य के हित के विरुद्ध नही होता।

उत्पादन के साधनों के समाजवादी स्वामित्व के फलस्वरूप निम्नलिखित आर्थिक नियम जन्म लेते हैं: समाजवाद के बुनियादी आर्थिक नियम, राष्ट्रीय अर्थ-

आर्थिक नियम

व्यवस्था के नियोजित, सानुपातिक विकास का नियम, काम के अनुसार वितरण का नियम, आदि। समाजवादी आर्थिक नियम उत्पादन के समाजवादी सम्बधो के

---

१. देखें अध्याय २०, पैरा १।

सार हैं और उनका स्वरूप वस्तुगत है। उनका उद्भव और परिचालन लोगो की इच्छा या अभिलाषा के परे हैं। किन्तु इसका यह मतलब नही है कि आर्थिक नियम लोगो की क्रियाओ से परे स्वयचालित होने वाले प्राकृतिक नियमो के सदृश हैं। आर्थिक नियम उत्पादन-सम्बधो के नियम हैं, अत उनका परिचालन वहा नही हो सकता जहा न तो लोग हो, न सामाजिक उत्पादन। समाजवादी आर्थिक नियमो के वस्तुगत स्वरूप का सिर्फ यही मतलब है कि लोगो को अपने कार्यकलाप मे इन नियमो का ध्यान रखना होता है। वे इन नियमो के परिचालन के ढग की अवहेलना नही कर सकते।

समाजवाद के आर्थिक नियमो के वस्तुगत स्वरूप को नही समझ पाने और आर्थिक कार्यों मे उनका ध्यान नही रखने पर प्रतिकूल नतीजे निकलते हैं। जब कभी लोग आर्थिक नियमो का उल्लघन करते है, आर्थिक नियम प्रतिकूल दिशा मे काम करते हैं।

समाजवादी आर्थिक नियमो के काम करने का ढग पूजीवाद के अन्तर्गत काम करने वाले आर्थिक नियमो के ढग से मूलत. भिन्न होता है। समाजवादी आर्थिक नियम पूजीवादी आर्थिक नियमो की तरह स्वत काम नही करते, बल्कि उनका प्रयोग समाज के द्वारा चेतन मन मे व्यवस्थित तौर पर होता है। जैसा कि एगेल्स ने कहा, पूजीवादी और समाजवादी आर्थिक नियमो मे वही अन्तर है जो बादल मे बिजली कौधने और बिजली के आदमी द्वारा व्यवहार मे है।

समाजवादी स्वामित्व लोगो की क्रियाओं को एक अर्थव्यवस्था के रूप मे एक नेतृत्व के अन्तर्गत सूत्रबद्ध करता है। समाजवाद के अन्तर्गत समाज के स्वत विकास का सवाल ही नही उठता। पूरे समाज के पैमाने पर समाजवादी आर्थिक नियमो का चेतन मन से प्रयोग सम्भव और आवश्यक हो जाता है। उदाहरण के लिए, अत्यन्त महत्वपूर्ण आर्थिक समस्याओ के समाधान के लिए बिना एक केन्द्रीय सगठन बनाये अर्थव्यवस्था का निजोजित विकास असम्भव है। बिना एक सूत्रबद्ध राजकीय नेतृत्व के उद्यम विशेषो की योजना का सब महत्व खत्म हो जायेगा, अन्यथा उनमे से प्रत्येक बाजार मे अपने आप होने वाले उतार-चढ़ावो के अनुकूल काम करेगा। स्वतः प्रवृत्ति और समाजवाद मे असगति और परस्पर अपवर्जन का सम्बध है।

समाजवादी आर्थिक नियम निश्चित परिस्थितियो मे उत्पन्न होते और काम करते हैं। इसलिए जब परिस्थितियां बदल जाती हैं, तब आर्थिक नियमो के परिचालन का क्षेत्र या तो बढ़ता है या घटता है। परिचालन क्षेत्र के सकुचित होने पर वे नियम धीरे-धीरे खत्म हो जाते है।

उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नियोजित, आनुपातिक विकास के नियम की भूमिका कम्युनिस्ट समाज की ओर संक्रमण के साथ महत्वपूर्ण होती जाती है। काम के अनुसार वितरण के नियम का परिचालन क्षेत्र कम्युनिज्म की ओर संक्रमण के दौरान कम होता जाता है। पूर्ण विकसित कम्युनिस्ट समाज में वितरण का आधार "जरूरत" रहेगा, इसलिए यह नियम वहां खत्म हो जायेगा।

समाजवाद के आर्थिक नियमों का वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त होने पर ही उनका स्वरूप उपयोग किया जा सकता है और कम्युनिस्ट पार्टी तथा समाजवादी राज्य की नीति को कार्यान्वित किया जा सकता है। इन सबका लक्ष्य कम्युनिज्म का निर्माण करना होता है।

३. समाजवाद के बुनियादी आर्थिक नियम

अन्ततोगत्वा समाजवाद के अन्तर्गत अपनी बेहतरी की मेहनतकश जनता की चिरकालीन आशाएं पूरी होती हैं। समाजवादी उत्पादन का संगठन समाज के सभी सदस्यों की भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए होता है। यही उसका प्रत्यक्ष लक्ष्य और पूरा मकसद है। सिर्फ लोगों के जीवन-यापन के स्तर को ऊंचा उठाने और सम्पूर्ण जनता की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ण संतुष्टि के लिए ही समाजवादी उत्पादन सफलतापूर्वक विकसित किया जा सकता है।

जैसा कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में कहा गया है, समाजवाद का लक्ष्य लोगों की दिनोदिन बढ़ती भौतिक और सांस्कृतिक जरूरतों को पूरा करना है। वैज्ञानिक कम्युनिज्म के प्रतिपादकों ने भी इस ओर संकेत किया था।

समाजवादी समाज की चर्चा करते हुए मार्क्स और एंगेल्स ने कहा। पूंजीवादी समाज में "पैसा बनाना" हर प्रकार के व्यवसाय का लक्ष्य है और पूंजीपतियों द्वारा अधिशेष मूल्य प्राप्त करना ही उत्पादन का प्रयोजन और अन्तिम परिणाम है। समाजवाद के अन्तर्गत उत्पादन का विकास समाज और उसके सभी सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता है। एंगेल्स ने लिखा : "वर्तमान उत्पादक शक्तियों के वास्तविक स्वरूप को इस तरह समझ लेने पर उत्पादन की सामाजिक अराजकता खत्म हो जाती है और उसका स्थान समुदाय और प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं की दृष्टि से उत्पादन का एक निश्चित योजना के आधार पर सामाजिक नियमन ले लेता है।"[1]

---

१. फ्रेडरिक एंगेल्स, "ड्यूहरिंग मत खंडन," पृष्ठ ३८७-८८।

लेनिन ने बताया कि समाज के सभी सदस्यों की समृद्धि और उनके स
विकास के लिए पूंजीवादी समाज की जगह समाजवादी समाज की स्थापना आ
श्यक है। लेनिन ने इस बात पर बार-बार जोर दिया कि सिर्फ समाजवाद
वैज्ञानिक आधार पर सामाजिक उत्पादन और वितरण को काबू मे रखा जा स
है, जिससे लोगो का हित सधे और उनकी आवश्यकताओ की पूर्ति हो। परिण
स्वरूप सभी मेहनतकशो का जीवन जहा तक सम्भव हो उलझनो से परे, समृद्ध
सुखी हो।

लेनिन ने बताया कि जहा पुराने जमाने मे मनुष्य की प्रतिभा का इस्तेम
कुछ लोगो को टेक्नालाजी और संस्कृति के लाभ देने और साथ ही दूसरो को प्र
और विकास से वंचित रखने के लिए होता था, वहा समाजवाद के अन्तर्गत टेक
लाजी के सभी चमत्कारो और संस्कृति की सभी उपलब्धियो पर जनता का अ
कार होता है। समाजवाद की स्थापना के बाद अब फिर कभी मानव प्रति
उत्पीडन और शोषण का साधन नही बनेगी।

समाज के सभी सदस्यो की आवश्यकताओ की पूर्ति ही समाजवाद
अन्तर्गत उत्पादन का वस्तुगत रूप मे निर्धारित लक्ष्य होगी। समाजवाद के अ
र्गत उत्पादन का दूसरा कोई लक्ष्य हो ही नही सकता, क्योकि जहा समाजवा
समाज होता है वहा उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व नही होता अ
फलस्वरूप मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण के लिए कोई आर्थिक आधार नही हो
है। उत्पादन के सभी साधन और श्रम के फल उत्पादन के साधनो के समाजवा
स्वामित्व के आधार पर सगठित मेहनतकश जनता के अधिकार मे होते हैं। उत्पा
के साधनो और श्रम के फल की स्वामी मेहनतकश जनता के आर्थिक हित ही समा
वाद के अन्तर्गत उत्पादन की मुख्य प्रेरक शक्ति हैं। सामाजिक उत्पादन का आद
मनुष्य के फायदे के लिए ही प्रत्येक चीज का उत्पादन करना है। समाजवा
उत्पादन की इस मुख्य विशेषता की वैज्ञानिक अभिव्यक्ति **समाजवाद के बु
यादी आर्थिक नियम** के रूप मे होती है। इसका साराश यह है कि समाजवा
उत्पादन का प्रत्यक्ष लक्ष्य उच्चतम टेक्नालाजी पर आधारित सामाजिक उत्पा
के निरन्तर विकास और उन्नति के द्वारा सम्पूर्ण जनता की बराबर बढती हु
भौतिक और सास्कृतिक जरूरतो को सदा पूरी तरह सतुष्ट करना है।

समाजवाद का बुनियादी आर्थिक नियम समाजवादी उत्पादन के लक्ष्य क
बताता है और उसकी प्राप्ति के तरीकों पर भी प्रकाश डालता है। वह समाज
वादी समाज की चालक शक्ति को निर्धारित करता है तथा समाजवाद और पूंजी
वाद के मूल अन्तर को स्पष्ट करता है।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी और समाजवादी राज्य जनता की भौतिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ण संतुष्टि तथा उसके सम्पूर्ण विकास के मूल मानवीय लक्ष्य को प्राथमिकता देते हैं। अर्थव्यवस्था और समाजवादी संस्कृति को विकसित करने का कार्य इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए होता है।

इस लक्ष्य की पूर्ति किस चीज पर निर्भर है? उच्चतम टेक्नालाजी के आधार पर सामाजिक उत्पादन का निरन्तर विकास और सुधार ही इस लक्ष्य की पूर्ति की कुंजी है। और इसका मतलब यह है कि समाजवादी समाज मे प्रत्येक मेहनतकश को यथाशक्ति मेहनत करनी चाहिए जिससे लोगों की खुशहाली बराबर बढे। मेहनतकश यह समझते हैं कि सामाजिक उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि ही उनके जीवन-यापन के स्तर मे सुधार की गारटी होगी।

सामाजिक उत्पादन के विकास और सुधार के दौरान कम्युनिस्ट समाज की स्थापना के लिए भौतिक और आध्यात्मिक पूर्वस्थितिया बनती हैं।

फलस्वरूप समाजवाद का मूल आर्थिक नियम ही समाजवादी समाज के कम्युनिज्म की दिशा मे बढने तथा विकसित होने का नियम है।

समाजवादी देशो में मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियो द्वारा उठाये गये सभी कदमो का उद्देश्य लोगों के जीवन-यापन के स्तर मे बराबर सुधार करना है।

प्रत्येक सोवियत नागरिक कम्युनिस्ट पार्टी की नीति के नतीजो के प्रति जागरूक है। दिन प्रतिदिन सोवियत सघ मे जीवन बेहतर और अधिक समृद्ध होता जा रहा है। सोवियत सत्ताकाल मे सोवियत जनता के जीवन-यापन का स्तर क्रान्ति के पहले की रूसी मेहनतकश जनता की तुलना मे अतुलनीय रूप में ऊचा उठा है।

१९१३ की तुलना में सोवियत सघ की राष्ट्रीय आय १९६१ मे २५ गुनी थी। अमरीका की राष्ट्रीय आय इसी दौरान ३.६ गुनी बढ़ी। सोवियत सघ की प्रति व्यक्ति आय १९१३ और १९६१ के बीच १८ गुनी से भी अधिक बढी, जबकि अमरीका, ब्रिटेन और फ्रास (१९६०) में प्रति व्यक्ति आय क्रमशः सिर्फ २.९, १.८ और १ ६ गुनी बढी। क्रान्ति के पहले के दिनों की तुलना मे १९६२ मे सोवियत सघ में मेहनतकश जनता की वास्तविक आय ६ गुनी और किसानो की आय ७ गुनी बढ़ी।

जीवन-यापन के ऊचे स्तर की अभिव्यक्ति ऊची क्रय-शक्ति के द्वारा होती है।

सार्वजनिक उपभोग प्रतिवर्ष बढता जा रहा है। १९६३ मे जनता ने १९५३ की तुलना मे १८० प्रतिशत अधिक मास और मासजन्य खाद्य पदार्थ, ० प्रतिशत अधिक मक्खन और १२० प्रतिशत अधिक चीनी खरीदी।

भविष्य मे और भी अधिक राष्ट्रीय समृद्धि होगी। १९६१-८० के दौरान प्रति व्यक्ति वास्तविक आय ३.५ गुनी से भी अधिक बढेगी। पहले दशक मे औद्योगिक, पेशेवर और दफ्तर मे काम करने वालो की आय करीब दुगुनी हो जायेगी, कम वेतन पाने वाले लोगो की कमाई करीब तिगुनी हो जायेगी।

जनता की आय के बढने के साथ ही जनता के उपभोग का आम स्तर भी तेजी से बढेगा। सम्पूर्ण जनता उच्च कोटि और विविध प्रकार के खाद्य पदार्थों और उपभोक्ता वस्तुओ—वस्त्र, जूते, फर्नीचर, घरेलू वस्तुओ, सांस्कृतिक आवश्यकता की वस्तुओ, इत्यादि—की जरूरतो को पूरा करने मे सक्षम हो जायेगी।

बीस वर्षों मे आवास की समस्या का पूर्ण समाधान हो जायेगा। पहले दशक मे आवास का अभाव खत्म हो जायेगा। दूसरे दशक के दौरान प्रत्येक परिवार को आरामदेह घर मिल जायेगा जो स्वास्थ्यकर और सुसस्कृत निवास के उपयुक्त होगा। इसके लिए सोवियत सघ के कुल आवास स्थानो मे तिगुनी वृद्धि करनी होगी।

काम के घटो मे और भी कटौती होगी जिससे जनता के सास्कृतिक और तकनीकी स्तर मे तेजी से सुधार करने का अवसर प्राप्त होगा। लोगो को विश्राम के लिए और भी समय प्राप्त होगा। कारखानो और दफ्तरो मे काम करने वाले लोगो का कार्य-दिवस अब सात घटो का हो गया है। कुछ शाखाओ मे काम करने वालो को छ: घटे ही काम करने पडते हैं। १९७० के पहले ही अधिकाश मेहनतकशो के लिए छ: घटे का कार्य-दिवस या ३५ घटे का कार्य-सप्ताह लागू कर दिया जायेगा। जमीन के भीतर और खतरनाक स्थितियो वाले उद्यमो मे काम करने वालो के लिए ३० घटे का कार्य-सप्ताह होगा। १९७० और १९८० के बीच कार्य-सप्ताह और भी छोटा किया जायेगा।

साथ-साथ सभी मेहनतकश जनता की वार्षिक सवैतनिक छुट्टी तीन हफ्तों की होगी जो आगे चलकर एक महीने की हो जायेगी। बीस वर्षों मे सार्वजनिक खान-पान, छुट्टी की सुविधा, डाक्टरी देखभाल, इत्यादि सार्वजनिक आवश्यकताए पूर्णतया पूरी हो जायेंगी।

जनता की खुशहाली बढ़ाने के लिए कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा बताये गये कार्यों की पूर्ति के बाद सोवियत सघ पूजीवादी देशो की अपेक्षा उच्चतर जीवन-यापन का स्तर प्राप्त कर लेगा।

४. समाजवादी राज्य की आर्थिक भूमिका

उत्पादक शक्तियो का विकास और उत्पादन-सम्बधो मे सुधार अपने आप नही होते। समाजवादी निर्माण के हर चरण मे उत्पादन, वितरण और विनिमय

के संगठन में मार्क्सवाद-लेनिनवाद के निर्देशन में राज्य निर्णायक भूमिका अदा करता है।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर राज्य का नियंत्रण रहता है, इसीलिए राज्य देश के आर्थिक जीवन में निर्णायक भूमिका अदा करता है। समाजवादी देशों में उत्पादन के साधनों के अधिकांश (सोवियत संघ में ९० प्रतिशत) पर सम्पूर्ण जनता का अधिकार है। केन्द्रीय और स्थानीय दोनों स्तरों पर राज्य और उसके प्रतिनिधियों का उन पर नियंत्रण है। उत्पादन के शेष साधनों पर सहकारी उद्यमों का अधिकार है। किसी न किसी रूप में उनका नियंत्रण और नियोजन केन्द्र द्वारा होता है।

मानवजाति के इतिहास में समाजवादी राज्य मजदूरों का पहला राज्य है। यह राज्य भौतिक मूल्यों का सृजन करने वाली और अपने रचनात्मक कार्य द्वारा समाज के अस्तित्व और विकास की रक्षा करने वाली जनता के हितों को प्रतिबिम्बित करता है। समाजवादी राज्य आम मेहनतकश जनता के समर्थन और सक्रिय सहयोग से ही अपने सभी कार्य पूरे करता है।

दैनिक कार्यों में समाजवादी राज्य का निर्देशन सामाजिक विकास के नियमों के मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त द्वारा होता है। समाजवादी राज्य की आर्थिक नीति समाजवादी समाज के वस्तुगत विकास के वैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित रहती है। इस वैज्ञानिक विश्लेषण में न सिर्फ अतीत के परिणामों का सही मूल्यांकन होता है, बल्कि विकास की भावी प्रवृत्तियों का भी निर्धारण होता है।

आर्थिक विकास और सगठन, सास्कृतिक कार्य और सार्वजनिक शिक्षा समाजवादी राज्य के मुख्य कार्य हैं।

समाजवाद के आर्थिक नियमों के आधार पर समाजवादी राज्य अर्थव्यवस्था और संस्कृति के विकास के लिए योजनाएं बनाता है और उनकी सफल पूर्ति के लिए सभी मेहनतकश जनता को एकजुट कर उन्हे कार्यान्वित करता है। सरकार अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओ के विकास के पैमाने, गति और अनुपात तथा पूंजी विनियोगो के स्वरूप और मात्रा को निर्धारित करती है। वह वित्त और साख जुटाती है, राजकीय बजट तैयार करती है और उसकी कार्यान्विति की गारटी करती है, राष्ट्रीय आय का वितरण करती है और यह निर्णय करती है कि सचय और उपभोग मे राष्ट्रीय आय की कितनी मात्रा जानी चाहिए। राज्य श्रम की मात्रा और उपभोग की मात्रा का पक्का लेखा-जोखा रखता है और उनको नियंत्रित करता है। वह मजूरी की नीति का निर्धारण, वस्तु-उत्पादन का सगठन और

वस्तुओं की कीमतें निश्चित करना है तथा इसी तरह के अन्य कार्यों का भी सगठन करना है। राज्य कार्यकर्ताओं की ट्रेनिंग और शिक्षा का इन्तजाम करता है। वह उनको विभिन्न कार्यों मे लगाता है। वह प्रशासकीय यत्र की प्रत्येक कडी का निर्माण करता है।

समाजवादी राज्य का निर्देशन और सगठन करने वाली शक्ति मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी है। वह राज्य के सभी विभागो और मेहनतकश जनता के सगठनो (सोवियत ट्रेड यूनियनो, तरुण कम्युनिस्ट लीग, इत्यादि) के कार्यों का निर्देशन करती है। वह आर्थिक और राजनीतिक कार्यों की पूर्ति के लिए मजदूरो, किसानो और बुद्धिजीवियो को एकजुट करती है। वह जनता को शिक्षित करती है और उनमे कम्युनिस्ट चेतना का समावेश करती है।

इस प्रकार मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी के नेतृत्व मे समाजवादी राज्य महान कार्य सम्पादित करता है जिनमे देश के आर्थिक जीवन के सभी पहलू आ जाते हैं।

समाजवादी राज्य अर्थव्यवस्था का पथ-प्रदर्शन जनवादी केन्द्रीयता के सिद्धान्त के आधार पर करता है। आर्थिक क्षेत्र मे जनवादी केन्द्रीयता ही वह बुनियादी सिद्धान्त है जो अर्थव्यवस्था के नियोजित नेतृत्व और समाजवादी जनवाद को एक साथ मिलाता है और जो मेहनतकश जनता की पहल और क्रियाशीलता पर आधारित होता है।

जनवादी केन्द्रीयता के आधार पर अर्थव्यवस्था के सगठन का मतलब है कि केन्द्रीय निकाय सिर्फ मुख्य प्रश्नो के सम्बध मे ही नियोजित मार्ग-दर्शन प्रदान करें। केन्द्रीभूत प्रशासन के साथ स्थानीय पहल और आम मेहनतकशो के सृजनात्मक कार्यकलाप के अधिकतम विकास का मेल बैठाया जाता है। लेनिन ने लिखा कि जनवादी केन्द्रीयता से "आधारभूत एकता गडबड नही होती, बल्कि विस्तार विशिष्ट स्थानीय विशेषताओ, दृष्टिकोण के तरीको और नियत्रित करने के तरीको की दृष्टि से विविधता के कारण दृढ होती है।"[१]

अर्थव्यवस्था के सगठन और सास्कृतिक तथा शैक्षणिक कार्यों के अतिरिक्त समाजवादी राज्य अन्य कार्य भी करता है। वह देश की सुरक्षा और समाजवादी सम्पत्ति के बचाव का भी कार्य करता है।

समाजवादी विश्व व्यवस्था के उदय ने समाजवादी देशो की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियो के जिम्मे नये अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधो (समाजवादी देशो के बीच बिरादराना सम्बध) की स्थापना का भी कार्य सौंपा है। इस दृष्टि से समाजवादी

१. ब्ला. इ. लेनिन, "संकलित रचनाएं", खंड २, पृष्ठ ५६५।

...द्राय चरित्र ने समाजवादी राज्य पर एक सर्वथा नवीन उत्तरदायित्व ... *यह उत्तरदायित्व है अन्य देशों को समाजवादी निर्माण में सहायता* ।

जब पूरे पैमाने पर कम्युनिस्ट निर्माण होने लगता है, तब राज्य की आर्थिक ...काफी बढ़ जाती है। समाजवाद के भावी विकास, सुदृढ़ता और कम्युनिस्ट निर्माण के लिए समाजवादी राज्य एक उपकरण है।

वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाते हैं, जिनकी कीमतें चढ़ रही होती है ताकि वे अधिकतम मुनाफा कमा सकें।

किन्तु कोई भी पूजीपति निश्चित रूप से नही जानता कि किसी वस्तु विशेष की कितनी मात्रा मे जरूरत है। इस वजह से वस्तुए इतनी अधिक मात्रा मे उत्पन्न कर दी जाती हैं कि बाजार मे उनकी पूरी तरह से खपत नही हो पाती है। फालतू वस्तुओं को कोई नही खरीदता, इसलिए उनकी कीमतें गिरती हैं और उनके उत्पादन मे कटौती होती है। इसके बाद पूजी किसी दूसरी वस्तु के उत्पादन मे लगायी जाती है। इस तरह यह प्रक्रिया फिर दुहरायी जाती है।

एकीकृत योजना के अभाव का मतलब है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मे अनुपात अपने आप स्थापित हो जाते हैं। यह सतुलन अस्थायी होता है। सतुलन हमेशा गडबड होता रहता है। निस्सदेह इसका मतलब यह नही है कि विभिन्न शाखाओ और उद्यमो के बीच कोई तालमेल है ही नही। उत्पादन मे आवश्यक अनुपात सतुलन की अनगिनत गडबडियों और अत्युत्पादन के सकटों के बाद जाकर कही स्थापित होता है।

इसलिए निष्कर्ष यह है कि उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व वस्तु-उत्पादको को एक-दूसरे से अलग कर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के नियोजन की कोई सम्भावना नही छोड़ता। इसका मतलब है कि पूजीवाद के अन्तर्गत जानबूझ कर कोई सतुलन नही स्थापित किया जा सकता।

समाजवाद मे स्थिति बिलकुल भिन्न होती है। उत्पादन के समाजीकरण और समाजवादी स्वामित्व की व्यवस्था के परिणामस्वरूप समाज, जैसा कि लेनिन ने कहा, "एक दफ्तर, एक कारखाना" के रूप में बदल जाता है। सामाजिक स्वामित्व उत्पादन की अराजकता और स्वतःप्रवृत्ति को खत्म कर देता है। उत्पादन का विकास सम्पूर्ण जनता के हित मे होता है। ऐसा होने पर राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था सिर्फ नियोजित रूप से ही विकसित हो सकती है। मजदूर अपने राज्य के माध्यम से समाजवाद के अन्तर्गत समाज की सभी आवश्यकताओ, उत्पादक स्रोतो और जनहित मे होने वाले प्रत्यक्ष उत्पादन का लेखा-जोखा पहले ही कर लेते हैं। निश्चित लक्ष्यों को ध्यान मे रखकर समाज आवश्यक अनुपात स्थापित करता है और उसे निरन्तर जागरूक होकर बनाये रखता है।

किन्तु लोग किसी भी तरह के अनुपात के सम्बध मे यों ही निर्णय नही कर लेते, बल्कि वे निश्चित आर्थिक स्थितियो को ध्यान मे रखकर ही आर्थिक नीति बनाते हैं। उदाहरण के लिए, उपभोक्ता वस्तुओ को उत्पन्न करने वाला उद्योग, उत्पादन के साधनों को निर्मित करने वाले उद्योग में द्रुत गति से बिना विकास किये, एकांगी रूप से विकसित नही होना चाहिए। अगर ऐसा नही होता

है तो विकसना ही हाथ लगेगा। उदाहरण के लिए, यह सम्भव है कि हलके और खाद्य उद्योगों के काम आने वाले कृषिगत कच्चे माल बहुत बड़ी मात्रा में पैदा किये जायें। अगर इनको उपभोक्ता वस्तुओं के रूप में परिवर्तित करने के लिए बड़ी मात्रा में मशीन और विद्युत शक्ति उपलब्ध नहीं हैं तो यह कच्चा माल भी बेकार पूंजी होगा। इसलिए उपभोक्ता वस्तुओं की सामाजिक माग को पूरा करने के लिए उत्पादन के साधनों का उत्पादन और भी तेज गति से विकसित होना चाहिए। स्पष्ट है कि हलके और खाद्य पदार्थ उत्पन्न करने वाले उद्योगों के विकास की दर इंजीनियरिंग और विद्युत शक्ति का पर्याप्त विकास करके ही तेज करनी चाहिए। उनके विकास की दर बिना सोचे-समझे नहीं निश्चित होनी चाहिए।

सामाजिक उत्पादन के विभाग १ और २ के विकास की दरों के बीच निश्चित अनुपात होना चाहिए। उदाहरण के लिए, बड़ी संख्या में ट्रैक्टर, मोटर-गाड़ियां, हवाई जहाज और आन्तरिक वहन इंजन वाली अन्य मशीनें बनायी जा सकती हैं, लेकिन अगर उचित मात्रा में तरल ईंधन का उत्पादन न हो तो ये सब मशीनें बेकार होंगी। उनको बनाने के लिए लगाया गया श्रम मूल्यहीन होगा। कहा जा सकता है कि उत्पादन के अनुपलब्ध साधनों को अन्य देशों से खरीदा जा सकता है। किन्तु पहली बात यह है कि उनको खरीदना हर समय सम्भव नहीं होता। यह अच्छा भी नहीं है कि जिन वस्तुओं का उत्पादन देश के अन्दर हो सकता है, उन्हें बाहर से खरीदा जाये। अन्त में, अगर हम विदेशी बाजार को भी ले लें तो भी उत्पादन की विभिन्न शाखाओं के बीच अनुपात निश्चित करने का सवाल रहता ही है।

आर्थिक विकास की प्रक्रियाओं के इस वस्तुगत सम्बंध के कारण, मनुष्य की इच्छाओं से परे, निश्चित अनुपातों की नियोजित स्थापना आवश्यक हो जाती है। यही वस्तुगत सम्बंध राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नियोजित सानुपातिक विकास के नियम के रूप में अभिव्यक्त होता है।

नियोजित, सानुपातिक आर्थिक विकास का नियम अर्थव्यवस्था के समाज द्वारा पथ-प्रदर्शन पर जोर देता है जिससे अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखाओं वगैरह में तालमेल बैठाया जा सके और वे सब एक आर्थिक इकाई बन सकें। इसलिए उनके विकास के क्रम में अनुपात रखना चाहिए और भौतिक तथा श्रम-साधनों का विवेकपूर्ण और कुशलता के साथ प्रयोग होना चाहिए।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नियोजित, सानुपातिक विकास का नियम लागू कर उत्पादन के साधनों और श्रम-भंडार को सही रूप से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के बीच बांटा जा सकता है। इस प्रकार उनका विवेकपूर्ण प्रयोग हो सकता है, सभी शाखाओं और उद्यमों के कार्यों के बीच पारस्परिक तालमेल स्थापित

किया जा सकता है। उत्पादन, वितरण और विनिमय के विकास के लिए आवश्यक सम्बन्ध कायम किये जा सकते हैं।

नियोजित, सानुपातिक विकास का नियम सामाजिक उत्पादन की सभी शाखाओं के विकास में निरन्तर अनुपात बनाये रखने की वस्तुगत आवश्यकता पर जोर देता है। यह नियम अन्य सब आर्थिक नियमों, खासकर मूल आर्थिक नियम से सम्बद्ध है।

जनता की निरन्तर बढ़ती हुई भौतिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं को अच्छी तरह से सन्तुष्ट करने के लिए समाजवादी उत्पादन में निरन्तर तेजी से वृद्धि जरूरी है और यही जरूरत राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत अनुपातों का निर्धारण करती है।

प्रत्येक चरण में उपर्युक्त लक्ष्य की पूर्ति उत्पादक शक्तियों के विकास के स्तर, भौतिक साधनों की उपलब्धि और समाजवादी देश की आन्तरिक और बाह्य स्थिति पर निर्भर करती है। इन तत्वों को ध्यान में रखकर ही अर्थव्यवस्था में नियोजित, सानुपातिक विकास के नियम के आधार पर निश्चित अनुपात निर्धारित किये जाते हैं।

समाजवादी स्वामित्व और अर्थव्यवस्था के समाजवादी क्षेत्र की स्थापना के बाद से ही राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नियोजित, सानुपातिक विकास का नियम समाजवादी देशों में कार्य कर रहा है। किन्तु प्रारम्भिक काल में इस नियम का परिचालन सीमित था, क्योंकि उस समय समाजवादी देशों में गैर-समाजवादी आर्थिक क्षेत्र भी समाजवादी आर्थिक क्षेत्र के साथ-साथ मौजूद थे। समाजवादी क्षेत्र के विकसित और ताकतवर होने के साथ ही इस नियम के परिचालन का दायरा भी बढ़ता है। आर्थिक जीवन में समाजवादी उद्यमों का बोलबाला हो जाने के बाद राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नियोजित, सानुपातिक विकास का नियम पूरी तरह कार्य करता है।

एक देश के चौखटे से बाहर समाजवाद के प्रसार के कारण विश्व समाजवादी व्यवस्था का जन्म हुआ। नियोजित, सानुपातिक विकास का नियम समाजवादी देशों के आपसी सम्बन्धों पर भी लागू होने लगा।

समाजवादी अर्थव्यवस्था में अनुपात

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नियोजित, सानुपातिक विकास के नियम को लागू कर समाजवादी राज्य जानबूझ कर नियोजित रूप से सामाजिक उत्पादन के विभिन्न अन्तरसम्बद्ध और अन्योन्याश्रित आर्थिक कड़ियों के बीच एक स्थायी सतुलन बनाये रखता है।

—

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए उस प्रकार का अनुपात होना चाहिए, जो अन्य अनुपातों या यों कहे कि सामाजिक उत्पादन की सम्पूर्ण दिशा को निर्धारित करे। संक्षेप में वह है **उत्पादन के साधन के उत्पादन और उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन का पारस्परिक अनुपात** (यानी सामाजिक उत्पादन के विभाग १ और विभाग २ का अनुपात)। समाजवाद और कम्युनिज्म के निर्माण के लिए उत्पादन के साधनों के विकास को प्राथमिकता देनी चाहिए।

उत्पादक शक्तियों के विकास, उत्पादन के तकनीकी स्तर को ऊंचा उठाने के लिए, श्रम-उत्पादकता के विकास को बढ़ावा देने और श्रम को हलका बनाने, देश की प्रतिरक्षा शक्ति को मजबूत करने और उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने एवं राष्ट्र के जीवन में तरक्की के लिए उत्पादन के साधनों की आवश्यकता है।

नियोजित आर्थिक विकास के लिए **उद्योग और कृषि के बीच सही अनुपात स्थापित करना भी कम जरूरी नहीं है।** इन शाखाओं के विकास में सही अनुपात स्थापित होने पर ही उद्योग अपनी प्रमुख भूमिका अदा कर सकता है और कृषि उत्पादन का पर्याप्त विकास हो सकता है, जिससे शहरी जनसंख्या को अपेक्षित खाद्यान्न और हल्के उद्योग को कच्चे माल मिल सकें। **उद्योग और कृषि के भीतर भी विभिन्न शाखाओं के बीच सही अनुपात स्थापित होना चाहिए।**

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में ये मूल सानुपातिक सम्बंध आवश्यक हैं उत्पादन और उपभोग, **संचय और उपभोग, जनता की बढ़ती हुई नकदी आय और खुदरा व्यापार के विकास तथा देश के विभिन्न क्षेत्रों के बीच,** आदि।

इस तरह, बड़ी संख्या में आर्थिक अनुपात स्थापित किये जाते हैं। समाजवादी राज्य का यह महत्वपूर्ण कार्य है कि वह इन अनुपातों को निरन्तर बनाये रखे।

अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखाओं के बीच अनुपात मनमाने ढंग या किसी व्यक्ति विशेष की इच्छा-अनिच्छा के आधार पर नहीं, बल्कि निश्चित वस्तुगत नियमों के आधार पर तय होते हैं। इन अनुपातों को बिगाड़ने पर अर्थव्यवस्था में गड़बड़ियां आ जाती हैं।

सामाजिक उत्पादन के विभिन्न हिस्सों के बीच सही अनुपात कई चीजों पर निर्भर होता है। **उत्पादक शक्तियों तथा तकनीकी प्रगति के विकास के वर्तमान स्तर, श्रम-उत्पादकता, भौतिक साधनों की मात्रा, समाजवादी देश विशेष की वर्तमान आन्तरिक और बाह्य स्थितियों,** इत्यादि को ध्यान में रखकर ही अर्थव्यवस्था के भीतर सही सानुपातिक सम्बंध स्थापित किये जाते हैं। ये सम्बंध सदा के लिए निश्चित नहीं होते, बल्कि इनमें परिवर्तन और सुधार होता रहता है

किया जा सकता है। उत्पादन, वितरण और विनिमय के विकास के लिए आवश्य
सम्बध कायम किये जा सकते हैं।

नियोजित, सानुपातिक विकास का नियम सामाजिक उत्पादन की सभी शाखाओं के विकास मे निरन्तर अनुपात बनाये रखने की वस्तुगत आवश्यकता पर जोर देता है। यह नियम अन्य सब आर्थिक नियमों, खासकर मूल आर्थिक नियम से सम्बद्ध है।

जनता की दिनोदिन बढ़ती हुई भौतिक एव सास्कृतिक आवश्यकताओं को अच्छी तरह से सतुष्ट करने के लिए समाजवादी उत्पादन में निरन्तर तेजी से वृद्धि जरूरी है और यही जरूरत राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत अनुपातों का निर्धारण करती है।

प्रत्येक चरण मे उपर्युक्त लक्ष्य की पूर्ति उत्पादक शक्तियों के विकास के स्तर, भौतिक साधनो की उपलब्धि और समाजवादी देश की आन्तरिक और बाह्य स्थिति पर निर्भर करती है। इन तत्वो को ध्यान मे रखकर ही अर्थव्यवस्था मे नियोजित, सानुपातिक विकास के नियम के आधार पर निश्चित अनुपात निर्धारित किये जाते हैं।

समाजवादी स्वामित्व और अर्थव्यवस्था के समाजवादी क्षेत्र की स्थापना के बाद से ही राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नियोजित, सानुपातिक विकास का नियम समाजवादी देशों मे कार्य कर रहा है। किन्तु प्रारम्भिक काल मे इस नियम का परिचालन सीमित था, क्योंकि उस समय समाजवादी देशों मे गैर-समाजवादी आर्थिक क्षेत्र भी समाजवादी आर्थिक क्षेत्र के साथ-साथ मौजूद थे। समाजवादी क्षेत्र के विकसित और ताकतवर होने के साथ ही इस नियम के परिचालन का [illegible]

[illegible]

कार्य करता है।

एक देश के चौखटे से बाहर समाजवाद के प्रसार के कारण विश्व समाजवादी व्यवस्था का जन्म हुआ। नियोजित, सानुपातिक विकास का नियम समाजवादी देशों के आपसी सम्बधो पर भी लागू होने लगा।

समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मे अनुपात

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नियोजित, सानुपातिक विकास के नियम को लागू कर समाजवादी राज्य जानबूझ कर नियोजित रूप से सामाजिक उत्पादन के विभिन्न अन्तस्सम्बद्ध और अन्योन्याश्रित आर्थिक कड़ियों के बीच एक स्थायी सतुलन बनाये रखता है।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए इस प्रकार का अनुपात होना चाहिए, जो अन्य अनुपातों का यों कहें कि सामाजिक उत्पादन की सम्पूर्ण दिशा का निर्धारित करे। सबसे पहले यह है उत्पादन के साधन के उत्पादन और उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन का पारस्परिक अनुपात (यानी सामाजिक उत्पादन के विभाग 1 और विभाग 2 का अनुपात)। समाजवाद और कम्युनिज्म के निर्माण के लिए उत्पादन के साधनों के विकास को प्राथमिकता देनी चाहिए।

उत्पादक शक्तियों के विकास, उत्पादन के तकनीकी स्तर को ऊंचा उठाने के लिए, श्रम-उत्पादकता के विकास को बढ़ावा देने और श्रम को हल्का बनाने, देश की प्रतिरक्षा शक्ति को मजबूत करने और उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने एवं राष्ट्र के जीवन में तरक्की के लिए उत्पादन के साधनों की आवश्यकता है।

नियोजित आर्थिक विकास के लिए **उद्योग और कृषि के बीच सही अनुपात स्थापित करना भी कम जरूरी नहीं है।** इन शाखाओं के विकास में सही अनुपात स्थापित होने पर ही उद्योग अपनी प्रमुख भूमिका अदा कर सकता है और कृषि उत्पादन का पर्याप्त विकास हो सकता है, जिससे शहरी जनसंख्या को अपेक्षित खाद्यान्न और हल्के उद्योग को कच्चे माल मिल सकें। **उद्योग और कृषि के भीतर भी विभिन्न शाखाओं के बीच सही अनुपात स्थापित होना चाहिए।**

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में ये मूल आनुपातिक सम्बंध आवश्यक हैं: **उत्पादन और उपभोग, संचय और उपभोग, जनता की बढ़ती हुई नकदी आय और खुदरा व्यापार के विकास तथा देश के विभिन्न क्षेत्रों के बीच, आदि।**

इस तरह, बड़ी संख्या में आर्थिक अनुपात स्थापित किये जाते हैं। समाजवादी राज्य का यह महत्वपूर्ण कार्य है कि वह इन अनुपातों को निरन्तर बनाये रखे।

अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखाओं के बीच अनुपात मनमाने ढंग या किसी व्यक्ति विशेष की इच्छा-अनिच्छा के आधार पर नहीं, बल्कि निश्चित वस्तुगत नियमों के आधार पर तय होते हैं। इन अनुपातों को बिगाड़ने पर अर्थव्यवस्था में गड़बड़ियां आ जाती हैं।

सामाजिक उत्पादन के विभिन्न हिस्सों के बीच सही अनुपात कई चीजों पर निर्भर होता है। **उत्पादक शक्तियों तथा तकनीकी प्रगति के विकास के वर्तमान स्तर, श्रम-उत्पादकता, भौतिक साधनों की मात्रा, समाजवादी देश विशेष की वर्तमान आन्तरिक और बाह्य स्थितियों,** इत्यादि को ध्यान में रखकर ही अर्थव्यवस्था के भीतर सही आनुपातिक सम्बंध स्थापित किये जाते हैं। ये सम्बंध सदा के लिए निश्चित नहीं होते, बल्कि इनमें परिवर्तन और सुधार होता रहता है

सोवियत संघ में कम्युनिज्म के पूरे पैमाने पर निर्माण के दौरान भा
उद्योग के त्वरित विकास के साथ-साथ उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन के का
विस्तार की सम्भावना पैदा हो गयी है। जब सोवियत संघ में भारी उद्योग
निर्माण हो ही रहा था, उस समय राज्य को साधन-बटन में उत्पादन के साध
उत्पादित करने वाले उद्यमो के विकास को प्राथमिकता देनी पडी। हलके और खा
उद्योग, कृषि, आवास और जन-कल्याण सेवाओं के लिए उत्पादन के साधन उत्पादि
करने वाले उद्यमो मे विनियोग पर रोक लगानी पडी। अब इन उद्यमो मे विनियो
काफी मात्रा मे बढ़ाये जा सकते है। इसका मतलब है कि जनता के उपभोग की
मात्रा काफी तेजी से बढ़ेगी। अत. १९६० की तुलना में १९८० में पहले प्रकार
उद्यमो मे उत्पादन छ गुना बढ़ेगा और दूसरे प्रकार के उद्यमो के उत्पादन
१३ गुनी वृद्धि होगी।

इसी के अनुकूल उत्पादन के साधनों और उपभोक्ता वस्तुओ के उत्पाद
के विकास की दरो को एक-दूसरे के नजदीक रखने की योजना बनायी गयी है
१९२९-४० के दौरान उत्पादन के साधनों के उत्पादन की वृद्धि की दर उपभोक्त
वस्तुओ के उत्पादन की वृद्धि की दर से ७० फीसदी अधिक थी, लेकिन १९६१-८०
के दौरान यह अन्तर सिर्फ २० प्रतिशत रहेगा।

इन दो दशको (१९६१-८०) के दौरान अनुपातो मे काफी परिवर्तन
होगा, क्योकि सोवियत अर्थव्यवस्था की कुछ शाखाए अन्य शाखाओ की अपेक्षा
अधिक तेजी से विकसित होगी। इन बीस वर्षों के दौरान औद्योगिक उत्पादन मे
औसतन ५२० से ५४० प्रतिशत की वृद्धि होने पर रसायन उद्योग अपना उत्पादन
१७ गुना, गैस निष्कासन अपना उत्पादन १४ गुना, विद्युत शक्ति अपना उत्पादन
९-१० गुना, इजीनियरिंग और धातुकर्म उद्योग अपना उत्पादन १०-११ गुना
बढायेंगे।

इन अनुपातों को कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत जनता के मुख्य उद्देश्यो—
कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार का निर्माण—की पूर्ति के लिए ही
निश्चित किया गया है।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नियोजित, सानुपातिक विकास के लिए उत्पादक
शक्तियो का सानुपातिक वितरण भी आवश्यक है। सामाजिक श्रम की उत्पादकता
में वृद्धि, लोगो की खुशहाली मे बढोतरी तथा समाजवादी राज्य की आर्थिक और
प्रतिरक्षा क्षमताओ की सुदृढता के लिए यह वितरण नियोजित रूप से किया
जाता है।

समाजवाद मे उत्पादन की स्थितिया इन मुख्य सिद्धान्तो पर निर्भर होती
हैं: उद्योग की स्थापना कच्चे माल और शक्ति के स्रोतो और तैयार माल के

ोग के क्षेत्र के निकट होनी चाहिए। इस तरह माल का परिवहन आसान हो
ा। आर्थिक क्षेत्रों के बीच श्रम का नियोजित विभाजन हो सकेगा। साथ ही
क क्षेत्र में व्यापक आर्थिक विकास होगा और सभी राष्ट्रीय जनतंत्रों की अर्थ
व्यवस्थाएं स्थायी तरक्की करेंगी। कौमों के बीच दोस्ती और सहयोग बढ़ाने का
आर्थिक आधार है।

सोवियत सत्ताकाल में उत्पादक शक्तियों के वितरण में आमूल परिवर्तन
हैं। १९२१ में लेनिन ने लिखा "सोवियत संघ के नक्शे को देखें। वोलोग्दा
तर, रोस्तोव-आन-दोन और सारातोव के दक्षिण-पूर्व, ओरेनबर्ग और ओम्स्क
क्षिण और तोम्स्क के उत्तर असीमित क्षेत्र पड़े हैं, जहां बीसियों बड़े सभ्य राज्य
सकते हैं। इन सभी भागों में पितृसत्तावाद, अर्द्ध-जंगलीपन और वास्तविक
ंगलीपन का बोलबाला है।"[1]

तब से चालीस वर्ष बीत गये हैं। आज उन क्षेत्रों की सूरत क्या है?
ोग्दा के पास चेरेपोवेत्स लोहा और इस्पात कारखाना बन चुका है। कोला
द्वीप में *अब खान उद्यम, जहाज बनाने का कारखाना और कागज तथा*
सेलुलोज कम्बाइनें हैं। देश के पूर्वी भाग में लोहा और इस्पात तथा इंजीनियरिंग
बड़े कारखाने, बड़े पैमाने के रासायनिक और खाद्य उद्योग और विशाल अन्न
म हैं। लाखों एकड़ बेकार जमीन पर खेती शुरू हो गयी है। तोम्स्क के उत्तर
येनीसी नदी के किनारे एक बड़ा बन्दरगाह दुदीन्का, लकड़ी उद्योग का केन्द्र
ारका और तांबा एवं निकेल का केन्द्र नोरील्स्क बने हैं।

१९६० में, देश का पूर्वी क्षेत्र देश के कुल औद्योगिक उत्पादन का करीब
-तिहाई, कुल तेल उत्पादन का करीब ३० प्रतिशत, इस्पात, बेल्लित धातु और
यले के कुल उत्पादन का करीब-करीब आधा और कुल विद्युत शक्ति का
० प्रतिशत से भी अधिक उत्पन्न करता था।

कृषि-उत्पादन के वितरण में बड़े परिवर्तन हुए हैं। पहले के पिछड़े हुए
ग, मिसाल के तौर पर, साइबेरिया और कजाखस्तान बिक्री के लिए सस्य
प्त करने के मुख्य स्रोत हैं।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २२वीं कांग्रेस ने उत्पादक शक्तियों
वितरण में सुधार के लिए एक विस्तृत कार्यक्रम बनाया। अगले बीस वर्षों के
रान साइबेरिया और कजाखस्तान में सस्ते कोयले के भंडार का अंगारा और
नीसी नदियों की जल-शक्ति का इस्तेमाल करने वाले नये बिजलीघर तथा बिजली
संचालित होने वाले उद्योगों के बड़े केन्द्र बनेंगे। कच्ची धातु, कोयले और तेल
नये समृद्ध भंडार विकसित होंगे। मशीन बनाने वाले कई बड़े केन्द्र बनेंगे।

[1] व्ला० इ० लेनिन, "संकलित रचनाएं", खंड ३, पृष्ठ ५५१।

वोल्गा के पास के क्षेत्रों, यूराल्स, उत्तर काकेशस और मध्य एशिया में तेल, गैस और रासायनिक उद्योगों का तेजी से प्रसार होगा और कच्ची धातु के भंडार विकसित होंगे।

यूराल्स और यूक्रेन में पुराने धातु केन्द्रों के विकास और साइबेरिया में देश के तीसरे धातु केन्द्र के निर्माण की समाप्ति के साथ-साथ सोवियत संघ के मध्य यूरोपीय भाग और कजाखस्तान में दो नये धातु केन्द्रों की स्थापना की योजना है।

इनके अतिरिक्त सोवियत संघ के यूरोपीय भाग की कुछ उत्तरी नदियों की धाराओं को वोल्गा बेसिन की ओर मोड़ने, केन्द्रीय कजाखस्तान, सेलिन्नी क्षेत्र, दोनेत्स बेसिन और यूराल्स को पानी पहुँचाने, मध्य एशिया, वोल्गा, द्नीपर, द्नीस्तर और दान के किनारे नियन्त्रित जलागार बनाने तथा बड़े पैमाने पर सिंचाई व्यवस्था के विकास और सुधार के लिए दीर्घकालीन योजनाएं बनी हैं, जिनके अन्तर्गत बड़े पैमाने पर काम शुरू होगा।

समाजवाद के अन्तर्गत उत्पादन व्यवस्था होने पर प्राकृतिक साधनों, पूंजी विनियोगों और मानव शक्ति के साधनों का उचित उपयोग हो सकेगा।

इसका मतलब है कि सामाजिक श्रम की उत्पादकता बढ़ेगी, उत्पादन की वृद्धि की दर तेज होगी और लोगों की आवश्यकताओं की सतुष्टि अच्छी तरह हो सकेगी।

२. समाजवादी नियोजन

समाजवादी नियोजन के सिद्धान्त

नियोजन शब्द का मतलब समाजवादी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए योजनाएं बनाने और एक राजकीय योजना के आधार पर उत्पादन के सगठन से है।

आर्थिक नियोजन मुख्य रूप से समाजवादी राज्य के आर्थिक और सागठनिक कार्यों का ब्योरा है।

सम्पूर्ण राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को नियोजित करते समय राज्य समाजवादी आर्थिक नियमों के आधार पर आगे बढ़ता है और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नियोजित, सानुपातिक विकास के नियम को जानबूझ कर व्यवहार में लाता है और मुख्य रूप से इसी पर वह निर्भर रहता है।

समाजवादी नियोजन में मुख्य कार्य अनुपातों को तय करना है, जिनके अनुसार राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की शाखाएं विकसित हो सकें और सामाजिक उत्पादन की निरन्तर तेज प्रगति और उन्नति हो सके, फलस्वरूप लोगों की खुशहाली बढ़े। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में कहा गया है. "यह

आवश्यक है कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था ठीक आनुपातिक आधार पर विकसित हो और आर्थिक असन्तुलन समय रहते सुधारे जायें, आर्थिक विकास की स्थायी उच्च दर के लिए पर्याप्त आर्थिक आरक्षित कोष हो तथा उद्यमों का निर्बाध परिचालन एवं लोगों की खुशहाली में लगातार वृद्धि हो।"[1] सामाजिक विकास की जरूरतों को ध्यान में रखकर समाजवादी राज्य आर्थिक योजनाएं बनाता है। सम्पूर्ण समाज के पैमाने पर उत्पादन, वितरण और विनिमय को नियोजित ढंग से संगठित करता है। राज्य भौतिक, श्रम और वित्तीय साधनों का वितरण करता है, उत्पादन और पूंजी निर्माण की मात्रा और ढांचे का निर्धारण करता है, नयी टेक्नालाजी के प्रयोग पर आधारित श्रम-उत्पादकता की दर निश्चित करता है और देश के आन्तरिक और बाह्य वस्तु आवर्त्त की मात्रा और ढांचे को निर्धारित करता है। राज्य ही राजकीय या सहकारी व्यापार के लिए वस्तुओं की कीमतें निश्चित करता है और मजदूरों और अन्य काम पर लगे लोगों की मजूरी का स्तर निर्धारित करता है।

कम्युनिस्ट पार्टी की कांग्रेसों के निर्णयों के आधार पर ही नियोजन का संगठन होता है और यह निर्धारित होता है कि एक लम्बे समय तक समाजवादी समाज कैसे विकसित होगा।

सोवियत राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की प्रत्येक योजना पार्टी की नीति का ही मूर्त रूप है। पार्टी की इस नीति का उद्देश्य कम्युनिज्म की स्थापना है। इस प्रकार आर्थिक कार्यों की पूर्ति के लिए पार्टी और राज्य का दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की योजनाएं न तो भविष्यवाणियां हैं और न सिर्फ अन्दाज मात्र, बल्कि निश्चित अवधियों के लिए मूर्त योजनाएं हैं। चूंकि राजकीय योजनाओं में आर्थिक और सांस्कृतिक निर्माण के तात्कालिक कार्य शामिल होते हैं, इसलिए उनकी पूर्ति अत्यन्त आवश्यक है। राष्ट्रीय आर्थिक योजना पर मेहनतकश लोगों द्वारा विचार कर लेने के बाद उसे उच्च राजकीय समिति के सामने रखा जाता है। राजकीय समिति की स्वीकृति के बाद वह कानून का रूप धारण कर लेती है और उसकी कार्यान्विति के लिए सब लोग जिम्मेदार हो जाते हैं।

समाजवादी नियोजन का यह मुख्य सिद्धान्त है कि योजनाएं आदेश के रूप में मानी जायें और उनके कार्यान्वयन के लिए सब लोग जिम्मेदार हों। ऐसा न होने पर नियोजन का कोई अर्थ ही नहीं होगा। अगर राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की कोई शाखा, जैसे लकड़ी उद्योग, योजना को कार्यान्वित करने में असफल रहती है, तो उन सभी शाखाओं में, जिनमें योजना के अन्तर्गत निश्चित मात्रा में चीरी हुई लकड़ी दी जानी चाहिए, योजना के लक्ष्य पूरे नहीं हो पाते। इसीलिए समाजवादी देशों में योजना की सभी जरूरतों को पूरा करना आवश्यक है।

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ५३४।

भौतिक उत्पादन की सभी शाखाओं मे नियोजित, सानुपातिक विकास के लिए आवश्यक है कि सभी उद्यमों और उद्योगों की योजनाओं को एक समन्वित रूप दिया जाये। राज्य का नियोजित मार्ग-दर्शन सामूहिक फार्मों और सहकारी समितियो के अतिरिक्त राजकीय उद्यमो को भी मिलता है। इसका यह मतलब नही है कि राजकीय नियोजन समितिया प्रत्येक सामूहिक फार्म के लिए योजनाए बनाती हैं। प्रत्येक उद्यम निर्धारित सामान्य राजकीय लक्ष्यो के आधार पर अपनी योजना बनाता है। राजकीय उद्योग के उद्यम विशेषो, सामूहिक और राजकीय फार्मों की योजनाओ पर पहले स्थानीय तौर पर विचार होता है और फिर उन्हे केन्द्रीय नियोजन समितियो के सामने रखा जाता है। वहा उन्हें एक समन्वित राष्ट्रीय आर्थिक योजना का रूप दिया जाता है।

केन्द्रीय मार्ग-दर्शन और स्थानीय पहल का सम्मिलित रूप ही नियोजन मे जनवादी केन्द्रीयता का सिद्धान्त है।

आर्थिक नेतृत्व के जनवादी तरीको के विकास के साथ नियोजन हर साल सुसगठित होता जाता है। सोवियत सघ में प्रबन्ध कार्य और आर्थिक नियोजन के पुनर्निर्माण के फलस्वरूप अत्यधिक केन्द्रीयता समाप्त हो गयी और सब जनतः आर्थिक क्षेत्रों, प्रदेशों, उद्यमों और निर्माण योजनाओं की भूमिका योजना निर्माण मे बढी। सामूहिक फार्मों को अब कृषि उत्पादन के सगठन और नियोज के लिए काफी स्वतन्त्रता प्राप्त है। उनमे कृषि प्रबन्ध की नयी व्यवस्था भी अपनाय गयी है। पार्टी नियोजन की गलतियो को सामने लाती है और उनकी पूरी आल चना करती है। वह पुराने, दकियानूसी और प्रगति मे बाधा डालने वाले तत्वो व उन्मूलन करती है। सितम्बर १९६५ मे सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी क केन्द्रीय समिति के पूर्णाधिवेशन मे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नियोजन मे सुधार लाने की समस्या पर विचार हुआ। अब कार्यों को केन्द्रीय नियोजन विभागो के बीच स्पष्ट तौर पर बाटा जा रहा है और उनका पूर्ण सशोधन भी किया जा रहा है।

एक महीने, तीन महीने या एक साल की चालू योजनाओ और पाच, सात या बीस साल की दीर्घकालीन योजनाओ मे अन्तर है। लेनिन ने बताया कि बिना कई सालो के लिए योजनाए बनाये अर्थव्यवस्था विकसित नही हो सकती। दीर्घकालीन योजनाए कई वर्षो के लिए आर्थिक विकास की मुख्य दिशाए निर्धारित करती हैं और चालू योजनाए अल्पकाल के लिए मूर्त कार्यक्रम का समूह होती हैं। दीर्घकालीन योजनाए बडे सामाजिक-आर्थिक कार्यों का हल निकालती है।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए पहली दीर्घकालीन योजना रूस में बिजली लगाने की राजकीय योजना (गोयलरो योजना) थी। इसे १९२० में लेनिन की पहल के फलस्वरूप और उन्ही के निर्देशन मे तैयार किया गया। योजना

ारा निर्धारित मुख्य कार्य राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को विद्युतीकरण के आधार पर नियादी रूप से पुनर्निर्मित करना और समाजवाद के भौतिक आधार—बड़े पैमाने ा मशीन उद्योग—को विकसित करना था। १६२६ के बाद दीर्घकालीन नियो- ान ने पचवर्षीय योजनाओ का रूप ले लिया। सप्तवर्षीय योजना (१६५६-६५) ौर बीस वर्षीय आर्थिक विकास योजना (१६६१-८०) के लिए साधारण दीर्घ- ालीन योजनाएं सोवियत सघ मे कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार ि निर्माण का कार्यक्रम हैं।

दीर्घकालीन योजनाओ मे सिर्फ अत्यन्त सामान्य रूपरेखाए और निर्देश ही होते हैं। उन्हे चालू योजनाओ मे मूर्त रूप दिया जाता है। चालू योजना (मासिक, त्रैमासिक, वार्षिक) और दीर्घकालीन योजना का समन्वय भ समाजवादी नियोजन का एक सिद्धान्त है। दीर्घकालीन और चालू योजनाओं के सही सयोजन से नियोजन मे अविच्छिन्नता आती है और भावी योजना क्रमिक रूप से चलती रहती है। उद्यमो को नियमित रूप से वित्तीय साधन प्राप्त होते रहते हैं। कच्चे माल, तकनीकी उपकरण, इत्यादि की पूर्ति भी होती रहती है।

कोई भी योजना तब तक नही बन सकती, जब तक हम उन आर्थिक कड़ियों को नही जान लें जिन्हे विकास के लिए प्राथमिकता देनी चाहिए। सभी प्रकार के नियोजन मे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख शाखाओ का विकास शामिल रहता है। उनके विकास की दर अन्य शाखाओ के विकास की दर को निर्धारित करती है। उदाहरण के लिए, वर्तमान काल मे पैमाना और महत्व की दृष्टि से रासायनिक उद्योग उसी तरह की प्रगतिशील प्रवृत्ति है क्योकि यह उद्योग अत्यन्त कुशलता के साथ उन बहुत सारी वस्तुओ को उत्पन्न कर सकता है जो अभी प्राकृ- तिक पदार्थों से बनती हैं। इसलिए रासायनिक उद्योग और सम्बद्ध उद्योगो मे तेजी से प्रगति आवश्यक है।

उनके विकास की दरो के अनुकूल ही राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की अन्य शाखाओ के विकास की दरें निर्धारित की जाती है। महत्वपूर्ण आर्थिक कड़ियों को अलग कर लेना समाजवादी नियोजन के महत्वपूर्ण सिद्धान्तो मे से एक है।

समाजवादी समाज मे योजनाए वास्तविक और वैज्ञानिक तौर पर ठोस होती हैं। इसका मतलब है कि जब कोई आर्थिक योजना बनती है तब नियोजन का वह वर्तमान आर्थिक परिस्थितियो और सम्भावनाओ, उत्पादक शक्तियों, विज्ञान और टेक्नालाजी के विकास के वर्तमान स्तर के आधार पर आगे बढ़ना है और उत्पादन के उच्च अनुभवो का व्यापक प्रयोग करता है। पार्टी तथा आम जन-संगठनो के सागठनिक कार्य और मेहनतकश जनता की सृजनात्मक पहल ही योजनाओ की वास्तविकता की गारटी है।

योजनाएं तैयार करना नियोजन की दिशा में पहला कदम है। नियोजन का महत्वपूर्ण पहलू योजना के लक्ष्यों की पूर्ति की जांच करना है, जिससे नियोजन की गलतियां समय रहते मालूम हो जायें और आवश्यक हेर-फेर किये जा सकें। अगर गलत नियोजन या किन्हीं अन्य कारणों से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में असन्तुलन आ जाता है तो वे शीघ्र मालूम हो जायेंगे और उन्हें सुधारा जा सकेगा। राजकीय निर्देश के रूप में समाजवादी राज्य के पास नियोजन में होने वाली गलतियों को सुधारने और किसी असन्तुलन विशेष को नियन्त्रित करने का यह एक महत्वपूर्ण तरीका है।

आर्थिक विकास के लिए योजनाएं बनाते समय समाजवादी नियोजन को मूर्त रूप दिया जाता है।

नियोजनकर्ताओं द्वारा आर्थिक योजनाओं के बुनियादी सूचकांक निर्धारित करते समय एक सन्तुलन व्यवस्था का भी इस्तेमाल होता है।

नियोजन में संतुलन व्यवस्था

सन्तुलन व्यवस्था के माध्यम से हम राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मुख्य शाखाओं के विकास-लक्ष्यों की पूर्व-तुलना कर लेते हैं। इनकी भौतिक और तकनीकी आवश्यकताओं की पूर्ति की सम्भावनाओं का भी अन्दाज मालूम हो जाता है। सोवियत संघ में चल रहे विशाल भवन-निर्माण कार्यक्रम के कार्यान्वयन के लिए इमारती सामानों, इमारती मशीनों, कर्मचारियों एवं वित्तीय साधनों का लेखा-जोखा रखना आवश्यक है। इमारती सामानों की आवश्यकताओं और पूर्ति की उपलब्ध सम्भावनाओं की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि इमारती सामान बनाने वाले उद्यमों की क्षमताएं इतनी नहीं हैं कि वे जरूरतों को पूरी कर सकें। इस स्थिति में इमारती सामान बनाने वाले उद्योग के विकास के लिए योजनाएं बनती हैं।

सतुलन व्यवस्था को बनाते समय यह देखा जाता है कि विभिन्न शाखाओं के नियोजित विकास की दरों में कहा तक तालमेल बिठाया गया है और उत्पादन की शाखा विशेषो द्वारा लक्ष्य से आगे निकल जाने या लक्ष्य को पूरा करने में विफल रहने पर किस प्रकार के आरक्षित कोषों की व्यवस्था की गयी है, जिससे कोई गड़बड़ी पैदा न हो।

राजकीय नियोजन निकाय भौतिक सतुलनो, मूल्य सतुलनो और मानव शक्ति सतुलनो की व्यवस्था करते है।

श्रम के सभी महत्वपूर्ण उत्पादनो (जैसे धातु, मशीनी औजार, कोयला, तेल, अन्न, मक्खन, इत्यादि) के लिए भौतिक सतुलनों की व्यवस्था की जाती है। सतुलन का व्यवस्था करते समय वस्तु विशेष की पूर्ति के स्रोतों का लेखा लिया

जाता है। प्राप्त आंकड़ों की तुलना उस वस्तु के लिए समाज की आवश्यकताओं से की जाती है।

मुख्य सन्तुलन में लोगों की नकद आय और व्यय, राष्ट्रीय आय, राजकीय बजट और अन्य प्रकार के सन्तुलन शामिल हैं।

मानव शक्ति सन्तुलन सामान्य तौर पर राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मानव शक्ति की जरूरतों को सामान्यतया और व्यवसायों एवं योग्यताओं की दृष्टि से निर्धारित करता है। यहां भी उन सभी स्रोतों को इंगित कर दिया जाता है, जो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को श्रम की आवश्यक मात्रा देंगे।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का सन्तुलन सबसे व्यापक होता है। इसमें समाजवादी अर्थव्यवस्था के आनुपातिक सम्बधों के सभी सूचकांक शामिल होते हैं।

नियोजन में सन्तुलन व्यवस्था के प्रयोग के फलस्वरूप राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखाओं के विकास के सही अनुपात अच्छी तरह निर्धारित किये जा सकते हैं।

३. नियोजित अर्थव्यवस्था के लाभ

अर्थव्यवस्था का नियोजित सचालन पूंजीवाद की तुलना में समाजवाद की निर्णायक विशेषता है। यह व्यवहार में सोवियत सघ एवं जनवादी जनतत्रों के विकास के दौरान प्राप्त शानदार परिणामों से साबित हो गया है।

नियोजित अर्थव्यवस्था के लाभ क्या हैं?

समाजवादी अर्थव्यवस्था लगातार आरोही क्रम से विकसित होती है।

पूंजीवाद के अन्तर्गत उत्पादन के सामाजिक चरित्र और उत्पादन के परिणामों के वितरण के निजी रूप में अन्तर्विरोध के कारण समाज में आर्थिक सकट आते रहते हैं। समाजवाद के अन्तर्गत इस अन्तर्विरोध का उन्मूलन हो जाता है। समाजवादी परिस्थितियों में सामाजिक स्वामित्व उत्पादन के सामाजिक चरित्र के अनुकूल होता है। इस वजह से समाजवादी उत्पादन व्यवस्था में अत्युत्पादन का आर्थिक सकट नहीं आता। नियोजित समाजवादी अर्थव्यवस्था के कारण उपकरणों और उद्यमों की स्थिर परिसम्पत्ति का पूर्ण उपयोग होता है।

समाजवादी नियोजित अर्थव्यवस्था समाज को भौतिक एव मानव शक्ति साधनों की भयकर बर्बादी से बचाती है। इसके विपरीत पूंजीवाद में आर्थिक सकट, अराजकता तथा प्रतिद्वन्द्विता, बेरोजगारी, उद्यमों में पूरी क्षमता का अनुपयोग, इत्यादि साथ-साथ चलते हैं।

समाजवादी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था नियोजित रूप से जनता को भौ
एव सास्कृतिक जरूरतों की पूर्ण सतुष्टि प्रदान करने के लिए, समाज द्वारा नि
रित अनुपातो के आधार पर विकसित होती है।

वैज्ञानिक एव तकनीकी प्रगति मे नियोजित अर्थव्यवस्था एक जोर
तत्व है। पूजीवाद के अन्तर्गत एकाधिकार दूसरों से तकनीकी रहस्य छिपाने
कोशिशे करते है। वहा उद्यमों की पूरी क्षमताओ का उपयोग नही होता।
स्वरूप विज्ञान और टेक्नालाजी के नये अन्वेषणो का प्रयोग मन्द गति से होता
समाजवादी समाज मे विज्ञान और टेक्नालाजी के विकास के लिए अस
अवसर होते हैं। पहले दरजे की वैज्ञानिक और टेक्नालाजिकल समस्याओ के हल
लिए मानव शक्ति, भौतिक एव वित्तीय साधन नियोजित अर्थव्यवस्था के का
आसानी से जुटाये जा सकते हैं।

पूजीवाद की तुलना मे समाजवाद की एक अन्य विशेषता मानव श
साधनो का नियोजित इस्तेमाल है। इस कारण समाजवाद मे सम्पूर्ण कार्यश
जनसख्या को पूर्ण रोजगार प्राप्त हो जाता है। समाजवाद मे कोई बेरोजगारी न
रहती, बल्कि इसके विपरीत राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे काम करने वाले लोगो
सख्या मे निरन्तर वृद्धि होती है, दक्ष कर्मचारियों का प्रशिक्षण और अर्थव्यवस्
की विभिन्न शाखाओ मे उनका वितरण नियोजित रूप से होता है।

नियोजित अर्थव्यवस्था के लाभ समाजवादी विकास की उच्च दर से स्पष
हैं। समाजवादी देशों मे हर साल औद्योगिक उत्पादन की मात्रा इतनी ऊची दर
बढती है कि जिसे प्राप्त करना पूजीवाद के लिए असम्भव है। आर्थिक विकास क
दर अधिक होने के कारण इतिहास की अल्पावधि मे ही समाजवाद पूंजीवाद क
आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता मे पछाड देगा।

समाजवादी आर्थिक विकास के नियोजित चरित्र के कारण समाजवादी
देशों में उत्पादन तथा जनता के सास्कृतिक एव भौतिक स्तरों मे निरन्तर तेज वृद्धि
होती है।

यह कोई आकस्मिक बात नही है कि पूजीपति वर्ग के विचारक और
सशोधनवादी यह साबित करने की कोशिश कर रहे हैं कि नियोजित अर्थव्यवस्था
पूजीवाद के अन्तर्गत भी हो सकती है। इन तर्कों से सशोधनवादी पूजीवादी
व्यवस्था के दोषो को छिपाना और मेहनतकश जनता को यह विश्वास दिलाना
चाहते हैं कि पूजीवाद को समाप्त किये बिना ही उसकी सामाजिक बुराइयो को
हटाया जा सकता है। किन्तु पूजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्विरोध, उत्पादन की
अराजकता और संकट, पूजीवादी देशो मे बेरोजगारी और वहा की मेहनतकश जनता
की बिगडती हुई हालत—ये सब बातें इन तर्कों का पूरी तरह खडन कर देती हैं।

अध्याय १२

समाजवाद के अन्तर्गत सामाजिक श्रम और उत्पादकता

१. समाजवाद के अन्तर्गत सामाजिक श्रम

भौतिक धन के उत्पादन के लिए लगायी गयी लोगों की रचनात्मक क्रियाओं का ही नाम श्रम है। श्रम प्रत्येक समाज के जीवन के लिए आवश्यक है।

समाजवाद के अन्तर्गत श्रम का स्वरूप

किन्तु विभिन्न सामाजिक-आर्थिक सरचनाओं में श्रम का स्वरूप एक-सा नहीं रहता। वह समाज के तत्कालीन उत्पादन के सम्बधों पर निर्भर होता है। श्रम स्वैच्छिक और नि.शुल्क हो सकता है और अपने या अपने समाज के लिए किया जा सकता है। श्रम शोषकों के लिए अनिवार्य हो सकता है। यह सब इस बात पर निर्भर है कि उत्पादन के साधनों का स्वामी कौन है।

सभी शोषक सामाजिक सरचनाओं में श्रम का स्वरूप सदा अनिवार्य रहा है। शोषकों की समृद्धि की सृष्टि के लिए श्रमिकों को बाध्य करने के कई तरीके इस्तेमाल किये जाते रहे हैं। इसका कारण यह है कि प्रत्यक्ष उत्पादक उत्पादन के साधनों से विहीन रहे हैं। उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व श्रम की अनिवार्यता का मूल कारण है और इसीलिए श्रम एक भारी बोझ मालूम पड़ता है। श्रम के अनिवार्य चरित्र को खत्म करने के लिए उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व से मुक्ति पाना आवश्यक है।

समाजवादी समाज में स्थिति भिन्न होती है। वहां लोग अपने और अपने समाज के लिए कार्य करते हैं। उत्पादन के क्षेत्र में प्रत्येक उपलब्धि और कार्य में हर सफलता प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मेहनतकश जनता के भौतिक और

दृष्टिकोण से दक्ष प्रशिक्षित लोगो की जरूरत है। प्रत्येक मजदूर को अपना दक्षता और शिक्षा के स्तर को ऊचा उठाने के लिए काफी अवसर प्राप्त होता है। समाजवाद के अन्तर्गत सभी प्रकार के प्रशिक्षण मुफ्त होते है।

मानव इतिहास मे पहली बार समाजवाद कार्य करने की ऐसी स्थितिया लाता है, जिनमे मजदूरो के स्वास्थ्य के लिए किसी बुरे असर की कोई गुजाइश नही रहती।

लेनिन ने बार-बार बताया कि समाजवाद के अन्तर्गत विज्ञान और टेक्नालाजी की प्रत्येक उपलब्धि का प्रयोग श्रम को हलका, कार्य-दिवस को छोटा और काम करने की दशाओ मे सुधार करने के लिए हो।

समाजवाद के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को काम पाने का अधिकार होता है। इस अधिकार (अपने देश और अपने व्यवसाय मे काम पाने और उस काम के लिए पारिश्रमिक पाने का अधिकार) का प्रयोग समाजवाद की महान उपलब्धियो मे से एक है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नियोजित विकास और उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि के परिणामस्वरूप यह अधिकार वास्तव मे सुरक्षित रहता है। समाजवाद के अन्तर्गत निर्वाह के साधन छीने जाने का मजदूर को कोई भय नही रहता। सभी प्रकार की बेरोजगारी के खत्म हो जाने से भविष्य और वास्तविक स्वतन्त्रता के प्रति मजदूरो के मन मे पूर्ण विश्वास जगता है।

प्रत्येक नागरिक को काम पाने का अधिकार देने के साथ ही समाजवाद यह अपेक्षा करता है कि सभी लोग काम करें और समाजवादी उत्पादन मे अपनी भूमिका अदा करें। सामाजिक उद्भव, लिंग, जाति, आदि का बिना विचार किये सामाजिक श्रम मे हिस्सा लेना समाजवादी समाज मे प्रत्येक नागरिक का सम्मान-पूर्ण दायित्व है।

समाजवाद के अन्तर्गत श्रम की एक खास विशेषता उसका प्रत्यक्ष सामाजिक चरित्र है। समाजवादी श्रम वह श्रम है जिसका सगठन नियोजित रूप से और उसके लिए भुगतान सम्पूर्ण समाज के पैमाने पर होता है। समाजवाद पूजीवाद के अन्तर्गत होने वाले श्रम-विभाजन से मूलत भिन्न एक नये सामाजिक श्रम-विभाजन को जन्म देता है। समाजवादी श्रम-विभाजन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह नियोजित होता है। समाजवाद बिखरी हुई अर्थव्यवस्था को समाप्त कर सभी उद्यमो को एक आर्थिक सरचना के रूप मे एकीकृत करता है और लोगों को एक कार्यशील समूह के रूप मे परिवर्तित करता है। इस प्रकार मजदूरो, किसानों और बुद्धिजीवियो का श्रम सम्पूर्ण सामाजिक श्रम का ही एक हिस्सा है और प्रत्यक्षत सामाजिक है।

इसलिए समाजवाद के अन्तर्गत श्रम की अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषताए है मेहनतकश जनता शोषण से मुक्त होती है और इस प्रकार वह शोषको के लिए

दृष्टिकोण से दक्ष प्रशिक्षित लोगों की जरूरत है। प्रत्येक मजदूर को अपनी दक्षता और शिक्षा के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए काफी अवसर प्राप्त होता है। समाजवाद के अन्तर्गत सभी प्रकार के प्रशिक्षण मुफ्त होते है।

मानव इतिहास में पहली बार समाजवाद कार्य करने की ऐसी स्थितियां लाता है, जिनमे मजदूरों के स्वास्थ्य के लिए किसी बुरे असर की कोई गुंजाइश नही रहती।

लेनिन ने बार-बार बताया कि समाजवाद के अन्तर्गत विज्ञान और टेक्नालाजी की प्रत्येक उपलब्धि का प्रयोग श्रम को हलका, कार्य-दिवस को छोटा और काम करने की दशाओ मे सुधार करने के लिए हो।

समाजवाद के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को काम पाने का अधिकार होता है। इस अधिकार (अपने देश और अपने व्यवसाय मे काम पाने और उस काम के लिए पारिश्रमिक पाने का अधिकार) का प्रयोग समाजवाद की महान उपलब्धियो में से एक है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नियोजित विकास और उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि के परिणामस्वरूप यह अधिकार वास्तव मे सुरक्षित रहता है। समाजवाद के अन्तर्गत निर्वाह के साधन छीने जाने का मजदूर को कोई भय नही रहता। सभी प्रकार की बेरोजगारी के खत्म हो जाने से भविष्य और वास्तविक स्वतत्रता के प्रति मजदूरो के मन मे पूर्ण विश्वास जगता है।

प्रत्येक नागरिक को काम पाने का अधिकार देने के साथ ही समाजवाद यह अपेक्षा करता है कि सभी लोग काम करें और समाजवादी उत्पादन मे अपनी भूमिका अदा करें। सामाजिक उद्भव, लिंग, जाति, आदि का बिना विचार किये सामाजिक श्रम मे हिस्सा लेना समाजवादी समाज मे प्रत्येक नागरिक का सम्मानपूर्ण दायित्व है।

समाजवाद के अन्तर्गत श्रम की एक खास विशेषता उसका प्रत्यक्ष सामाजिक चरित्र है। समाजवादी श्रम वह श्रम है जिसका सगठन नियोजित रूप से

है कि वह नियोजित होता है। समाजवाद बिखरी हुई अर्थव्यवस्था को समाप्त कर सभी उद्यमो को एक आर्थिक सरचना के रूप मे एकीकृत करता है और लोगो को एक कार्यशील समूह के रूप मे परिवर्तित करता है। इस प्रकार मजदूरो, किसानो और बुद्धिजीवियो का श्रम सम्पूर्ण सामाजिक श्रम का ही एक हिस्सा है और प्रत्यक्षत: सामाजिक है।

इसलिए समाजवाद के अन्तर्गत श्रम की अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषताए हैं: मेहनतकश जनता शोषण से मुक्त होती है और इस प्रकार वह शोषकों के लिए

काम करने को बाध्य न होने से अपने लिए काम कर सकता है, श्रम के प्रति दृष्टिकोण विवेकपूर्ण और सृजनात्मक हो जाता है, समस्त मेहनतकश जनता को काम पाने का अधिकार होता है तथा काम करना सबका कर्तव्य होता है, और श्रम का चरित्र प्रत्यक्षत: सामाजिक होता है।

श्रम का समाजवादी सहयोग

समाजवाद के अन्तर्गत सामाजिक श्रम के चरित्र में आमूल परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप श्रम के सगठन के रूप और विधि में भी आमूल परिवर्तन होता है। समाजवादी श्रम सामूहिक श्रम है। वह मजदूरों, किसानों और बुद्धिजीवियों की सयुक्त क्रिया है।

हर समाज में उत्पादन प्रक्रिया श्रम के सहयोग (लोगों के श्रम के एक या दूसरे प्रकार के सयोग) के आधार पर चलती है। श्रम के समाजवादी सहयोग का मतलब उस श्रम से है जिसका सयोग, सगठन और नियोजन शोषणमुक्त मेहनतकश जनता के मैत्रीपूर्ण सहयोग पर निर्भर है। श्रम का समाजवादी सहयोग सैद्धान्तिक रूप से पूजीवाद के अन्तर्गत पाये जाने वाले सहयोग से भिन्न होता है।

पूजीवाद के अन्तर्गत श्रम-सहयोग उत्पादन के साधनों पर पूजीपति के निजी स्वामित्व पर आधारित होता है। इस प्रकार पूजीवादी श्रम-सहयोग के मूल में मनुष्य का मनुष्य द्वारा शोषण निहित होता है। उत्पादन का सचालन एक व्यक्ति—पूजीपति—करता है। पूजीपति को ही श्रम-सहयोग के सारे लाभ मिलते हैं।

समाजवाद के अन्तर्गत श्रम-सहयोग का आधार उत्पादन के साधनो का समाजवादी स्वामित्व होता है। वहा मनुष्य मनुष्य का शोषण नही करता।

समाजवादी श्रम-सहयोग के अन्तर्गत सिर्फ एक उद्यम मे काम करने वाले मजदूरों का श्रम ही नही आता, वल्कि समाज के सभी सदस्यो का श्रम आता है। समाजवाद के अन्तर्गत उनका श्रम एकीकृत, सामूहिक श्रम होता है जिसका सगठन नियोजित रूप से सारे समाज के पैमाने पर होता है। उसका उद्देश्य उत्पादन के साधनों और श्रम-शक्ति का अत्यन्त विवेकपूर्ण प्रयोग करना होता है।

पूजीवाद के अन्तर्गत श्रम-सहयोग अधिशेष मूल्य का उत्पादन और मजदूरों के शोषण की मात्रा बढ़ाने का तरीका है। फलस्वरूप इस सहयोग में शामिल मजदूरों और उनका सगठन करने वाले पूजीपतियो के बीच स्थायी और असमाधेय अन्तर्विरोध पैदा होते हैं। पूजीवादी श्रम-सहयोग को भूख की विद्यमानता और रोटी के चन्द टुकड़ो के लिए श्रम-शक्ति बेचने की गम्भीर आवश्यकता के द्वारा बनाये रखा जाता है।

भौतिक धन के उत्पादन को बढ़ाने और मेहनतकश जनता की आवश्यक-
ाओं की पूर्ण संतुष्टि के लिए समाजवादी श्रम-सहयोग लोगों के कार्यकलाप का
म्मिलित रूप होता है। इसीलिए पूंजीवादी सहयोग में निहित कोई भी अन्तर्विरोध
माजवादी श्रम-विभाजन में नहीं पाया जाता।

श्रम-सहयोग (बहुत-से मजदूरों का संयुक्त श्रम) को संगठित करने की
रूरत होती है। समाजवाद के अन्तर्गत श्रम-संगठन के कई महत्वपूर्ण तत्व हैं।

समाजवादी श्रम-सहयोग में एक नये प्रकार का श्रम-अनुशासन होता है,
जो पहले किसी सामाजिक संरचना में नहीं पाया जाता। समाजवादी श्रम-अनु-
शासन मेहनतकश जनता का विवेकपूर्ण और सौहार्दपूर्ण अनुशासन होता है।
लेनिन ने बताया कि यह नया अनुशासन लोगों की शुभेच्छाओं के कारण जन्म
नहीं लेता, बल्कि समाजवाद के निर्माण के दौरान पूंजीवाद के अवशेषों के विरुद्ध
निरन्तर संघर्ष की प्रक्रिया में विकसित होता है। समाजवादी उद्यमों के मजदूरों
में अब भी ऐसे लोग हैं, जो श्रम के प्रति पुराने दृष्टिकोण से चिपके हुए हैं। वे
सदा कम काम करने और अधिक हड़पने की कोशिश करते हैं। इसलिए राज्य
का एक महत्वपूर्ण काम लोगों में श्रम के प्रति समाजवादी दृष्टिकोण पैदा करना
और श्रम-अनुशासन के उल्लंघन को निरन्तर रोकना है।

श्रम के समाजवादी सहयोग का मतलब राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का नियोजित
मार्ग-दर्शन है। इसका अर्थ एक ओर उत्पादन प्रक्रिया में एक व्यक्ति की जिम्मेदारी
के सिद्धान्त पर दृढ़ता से अमल करना और दूसरी ओर *समाजवादी उद्यमों और
सम्पूर्ण सामाजिक उत्पादन के प्रबन्ध में मेहनतकश जनता का व्यापक और सक्रिय
सहयोग* है। कम्युनिज्म की दिशा में प्रगति के साथ मेहनतकश जनता प्रबन्ध-कार्य
में अधिकाधिक हाथ बटायेगी।

हम कह चुके हैं कि समाजवाद के अन्तर्गत श्रम के चरित्र में परिवर्तन
के कारण श्रम के प्रति मजदूर वर्ग का एक नया दृष्टि-
कोण हो जाता है। इस नये दृष्टिकोण को समाजवादी
होड़ शब्द में अच्छी तरह व्यक्त कर सकते हैं।

समाजवादी होड़ और उसकी भूमिका

समाजवादी होड़ समाजवादी उत्पादन-सम्बंधों, समाजवादी समाज के
मेहनतकशों के मैत्रीपूर्ण *सहयोग और पारस्परिक सहायता के सम्बंधों और आर्थिक*
विकास योजनाओं को पूरा करने तथा लक्ष्य से भी आगे बढ़ने और सम्पूर्ण उत्पादन
को आगे बढ़ाने के प्रयत्नों की ही अभिव्यक्ति है।

समाजवादी होड़ मेहनतकश जनता की क्रियाओं और सृजनात्मक पहल के
द्वारा श्रम-उत्पादकता बढ़ाने और उत्पादन को उन्नत करने की एक महत्वपूर्ण विधि
है। लेनिन ने कहा कि समाजवादी होड़ कम्युनिज्म के निर्माण की एक विधि है।

लेनिन ने समाजवादी होड के अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। उदाहरण के लिए, होड़ का व्यापक प्रचार होना चाहिए, यह आवश्यक है कि उसके परिणाम तुलनात्मक रूप मे हों, अग्रणी मजदूरो के अनुभवो का व्यापक रूप से प्रसार हो और प्रतियोगी एक-दूसरे की मदद करें।

उत्पादन को उन्नत करने की होड मे लगे मजदूर और काम के उत्तम तरीको को अपनाने वाले प्रत्येक मजदूर को आशा करनी चाहिए कि..."उत्पादन के अच्छे सगठन के परिणामस्वरूप श्रम हलका होगा और अच्छे सगठनकर्ताओ के लिए उपभोग की मात्रा मे वृद्धि होगी।"[1]

सोवियत सघ मे समाजवादी होड का अपना गौरवमय इतिहास है। वह पहले-पहल गृह-युद्ध के समय कम्युनिस्ट सुब्बोतनिको[2] के रूप में सामने आया। तब से वह कई चरणो—मजदूरों का अगला दस्ता, स्तखानोवपथी आन्दोलन और अन्य आन्दोलनो से गुजरा है। प्रारम्भ से ही समाजवादी होड़ आन्दोलन का पथ-प्रदर्शन कम्युनिस्ट पार्टी कर रही है।

पूरे पैमाने पर कम्युनिस्ट निर्माण शुरू करने के फलस्वरूप सोवियत सघ मे समाजवादी होड का एक नया रूप सामने आया है। मजदूरों के अगले दस्तों और कम्युनिस्ट कार्य-समूहो का आन्दोलन तेजी से सारे देश मे फैल रहा है।

इस आन्दोलन मे शामिल लोगो ने ससार मे उच्चतम श्रम-उत्पादकता को प्राप्त करने का लक्ष्य अपने सामने रखा है। वे नयी मशीनो और प्रगतिशील तकनीको को विकसित करने और व्यवहार मे लाने के लिए सक्रिय प्रयत्न करते है और निरन्तर तकनीकी रूढिवादिता के खिलाफ सघर्ष करते हैं।

कम्युनिस्ट निर्माण-कार्य विज्ञान और प्राविधिक उपलब्धियो पर आधारित होता है। अथक परिश्रम और निरन्तर तथा क्रमिक ज्ञान के विस्तार से ही इन्हें सीखा जा सकता है। इसीलिए कम्युनिस्ट निर्माण-कार्य की सफलता के लिए जरूरी है कि सारे सदस्य निरन्तर सीखने की दिशा मे प्रयत्नशील रहें।

समाजवादी देशों मे हर साल समाजवादी होड़ व्यापक रूप से विकसित

---

१. लेनिन, "संग्रहीत रचनाएं," रूसी संस्करण, खंड २६, पृष्ठ २०१।

२. सोवियत जनतंत्र के लाभार्थ कार्य-घंटों के बाद किया गया स्वैच्छिक कार्य। पहला "सुब्बोतनिक" मास्को-कज़ान रेलवे के कम्युनिस्ट मजदूरों ने रविवार, १२ अप्रैल, १९१९ को आयोजित किया था ("सुब्बोता" रूसी शब्द है जिसका मतलब होता है रविवार)।—सम्पा.

समाजवादी देशों में समाजवादी होड़ सामाजिक विकास को प्रोत्साहित करने वाली बहुत बड़ी शक्ति है। समाजवादी होड़ के कारण ही अर्थव्यवस्था तेजी से विकसित होती है और सामाजिक श्रम-उत्पादकता में निरन्तर वृद्धि होती है। समाजवादी होड़ इस बात का सबूत है कि शोषणमुक्त समाज में उत्पादन के विकास को प्रोत्साहित करने वाले ऐसे नये तत्व होते हैं जो पूंजीवादी व्यवस्था में नहीं होते। पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत प्रतिस्पर्द्धात्मक संघर्ष में अनुभवों के व्यापक वास्तविक आदान-प्रदान, बन्धुत्वपूर्ण सहयोग और पारस्परिक सहायता यानी विशिष्ट मानवीय सम्बन्धों का प्रश्न ही नहीं उठता है। ये सब सिर्फ समाजवादी समाज-व्यवस्था में ही होते हैं।

२. श्रम-उत्पादकता की निरन्तर वृद्धि समाजवाद का एक आर्थिक नियम है

श्रम-उत्पादकता की अवधारणा

श्रम की उत्पादकता मजदूर द्वारा एक समय-इकाई के दौरान उत्पन्न किये गये माल की मात्रा के रूप में अभिव्यक्त होती है।

श्रम-उत्पादकता में वृद्धि का मतलब वर्तमान और विगत (कृत) श्रम की मितव्ययिता से है। मार्क्स ने कहा कि "श्रम-उत्पादकता में वृद्धि के फलस्वरूप वर्तमान श्रम का हिस्सा घट जाता है, लेकिन विगत श्रम का हिस्सा बढ़ जाता है। परिणामस्वरूप उस वस्तु में निहित श्रम की मात्रा के घटने के कारण वर्तमान श्रम की मात्रा में विगत श्रम की वृद्धि की अपेक्षा अधिक ह्रास होता है।"[१]

"श्रम-उत्पादकता में वृद्धि" का मतलब सामाजिक उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम-काल के व्यय में कटौती या समय की प्रति इकाई के दौरान उत्पन्न वस्तुओं की मात्रा में वृद्धि से है।

सामाजिक श्रम का समाजवादी संगठन समाज के श्रम-संगठन का उच्चतम रूप है, जिसके कारण सामाजिक श्रम की उत्पादकता बढ़ती है।

पूंजीवाद के ऊपर समाजवाद की विजय और कम्युनिज्म के सफल निर्माण के लिए श्रम-उत्पादकता की निरन्तर वृद्धि एक महत्वपूर्ण स्थिति है। समाजवाद के अन्तर्गत श्रम-उत्पादकता की भूमिका की चर्चा करते हुए लेनिन ने लिखा कि "अन्तिम विश्लेषण में, नयी समाज-व्यवस्था की विजय के लिए श्रम की उत्पादकता अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है। पूंजीवाद ने श्रम की एक ऐसी उत्पादकता को जन्म दिया जो सामन्तवाद में मौजूद नहीं थी। पूंजीवाद पूर्ण रूप से लुप्त हो सकता है

१. कार्ल मार्क्स : "पूंजी", खंड ३, पृष्ठ २५५।

और हो जायेगा, क्योंकि समाजवाद के अन्तर्गत एक नयी, ऊंचे प्रकार की श्रम-उत्पादकता जन्म लेती है।"[1]

श्रम-उत्पादकता में निरन्तर वृद्धि का नियम

वर्तमान श्रम-उत्पादकता एक व्यापक आर्थिक नियम है, जो सभी सामाजिक-आर्थिक सरचनाओं मे काम करता है।

किन्तु यह नियम अलग-अलग सरचनाओ मे अलग-अलग रूप में काम करता है। इस नियम का परिचालन समाज के प्रमुख उत्पादन-सम्बधो, प्रकृति, राज्य और सामाजिक उत्पादन के उद्देश्य पर निर्भर है। पूजीवाद के अन्तर्गत इस नियम का परिचालन सीमित होता है, श्रम-उत्पादकता की वृद्धि असम होती हैं और कभी-कभी श्रम-उत्पादकता मे ह्रास हो जाता है।

समाजवाद के अन्तर्गत उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व खत्म हो जाता है, परिणामस्वरूप श्रम-उत्पादकता की वृद्धि के मार्ग से सारी बाधाए हट जाती हैं।

समाजवादी समाज मे श्रम-उत्पादकता की निरन्तर वृद्धि एक वस्तुगत आवश्यकता है, जिसका जन्म समाजवादी उत्पादन-सम्बधों के कारण होता है।

मार्क्स ने लिखा कि "समय की मितव्ययिता और कार्य-काल का उत्पादन की विभिन्न शाखाओ के बीच नियोजित वितरण सामूहिक उत्पादन पर आधारित पहला आर्थिक नियम है। यह इस कारण भी उच्च कोटि का नियम हो जाता है।"[2]

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे निष्कर्ष निकलता है कि पूजीवादी समाज के विपरीत समाजवादी समाज श्रम-उत्पादकता की निरन्तर वृद्धि के नियम के सचालन के लिए पूर्ण अवसर प्रदान करता है। स्मरण रहे, पूजीवादी समाज मे इस नियम का कोई निर्णयकारी परिचालक महत्व नही होता है। इस नियम का सार यह है कि वर्तमान और विगत श्रम की अधिकतम बचत हो और समाजवादी समाज की जरूरतो की पूर्ण सतुष्टि के लिए भौतिक धन की अधिकाधिक मात्रा की सृष्टि कम से कम श्रम की लागत से हो।

श्रम-उत्पादकता की वृद्धि के तत्व

मार्क्स ने उन मुख्य तत्वों को बताया जिन पर श्रम-उत्पादकता निर्भर करती है। उन्होंने कहा कि "यह उत्पादकता कई स्थितियो से निर्धारित होती है। उनमें अन्य तत्वो के अतिरिक्त मेहनतकशो की औसत दक्षता, विज्ञान की स्थिति और उसका व्यावहारिक प्रयोग, उत्पादन का

1. लेनिन, "संकलित रचनाए", खंड ३, पृष्ठ २५३।
2. "मार्क्स-एंगेल्स आरकीव", रूसी संस्करण, खंड ४, पृष्ठ ११६।

सामाजिक संगठन, उत्पादन के साधनों की मात्रा और उनकी क्षमता तथा भौतिक स्थितियां शामिल होती हैं।"[1]

उत्पादकता का सार, सर्वप्रथम, उद्यमों के तकनीकी उपकरणों के मानदण्ड से निश्चित होता है। कारखाने के मजदूर नयी, उन्नत मशीनों से जितना ही सम्पन्न होंगे, उनका श्रम उतना ही फलदायक होगा। श्रम-उत्पादकता बढ़ाने के संघर्ष में सबसे अधिक सफलता उन उद्यमों को मिलती है, जिनमें उत्पादन प्रक्रियाओं में सभी क्षेत्रों और सभी स्तरों पर आधुनिक तकनीकी उपकरणों का व्यापक प्रयोग होता है।

उदाहरण के लिए, अगर उत्पादन के मुख्य क्षेत्रों में नयी मशीनें लगायी जाती हैं और परिणामस्वरूप श्रम-उत्पादकता में वृद्धि होती है तो जरूरी है कि इन मुख्य क्षेत्रों से सम्बद्ध अन्य श्रम-प्रक्रियाओं का भी यंत्रीकरण किया जाये। सबसे पहले परिवहन, सामान ढोने, नियंत्रण, कल-पुर्जों को आपस में सम्बद्ध करने आदि कार्यों के लिए यंत्रों और उन्नत तरीकों का इस्तेमाल किया जाता है। कई उद्यमों में अब भी ये कार्य हाथ से किये जाते हैं। यंत्रों के प्रयोग से इन क्षेत्रों में उत्पादकता बढ़ेगी। कृषि एवं उद्योगों के क्षेत्र में इन कार्यों के लिए मशीनों का प्रयोग करने से हाथ से काम करने की आवश्यकता नहीं रहेगी और उत्पादकता में कई गुनी वृद्धि होगी।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में जोर देकर कहा गया है कि व्यापक यंत्रीकरण और स्वयंचालन अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओं के तकनीकी पुनर्निर्माण के लिए अत्यन्त आवश्यक है। समाजवादी उत्पादन के व्यापक यंत्रीकरण और स्वयंचालन के विकास के गुणात्मक रूप से नये चरण में प्रवेश करते ही श्रम-उत्पादकता संसार में सबसे ऊंची हो जायेगी।

आधुनिक उत्पादन में तकनीक का जो भी महत्व हो, मनुष्य समाज की मुख्य उत्पादक शक्ति है। इसीलिए अधिकांश कर्मचारियों और मुख्यतया मेहनतकशों की दक्षता की मात्रा और तकनीकी योग्यताओं के स्तर पर श्रम-उत्पादकता का स्तर और भावी विकास की सम्भावना बहुत हद तक निर्भर करती है। सिर्फ इतना ही नहीं है कि दक्ष मजदूर का श्रम अधिक उत्पादक होता है बल्कि उच्च तकनीकी योग्यताओं से सम्पन्न मजदूर ही तकनीकी उपकरण का अच्छी तरह इस्तेमाल कर सकता है और उसको उन्नत करने के तरीके निकाल सकता है।

औद्योगिक उद्यमों में श्रम-उत्पादकता मुख्य रूप से उत्पादन और श्रम के संगठन पर निर्भर है।

[1] कार्ल मार्क्स, "पूंजी", खंड १, पृष्ठ ४०।

प्रत्येक उत्पादन प्रक्रिया उन सभी चरणों का योग है जिनसे कच्चा माल विभिन्न उत्पादन क्षेत्रों में अपने निर्माण-काल के दौरान गुजरता है। उन क्षेत्रों का अच्छी तरह विशेषीकरण होना चाहिए और उनका कार्य समन्वित और सुसंगठित होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, उनके बीच सख्त सांगठनिक तालमेल होना चाहिए। प्रत्येक श्रमिक दल और उत्पादन के प्रत्येक क्षेत्र की कुशल देखरेख होनी चाहिए। इस प्रकार की सांगठनिक कड़ी प्रत्येक उद्यम के भीतर और विभिन्न उद्यमों के बीच होनी चाहिए। सम्पूर्ण उत्पादन प्रक्रिया का सही और कुशल संगठन और प्रत्येक श्रमिक दल के श्रम का सुनियोजित संगठन कार्य-काल की बर्बादी और अविवेकपूर्ण व्यय को रोकता है।

श्रम-उत्पादकता सदा उद्यमों के भीतर और उद्यमों के बीच विकसित होने वाली विभिन्न प्रकार की होड़ द्वारा आगे बढ़ती है।

प्राकृतिक स्थितियाँ भी श्रम-उत्पादकता को प्रभावित करती हैं। बहुत — तक कृषि और निष्कर्षण उद्योगों (कोयला, तेल, लौह अयस्क, आदि) : उत्पादकता का निर्धारण करती हैं।

श्रम की बढ़ी हुई उत्पादकता इस बात पर निर्भर है कि श्रम के लिए कि प्रकार भुगतान किया जाता है और किस प्रकार सबसे अधिक सफलता प्रा करने वाले मजदूरों को भौतिक प्रोत्साहन दिया जाता है।

समाजवादी समाज में नैतिक प्रोत्साहन भी महत्वपूर्ण है। समाजवाद राज्य विभिन्न उद्यमों के सफल श्रमिकों और अग्रणी समूहों को प्रोत्साहित करव है। दर्जे, पदक और योग्यता के प्रमाणपत्र अच्छे कार्य के लिए दिये जाते हैं। सफल श्रमिकों को सम्मानसूचक उपाधियाँ आदि दी जाती हैं। इन सबके कारण कार्य मे अधिकाधिक सफलता प्राप्त करने, अच्छा और अधिक काम करने तथा ऊंचे स्तर का कार्य करने की भावना श्रमिकों में जगती है।

विज्ञान का स्तर जितना ही ऊंचा होगा और उसकी आधुनिक उपलब्धियां जितनी ही तेजी से व्यवहार में लायी जायेंगी, सामाजिक उत्पादकता उतनी ही अधिक होगी। सिर्फ समाजवादी अर्थव्यवस्था में ही विज्ञान और भौतिक उत्पादन हर तरह से सम्बद्ध हो सकता है क्योंकि समाजवादी अर्थव्यवस्था में खुली या गुप्त किसी प्रकार की प्रतिद्वन्द्विता नहीं रहती।

अन्त में, उत्पादन का विवेकपूर्ण स्थानीकरण श्रम-उत्पादकता बढ़ाने के लिए एक महत्वपूर्ण तत्व है। उत्पादन के स्थानीकरण के फलस्वरूप एक ओर उद्यमों में स्पष्ट रूप से विशेषीकरण और सहयोग होना चाहिए और दूसरी ओर प्राकृतिक साधनों का पूर्ण रूप से आर्थिक उपयोग होना चाहिए।

उत्पादन का उचित स्थानीकरण भौतिक मूल्यों के उत्पादन, परिवहन, भंडार और वसूली में सामाजिक श्रम के व्यय को घटाता है। श्रम के व्यय में ह्रास का मतलब श्रम-उत्पादकता में वृद्धि है।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओं में तकनीकी प्रगति सामाजिक श्रम की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए निर्णायक तत्व है। इसीलिए कम्युनिस्ट समाज के पूरे पैमाने पर निर्माण के दौरान उत्पादन प्रक्रियाओं के व्यापक यंत्रीकरण, स्वचालन, रसायनीकरण और विद्युतीकरण, उत्पादन और श्रम के संगठन में सुधार और मजदूरों की कुशलता और तकनीकी योग्यताओं को बढ़ाने का अधिक महत्व हो जाता है।

श्रम-उत्पादकता को बढ़ाने के लिए समाजवाद काफी अवसर प्रदान करता है। उत्पादकता-वृद्धि की दर की दृष्टि से समाजवादी देश सबसे आगे हैं। सोवियत संघ में श्रम-उत्पादकता पूंजीवादी देशों की अपेक्षा ४-५ गुनी अधिक है। १९१३ में रूस के औद्योगिक क्षेत्र में श्रम-उत्पादकता अमरीका की श्रम-उत्पादकता का नौवां हिस्सा थी। किन्तु १९६४ में खाई बहुत कम रह गयी। सोवियत संघ में श्रम उत्पादकता अमरीका की तुलना में ६५ प्रतिशत थी। सोवियत संघ की श्रम-उत्पादकता ब्रिटेन और फ्रांस जैसे पूंजीवादी देशों से काफी अधिक है।

२० वर्षों (१९६१-१९८०) में श्रम-उत्पादकता सोवियत औद्योगिक क्षेत्र में ३००-३५० प्रतिशत और कृषि के क्षेत्र में ४००-५०० प्रतिशत बढ़ जायेगी। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २२वीं कांग्रेस के प्रस्ताव में कहा गया है कि "श्रम-उत्पादकता को बढ़ाने की समस्या कम्युनिस्ट निर्माण की नीति और व्यवहार की मुख्य समस्या है, जनता की खुशहाली बढ़ाने और मेहनतकश जनता के लिए विपुल भौतिक और सांस्कृतिक लाभ की सृष्टि के लिए एक आवश्यक स्थिति है।"[1]

श्रम-उत्पादकता की तीव्र वृद्धि उत्पादन की गति को बढ़ाने और कम्युनिस्ट निर्माण की समस्याओं के हल के लिए आवश्यक है। इसीलिए श्रम-उत्पादकता को बढ़ाने के लिए समाजवादी समाज के प्रत्येक उद्यम और प्रत्येक श्रमिक बेंच में प्राप्त सम्भावनाओं का पूर्ण इस्तेमाल अधिक महत्व रखता है।

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ४२७।

अध्याय १३

समाजवाद के अन्तर्गत वस्तु-उत्पादन, मुद्रा और व्यापार

१. समाजवाद के अन्तर्गत वस्तु-उत्पादन

समाजवाद के अन्तर्गत वस्तु-उत्पादन की खास विशेषताएं

समाजवादी समाज में वस्तु-उत्पादन अवश्यम्भावी है क्योंकि वहां समाजवादी सम्पत्ति दो रूपों में रहती है—राजकीय (सारी जनता की) सम्पत्ति और सहकारी एवं सामूहिक फार्म सम्पत्ति।

समाजवादी सम्पत्ति के इन दो रूपों के आधार पर सामाजिक श्रम-विभाजन विकसित होता है, इसलिए भी समाजवाद के अन्तर्गत वस्तु-मुद्रा सम्बध रहता है।

यही नही, समाजवाद के अन्तर्गत भी उत्पादक शक्तियो के विकसित होने के बावजूद श्रम का सामाजिक-आर्थिक अन्तर रहता है। मानसिक एव शारीरिक, प्रशिक्षित एव अप्रशिक्षित और मजदूर के श्रम एव सामूहिक किसान के श्रम के बीच स्पष्ट अन्तर होने के कारण सब प्रकार के श्रम को समरूप नही किया जा सकता। यह कार्य सिर्फ मूल्य के द्वारा ही किया जा सकता है। इन सब कारणो से वस्तु-मुद्रा सम्बध समाजवाद के अन्तर्गत बना रहता है।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे कहा गया है कि "कम्युनिस्ट निर्माण मे वस्तु-मुद्रा सम्बधो का, समाजवादी काल के उनके नवीन रूप को ध्यान मे रखते हुए, पूर्ण इस्तेमाल करना आवश्यक है।"[१]

---

१. "कम्युनिज्म का मार्ग" पृष्ठ ५३६।

समाजवाद के अन्तर्गत वस्तु-मुद्रा सम्बधो का नवीन रूप होता है, क्योकि वहा वस्तु-उत्पादन उत्पादन साधनो के समाजवादी स्वामित्व के आधार पर सयुक्त समाजवादी उत्पादकों (राज्य और सहकारी सस्थाओ) के द्वारा नियोजित तौर पर होता है। इन खास विशेषताओ के कारण समाजवाद के अन्तर्गत वस्तु-उत्पादन पूजीवादी वस्तु-उत्पादन मे नही बदल सकता।

समाजवाद के अन्तर्गत वस्तु-उत्पादन उतना व्यापक नही होता, जितना पूजीवाद मे होता है। समाजवाद के अन्तर्गत वस्तु-उत्पादन और वस्तु-प्रचलन का दायरा सीमित होता है। उदाहरण के लिए, श्रम-शक्ति वस्तु के रूप मे नही होती, इसकी खरीद-बिक्री नहीं होती। भूमि अपने खनिज पदार्थों समेत व्यापार के क्षेत्र से बाहर रहती है (यानी भूमि न तो खरीदी जा सकती है और न बेची)। समाजवादी उद्यम और उनकी स्थिर परिसम्पत्ति (मशीनें, इमारतें, उपकरण, आदि) न तो खरीदी जा सकती है और न बेची जा सकती है।

समाजवाद के अन्तर्गत वस्तु-उत्पादन के स्वरूप मे आमूल परिवर्तन होने के फलस्वरूप उसकी कोटियां भी बदलती हैं। कई कोटियां (जैसे वस्तु के रूप मे श्रम-शक्ति, अधिशेष मूल्य और अन्य, जो वस्तु उत्पादन के पूजीवादी स्वरूप के सूचक होते हैं) लुप्त हो जाती हैं। वस्तु, मुद्रा, मूल्य, कीमत, मुनाफा, साख, आदि वस्तु उत्पादन की अन्य आर्थिक कोटियां रहती हैं, यद्यपि उनके स्वभाव मे परिवर्तन हो जाता है।

समाजवादी समाज में वस्तु-मुद्रा सम्बध सर्वप्रथम राजकीय उद्यमों, सहकारी सगठनो और सामूहिक फार्मों के बीच जन्म लेता है। राजकीय उद्यम ऐसी वस्तुओ को उत्पन्न करते है, जो सहकारी उद्यमो के लिए उत्पादन के साधन और उसमे काम करने वालो के लिए उपभोक्ता वस्तुओ का काम करती हैं। सहकारी उद्यम ऐसी वस्तुओ का उत्पादन करते है, जो उद्योग के लिए कच्चे माल और जनता के लिए खाद्य पदार्थ और अन्य उपभोक्ता वस्तुओं का काम करती हैं।

वस्तु-विनिमय राजकीय उद्योग और सहकारी खेती के पारस्परिक आर्थिक सम्बधो का एक आवश्यक रूप है।

द्वितीय, राजकीय और सहकारी क्षेत्रो तथा सामूहिक किसानो द्वारा अपने गौण भूखण्डो पर उत्पन्न सम्पूर्ण वस्तुए वस्तु-उत्पादन और विनिमय के अन्तर्गत आती हैं। ये वस्तुए खरीद-बिक्री के द्वारा शहरी और ग्रामीण आबादी की व्यक्तिगत सम्पत्ति हो जाती है।

तृतीय, राजकीय उद्यमो मे वस्तु-सम्बध उत्पादन के साधनो के उत्पादन-क्षेत्रो मे उत्पन्न होते है। राजकीय उद्यमो द्वारा उत्पन्न उत्पादन के साधनो (मशीनी औजार, मशीनें, धातुए, कोयला, तेल, सिमेंट, आदि) का विनिमय उद्यमो

के बीच खरीद-विक्री के माध्यम से होता है। इस प्रकार उत्पादन के साधन वस्तुओं के रूप मे होते हैं।

अन्तिम, विदेशी व्यापार के आवर्त्त द्वारा समाजवादी राज्य और अन्य देशों के बीच वस्तु-सम्बध उत्पन्न होते हैं।

समाजवादी समाज मे वस्तु-उत्पादन उत्पादक शक्तियों के विकास और उसके माध्यम से समाजवाद से कम्युनिज्म की ओर सक्रमण को प्रोत्साहित करता है। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे कहा गया है कि "जन-सम्पत्ति के कम्युनिस्ट रूप और कम्युनिस्ट वितरण-व्यवस्था के स्थापित होने पर वस्तु-मुद्रा सम्बध आर्थिक तौर पर दकियानूसी हो जायेंगे और अन्ततोगत्वा लुप्त हो जायेंगे।"[१]

वस्तु का उपयोग मूल्य और मूल्य

जैसा कि हम जानते हैं, वस्तु के दो पक्ष, दो गुण-धर्म होते हैं : उपयोग मूल्य और मूल्य। समाजवाद के अन्तर्गत पूजीवादी स्थितियो की तुलना मे इन दो गुणधर्मों के बिलकुल भिन्न अर्थ होते हैं।

पूजीपति की दिलचस्पी वस्तु के मूल्य मे होती है। इसी से अधिशेष मूल्य प्राप्त किया जा सकता है। उपयोग मूल्य का उत्पादन उसी हद तक होता है जिस हद तक वह अधिशेष मूल्य के उत्पादन के लिए आवश्यक रहता है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था मे वस्तु के उपयोग मूल्य का एक विशेष महत्व होता है। समाजवादी समाज उपयोग मूल्य और वस्तुओं की कोटि उन्नत करना चाहता है। समाजवादी समाज उपयोग मूल्यों की किस्म और मात्रा का ही नियोजन नही करता, बल्कि वस्तुओ की अच्छी किस्मों के लिए भी कोशिश करता है।

समाजवादी समाज के लिए वस्तु का मूल्य पक्ष भी महत्वपूर्ण है। उत्पादन का नियोजन न सिर्फ भौतिक सूचकांको बल्कि मुद्रा (मूल्य) सूचकाको के रूप मे भी होता है। मुद्रा-सूचकाकों का इस्तेमाल वस्तुओ के मूल्य मे व्यवस्थित रूप से कटौती करने और उसके आधार पर वस्तुओ की कीमते कम करने, समाजवादी सचय को निरन्तर बढाने और समाजवादी समाज के सदस्यो की जरूरतो को पूर्ण रूप से सतुष्ट करने के लिए होता है।

समाजवादी उत्पादन मे उपयोग मूल्य और मूल्य मे परस्पर कोई अन्तर्विरोध नही होता, क्योंकि निजी और सामाजिक श्रम के बीच विरोध नहीं होता।

हालाकि इसका यह मतलब नही है कि समाजवाद के अन्तर्गत उपयोग मूल्य और मूल्य के बीच कोई विरोध होता ही नही। विरोध होता है, लेकिन

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ५३६।

उसका स्वभाव विध्वंसात्मक नहीं होता। जैसे कि जब वस्तुएं अच्छी किस्म की नहीं होतीं, तब उनको बेचने में कठिनाइयां होती हैं। दुकानों में ऐसे विभाग होते हैं, जहां तैयार वस्तुएं घटी हुई कीमतों पर बेची जाती हैं। यह बताता है कि वस्तुओं के उपयोग मूल्य और मूल्य के बीच विरोध पैदा हो गया है। वस्तुओं के न बिकने का कारण यह नहीं है कि वे आवश्यक नहीं हैं, बल्कि उनके मूल्य और उनकी कोटि में कोई समन्वय नहीं है। उनके मूल्य पर उनकी बिक्री न होने का कारण यह है कि उनका उपयोग मूल्य उनके मूल्य के बराबर नहीं है, इसलिए कीमतों में कटौती होती है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था में नियोजित नेतृत्व, उत्पादन की किस्म और दायरे की वृद्धि और मूल्य में कटौती के द्वारा उपयोग मूल्य और मूल्य का अन्तर्विरोध खत्म कर दिया जाता है।

वस्तु का दुहरा चरित्र वस्तु को उत्पन्न करने वाले श्रम के दुहरे स्वभाव के कारण होता है।

पूंजीवादी समाज में श्रम का दुहरा स्वभाव वस्तु-उत्पादन का अन्तर्विरोध जाहिर करता है। यह अन्तर्विरोध निजी और सामाजिक श्रम में होता है।

समाजवादी समाज में स्थिति बिलकुल भिन्न होती है। समाजवादी समाज का आर्थिक आधार सामाजिक स्वामित्व होता है। मजूरी देकर मजदूरों को काम पर लगाने की व्यवस्था खत्म हो जाती है। इसलिए श्रम के सामाजिक और निजी स्वरूप का अन्तर्विरोध खत्म हो जाता है। समाजवाद के अन्तर्गत श्रम निजी नहीं, बल्कि प्रत्यक्षतः सामाजिक हो जाता है। समाजवादी समाज में लोगों का श्रम सारे देश के पैमाने पर नियोजित और संगठित मानवीय क्रिया होता है। समाजवादी श्रम के स्वरूप में इस परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पादन प्रक्रिया के दौरान कारखाना और राजकीय या सामूहिक फार्म आदि में लगाया गया श्रम प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक श्रम जान पड़ता है।

समाजवादी चरण में यह प्रत्यक्ष सामाजिक श्रम मूल्य और उसके अन्य रूपों में अप्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त होता है।

समाजवाद के अन्तर्गत किसी भी वस्तु के मूल्य का परिमाण उसके उत्पादन के लिए लगाये गये सामाजिक तौर पर आवश्यक श्रम-काल से निर्धारित होता है।

वस्तु के मूल्य का परिमाण

सामाजिक तौर पर आवश्यक श्रम-काल का मतलब उत्पादन की उस शाखा में उस वस्तु की बहुसंख्यक इकाइयों को उत्पन्न करने वाले उद्यमों द्वारा व्यय किया गया औसत श्रम-काल है। ये उद्यम उत्पादन की औसत स्थितियों में काम करते हैं।

बीच खरीद-बिक्री के माध्यम से होता है। इस प्रकार उत्पादन के साधन वस्तुओं
रूप में होते हैं।

अन्तिम, विदेशी व्यापार के आवर्त्त द्वारा समाजवादी राज्य और अन्य देशों
बीच वस्तु-सम्बध उत्पन्न होते हैं।

समाजवादी समाज में वस्तु-उत्पादन उत्पादक शक्तियों के विकास और
सके माध्यम से समाजवाद से कम्युनिज्म की ओर संक्रमण को प्रोत्साहित करता
। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में कहा गया है कि "जन-सम्पत्ति
कम्युनिस्ट रूप और कम्युनिस्ट वितरण-व्यवस्था के स्थापित होने पर वस्तु-मुद्रा
म्बध आर्थिक तौर पर दकियानूसी हो जायेंगे और अन्ततोगत्वा लुप्त हो
येंगे।"¹

स्तु का उपयोग मूल्य और मूल्य

जैसा कि हम जानते हैं, वस्तु के दो पक्ष, दो गुण-धर्म होते हैं : उपयोग मूल्य और मूल्य। समाजवाद के अन्तर्गत पूंजीवादी स्थितियों की तुलना में इन दो गुणधर्मों के बिलकुल भिन्न अर्थ होते हैं।

पूंजीपति की दिलचस्पी वस्तु के मूल्य में होती है। इसी से अधिशेष मूल्य
प्त किया जा सकता है। उपयोग मूल्य का उत्पादन उसी हद तक होता है जिस
द तक वह अधिशेष मूल्य के उत्पादन के लिए आवश्यक रहता है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था में वस्तु के उपयोग मूल्य का एक विशेष महत्व
ता है। समाजवादी समाज उपयोग मूल्य और वस्तुओं की कोटि उन्नत करता
हता है। समाजवादी समाज उपयोग मूल्यों की किस्म और मात्रा का ही
योजन नहीं करता, बल्कि वस्तुओं की अच्छी किस्मों के लिए भी कोशिश
ता है।

समाजवादी समाज के लिए वस्तु का मूल्य पक्ष भी महत्वपूर्ण है। उत्पादन
नियोजन न सिर्फ भौतिक सूचकाकों बल्कि मुद्रा (मूल्य) सूचकाकों के रूप
होता है। मुद्रा-सूचकाकों का इस्तेमाल वस्तुओं के मूल्य में व्यवस्थित
ौती करने और उसके आधार पर वस्तुओं की कीमतें कम करने
य को निरन्तर बढ़ाने और समाजवादी समाज के सदस्यों की
से सतुष्ट करने के लिए होता है।

समाजवादी उत्पादन में उपयोग मूल्य और मू
रोध नहीं होता, क्योंकि निजी और सामाजिक
हालांकि इ व नहीं है
य और

किन्तु समाजवाद के अन्तर्गत मुद्रा का व्यापक तुल्यांक के रूप में एक नया गुणात्मक स्वरूप होता है। पूंजीवाद में मुद्रा मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण और मुट्ठीभर लोगों द्वारा बाकी लोगों पर अधिकार बनाये रखने का साधन है। किन्तु समाजवादी समाज में मुद्रा सदस्यों की जरूरतों को अच्छी तरह संतुष्ट करने के उद्देश्य से समाजवादी उत्पादन को आगे बढ़ाने और उन्नत करने का साधन है। समाजवादी समाज में मुद्रा समाजवादी उत्पादन-सम्बंधों को जाहिर करती है। वह वहां पूंजी नहीं बन सकती। उसका प्रयोग सामाजिक माल के उत्पादन और वितरण का लेखा-जोखा रखने और उनको नियंत्रित करने के साधन के रूप में होता है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नियोजन के लिए यह आर्थिक उपकरण है।

समाजवादी समाज में मुद्रा के स्वरूप में आमूल परिवर्तन होने और उसका सामाजिक-आर्थिक स्वरूप बदल जाने के कारण मुद्रा के कार्य भी बदल जाते हैं।

मुद्रा के कार्य

मुद्रा का बुनियादी कार्य वस्तुओं के मूल्य का मापदण्ड है। इसका मतलब है कि अन्य सभी वस्तुओं का मूल्य मुद्रा के द्वारा मापा जाता है। मुद्रा यह कार्य तभी सम्पादित कर सकती है, जब वह स्वयं वस्तु के रूप में हो और उसका अपना मूल्य हो। सोना ही इस प्रकार की वस्तु है।

मुद्रा के रूप में अभिव्यक्त वस्तु के मूल्य को वस्तु की कीमत कहते हैं। सोवियत मुद्रा बैंक और ट्रेजरी नोट के रूप में है, जो सोने के बदले कार्य करती है। सोवियत संघ में प्रमुख मुद्रा इकाई सोवियत रूबल है। कीमतें रूबल में मापी जाती हैं। एक सोवियत रूबल में ०.९८७४१२ ग्राम सोना होता है।

समाजवाद में मुद्रा मूल्य का मापदण्ड होती है, इसीलिए श्रम और उपभोग की मात्रा का नियंत्रण सम्भव हो जाता है। मूल्य के मापदण्ड के रूप में मुद्रा का इस्तेमाल राज्य द्वारा वस्तुओं की कीमतों के नियोजन के लिए होता है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था में मुद्रा प्रचलन का एक साधन होती है। इस रूप में वह व्यापार में वस्तु-प्रचलन के माध्यम के रूप में कार्य करती है। उसका नियोजन और नियमन समाजवादी राज्य करता है।

समाजवाद में मुद्रा भुगतान का भी साधन होती है। यह कार्य मुख्यतया औद्योगिक, दफ्तर के कर्मचारियों और अन्य मेहनतकशों को मजूरी देने, सामूहिक फार्म के किसानों की मौद्रिक आय, ऋण के पुनर्भुगतान, कर-भुगतान, आदि की प्रक्रिया में स्पष्ट देखा जाता है।

राज्य द्वारा भुगतान के साधन के रूप में मुद्रा का इस्तेमाल राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में वित्तीय और साख-सम्बंधों को सचालित करने और समाजवादी उद्यमों के कार्य के ऊपर वित्तीय नियंत्रण रखने के लिए होता है।

विभिन्न उद्यमों में वस्तु की एक इकाई के उत्पादन के लिए लगाया गया समय व्यक्तिगत श्रम-काल कहा जाता है।

पूंजीवाद के अन्तर्गत सामाजिक श्रम का निर्माण बाजार में बिना किसी नियम या आधार के होता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था में राज्य वस्तुगत आर्थिक स्थितियों के आधार पर काम करता है और श्रम-उत्पादकता की वृद्धि के लिए नियोजन करता है। वह श्रम की लागत-दर को निश्चित करता है और इस प्रकार सामाजिक तौर पर आवश्यक श्रम-काल की मात्रा घटाने के लिए प्रयत्नशील होता है।

वस्तु का मूल्य कम करने के लिए उसके उत्पादन पर व्यय होने वाला श्रम भी घटाना होगा। यह किस प्रकार होगा?

वस्तु के मूल्य का परिमाण श्रम-उत्पादकता से प्रभावित होता है। उत्पादकता जितनी ही अधिक होगी, वस्तु का प्रति इकाई मूल्य उतना ही कम होगा। इसलिए श्रम-उत्पादकता को बढ़ाने का आन्दोलन वस्तु के मूल्य को घटाने का भी आन्दोलन है।

कच्चे मालों और अन्य सामानों पर होने वाली व्यय-राशि भी वस्तु के मूल्य को प्रभावित करती है। वस्तु के मूल्य में व्यय किया गया हर प्रकार का—वर्तमान और विगत—श्रम शामिल होता है। विगत श्रम से तात्पर्य सामानों, मशीनों औजारों, इमारतों, आदि के निर्माण में लगाये गये श्रम से है। इसलिए वस्तु के मूल्य को कम करने के लिए आवश्यक है कि हम दोनों प्रकार के श्रम के व्यय में मितव्ययिता बरतें।

श्रम और उत्पादन तथा तकनीकी उपलब्धियों के आधुनिक तरीकों के प्रसार और प्रयोग जैसे कदम वस्तु के प्रति इकाई उत्पादन के लिए सामाजिक तौर पर आवश्यक श्रम-काल को घटा सकते हैं। अनुभव और तकनीकी ज्ञान के आदान-प्रदान और पारस्परिक सहायता से पीछे छूटे हुए उद्यम अग्रगामी उद्यमों के स्तर तक पहुंच सकते हैं।

२. मुद्रा और समाजवादी समाज में उसके कार्य

वस्तु-उत्पादन और वस्तु-प्रचलन के कारण समाजवाद में भी मुद्रा की आवश्यकता पड़ती है। उत्पादन प्रक्रिया के दौरान सामाजिक श्रम द्वारा उत्पन्न वस्तु का मूल्य मुद्रा के रूप में अभिव्यक्त किया है। स्पष्ट है कि समाजवाद में मुद्रा का महत्व व्यापक तुल्यांक (यानी वह अन्य सभी वस्तु को अभिव्यक्त करती है) का है।

मुद्रा का स्वरूप

स्टेट बैंक की चालू नकद मुद्रा-योजना स्टेट बैंक को प्राप्त होने वाले सभी सम्भावित नकद भुगतानो को दिखलाती है। इन सम्भावित नकद भुगतानो मे व्यवसायी सगठनो से प्राप्त होने वाली मुद्रा-राशि (कुल जमा के ८० प्रतिशत से भी अधिक), सार्वजनिक सेवा-उद्यमो, परिवहन, सचार, आदि से प्राप्त होने वाली राशि, कर-भुगतान, बचत बैंक की जमा राशि, इत्यादि है। योजना मे मजदूरो की मजूरी, सामूहिक फार्म के किसानो को कार्य-दिवस इकाइयो के बदले मिलने वाले भुगतान, सामूहिक फार्म और उनके सदस्यों को उत्पादन की राजकीय खरीद के बदले मिलने वाले भुगतान, पेशनयाफ्ता लोगो को मिलने वाले भुगतान, भत्ते, इत्यादि के रूप मे स्टेट बैंक द्वारा दी जाने वाली मुद्रा-राशि दिखलायी जाती है। चालू नकद मुद्रा-योजना मे आय और व्यय के निर्धारित अनुपात के माध्यम से स्टेट बैंक प्रचलन के क्षेत्र मे मुद्रा की राशि का नियमन करता है।

समाजवाद के अन्तर्गत मुद्रा-प्रचलन का नियोजित सचालन प्रचलन व्यवस्था को मजबूत बनाने और मुद्रा को स्थायित्व प्रदान करने मे सहायक होता है।

समाजवाद के अन्तर्गत मुद्रा का स्थायित्व न सिर्फ आरक्षित स्वर्ण-कोष से सम्भव है, बल्कि बहुत बडी मात्रा मे वस्तुओ को निश्चित, स्थायी कीमतो पर प्रदान करने से सम्भव है। इसीलिए सोवियत करेंसी विश्व मे सबसे स्थायी करेंसी है। समाजवादी उत्पादन के विकास के साथ सोवियत रूबल प्रतिष्ठा प्राप्त करता जा रहा है। इस दिशा मे १ जनवरी, १९६१ से कीमतो के पैमाने मे दस गुनी वृद्धि और रूबल के स्वर्ण अश की वृद्धि महत्त्वपूर्ण कदम हैं।

३. समाजवादी अर्थव्यवस्था में मूल्य का नियम

समाजवाद के अन्तर्गत वस्तु-उत्पादन होता है। इसका मतलब है कि समाजवादी अर्थव्यवस्था मे मूल्य का नियम काम करता है।

समाजवाद के अन्तर्गत मूल्य के नियम का सारतत्व यह है वस्तुओं का उत्पादन एव विनिमय उनमे निहित सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम की मात्रा के अनुसार होना है।

ज्योही वस्तु-उत्पादन शुरू हुआ, मूल्य का नियम काम करने लगा। वस्तु-उत्पादन के विकसित होने के साथ-साथ मूल्य के नियम का प्रभाव-क्षेत्र भी विस्तृत हो गया। पूजीवाद के अन्तर्गत मूल्य का नियम व्यापक हो गया है। पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे उत्पादन की विभिन्न शाखाओ मे पूजी एव श्रम-शक्ति का उत्पादन, प्रवाह एव वितरण इसी के द्वारा नियमित होता है।

समाजवाद में मुद्रा समाजवादी संचय और बचत का साधन होती है। कार्य तब होता है, जब मेहनतकश जनता के साधन और उसकी आय (जो तत्‍ इस्तेमाल में नहीं है) और समाजवादी उद्यमों तथा विभिन्न सगठनों की राशि मुद्रा-राशि बैंक में जमा की जाती है तथा संचय के लिए प्रयुक्त होती है। बच बैंकों में मेहनतकश जनता अपनी बचत को मुद्रा के रूप में जमा करती है।

समाजवादी परिस्थितियों में पूंजीवाद की तरह संचित मुद्रा के कार मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण नहीं होता।

समाजवादी समाज में सोना विश्व करेंसी की भूमिका अदा करता है वह भुगतान का अन्तर्राष्ट्रीय साधन, सर्वदेशीय क्रय-माध्यम और आरक्षित को का कार्य करता है।

समाजवाद के अन्तर्गत मुद्रा के ये ही कार्य हैं। ये कार्य एक-दूसरे से अल नहीं हैं, बल्कि एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। कार्यों के इस पारस्परि सम्बध में हम मुद्रा को एक व्यापक समतुल्य सूचकांक के रूप में देखते हैं औ समाजवादी अर्थव्यवस्था में इसकी भूमिका को महसूस करते हैं।

समाजवाद में मुद्रा-प्रचलन

सामान्यतया मुद्रा सर्वदेशीय तुल्यांक की भूमिका तभी अदा कर सकत है, जब मुद्रा की प्राप्त राशि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था क वास्तविक जरूरतों के अनुकूल हो। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थ इन वास्तविक जरूरतों को मुद्रा प्रचलन के माध्यम और भुगतान के साधन के रूप में पूरा करती है।

प्रचलन के लिए अपेक्षित मुद्रा-राशि प्रचलन क्षेत्र में उपस्थित वस्तुओं की कीमतों के योग को मुद्रा के प्रचलन वेग से विभाजित करने पर प्राप्त होती है।

देश के सामान्य आर्थिक जीवन को बनाये रखने के लिए वस्तुओं की कुल कीमतों और प्रचलन में रहने वाली मुद्रा की कुल राशि में सही सन्तुलन रहना अत्यन्त आवश्यक है। मुद्रा-प्रचलन के नियम के आधार पर राज्य मुद्रा-प्रचलन का नियमन करता है और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को विकसित करने के लिए उसका नियोजित प्रयोग करता है। प्रचलन के क्षेत्र में कार्य करने वाली मुद्रा का नियमन राजकीय वित्त और नकद मुद्रा तथा साख-योजनाओं द्वारा होता है।

जनसख्या की आय और वस्तु-आवर्त्त की मात्रा तथा जनसख्या द्वारा खरीदी जाने वाली सेवाओं की मात्रा का अनुपात मुद्रा-प्रचलन को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण तत्व है। स्टेट बैंक की चालू नकद मुद्रा-योजना सरकार की स्वीकृति के लिए जनता की मौद्रिक आय और उसके व्यय के सन्तुलन के आधार पर बनती है।

स्टेट बैंक की चालू नकद मुद्रा-योजना स्टेट बैंक को प्राप्त होने वाले सभी सम्भावित नकद भुगतानों को दिखलाती है। इन सम्भावित नकद भुगतानों में व्यवसायी संगठनों से प्राप्त होने वाली मुद्रा-राशि (कुल जमा के ८० प्रतिशत से भी अधिक), सार्वजनिक सेवा-उद्यमों, परिवहन, संचार, आदि से प्राप्त होने वाली राशि, कर-भुगतान, बचत बैंक की जमा राशि, इत्यादि हैं। योजना में मजदूरों की मजूरी, सामूहिक फार्म के किसानों को कार्य-दिवस इकाइयों के बदले मिलने वाले भुगतान, सामूहिक फार्म और उनके सदस्यों को उत्पादन की राजकीय खरीद के बदले मिलने वाले भुगतान, पेंशनयाफ्ता लोगों को मिलने वाले भुगतान, भत्ते, इत्यादि के रूप में स्टेट बैंक द्वारा दी जाने वाली मुद्रा-राशि दिखलायी जाती है। चालू नकद मुद्रा-योजना में आय और व्यय के निर्धारित अनुपात के माध्यम से स्टेट बैंक प्रचलन के क्षेत्र में मुद्रा की राशि का नियमन करता है।

समाजवाद के अन्तर्गत मुद्रा-प्रचलन का नियोजित संचालन प्रचलन व्यवस्था को मजबूत बनाने और मुद्रा को स्थायित्व प्रदान करने में सहायक होता है।

समाजवाद के अन्तर्गत मुद्रा का स्थायित्व न सिर्फ आरक्षित स्वर्ण-कोष से सम्भव है, बल्कि बहुत बड़ी मात्रा में वस्तुओं को निश्चित, स्थायी कीमतों पर प्रदान करने से सम्भव है। इसीलिए सोवियत करेंसी विश्व में सबसे स्थायी करेंसी है। समाजवादी उत्पादन के विकास के साथ सोवियत रूबल प्रतिष्ठा प्राप्त करता जा रहा है। इस दिशा में १ जनवरी, १९६१ से कीमतों के पैमाने में दस गुनी वृद्धि और रूबल के स्वर्ण अंश की वृद्धि महत्वपूर्ण कदम हैं।

३. समाजवादी अर्थव्यवस्था में मूल्य का नियम

समाजवाद के अन्तर्गत वस्तु-उत्पादन होता है। इसका मतलब है कि समाजवादी अर्थव्यवस्था में मूल्य का नियम काम करता है।

समाजवाद के अन्तर्गत मूल्य के नियम का सारतत्व यह है . वस्तुओं का उत्पादन एवं विनिमय उनमें निहित सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम की मात्रा के अनुसार होता है।

ज्योंही वस्तु-उत्पादन शुरू हुआ, मूल्य का नियम काम करने लगा। वस्तु-उत्पादन के विकसित होने के साथ-साथ मूल्य के नियम का प्रभाव-क्षेत्र भी विस्तृत हो गया। पूंजीवाद के अन्तर्गत मूल्य का नियम व्यापक हो गया है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन की विभिन्न शाखाओं में पूंजी एवं श्रम-शक्ति का उत्पादन, प्रवाह एवं वितरण इसी के द्वारा नियमित होता है।

समाजवाद में मूल्य का नियम उसी प्रकार नहीं लागू होता जिन प्रकार पूंजीवाद मे। समाजवादी व्यवस्था मे उसका कार्य-क्षेत्र सीमित होता है, क्योंकि वहां उत्पादन के साधनों पर समाजवादी स्वामित्व होता है और अर्थव्यवस्था नियोजित होती है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था मे मूल्य का नियम उत्पादन और राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की विभिन्न शाखाओ मे उत्पादन के साधनों और श्रम के वितरण का नियामक नही है। ये सब कार्य राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नियोजित, सानुपातिक विकास के नियम के आधार पर राजकीय नियोजन समितियां करती हैं। समाजवाद मे मूल्य के नियम का परिचालन क्षेत्र और उसके परिचालन का तरीका भी भिन्न होता है। वह एक बाह्य शक्ति के रूप मे लोगो को अपने काबू मे नही रखता।

समाजवादी अर्थव्यवस्था के नियोजन मे इस बात पर ध्यान देना होगा कि किस प्रकार मूल्य का नियम कार्य करता है। सर्वोपरि कीमत निर्धारण के लिए मूल्य के नियम का प्रयोग किया जाता है। मूल्य का नियम कीमत-यंत्र के माध्यम से काम करता है। समाजवादी समाज मे कीमतों का निर्धारण अपने आप नही होता, बल्कि उनका नियोजन होता है। वस्तुओ के उत्पादन के लिए लगाये गये सामाजिक तौर पर आवश्यक श्रम की मात्रा के आधार पर (यानी मूल्य के आधार पर) समाजवादी राज्य कीमतों का निर्धारण करता है।

राष्ट्रीय आर्थिक कारणो से समाजवादी राज्य वस्तुओ की कीमतें उनके मूल्य से ऊपर या नीचे रखता है। अपनी कीमत-नीति के द्वारा राज्य अर्थव्यवस्था की एक शाखा की आय के एक हिस्से का दूसरी शाखाओ मे द्रुत विकास के लिए इस्तेमाल करता है। फलस्वरूप कीमत और मूल्य के परिवर्तन को राज्य पहले से ही नियोजित करता है।

उदाहरण के लिए, उपभोक्ता वस्तुओ की कीमतें निश्चित करते समय राज्य न सिर्फ उनके मूल्य को आधार बनाता है, बल्कि पूर्ति और माग के अनुपात पर भी ध्यान देता है।

समाजवादी राज्य मूल्य के नियम का प्रयोग उत्पादन की वृद्धि तेज करने, श्रम-उत्पादकता बढाने और उत्पादन लागत कम करने तथा उत्पादन को लाभप्रद बनाने के लिए करता है।

४. समाजवाद के अन्तर्गत व्यापार

व्यापार का स्वरूप और उसकी भूमिका

समाजवाद के अन्तर्गत समाजवादी समाज मे श्रम द्वारा वस्तुए उत्पन्न होती हैं। इसलिए उत्पादन और उपभोग के बीच कड़ी के रूप मे वस्तु-प्रचलन आवश्यक है।

समाजवाद के अन्तर्गत वस्तु-प्रचलन व्यापार का रूप लेता है। व्यापार के माध्यम से समाजवादी उद्यमों, शहर और गांव तथा समाजवादी उत्पादन एवं जन-उपभोग के बीच सम्बंध स्थापित किये जाते हैं। इस प्रकार मेहनतकश जनता की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को सन्तुष्ट किया जाता है।

समाजवादी व्यापार और पूंजीवादी व्यापार में मौलिक विभेद है।

समाजवादी व्यापार उत्पादन के साधनों के सामाजिक स्वामित्व पर आधारित होता है। समाजवादी देशों में इसीलिए व्यापार नियोजित रहता है। राज्य व्यापार के आवर्त, कीमत, प्रचलन-लागत, आदि का नियोजन करता है। समाजवाद के अन्तर्गत व्यापार का उद्देश्य मुनाफा कमाना और अन्य लोगों को बर्बाद कर कुछ लोगों को धनी बनाना नहीं है। समाजवादी व्यापार को पूंजीवादी व्यापार की तरह विक्रय-संकटों का सामना नहीं करना पड़ता है।

समाजवादी उत्पादन के विकास, घरेलू बाजार के विस्तार, वस्तुओं की किस्मों को सुधारने, आदि में व्यापार बहुत सहायक है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के राजकीय क्षेत्र के भीतर और राजकीय क्षेत्र तथा सहकारी क्षेत्र के बीच आर्थिक कड़ी के रूप में समाजवादी राज्य समाजवादी पुनरुत्पादन की प्रक्रिया को [illegible] बढ़ाता है।

श्रम के अनुसार वितरण के लिए व्यापार एक महत्वपूर्ण [illegible] है। समाजवादी व्यापार के जरिए मेहनतकश जनता अपने श्रम के [illegible] राशि से अपनी जरूरत की उपभोक्ता वस्तुएं खरीदती है। [illegible] उपभोग और उत्पादन पर व्यापार का [illegible] है। [illegible] उपभोक्ता वस्तुएं [illegible] में सहायक होता है और [illegible] [illegible]

[illegible] व्यापार इस की विस्तार, [illegible] और [illegible] [illegible] महत्वपूर्ण [illegible] है।

[illegible]

हाथो मे होता है। उदाहरण के लिए, १९६५ में सोवियत खुदरा व्यापार आवर्त्त का ६७·३ प्रतिशत राजकीय व्यापार के दायरे में था। राजकीय व्यापारिक सगठन मुख्य रूप से शहरो और औद्योगिक केन्द्रों की जनता की सेवा करते हैं।

सहकारी व्यापार का सचालन मुख्य रूप से उपभोक्ता सहकारी समितियो के व्यापारिक उद्यमो द्वारा होता है। उपभोक्ता सहकारी समितियां सहकारी व्यापार का करीब ६० प्रतिशत सचालित करती हैं। वे ग्रामीण जनता को तैयार माल देती हैं और कृषि उत्पादन को खरीदती और कमीशन लेकर बेचती हैं। १९६२ मे सोवियत सघ मे सहकारी व्यापार मे कुल खुदरा व्यापार आवर्त्त का २८·४ प्रतिशत था।

राजकीय और सहकारी व्यापार व्यवस्थाओ के अन्तर्गत सार्वजनिक भोजन-गृह—कारखानो के भोजनालय, सार्वजनिक होटल, रेस्तरा, आदि भी आते हैं। राजकीय और सहकारी व्यापार सयुक्त रूप से १९६२ मे देश के कुल व्यापार आवर्त्त के ९५·७ प्रतिशत को सचालित करते थे। ये दो प्रकार के व्यापार मिलकर **संगठित बाजार** बनाते हैं। इसके अतिरिक्त सामूहिक फार्म व्यापार के रूप मे एक असगठित बाजार भी है।

सामूहिक फार्म व्यापार का सचालन सामूहिक फार्मों और उनके सदस्यो के द्वारा होता है जो अपने अतिरिक्त उत्पादन को जनता के हाथो माग और पूर्ति द्वारा निर्धारित कीमतो पर बेचते हैं। इन कीमतों के स्तर को राजकीय और सहकारी व्यापार आर्थिक दृष्टि से प्रभावित करते हैं।

राजकीय और सहकारी व्यापार के विस्तार के साथ असगठित बाजार का महत्व घटता है। १९४० मे कुल व्यापार आवर्त्त के १४·३ प्रतिशत पर सामूहिक फार्म बाजार का अधिकार था, किन्तु १९५५ मे ८.७ प्रतिशत और १९६२ मे ४.३ प्रतिशत पर अधिकार था।

व्यापार में खुदरा कीमतें और प्रचलन-लागत

समाजवाद मे दो प्रकार के बाजार होने के कारण दो प्रकार की कीमतें होती हैं: सगठित बाजार की कीमतें और असंगठित बाजार की कीमतें।

सोवियत सघ में सगठित बाजार की कीमतो के अन्तर्गत उद्योग और व्यापारिक सगठनो की थोक कीमतें, राजकीय और सहकारी व्यापारिक उद्यमों की खुदरा कीमतें और सामूहिक फार्मों और उनके सदस्यो द्वारा बेची जाने वाली वस्तुओ के लिए राज्य द्वारा दी जाने वाली खरीद कीमतें आती हैं।

राजकीय खुदरा कीमतें (जनता को राज्य द्वारा बेची जाने वाली तैयार वस्तुओ तथा खाद्य पदार्थों की कीमतें) समाजवादी व्यापार व्यवस्था मे प्रमुख

दा करती हैं। उनका नियोजन और निर्धारण प्रत्येक प्रकार की वस्तु के
य द्वारा होता है।

बहुसंख्यक तैयार वस्तुओ के लिए सारे सोवियत सघ मे एक ही कीमतें
किन्तु कतिपय खाद्य पदार्थों की कीमतें विभिन्न क्षेत्रो और मौसमो मे
लग होती हैं।

सगठित बाजार मे खुदरा कीमतो में अपने-आप उतार-चढाव नही होता
य तात्कालिक आर्थिक और राजनीतिक कार्यों की पूर्ति के लिए उनमे
तानुसार परिवर्तन करता है। किन्तु राज्य मनमाने ढग से कीमतें निश्चित
ता। वह वस्तुओं के मूल्य पर भी ध्यान देता है।

समाजवादी उत्पादन में निरन्तर वृद्धि और उत्पादन लागत मे कमी और
ादकता मे लगातार वृद्धि के फलस्वरूप खुदरा कीमतों मे नियोजित रूप
करना सम्भव हो जाता है। समाजवाद के अन्तर्गत खुदरा कीमतों मे लगा-
ती के द्वारा लोगो की खुशहाली को बढाया जाता है।

प्रचलन-लागत के बिना कोई व्यापार नही चल सकता। समाजवादी
में ये लागतें पूजीवादी प्रचलन-लागतो से बिल्कुल भिन्न होती हैं। समाज-
अन्तर्गत प्रचलन-लागत मे वस्तुओ को उनके उत्पादन-स्थान से उपभोक्ता
हुचाने मे व्यापारिक उद्यमो और सगठनो द्वारा किये गये व्यय आते हैं। ये
यापारिक उद्यमो मे काम करने वाले लोगो की मजूरी, परिवहन-व्यय, व्यापा-
सगठनो की देखरेख और भडार की सुविधाओं, पैकिंग लागत, साख पर ली
दा के सूद, आदि के रूप मे होते हैं। प्रचलन-लागत की माप व्यापार आवर्त के
त के रूप मे होती है। उसका नियोजन और निर्धारण राज्य करता है।

प्रचलन-लागत मे कटौती समाजवादी व्यापार की विशेषता है। उदाहरण
ए, सोवियत सघ मे १६२८ मे प्रचलन-लागत व्यापार आवर्त का १६.७
त, १६४० मे ६.७ प्रतिशत और १६६२ मे ७.१ प्रतिशत थी।

प्रचलन लागत मे कटौती व्यापारिक सगठनो के कार्यों के स्तर का गुणात्मक
है। इस कटौती के फलस्वरूप समाजवादी सचय बढ़ता है।

समाजवादी व्यापार मे प्रचलन लागत पूजीवादी देशो की तुलना मे काफी
है। उदाहरण के लिए, अमरीका मे प्रचलन-लागत कुल खुदरा कीमतों की
तिहाई है।

विदेश व्यापार समाजवादी देशो मे घरेलू व्यापार के साथ-साथ विदेश
व्यापार भी चलता है। विदेश व्यापार द्वारा श्रम के
अन्तर्राष्ट्रीय विभाजन से लाभ प्राप्त हो सकता है।

पूंजीवादी देशों में विदेश व्यापार मुख्य रूप से निजी विदेशी एकाधिकार चलाते हैं। समाजवादी देशो मे विदेश व्यापार का सचालन राज्य करता है। सोवियत राजसत्ता की पहली आज्ञप्तियो मे से एक आज्ञप्ति के द्वारा विदेश व्यापार पर राजकीय एकाधिकार कायम किया गया। विदेश व्यापार पर एकाधिकार का मतलव है कि वस्तुओ के आयात और निर्यात से सम्बधित सारे व्यापारिक कार्य राज्य सम्पादित करे।

विदेश व्यापार पर एकाधिकार रहने से समाजवादी देश पूंजीवादी विश्व से आर्थिक तौर पर स्वतन्त्र रहते हैं। उनका घरेलू बाजार विदेशी पूजी से सुरक्षित रहता है। साथ ही विदेश व्यापार पर एकाधिकार समाजवादी देशो के बीच आर्थिक सहयोग बढाता है।

विदेश व्यापार पूंजीवादी दुनिया के देशों के साथ आर्थिक सम्बन्धो का एक महत्वपूर्ण रूप है। समाजवादी देश श्रम के अन्तर्राष्ट्रीय विभाजन के आधार पर परस्पर व्यापार बढाने के लिए यथाशक्ति प्रयास करते हैं, किन्तु वे पूंजीवादी देशों के साथ भी व्यापार करते हैं। समाजवादी देशों का विदेश व्यापार राष्ट्रीय प्रभुसत्ता की प्रतिष्ठा, व्यापार करने वाले देशों की पूर्ण पारस्परिक समानता और बिना राजनीतिक शर्तों और मजबूरी के पारस्परिक लाभ पर आधारित होता है।

सोवियत सघ और अन्य समाजवादी देशों की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओ के निरन्तर विकास के फलस्वरूप विदेश व्यापार का आवर्त्त लगातार विस्तृत होता जा रहा है।

अध्याय १४

समाजवाद के अन्तर्गत कार्य के अनुसार वितरण और भुगतान के रूप

१. कार्य के अनुसार वितरण का आर्थिक नियम

हर उत्पादन व्यवस्था के अनुकूल उसकी वितरण व्यवस्था भी होती है। वितरण-सम्बंध उत्पादन-सम्बंधो के ही अनुकूल होते हैं।

पूंजीवाद के अन्तर्गत वितरण शोषक वर्गों के हित मे होता है। वे मजदूरो के श्रम से उत्पन्न सामाजिक उत्पादन का एक बडा भाग अधिशेष मूल्य के रूप मे हडप जाते हैं। वितरण कार्य की मात्रा के अनुसार नही, अपितु लगायी गयी पूंजी की मात्रा के अनुसार होता है।

समाजवाद के अन्तर्गत सामाजिक उत्पादन का वितरण किये गये कार्य के अनुसार होता है। वितरण का यह रूप एक वस्तुगत आवश्यकता है। उत्पादन एक तरफ उत्पादन के साधनों के समाजवादी स्वामित्व के आधार पर चलता है और दूसरी ओर समाजवादी दौर मे उत्पादक शक्तिया इतनी विकसित नही रहती हैं कि भौतिक धन का वितरण जरूरतो के अनुसार हो सके। इसके अतिरिक्त, श्रम जीवन की प्रधान आवश्यकता नही होता, बल्कि इस अवस्था मे भी निर्वाह का साधन होता है। फलस्वरूप श्रम के लिए समुचित पुरस्कार देना जरूरी होता है। अन्त मे, समाजवाद के अन्तर्गत मानसिक और शारीरिक कार्य तथा दक्ष और साधारण कार्य का अन्तर बना रहता है।

समाजवाद मे कार्य ही समाज मे व्यक्ति के स्थान और उसकी खुशहाली को निर्धारित करता है। इस तरह समाज के हर सदस्य द्वारा किये गये कार्य की मात्रा और किस्म ही उपभोक्ता वस्तुओ के वितरण का मापदण्ड हो सकती हैं।

कार्य के अनुसार वितरण समाजवादी समाज का एक आर्थिक नियम

कार्य के अनुसार वितरण पूंजीवाद की तुलना में समाजवाद की एक मह
पूर्ण विशेषता है। कार्य के अनुसार भौतिक धन के वितरण में बिना कमायी हुई अ
और परजीविता के लिए कोई स्थान नहीं है। परजीविता और बिना कमायी
आय उत्पादन और मेहनतकश जनता की जरूरतों की संतुष्टि के लिए वि
साधनो का इस्तेमाल नही होने देती। यह सिद्धान्त उत्पादन के विकास को प्रोत्
हित करता है। यह मेहनतकश जनता को अपनी क्षमताओं के विकास के लि
असीमित अवसर प्रदान करता है। लेनिन ने बताया कि "काम नही करने वाल
नही खायेगा।" इस सिद्धान्त में "समाजवाद का आधार, उसकी शक्ति का अपर
जेय स्रोत और उसकी अन्तिम विजय की निश्चित उम्मीद निहित हैं।"[1]

काम के अनुसार वितरण के नियम का मतलब है कि १) व्यक्तिग
उपभोग की वस्तुओ के भंडार का वितरण किये गये काम की मात्रा और किस्म के
अनुसार होगा। इसके फलस्वरूप मेहनतकश जनता की अपने काम के घटो के पूर्ण
और अत्यन्त कुशल इस्तेमाल में दिलचस्पी होगी। २) दक्ष कार्य के लिए साधा
रण कार्य की अपेक्षा (समान श्रम-काल के लिए) अधिक मजूरी मिलेगी। इस
तरह मेहनतकश जनता को अपनी तकनीकी योग्यता बढाने के लिए प्रोत्साहन
मिलेगा। ३) सामान्य स्थितियों की अपेक्षा उत्पादन की कठिन शाखाओ (लोह
और इस्पात उद्योग, कोयला खानों और अन्य उद्योगों) में श्रम करने वालों को
अधिक भौतिक प्रोत्साहन मिलेगा। इस प्रकार अतिरिक्त कार्य के लिए भौतिक
मुआवजा मिलेगा।

वितरण का यह आर्थिक नियम प्रत्येक व्यक्ति को उसके काम की मात्रा
और किस्म के अनुसार प्रतिफल देता है। सभी नागरिकों को समान कार्य के लिए
लिंग, उम्र, जाति या राष्ट्रीयता का बिना ख्याल किये समान पारिश्रमिक मिलता है।

वितरण का यह नियम कम्युनिस्ट निर्माण की सम्पूर्ण अवधि में काम
करता है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में बताया गया है कि
"आने वाले बीस वर्षों में काम के अनुसार भुगतान का नियम मजदूरों की भौतिक
और सांस्कृतिक आवश्यकताओं की संतुष्टि का प्रमुख स्रोत रहेगा।"[2] भौतिक धन
और सांस्कृतिक मूल्यों की विपुलता हो जाने और कार्य के जीवन की प्रमुख आव-
श्यकता बन जाने पर ही कम्युनिस्ट वितरण की ओर संक्रमण होगा।

समग्र सामाजिक उत्पादन के सिर्फ एक हिस्से का ही वितरण समाजवाद
के अन्तर्गत काम के अनुसार होता है।

---

१. लेनिन, "संकलित रचनाएं", खंड २, पृष्ठ ७६७।
२. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ५३८।

मार्क्स ने अपनी रचना गोथा कार्यक्रम की आलोचना में बताया कि समाजवादी समाज के कार्य करने और सामान्य रूप से विकसित होने के लिए आवश्यक है कि क) उत्पादन के साधनों के पुनस्स्थापन, ख) उत्पादन के विस्तार, ग) आरक्षण या बीमा कोष, घ) स्कूल, अस्पताल, आदि के प्रशासकीय व्यय और च) कार्य करने में अक्षम लोगों के निर्वाह के लिए कोष के वास्ते कुल सामाजिक उत्पादन से समुचित भाग अलग कर दिया जाये।

देश की प्रतिरक्षा के लिए आवश्यक भाग भी समग्र सामाजिक उत्पादन से अलग कर लेना चाहिए।

स्पष्ट है कि कुल सामाजिक उत्पादन का सिर्फ वही भाग जो व्यक्तिगत उपभोग कोष के लिए आवश्यक है, काम के अनुसार वितरित होता है।

श्रम के उत्पादन का वह हिस्सा जो भौतिक उत्पादन में लगे श्रमिकों के व्यक्तिगत उपभोग के लिए उपयोग किया जाता है, आवश्यक उत्पादन कहलाता है। इसे उत्पन्न करने के लिए लगाये गये श्रम को आवश्यक श्रम कहते हैं।

श्रम के उत्पादन का एक हिस्सा सार्वजनिक कोष (उत्पादन के साधनों को पुनस्स्थापित करने वाला भाग इसमें शामिल नहीं है) जैसे सार्वजनिक उपभोग संचय, प्रतिरक्षा, आदि के लिए उपयोग में लाया जाता है। इस हिस्से को अधिशेष उत्पादन और इसे उत्पन्न करने वाले श्रम को अधिशेष श्रम कहते हैं। सामाजिक उत्पादन का अधिकाधिक हिस्सा मेहनतकश जनता को सार्वजनिक कोष द्वारा प्राप्त होता है। सार्वजनिक कोष हर साल निरपेक्ष और सापेक्ष दोनों दृष्टियों से बढ़ता जा रहा है।

समाजवाद में अधिशेष उत्पादन का इस्तेमाल व्यक्तियों के हित में नहीं बल्कि सम्पूर्ण समाज और व्यक्तिगत तौर पर प्रत्येक मेहनतकश की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया जाता है। यह अधिशेष मूल्य नहीं है, क्योंकि समाजवाद में न तो कोई शोषक वर्ग होता है और न शोषण।

काम के अनुसार वितरण से उत्पादन के परिणामों में लोगों की भौतिक दृष्टि से दिलचस्पी हो जाती है। श्रम उत्पादकता की वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है, मजदूरों की दक्षता बढ़ती है और उत्पादन के तकनीक उन्नत होते हैं। काम के अनुसार वितरण का एक शैक्षणिक पहलू भी है। इसके द्वारा लोग समाजवादी अनुशासन सीखते हैं। वह काम को व्यापक और अनिवार्य बनाता है।

समाजवाद में भौतिक प्रोत्साहन आवश्यक है, क्योंकि काम समाज के सभी सदस्यों के लिए प्रमुख आवश्यकता नहीं है। समाजवाद के अन्तर्गत लोगों के दिमाग से पूंजीवाद के अवशेष सदा के लिए खत्म नहीं हो जाते। समाज के प्रति अपने कर्तव्य को निष्ठा से पूरा करने वाले बहुसंख्यक मजदूरों के साथ ऐसे लोग भी

रहते हैं जो अपने काम के प्रति निष्ठा नहीं रखते या श्रम-अनुशासन को ... करते हैं।

भौतिक प्रोत्साहनों के सिद्धान्त के कारण भौतिक धन के वितरण में ... नता सम्भव नहीं है।

उत्पादन के समान वितरण का समाजवाद के साथ मेल नहीं है। काम ... अनुसार वितरण का आर्थिक नियम मजूरी की समानता के विरुद्ध सघर्ष आवश्... बना देता है। निम्न-पूंजीवादी "सिद्धान्तकार" मार्क्सवाद-लेनिनवाद ... "निरपेक्ष" समानता का विचार थोपकर उसे तोड़ने-मरोड़ने की जानबूझ... कोशिशें करते हैं।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण से समाजवाद के अन्तर्गत समानता ... मतलब व्यक्तिगत जरूरतों और दैनिक जीवन (उपभोग की समानता) की स... नता नहीं, बल्कि सामाजिक समानता (यानी उत्पादन के साधनों की दृष्टि... समानता), शोषण से सम्पूर्ण मजदूर वर्ग की समान रूप से मुक्ति, उत्पादन ... साधनों पर से सब लोगों के निजी स्वामित्व की समाप्ति, सब लोगों को काम क... और भौतिक धन में लगाये गये श्रम के अनुसार हिस्सा पाने का सम... अधिकार है।

इस तरह समाजवाद का मतलब समानता नहीं बल्कि काम के अनुरू... वितरण है। यह वितरण दो प्रकार से होता है : औद्योगिक, दफ्तर के और ... मेहनतकशों को मजूरी के रूप में और सहकारी तथा सामूहिक फार्म उद्यमों ... कार्यों के भुगतान के रूप में। काम के अनुसार वितरण के इन दो रूपों में भिन्न... का कारण उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के रूपों—राजकीय स्वामित्व औ... सहकारी एवं सामूहिक फार्म स्वामित्व—की भिन्नता है।

२. समाजवाद के अन्तर्गत मजूरी

समाजवाद के अन्तर्गत वस्तु-उत्पादन और मूल्य के नियम के अस्तित्व ... के कारण मजूरी का मौद्रिक रूप आवश्यक हो जाता है। काम की मात्रा औ...

मजूरी का स्वरूप और सगठन

किस्म के अनुसार सामाजिक उत्पादन में प्रत्येक मजदू... का हिस्सा निर्धारित करने के तरीके को मजूरी क... मौद्रिक रूप लोचप्रद बनाता है। इसके द्वारा हम ... मेहनतकशों के हिस्सों में आसानी से भिन्नता भी कर सकते हैं।

समाजवाद में श्रम-शक्ति वस्तु नहीं होती। इसका क्रय-विक्रय नहीं ... होता। इसलिए इसका न कोई मूल्य होता है और न कोई कीमत। इस कारण

मतें अदा करती हैं। उनका नियोजन और निर्धारण प्रत्येक प्रकार की वस्तु के लिए राज्य द्वारा होता है।

बहुसंख्यक तैयार वस्तुओं के लिए सारे सोवियत संघ में एक ही कीमतें होती हैं, किन्तु कतिपय खाद्य पदार्थों की कीमतें विभिन्न क्षेत्रों और मौसमों में अलग-अलग होती हैं।

संगठित बाजार में खुदरा कीमतों में अपने-आप उतार-चढ़ाव नहीं होता है। राज्य तात्कालिक आर्थिक और राजनीतिक कार्यों की पूर्ति के लिए उनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन करता है। किन्तु राज्य मनमाने ढंग से कीमतें निश्चित नहीं करता। वह वस्तुओं के मूल्य पर भी ध्यान देता है।

समाजवादी उत्पादन में निरन्तर वृद्धि और उत्पादन लागत में कमी और उत्पादकता में लगातार वृद्धि के फलस्वरूप खुदरा कीमतों में नियोजित रूप कमी करना सम्भव हो जाता है। समाजवाद के अन्तर्गत खुदरा कीमतों में लगातार कमी के द्वारा लोगों की खुशहाली को बढ़ाया जाता है।

प्रचलन-लागत के बिना कोई व्यापार नहीं चल सकता। समाजवादी व्यापार में ये लागतें पूंजीवादी प्रचलन-लागतों से बिल्कुल भिन्न होती हैं। समाजवाद के अन्तर्गत प्रचलन-लागत में वस्तुओं को उनके उत्पादन-स्थान से उपभोक्ता तक पहुंचाने में व्यापारिक उद्यमों और संगठनों द्वारा किये गये व्यय आते हैं। ये व्यय व्यापारिक उद्यमों में काम करने वाले लोगों की मजूरी, परिवहन-व्यय, व्यापारिक संगठनों की देखरेख और भंडार की सुविधाओं, पैकिंग लागत, साख पर ली गई मुद्रा के सूद, आदि के रूप में होते हैं। प्रचलन-लागत की माप व्यापार आवर्त के प्रतिशत के रूप में होती है। उसका नियोजन और निर्धारण राज्य करता है।

प्रचलन-लागत में कटौती समाजवादी व्यापार की विशेषता है। उदाहरण के लिए, सोवियत संघ में १९२८ में प्रचलन-लागत व्यापार आवर्त का १९.७ प्रतिशत, १९५० में ९.७ प्रतिशत और १९६२ में ७.१ प्रतिशत थी।

प्रचलन लागत में कटौती व्यापारिक संगठनों के कार्यों के स्तर का गुणात्मक सूचक है। इस कटौती के फलस्वरूप समाजवादी संचय बढ़ता है।

समाजवादी व्यापार में प्रचलन लागत पूंजीवादी देशों की तुलना में काफी कम है। उदाहरण के लिए, अमरीका में प्रचलन-लागत कुल खुदरा कीमतों की एक तिहाई है।

विदेश व्यापार

समाजवादी देशों में घरेलू व्यापार के साथ-साथ विदेश व्यापार भी चलता है। विदेश व्यापार द्वारा श्रम के अन्तर्राष्ट्रीय विभाजन से लाभ प्राप्त हो सकता है।

रहते हैं जो अपने काम के प्रति निष्ठा नहीं रखते या श्रम-अनुशासन को भंग करते हैं।

भौतिक प्रोत्साहनों के सिद्धान्त के कारण भौतिक धन के वितरण में समानता सम्भव नहीं है।

उत्पादन के समान वितरण का समाजवाद के साथ मेल नहीं है। काम के अनुसार वितरण का आर्थिक नियम मजूरी की समानता के विरुद्ध संघर्ष आवश्यक बना देता है। निम्न-पूंजीवादी "सिद्धान्तकार" मार्क्सवाद-लेनिनवाद पर "निरपेक्ष" समानता का विचार थोपकर उसे तोड़ने-मरोड़ने की जानबूझ कर कोशिशें करते हैं।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण से समाजवाद के अन्तर्गत समानता का मतलब व्यक्तिगत जरूरतों और दैनिक जीवन (उपभोग की समानता) की समानता नहीं, बल्कि सामाजिक समानता (यानी उत्पादन के साधनों की दृष्टि से समानता), शोषण से सम्पूर्ण मजदूर वर्ग की समान रूप से मुक्ति, उत्पादन के साधनों पर से सब लोगों के निजी स्वामित्व की समाप्ति, सब लोगों को काम करने और भौतिक धन में लगाये गये श्रम के अनुसार हिस्सा पाने का समान अधिकार है।

इस तरह समाजवाद का मतलब समानता नहीं बल्कि काम के अनुसार वितरण है। यह वितरण दो प्रकार से होता है: औद्योगिक, दफ्तर के और अन्य मेहनतकशों को मजूरी के रूप में और सहकारी तथा सामूहिक फार्म उद्यमों के सदस्यों के भुगतान के रूप में। काम के अनुसार वितरण के इन दो रूपों में भिन्नता का कारण उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के रूपों—राजकीय स्वामित्व और सहकारी एवं सामूहिक फार्म स्वामित्व—की भिन्नता है।

२. समाजवाद के अन्तर्गत मजूरी

समाजवाद के अन्तर्गत वस्तु-उत्पादन और मूल्य के नियम के अस्तित्व के कारण मजूरी का मौद्रिक रूप आवश्यक हो जाता है। काम की मात्रा और किस्म के अनुसार सामाजिक उत्पादन में प्रत्येक मजदूर का हिस्सा निर्धारित करने के तरीके को मजूरी का मौद्रिक रूप लोचप्रद बनाता है। इसके द्वारा हम मेहनतकशों के हिस्सों में आसानी से भिन्नता भी कर सकते हैं।

मजूरी का स्वरूप और संगठन

समाजवाद में श्रम-शक्ति वस्तु नहीं होती। इसका क्रय-विक्रय नहीं होता। इसलिए इसका न कोई मूल्य होता है और न कोई कीमत। इस कारण

मजूरी श्रम-शक्ति के मूल्य या कीमत का रूप नहीं होती, बल्कि काम के अनुसार भौतिक धन के वितरण का एक तरीका होती है।

समाजवाद के अन्तर्गत मजूरी सामाजिक उत्पादन का एक हिस्सा होती है। वह मौद्रिक रूप में होती है। यह हिस्सा आवश्यक श्रम के व्यय को पूरा करता है। राजकीय समाजवादी उद्यमों के हर मेहनतकश को उनके द्वारा किये गये काम की मात्रा और किस्म के अनुसार राज्य द्वारा मजूरी मिलती है।

समाजवाद के अन्तर्गत मजूरी का स्तर समाज द्वारा उत्पादन की तत्कालीन स्थिति के आधार पर निर्धारित होता है। काम के अनुसार वितरण के कोष का आकार राज्य निर्धारित करता है। यह कोष लोगो को अपने व्यक्तिगत इस्तेमाल के लिए मजूरी के रूप मे मिलता है। राज्य कोष की वृद्धि की दर भी निर्धारित करता है। ऐसा करते समय वह व्यक्तिगत और सार्वजनिक दोनो हितो पर ध्यान देता है।

समाजवादी राज्य श्रम-उत्पादकता बढाने, मजदूरो की तकनीकी योग्यताओं मे वृद्धि करने और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की महत्वपूर्ण शाखाओ को श्रम-शक्ति की पूर्ति मे प्राथमिकता देने के लिए मजूरी का इस्तेमाल एक महत्वपूर्ण विधि के रूप मे करता है। मजूरी के द्वारा मजदूर वर्ग के व्यक्तिगत भौतिक हितो और राज्य (सम्पूर्ण जनता) के हितो मे समुचित सामजस्य की स्थापना सम्भव है।

मजूरी मजदूर की योग्यताओ तथा काम के स्वरूप और उसकी जटिलता के अनुसार होती है।

समाजवाद के अन्तर्गत मजूरी का हिसाब लगाने की व्यवस्था सरल और स्पष्ट होनी चाहिए, जिससे वह हर मजदूर की समझ मे आ सके।

समाजवाद के अन्तर्गत मजूरी की व्यवस्था मे काम का मूल्याकन और श्रम-निर्धारण व्यवस्था मुख्य तत्व है।

काम के मूल्याकन का मतलब किसी निश्चित कार्य को पूरा करने के लिए मानक श्रम की मात्रा को निश्चित करना है। दूसरे शब्दो मे, काम के मूल्याकन का तात्पर्य समय की प्रति इकाई मे उत्पन्न वस्तुओ की मात्रा निर्धारित करने से है।

समाजवादी उद्यमो मे काम का मूल्याकन पूजीवादी व्यवस्था मे होने वाले मूल्याकन से सिद्धान्ततः भिन्न होता है। पूजीवाद के अन्तर्गत काम का मूल्याकन मजदूरों का शोषण तेज कर मुनाफा बढ़ाने का एक तरीका है।

समाजवादी समाज मे काम के मूल्यांकन द्वारा आधुनिकतम वैज्ञानिक और तकनीकी उपलब्धियो के आधार पर लोग श्रम और उत्पादन की अच्छी तरह व्यवस्था कर सकते है।

काम का सही मूल्यांकन टेक्नालाजी और अग्रणी मजदूरों एवं नवीन क्रिया के शोधकों की उपलब्धियों के पूर्णतम उपयोग पर आधारित तकनीकी दृष्टि से उचित उत्पादन मानकों पर निर्भर होता है। तकनीकी दृष्टि से उचित उत्पादन मानक प्रगतिशील मानक होते हैं। ये अग्रणी मजदूरों की उपलब्धियो पर आधारित होते हैं, किन्तु इन उपलब्धियों का मतलब महान व्यक्तिगत कार्यों से नही है।

प्रगतिशील, तकनीकी दृष्टि से उचित मानक औसत मे अधिक श्रम-उत्पादकता वाले मजदूरो द्वारा स्थापित प्रवृत्तियों के सूचक हैं। ये मानक सभी मजदूरो द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं, इसलिए ये वास्तविक मानक हैं।

उत्पादन मे सुधार होने के फलस्वरूप पुरानी प्रगतिशील तकनीक से सम्बद्ध मानक पुराने पड जाते हैं। इसलिए मानको मे परिवर्तन करने की आवश्यकता आ जाती है। इस परिवर्तन का उद्देश्य मजूरी की वृद्धि की तुलना में श्रम-उत्पादकता मे अधिक तेजी से वृद्धि करना और श्रम के भुगतान मे सही अनुपात स्थापित करना है।

मानको मे परिवर्तन के फलस्वरूप सार्वजनिक हित और हर कर्मचारी के व्यक्तिगत हित मे सामजस्य स्थापित होता है। समाजवाद मे ही यह हो सकता है।

मजूरी की सही व्यवस्था मे क्रम-निर्धारण व्यवस्था की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। क्रम-निर्धारण व्यवस्था के द्वारा समाजवादी राज्य काम के स्वरूप, किस्म और दशाओ के आधार पर विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए होने वाले भुगतान मे अन्तर करता है। इसी प्रकार उत्पादन की विभिन्न शाखाओ, देश के विभिन्न भागो, इत्यादि मे मजूरी की दरो मे भिन्नता की जाती है। औद्योगिक, दफ्तर के और पेशेवर मेहनतकशो की मजूरी का केन्द्रित नियमन भी क्रम-निर्धारण व्यवस्था द्वारा किया जाता है।

क्रम-निर्धारण व्यवस्था मे तीन तत्व होते है : १) दक्षता क्रम-निर्धारण की पुस्तिका। इसके द्वारा काम के क्रम (कौन काम कितना जटिल है) और मजदूरो को योग्यताए निर्धारित की जाती हैं। पुस्तिका कार्यों को क्रम मे बाट कर मजदूर को क्रमो की अनुसूची मे उचित स्थान पर रखती है। २) क्रमो की अनुसूची। इसके द्वारा विभिन्न दक्षताओ के लिए भुगतान की मात्रा निर्धारित की जाती है। क्रमो की सख्या और क्रमो के बीच मजूरी के अनुपात उद्योग की शाखा विशेष की खास विशेषताओ पर निर्भर होते हैं। ३) बुनियादी दर। क्रम १ के काम की मजूरी ही बुनियादी दर होती है।

श्रम-उत्पादकता बढाने और समाजवादी उद्यमो के मजदूरो की तकनीकी योग्यताओ का स्तर उन्नत करने के लिए कार्यों का सही क्रमिक विभाजन और

निराकरण हो।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की तेईसवीं कांग्रेस ने वर्तमान मजूरी व्यवस्था में कतिपय गंभीर दोष दिखलाये। बीसवीं कांग्रेस के बाद मजूरी व्यवस्था में सुधार की दिशा में काफी काम हुआ है। पार्टी की केन्द्रीय समिति द्वारा काम के लिए भुगतान की व्यवस्था को ठीक करने के तरीके बताये गये थे। कांग्रेस ने उन तरीकों को अपनी स्वीकृति दी। उत्पादन के क्षेत्र में आधुनिक स्तर की टेक्नालाजी और उत्पादन संगठन के अनुकूल तकनीकी दृष्टि से उचित उत्पादन मानकों को मंजूर करने की आवश्यकता को कांग्रेस ने स्वीकृति प्रदान की। इसके अतिरिक्त कांग्रेस ने मजदूरों की कमाई की बुनियादी दर बढ़ाने और मजदूरों की योग्यता तथा गर्म स्थानों में मुश्किल काम करने वाले मजदूरों के लिए अधिक मजूरी देने की आवश्यकता को ध्यान में रखकर उद्योग के शाखा विशेषों और उद्योग विशेषों की बुनियादी दरों के बीच सही अनुपात स्थापित करने की बात मान ली। कांग्रेस ने इंजीनियरों, तकनीकी विशेषज्ञों और अन्य कर्मचारियों की कतिपय श्रेणियों की मजूरी व्यवस्था को नियमित करने तथा भुगतान की बहुविध व्यवस्था और उनमें एकरूपता के अभाव को खत्म करने की भी बात की। बोनस व्यवस्था को अधिक महत्व देने की बात भी मान ली गयी। इससे नयी टेक्नालाजी और उच्च श्रम-उत्पादकता प्राप्त हो सकेगी तथा उत्पादन लागत में कमी हो सकेगी।

पिछले पांच वर्षों में कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत सरकार ने जो कदम उठाये हैं उनके फलस्वरूप उद्योग, निर्माण, परिवहन और राज्य-सचालित कृषि उद्यमों में औसत मजूरी १३ से लेकर २५ प्रतिशत तक बढ़ी है। १९६४ और १९६५ में शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, आवास, खुदरा व्यापार, सार्वजनिक भोजनालयों और अन्य सेवाओं के क्षेत्र में मजूरी में २१ प्रतिशत वृद्धि हुई है। इस तरह

सेवाओं के क्षेत्र में और भौतिक उत्पादन के क्षेत्र में मजूरी एक-सी हो गयी है। १ जनवरी, १९६५ से सारे देश में मजदूरों एवं अन्य कर्मचारियों की न्यूनतम मजूरी बढ़ाकर ४०-४५ रूबल प्रति माह कर दी गयी है।

मजूरी व्यवस्था में सुधार होने के कारण श्रम के अनुसार वितरण के नियम का पूरा इस्तेमाल सम्भव हो गया है और फलस्वरूप मजदूरों एवं अन्य कर्मचारियों की रचनात्मक पहल एवं उत्साह में वृद्धि हुई है।

मजूरी के रूप और व्यवस्थाएं

मजूरी के दो बुनियादी रूप हैं: कार्य-दर और काल-दर। कार्य-दर में मजदूर की कमाई उत्पादन की मात्रा के द्वारा निश्चित होती है। कार्य-दर के द्वारा समाज के हितों (उच्च श्रम-उत्पादकता) और प्रत्येक मजदूर के निजी हितों (उच्च व्यक्तिगत कमाई) का समन्वय होता है।

समाजवादी उद्यम में कार्य-दर की कई व्यवस्थाएं हैं:

क) प्रत्यक्ष कार्य दर व्यवस्था। इसके अन्तर्गत उत्पादन की प्रत्येक इकाई के लिए समान काम करने वालों को एक दर से मजूरी मिलती है।

ख) प्रगतिशील कार्य-दर व्यवस्था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्रारम्भिक कोटे के अतिरिक्त उत्पादन की प्रत्येक इकाई के लिए ऊंची दर पर मजूरी दी जाती है। इस तरह दर ऊंची होती जाती है।

ग) बोनस की कार्य-दर व्यवस्था। इसके अन्तर्गत उत्पादन की कुल इकाइयों के लिए सामान्य कार्य-दर के आधार पर मजूरी दी जाती है, किन्तु कतिपय सूचकांकों (कच्चे माल और ईंधन की मितव्ययिता, उच्च कोटि के उत्पादन, आदि) के आधार पर बोनस दिया जाता है।

कार्य-दर व्यक्तिगत या सामूहिक हो सकती है। व्यक्तिगत कार्य-दर लागू होने पर कमाई की मात्रा व्यक्तिगत मजदूर के उत्पादन पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर होती है। सामूहिक कार्य-दर व्यवस्था (इस व्यवस्था को तब लागू किया जाता है जब कार्य की दशाएं प्रत्येक व्यक्ति द्वारा किये गये काम की मात्रा की गणना कठिन बना देती है) में मजदूर की कमाई सिर्फ उसके उत्पादन पर निर्भर नहीं होती, बल्कि सामूहिक उत्पादन पर निर्भर होती है। अपने श्रम के उत्पादन में मजदूर की भौतिक दिलचस्पी बढ़ाने के लिए सामूहिक कार्य को व्यक्तिगत कार्य-दर भुगतान से जोड़ दिया जाता है। इसलिए समूह के प्रत्येक सदस्य की कमाई का हिसाब लगाते समय मजदूर की दक्षता (अनुसूची में उसके दर्जे) और काम के घंटों पर ध्यान दिया जाता है।

श्रम के लिए काल-दर के आधार पर भुगतान की राशि काम के घंटों के अनुसार होती है। मजदूर की दक्षता पर भी ध्यान दिया जाता है।

इस व्यवस्था के अन्तर्गत मजदूर के उत्पादन और उसकी मजूरी में कोई
सम्बन्ध नहीं होता। जहां मूल्यांकन करना और हिसाब लगाना सम्भव नहीं
, वहीं काल-दर व्यवहार में लायी जाती है। काल-दर भुगतान व्यवस्था में
बोनस व्यवस्था का प्रयोग सोवियत संघ में मजदूरों को प्रोत्साहन देने के लिए
ंमाने पर किया जाता है। कमाई काम की मात्रा और किस्म के साथ ही
ये गये समय और मजदूर की योग्यताओं पर भी निर्भर होती है। उदाहरण के
, उत्पादन के अत्यन्त यंत्रीकृत एवं स्वयंचालित क्षेत्रों में साज-सामान के पर्य-
क के रूप में काम करने वाले प्रशिक्षित मजदूरों को काल-लाभांश देने की
स्था है। व्यापक यंत्रीकरण एवं स्वयंचालन की प्रगति के साथ काल-लाभांश
की व्यवस्था का भी विस्तार होता है।

काल-दर के अनुसार उद्यमों के मैनेजर, इंजीनियर, तकनीकी लोग और
र के कर्मचारी मजूरी पाते हैं। इन सब लोगों को निश्चित वेतन प्राप्त होते हैं।
न के अनुसार वितरण के आर्थिक नियम के आधार पर ही वेतन निश्चित किये
ते हैं।

इन वेतन पाने वाले मजदूरों को पुरस्कार व्यवस्था द्वारा प्रोत्साहित किया
ता है। ये पुरस्कार उत्पादन कार्यक्रमों की पूर्ति या लक्ष्य से भी अधिक उत्पादन
लिए दिये जाते हैं। हां, इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि वस्तुएं गुणात्मक
ं से निर्धारित स्तर की हों और उत्पादन लागत कम हो।

र्तमान वास्तविक मजूरी और आय

समाज के सभी सदस्यों की निरन्तर बढ़ती हुई भौतिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं की संतुष्टि वास्तविक मजूरी की वृद्धि से स्पष्ट है।

वास्तविक मजूरी उपभोक्ता वस्तुओं और सेवाओं की वह मात्रा है जो
जदूर और उसका परिवार अपनी मजूरी द्वारा खरीद सकता है।

समाजवादी उत्पादन के विकास के साथ वास्तविक मजूरी भी निरन्तर
ढ़ती है। जनता की क्रय-शक्ति की वृद्धि से यह स्पष्ट है।

वास्तविक मजूरी में निरन्तर वृद्धि समाजवादी राज्य की नीति का परि-
णाम है। इस नीति के अन्तर्गत राजकीय कर्जे में धन देने की नीति की समाप्ति,
टा हुआ कृषि-कर और अन्य कदम आते हैं।

समाजवादी समाज में मेहनतकश जनता के जीवन-यापन का स्तर सिर्फ
उसकी मजूरी की राशि पर ही निर्भर नहीं होता। समाजवाद के अन्तर्गत लोगों
की बहुत-सी आवश्यकताएं सार्वजनिक उपभोग कोषों द्वारा पूरी की जाती हैं। इन
कोषों द्वारा बेहतर आवास, सामुदायिक सेवाएं, बच्चों के लिए पर्याप्त संख्या में

शैक्षणिक संस्थाएं, नि.शुल्क शिक्षा, दिलबहलाव और मेडिकल सेवाओं की व्यवस्था, सास्कृतिक कार्यों के लिए इमारतें, पेंशन, आदि की व्यवस्था जाती है।

सोवियत सघ मे सार्वजनिक उपभोग कोष निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं। उनकी मात्रा १९५३ मे १,४८० करोड़ रूबल थी जो १९६४ में बढ़कर ३,६६० करोड़ रूबल हो गयी। १९६३ मे सार्वजनिक कोषो से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे लगे हर व्यक्ति को अनुदान और लाभ के रूप मे औसतन ३५७ रूबल मिले।

काम की मात्रा और किस्म के अनुसार भुगतान और सार्वजनिक उपभोग कोषो से प्राप्त सुविधाओ से मेहनतकश जनता को प्राप्त जीवन की सुख-सुविधाओं का कुल योग ही जनता की वास्तविक आय के स्तर को सूचित करता है। सोवियत सघ मे मजदूरो एवं अन्य कर्मचारियों की वास्तविक आय निरन्तर बढ रही है। १९५४-६३ के दौरान (लाभकारी धंधे में लगे प्रत्येक व्यक्ति की) वास्तविक आय मे ६१ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

३. सामूहिक फार्मों पर काम के लिए भुगतान

सामूहिक फार्म की अर्थव्यवस्था उसके सदस्यो के सामूहिक काम के आधार पर चलती है। सामूहिक फार्म की अर्थव्यवस्था नियोजित होती है और सम्पूर्ण समाजवादी समाज के सयुक्त श्रम का एक हिस्सा होती है।

सामूहिक फार्म का उत्पादन आय और उसके सदस्यो की खुशहाली सामूहिक फार्म के किसानो के काम की मात्रा और कार्य-कुशलता पर निर्भर है।

सामूहिक फार्म की आय उत्पादन और मुद्रा के रूप मे होती है। उसका वितरण निम्नलिखित रूप से होता है।

वस्तु के रूप में आय के अन्तर्गत फसलो की पैदावार और माल-मवेशी से प्राप्त वस्तुए आती हैं। फसलों की पैदावार और माल-मवेशी से प्राप्त वस्तुओं को सामूहिक फार्म राज्य को बुनियादी कीमतों पर बेचते हैं और बाद मे कई मुख्य वस्तुओ की अतिरिक्त मात्रा को स्वेच्छा से विशेष ऊची कीमतो पर बेचते हैं। सामूहिक फार्मों द्वारा समय पर वादे की पूर्ति के फलस्वरूप फार्मों और सम्पूर्ण सोवियत समाज के हितो के बीच सही समन्वय स्थापित हो जाता है।

राज्य के प्रति उत्तरदायित्व को पूरा करने के बाद सामूहिक फार्म अपने कोषो का निर्माण करते हैं। इन कोषो मे १) बीज, २) चारा, ३) भविष्य के लिए साधन (फसल मारी जाने या चारे का अभाव होने पर इस्तेमाल के लिए बीज और चारे का भडार) ४) फसल मारी जाने पर इस्तेमाल के लिए खाद्यान्नो का भडार,

कोष,

सरकार के प्रति अपने उत्तरदायित्व को पूरा करने और अपना कोष बनाने के बाद सामूहिक फार्म अपनी आय का शेष भाग अपने सदस्यो के बीच उनके कार्य (काम के दिनो के रूप मे) के अनुसार बाट देते है।

सामूहिक फार्म अपनी नकद आय का अधिकांश राज्य सहकारी सगठनों तथा जनता को सामूहिक फार्म के बाजार मे फसल बेचकर प्राप्त करते हैं। इस आय से सबसे पहले आय-कर, बीमा भुगतान और बैंक ऋण अदा किये जाते हैं।

राज्य को ये भुगतान अदा करने के बाद सामूहिक फार्म अपनी नकद आय का एक हिस्सा अपनी आम जरूरतो के लिए रखते हैं। इन जरूरतो मे १) फार्म की वितरित न होने वाली परिसम्पत्ति के लिए व्यवस्था, २) उत्पादन की तात्कालिक जरूरतो—खनिज खादो, अतिरिक्त पुर्जों, मशीनों के लिए ईंधन, कीटाणुओं और पौधो के रोगो से बचाव की व्यवस्था, आदि, ३) प्रशासकीय व्यय की पूर्ति, ४) सास्कृतिक जरूरतो—क्लबो के लिए इमारतें और साधन, पुस्तकालय, वाचनालय, सिनेमा, रेडियो, आदि हैं। इन जरूरतो के लिए वित्तीय साधनो का वितरण करते समय सामूहिक फार्म की अर्थव्यवस्था और उपभोग एव सचय के उचित सम्बध पर ध्यान दिया जाता है। सामूहिक फार्म के वित्तीय साधनो के शेषाश को उसके सदस्यो के बीच बाट दिया जाता है।

राज्य को फार्म उत्पादन बेचने के निश्चित लक्ष्य से राज्य एव सामूहिक फार्म के हितो मे सामजस्य स्थापित होता है और सामूहिक फार्मों की आय बढती है। आगामी वर्षों के लिए बिक्री के निश्चित लक्ष्य से सामूहिक फार्म के किसानों मे भविष्य के सम्बध मे निश्चिन्तता आती है। फसल और मवेशी-पालन के कार्यों मे वे निश्चिन्त होकर कदम उठाते हैं।

राजकीय उद्यमो की तरह सामूहिक फार्मों मे भी प्रत्येक किसान को उसके श्रम की मात्रा और किस्म के अनुसार मजूरी मिलती है। श्रम के अनुसार वितरण का आर्थिक नियम सामूहिक फार्मों मे कार्य-दिवस की इकाई और नकद भुगतान की व्यवस्था के द्वारा लागू किया जाता है। कार्य-दिवस इकाई फार्म की सामूहिक अर्थव्यवस्था मे किसान के योगदान का मापदण्ड है। फार्म की आय मे प्रत्येक सदस्य के हिस्से का निर्धारण भी इसी के द्वारा होता है।

सामूहिक फार्म मे किये जाने वाले प्रत्येक प्रकार के कार्य के लिए उत्पादन का कोटा निश्चित कर दिया जाता है। हर प्रकार के कार्य का मूल्यांकन कार्य-दिवस इकाइयो या नकदो के रूप मे (इस बात का ख्याल रखते हुए कि कार्य किस हद तक जटिल और कठिन तथा सामूहिक फार्म के लिए महत्वपूर्ण है) किया जाता है।

चूकि सामूहिक फार्म सहकारी उद्यम होते है, इसलिए कार्य दिवस की इकाइयो के अनुसार उत्पादन और मुद्रा के लिए किये जाने वाले सारे भुगतान का

राशि साल के अन्त में मालूम होती है। यह राशि सभी सामूहिक फार्मों के लिए एक नहीं होती। इसलिए सामूहिक फार्म के किसानों की आय न सिर्फ उनके द्वारा लगाये जाने वाले कार्य की इकाइयों पर निर्भर होती है, बल्कि किसी फार्म विशेष की उत्पाद प्रति इकाई उत्पादन और नकद राशि पर भी निर्भर होती है।

सदस्यों को हर महीने दी जाने वाली अग्रिम राशि का भी बड़ा महत्व है। इसका मतलब है कि सामूहिक फार्म के सदस्य अपने हिस्से के उत्पादन और मुद्रा-राशि का एक भाग अन्तिम वितरण के पूर्व भी प्राप्त कर सकते हैं। भुगतान के इन बुनियादी तरीकों के अतिरिक्त अच्छी तरह किये गये कार्य के लिए प्रोत्साहनस्वरूप (वस्तु और नकदी दोनों रूपों में) भुगतान किया जाता है।

सामूहिक फार्मों की बढ़ती हुई लाभप्रदता इस प्रकार की आर्थिक स्थिति उत्पन्न कर देती है, जहां मासिक भुगतान सम्भव हो जाता है। नकद भुगतान एक प्रगतिशील चीज है। इसके कारण सामूहिक फार्म के किसानों के बीच उच्च श्रम-उत्पादकता को प्रोत्साहन मिलता है। आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होने के साथ ही हर सामूहिक फार्म में नकद भुगतान होने लगेगा।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में कहा गया है कि "कोलखोज के आर्थिक विकास के फलस्वरूप पूर्ण कोलखोज आन्तरिक सम्बन्ध का स्थापित होना सम्भव हो जायेगा। उत्पादन में समाजीकरण की मात्रा बढ़ेगी, श्रम का मूल्यांकन, संगठन और भुगतान राजकीय उद्यमों में लागू स्तर और भुगतान के नजदीक होंगे। काम के लिए निश्चित मासिक भुगतान किया जायेगा। सामुदायिक सेवाएं (सार्वजनिक भोजन व्यवस्था, बाल-विहार और नर्सरी तथा अन्य सेवाएं) अधिक व्यापक रूप से विकसित होंगी।"[1]

देश के पैमाने पर सामूहिक फार्म के किसानों के लिए पेंशन की व्यवस्था हो जाने से उनके जीवन-यापन के स्तर में सुधार हुआ है।

समग्र कृषि उत्पादन में वृद्धि और उच्च श्रम-उत्पादकता के फलस्वरूप सामूहिक फार्म के किसानों की वास्तविक आय बढ़ रही है। १६१३ और १६६२ के दौरान मेहनतकश किसानों की सामूहिक कृषि और निजी खेती से वस्तु के रूप में आमदनी और नकद आय, सभी प्रकार के करों और लेवी को छोड़ कर, तुलनात्मक कीमतों के आधार पर सामूहिक फार्म के हर सदस्य के लिए हिसाब लगाने पर ४.६ गुनी से अधिक बढ़ी। अगर सोवियत सरकार से प्राप्त भुगतानों और अनुदानों को भी जोड़ दें तो आय की वृद्धि करीब ६.५ गुनी से अधिक होगी।

---

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ५३०।

अध्याय १५

लागत-लेखा और लाभदायकता । उत्पादन लागत और कीमत

१. लागत-लेखा और लाभदायकता

समाजवादी *अर्थव्यवस्था का नियोजित मार्ग-दर्शन सम्पूर्ण समाज के पैमाने* पर भौतिक और मानव-शक्ति साधनों के कुशल इस्तेमाल के लिए हर अवसर प्रदान करता है। प्रत्येक व्यक्ति पूंजीपतियों और भूस्वामियों के लिए नहीं, बल्कि अपने और अपने समाज के लिए काम करता है। इसलिए वह समाज की सम्पत्ति के विवेकपूर्ण और मितव्ययितापूर्ण इस्तेमाल के लिए चिन्तित रहता है। वह अर्थव्यवस्था का संचालन कुशलतापूर्वक करता है।

कड़ी मितव्ययिता की नीति और उसका महत्व

कठोर मितव्ययिता की नीति समाजवादी प्रबन्ध का आधार होती है। समाजवादी प्रबन्ध का उद्देश्य साधनों एवं श्रम के न्यूनतम व्यय से अच्छे किस्म की अधिकाधिक वस्तुओं का उत्पादन है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्य-क्रम में बताया गया है कि "समाज के हित में कम से कम लागत पर उच्चतम परिणामों को प्राप्त करना आर्थिक विकास का एक अटल नियम है।"[१]

समाजवादी अर्थव्यवस्था के विकास की तेज दर के लिए कठोर मितव्ययिता की नीति का अनुसरण आवश्यक है।

मानव-शक्ति, भौतिक और मौद्रिक साधनों का मितव्ययितापूर्वक उपयोग समाजवादी अर्थव्यवस्था के लिए बड़ा महत्व रखता है।

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ५३२।

उत्पादक शक्तियों के विकास, आर्थिक विकास की तेज गति और तकनीकी प्रगति के आधार पर बड़े पैमाने के आर्थिक और सांस्कृतिक निर्माण के लिए सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २२वी कांग्रेस में स्वीकृत शानदार कार्यक्रम के कार्यान्वियन के लिए बहुत बड़ी मात्रा में मानव-शक्ति, भौतिक और मौद्रिक साधनो की आवश्यकता है। पूरे पैमाने पर कम्युनिस्ट निर्माण के दौरान कठोर मितव्ययिता की नीति का बढ़ता हुआ महत्व स्पष्ट है।

इस नीति के कार्यान्वियन पर ही योजनाओं के लक्ष्यों की (और कई बार उनसे अधिक) सफलता निर्भर है। इस नीति के फलस्वरूप श्रम का व्यय घटता है और उत्पादन लागत मे कमी होती है। ऐसा होने पर ही उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतें कम होती हैं। वर्तमान उत्पादन क्षमताओ के ठीक इस्तेमाल और कच्चे और अन्य मालों, ईंधन, विद्युत शक्ति, आदि के मितव्ययितापूर्वक प्रयोग के कारण, बिना अतिरिक्त साधन लगाये, उत्पादन बढ़ जाता है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का सचालन जितनी ही कुशलतापूर्वक होगा मानव-शक्ति, भौतिक और मौद्रिक साधनों का इस्तेमाल उतना ही मितव्ययितापूर्वक होगा। फलस्वरूप राष्ट्रीय सम्पत्ति और मेहनतकश जनता के भौतिक और सांस्कृतिक स्तर भी उतनी ही तेजी से ऊंचे उठेंगे।

सोवियत अर्थव्यवस्था विशाल है। थोड़ी-थोडी बचत करने पर भी कुल मिलाकर बडी बचत हो सकती है। कहावत है कि 'बूद-बूद जल भरहि तलावा।' उत्पादन के हर क्षेत्र, हर कारखाने और सामूहिक फार्म में थोड़ी-थोडी बचत भी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के पैमाने पर बहुत बड़ा रूप धारण कर सकती है। इसीलिए वर्तमान समय मे कठोर मितव्ययिता की नीति का अनुसरण अत्यन्त आवश्यक है।

मितव्ययिता की ओर अग्रसर होने का मतलब है : उत्पादन बढ़ाने और लागत घटाने की अधिकाधिक सम्भावनाओ को सामने लाना, कच्चे मालो और अन्य सामानो, ईंधन, विद्युत शक्ति का मितव्ययितापूर्वक और कुशल इस्तेमाल करना तथा सभी तरह की बर्बादी और अनुत्पादक व्यय रोकना।

पूर्ण मितव्ययिता लागू करने के लिए लागत लेखा एक महत्वपूर्ण साधन है। लागत-लेखा का शाब्दिक अर्थ अर्थव्यवस्था का हिसाब लगाया जा सकता है।

लागत-लेखा पूंजीवादी तरीके से हिसाब लगाने का मतलब जनता के शोषण द्वारा पूंजीपतियों की व्यक्तिगत समृद्धि और निजी फायदे के लिए काम करना है।

समाजवाद के अन्तर्गत लागत-लेखा पूंजीवादी लागत-लेखा से बिल्कुल भिन्न होती है। समाजवाद के अन्तर्गत लोगों का व्यक्तिगत स्वार्थ निर्धारक तत्व के रूप में काम नहीं करता। वहां सारे समाज का हित देखा जाता है। समाजवाद

के अन्तर्गत हर उद्यम मे लागत-लेखा तैयार किया जाता है। वहा मुख्य उ
सम्पूर्ण समाजवादी अर्थव्यवस्था के प्रबन्ध के क्षेत्र मे न्यूनतम व्यय के साथ उ
परिणाम प्राप्त करना है।

समाजवादी उद्यमो के नियोजित आर्थिक प्रबन्ध के लिए लागत-ले
महत्वपूर्ण है। इसके अन्तर्गत मौद्रिक रूप मे उत्पादन व्यय और आर्थिक क्रिय
के परिणामो की तुलना की जाती है। इसके द्वारा उद्यम अपनी आय से अपने
को पूरा करते हैं और इस विधि से उत्पादन की लाभदायकता निश्चित हो ज
है। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम का लक्ष्य "उद्यमो मे लाग
लेखा की व्यवस्था को प्रोत्साहन देना, पूर्ण मितव्ययिता और बचत करना,
और लागत को कम करना तथा लाभदायकता को बढाना है।"[१]

उत्पादन को मापने, वर्तमान और विगत श्रम का नियोजन और नियन्त्र
उत्पादन लागतो का नियत्रण तथा प्रत्येक उद्यम की कीमतो और लाभप्रदता
माप मुद्रा के कारण सम्भव है। हम लागत-लेखा द्वारा उद्यमो की वित्तीय आर्थि
स्थिति का उनकी क्रियाओ के परिणामो के ऊपर अवलम्बन प्रत्यक्ष रूप से
सकते हैं।

समाजवादी राज्य लागत-लेखा को एक आर्थिक यत्र के रूप मे उद्यमो
प्रभावित करने, खर्च का ठीक हिसाब रखने, हर उद्यम के आर्थिक कार्य
परिणामों को नियत्रित करने और राजकीय योजना को पूरा करने के लिए इस्तेम

लागत-लेखा का प्रयोग राजकीय और सामूहिक फार्म उद्यमो मे ग
रूप से होना है।

औद्योगिक उद्यमो मे लागत-लेखा की व्यवस्था करने के लिए जरूरी है
उत्पादन के अत्यन्त मितव्ययितापूर्ण प्रबन्ध के लिए आवश्यक परिस्थितिया जु
जायें। इनके अन्तर्गत समाजवादी राज्य द्वारा किये जाने वाले निर्देशित म
दर्शन और आर्थिक सचालन के मामले मे हर उद्यम की स्वतत्रता मे उचित सम
किया जाये।

राज्य प्रत्येक राजकीय उद्यम और सगठन को योजना की पूर्ति के ि
आवश्यक भौतिक और वित्तीय साधन प्रदान करता है। ये राजकीय उद्यम
सगठन लागत-लेखा व्यवस्था के अनुसार काम करते हैं।

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ११६।

आपसी सम्बधों की दृष्टि से ये उद्यम स्वतंत्र, न्यायिक और आर्थिक इकाइयां हैं। उनको अपने कर्मचारियों के चुनाव, अपने श्रमिकों को उच्च प्रशिक्षण देने और काम के लिए कोई भी भुगतान व्यवस्था लागू करने का अधिकार प्राप्त है।

लागत-लेखा व्यवस्था के आधार पर काम करने वाले उद्यम स्वतत्र पक्का चिट्ठा प्रकाशित करते हैं। इनसे उनकी आर्थिक कार्यवाहियों के बुनियादी सूचकांक प्राप्त होते हैं। स्टेट बैंक मे उद्यमों का चालू खाता होता है। वहा वे अपने पैसे जमा करते हैं और स्टेट बैंक के माध्यम से अन्य उद्यमों तथा सगठनो से लेन-देन करते हैं।

इन सबके फलस्वरूप राजकीय उद्यमों और आर्थिक सगठनो के व्यवस्थापक उत्पादन व्यवस्था के दौरान उठने वाले प्रश्नो पर शीघ्र निर्णय करने मे समर्थ होते हैं। वे अपने उत्पादन और वित्तीय साधनो के विक्रय मे आर्थिक पहल और लोच-पूर्ण रुख अपनाते है। न्यूनतम (सम्भव) व्यय से वे योजना को पूरा कर लेते हैं।

राजकीय योजना द्वारा निर्धारित लक्ष्यो के चौखटे के भीतर राजकीय उद्यम अपनी आर्थिक कार्यवाहियों के लिए स्वतत्र होते है। इन उद्यमों को राज्य आर्थिक कार्यवाही की स्वतत्रता प्रदान कर उन्हें अपने साधनों की सुरक्षा और सही एव अत्यन्त कुशल व्यवहार के लिए वास्तविक रूप मे जिम्मेदार बना देता है। ये उद्यम योजना की पूर्ति और राजकीय बजट, पूर्तिकर्ताओ और ग्राहको के प्रति जिम्मेदारी के निर्वाह के लिए उत्तरदायी होते हैं।

उच्चतर एजेंसियों द्वारा योजना मे निर्धारित मुख्य लक्ष्यों को पूरा करना प्रत्येक उद्यम के लिए अत्यन्त आवश्यक है। उद्यमो के व्यवस्थापक अपने उद्यमो के सारे आर्थिक कार्यों के लिए जिम्मेदार होते हैं।

उद्यमों के आपसी आर्थिक सम्बन्धों का नियमन आर्थिक करार द्वारा होता है। आर्थिक करार लागत-लेखा व्यवस्था की एक विशेषता है। इस व्यवस्था के अनुसार कार्य करने वाले उद्यम अपनी जरूरत के अनुसार उत्पादन के साधन खरीदते हैं और उत्पादन को उन ग्राहको के हाथों बेच देते हैं जिनके साथ उनका करार रहता है।

उनके करार पूर्ति की शर्तों, उत्पादन की मात्रा, दायरा और कोटि, देने की तारीख, कीमत, भुगतान की तारीख और शर्त और करार की शर्तों के उल्लघन पर दण्ड, आदि की व्यवस्था निश्चित करते हैं।

करार का कठोरता के साथ पालन लागत-लेखा की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

लागत-लेखा का मतलब है कि उद्यमों के आर्थिक कार्यों पर निरन्तर वित्तीय नियंत्रण हो। किसी भी उद्यम को प्राप्त होने वाले वित्तीय साधन प्रत्यक्ष रूप में इसके कार्य के परिणाम पर निर्भर होते हैं। उत्पादन और संचय की योजना के लक्ष्यों के पूरा न होने या योजना द्वारा निर्दिष्ट व्यय से अधिक खर्च होने पर उद्यम के लिए पूर्तिकर्ताओं के साथ हिसाब-किताब या वित्तीय और साख संस्थाओं की राशि को अदा करने में कठिनाइयां होती हैं। फलस्वरूप आर्थिक अनुशासन का भी प्रश्न उठ खड़ा होता है। वित्तीय नियंत्रण का कार्यान्वयन वित्तीय और साख संस्थाओं द्वारा होता है। उद्यम विशेष को मुद्रा-राशि और साख प्रदान करते समय और दी गयी वस्तुओं के भुगतान के समय वे इस नियंत्रण को मूर्त रूप प्रदान करते हैं।

वित्तीय नियंत्रण के कारण उद्यम कठोर मितव्ययिता की नीति के अनुसरण में कड़ाई से काम लेते हैं और अपने साधनों के आवर्त्त को तेज करते हैं।

लागत-लेखा यह मानकर चलता है कि उद्यम और व्यवस्थापकीय कर्मचारियों समेत सारे मजदूर योजना के लक्ष्यों की पूर्ति और उद्यमों के मितव्ययिता-पूर्वक कुशल संचालन में वास्तविक दिलचस्पी रखते हैं।

मजदूरों की वास्तविक दिलचस्पी का कारण श्रम के अनुसार वितरण के आर्थिक नियम के आधार पर मजूरी और बोनस की व्यवस्था है। उद्यम के कार्यों में मजदूरों की सामूहिक और व्यक्तिगत दिलचस्पी विशेष कोषों की स्थापना से और भी बढ़ जाती है।

मुनाफे की राशि से एक भाग लेकर समाजवादी उद्यमों में तीन प्रकार के कोषों का निर्माण किया जाता है

१. विकास कोष का निर्माण मुनाफे की राशि का एक भाग लेकर ... रिक्त घिसावट की राशि से एक हिस्सा लेकर किया जाता है। उद्यम ... और अपनी स्थिर परिसम्पत्ति के पूर्ण नवीकरण के लिए
कोष का ...

शिविरों, अवकाश-गृहों और स्वास्थ्य-गृहो के निर्माण तथा देखरेख एवं अन्य सामाजिक-सास्कृतिक सेवाओ पर खर्च की जाती है।

परिणामस्वरूप लागत-लेखा की व्यवस्था में सम्पूर्ण उद्यम और प्रत्येक मजदूर योजना के लक्ष्यो की पूर्ति और उससे अधिक उत्पादन मे दिलचस्पी लेता है। उसकी दिलचस्पी उद्यम के कुशल सचालन और उसे लाभदायक बनाने मे रहती है।

लागत-लेखा समाजवादी उद्यमों को ऐसी स्थिति मे रख देता है जहा उन्हें साधनों के इस्तेमाल में अधिकतम सम्भव मितव्ययिता प्राप्त करना जरूरी हो जाता है और उसका लाभ के साथ संचालन आवश्यक हो जाता है।

उद्यम की लाभदायकता

उद्यम की लाभदायकता का मतलब यह है कि उत्पादन की बिक्री से प्राप्त राशि से न सिर्फ लागत ही निकले, बल्कि मुनाफा भी प्राप्त हो।

अगर उद्यम सामाजिक तौर पर आवश्यक लागत से अधिक राशि उत्पादन पर व्यय करते हैं, तब वे व्यय की राशि भी उत्पादन को बेचकर नहीं पा सकते। उन्हे घाटा सहना पडेगा। जो उद्यम सामाजिक तौर पर आवश्यक लागत के बराबर या उससे कम व्यय करते हैं, उन्हे मुनाफा होता है। राज्य आर्थिक क्रियाए नियोजित करते समय यह मानकर चलता है कि सभी उद्यमों और उद्योग की सभी शाखाओ मे लाभ होना चाहिए।

समाजवाद के अन्तर्गत कुछ उद्यमो की लाभदायकता में वृद्धि होने से अन्य उद्यमो के हितों को किसी भी प्रकार धक्का नही पहुंचता। इसके विपरीत राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के भावी तेज विकास के लिए अनुकूल स्थितिया उत्पन्न हो जाती हैं। समाजवादी उद्यमो की लाभदायकता को कीमतों के स्वत. आकस्मिक उतार-चढ़ाव का कोई भय नही रहता। अर्थव्यवस्था के नियोजित सचालन के फलस्वरूप उत्पादन की बिक्री निश्चित नियोजित कीमतो पर होती है।

२. लागत-लेखा व्यवस्था कें अन्तर्गत उद्यमों की परिसम्पत्ति

उत्पादन प्रक्रिया के लिए श्रम-शक्ति और उत्पादन के साधनों की आवश्यकता होती है। इनके अन्तर्गत श्रम के उपकरण (मशीन, साज-सामान, कारखाने की इमारतें, आदि) और श्रम के विषय (कच्चे माल और अन्य सामान, ईंधन, अर्द्ध-तैयार वस्तुए, आदि) आते हैं।

उत्पादन के साधनो को उत्पादन परिसम्पत्ति भी कहते हैं। समाजवादी उद्यमो की उत्पादन परिसम्पत्ति को दो भागों—स्थिर परिसम्पत्ति और आवर्त परिसम्पत्ति—मे बाटते हैं। यह विभाजन परिधि (सर्किट) के स्वरूप पर निर्भर होता है।

यर परसम्पत्ति के अन्तर्गत उत्पादन प्रक्रिया में दीर्घकालीन उपयोग वाले
उत्पादन के साधन आते हैं। अपने घिसने के साथ वे
रिसम्पत्ति अपना मूल्य अंशों के रूप में तैयार माल को हस्तान्तरित
कर देते हैं।

ोवियत वर्गीकरण के अनुसार स्थिर उत्पादन परिसम्पत्ति के अन्तर्गत
ः लिए प्रयुक्त होने वाली इमारतें और संस्थापन, विद्युत शक्ति संयंत्र
न, आपरेटस, संचार गियर, परिवहन सुविधाएं, उपकरण और औजार
कार्यशील जीवन १ वर्ष से अधिक और उनका मूल्य ५० रूबल से अधिक
पाइपिंग व्यवस्था, सड़क और सड़क को समतल बनाने की व्यवस्था,
पूर्ति व्यवस्था, सिंचाई और भूमि की उन्नति के आवश्यक संस्थापन,
और उत्पादक मवेशी, आदि आते है।

स्थिर उत्पादन परिसम्पत्ति समाजवादी समाज का उत्पादक आधार है।
लागत-लेखा व्यवस्था के अनुसार काम करने वाले उद्यमों से यह अपेक्षा
है कि वे स्थिर परिसम्पत्ति का मितव्ययितापूर्ण इस्तेमाल करेंगे। स्थिर
त्ति के प्रयोग में सुधार होने से बिना अतिरिक्त पूंजी विनियोग किये उत्पा-
दि होती है और उत्पादन लागत घटती है।

उत्पादन प्रक्रिया में इस्तेमाल से स्थिर परिसम्पत्ति धीरे-धीरे घिसती है।
दो प्रकार की होती है :

भौतिक घिसावट से हमारा मतलब उत्पादन प्रक्रिया के दौरान भौतिक
यन्त्रिक क्रिया या प्राकृतिक कारणों के प्रभाव से स्थिर परिसम्पत्ति की
से है।

नैतिक घिसावट तकनीकी प्रगति का परिणाम होती है। टेक्नालॉजी के
के साथ पुरानी मशीनों के स्थान पर नयी, अधिक उत्पादक और सस्ती
का इस्तेमाल लाभदायक होता है। फलस्वरूप स्थिर परिसम्पत्ति में शामिल
शीनें और अन्य कई चीजें भौतिक रूप से घिसने के पूर्व ही बेकार हो जाती
लिए स्थिर परिसम्पत्ति को नैतिक घिसावट के कारण होने वाले घाटे से
ने के लिए आवश्यक है कि साज-सामानों का आधुनिकीकरण नियोजित
हो और उनकी पूरी क्षमता का इस्तेमाल बिना किसी ठहराव आदि के
ाये।

जैसे-जैसे स्थिर परिसम्पत्ति घिसती जाती है, उसे घिसावट कोषों द्वारा
पूरित करते जाते हैं। घिसावट कोषों का निर्माण तैयार माल के मूल्य में
र पुर्जों और साज-सामानों के सम्मिलित किये गये मूल्य से होता है। राज-
द्यमों के घिसावट-कोषों के एक भाग का प्रयोग राज्य स्थिर परिसम्पत्ति के

पुनस्स्थापन के लिए करता है। उद्यम दूसरे भाग का इस्तेमाल काम आने वाली स्थिर परिसम्पत्ति की सफाई और मरम्मती के लिए करता है।

राजकीय उद्यमों की स्थिर परिसम्पत्ति का निर्माण राष्ट्रीय आय के सचित हिस्से से होता है। सोवियत सघ मे १६२८-१६६२ के दौरान स्थिर परिसम्पत्ति करीब दस गुनी से अधिक बढी और औद्योगिक एव इमारती उद्यमो की स्थिर परिसम्पत्ति मे करीब ४६ गुनी से अधिक वृद्धि हुई।

सोवियत अर्थव्यवस्था मे स्थिर उत्पादक परिसम्पत्ति के अतिरिक्त स्थिर गैर-उत्पादक परिसम्पत्ति भी है। समाजवादी राज्य या सामूहिक फार्मों और सहकारी समितियों की वह सम्पत्ति जिसका इस्तेमाल वर्षों तक गैर-उत्पादक सार्वजनिक उपभोग के लिए होता है, स्थिर गैर-उत्पादक परिसम्पत्ति कही जाती है इसके अन्तर्गत आवास स्थान, इमारतें, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाए, समुदायिक सेवा प्रशासन, सस्कृति, आदि से सम्बद्ध सस्थाओ और सगठनो की इमारतें और साज सामान, आदि आते है।

आवर्त्त के दौरान पायी जाने वाली परिसम्पत्ति उत्पादन के साधनों का वह भाग है जिसका एक ही उत्पादन-काल के दौरान पूर्ण उपयोग हो जाता है और उसका पूरा मूल्य तैयार माल मे सम्मिलित हो जाता है।

आवर्त्त के दौरान परिसम्पत्ति

इसके अन्तर्गत भौतिक रूप मे १) माल-गोदामो मे रहने वाला उत्पादन भडार—कच्चे माल, बुनियादी और सहायक सामान, ईंधन, उत्पादन प्रक्रिया मे इस्तेमाल के लिए खरीदे गये अर्द्ध-तैयार माल, मरम्मती के लिए अतिरिक्त पुर्जे, कम मूल्य के कम टिकाऊ औजार, आदि और २) तैयार नही हुए माल, अर्द्ध-तैयार माल और बाद के वर्षों की लागत (उत्पादन के नये विभाग को प्रारम्भ करने मे होने वाला व्यय, दीर्घकाल तक चलने वाले तैयारी कार्य और अन्य काम) आते है। उपर्युक्त विवरण को हम पृष्ठ ३०५ पर दी गयी स्कीम से स्पष्ट कर सकते हैं।

स्थिर परिसम्पत्ति और आवर्त्त के अन्तर्गत रहने वाली परिसम्पत्ति के अन्तर्गत समाजवादी उद्यमो को अतिरिक्त साधनो की आवश्यकता होती है, जिससे उनका काम प्रचलन के क्षेत्र मे हो सके। समाजवादी

परिचलन परिसम्पत्ति

उद्यमो के उत्पादन को योजना के अनुसार बेचा जाता है और उद्यमो को विनिमय मे मुद्रा-राशि प्राप्त होती है। इससे स्पष्ट है कि लागत-लेखा व्यवस्था के अनुसार काम करने वाले उद्यमो के म किसी भी निश्चित समय मे स्थिर परिसम्पत्ति और आवर्त्त के अन्तर्गत रहने ो परिसम्पत्ति के अलावा बिक्री के लिए तैयार माल की एक निश्चित मात्रा

उद्यमों के आवर्त के अन्तर्गत परिसम्पत्ति
मालगोदामों में उत्पादन भंडार
उत्पादन प्रक्रिया में
कच्चा और बुनियादी माल
खरीदा गया अर्द्ध-तैयार माल
सहायक सामान
ईंधन
तैयार नहीं हुआ माल
उत्पादन के नये विभाग को शुरू करने में होने वाला व्यय
मरम्मत के लिए अतिरिक्त पुर्जे
पैकिंग के सामान
कम मूल्य के कम टिकाऊ औजार
उद्यम द्वारा उत्पन्न अर्द्ध तैयार माल

और उत्पादन की अब तक की बिक्री से प्राप्त मुद्रा-राशि होती है। बिक्री के लिए रखा हुआ उत्पादन भंडार और कच्चा माल, ईंधन, आदि की खरीद के लिए उद्यम के लिए आवश्यक वित्तीय साधनों को एक साथ उपलब्ध परिसम्पत्ति कहते हैं।

आवर्त्त में रहने वाली और उपलब्ध परिसम्पत्ति मौद्रिक रूप में उद्यम विशेष की परिचलन परिसम्पत्ति कही जाती है। परिचलन के साधनों के ये दो तत्व पुनरुत्पादन की प्रक्रिया में भिन्न रूपों में काम करते हैं: आवर्त के अन्तर्गत रहने वाली परिसम्पत्ति उत्पादन की प्रक्रिया में काम करती है और उपलब्ध परिसम्पत्ति परिचलन के क्षेत्र में कार्य करती है, किन्तु दोनों उद्यम के साधनों के आवर्त के चौखटे में काम करती हैं।

समाजवादी उद्यमों की परिचलन परिसम्पत्ति दो भागों में विभाजित होती है . उद्यम की अपनी परिसम्पत्ति और उधार लिये गये साधन।

राज्य प्रत्येक राजकीय उद्यम को उसकी परिचलन परिसम्पत्ति सौंप देता है। यह परिसम्पत्ति उत्पादन योजना के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए न्यूनतम जरूरतों को ध्यान में रखकर दी जाती है। साल के दूसरे समय में कच्चे मालों और ईंधन की खरीद करनी होती है। कभी-कभी वस्तुएं परिवहन के कारण पड़ी रहती हैं। इन सबके लिए आवश्यक मुद्रा-राशि स्टेट बैंक से उधार के रूप में ली जाती है। स्टेट बैंक से ली गयी ऋण-राशि को एक निश्चित समय (जो सम्भवतः एक साल से अधिक नहीं होता) के भीतर ब्याज सहित चुका दिया जाता है।

राज्य उद्यमों को न्यूनतम साधन ही देता है जिससे वे मितव्ययितापूर्वक इस्तेमाल करें और उनका उत्पादन और बिक्री भी बढ़े।

परिचलन परिसम्पत्ति के आवर्त्त की गति

परिचलन परिसम्पत्ति के आवर्त्त की गति उद्यमों और आर्थिक संगठनों की क्रियाओं की एक सामान्य विशेषता है। परिचलन परिसम्पत्ति निरन्तर गतिमान रहती है और तीन क्रमिक चरणों से होकर गुजरती है। इस निरन्तर वेग को परिचलन परिसम्पत्ति का आवर्त्त कहते हैं।

आवर्त्त के प्रथम चरण में राजकीय उद्यम की परिचलन परिसम्पत्ति अपने मौद्रिक रूप से उत्पादन भंडार के रूप में परिवर्तित होती है, यानी वह उत्पादन के लिए आवश्यक उत्पादन के साधनों का रूप ग्रहण करती है।

आवर्त्त के दूसरे चरण में उत्पादन भंडार इस्तेमाल में आ जाते हैं और तैयार माल का रूप ले लेते हैं। उस अवस्था में परिचलन परिसम्पत्ति उत्पादक उपभोग के क्षेत्र में आ जाती है।

आवर्त्त के तीसरे चरण में उद्यम द्वारा उत्पन्न वस्तुएं बेची जाती हैं और परिचलन परिसम्पत्ति मौद्रिक रूप ले लेती है। यह मुद्रा-राशि उत्पादन भंडार

आदि प्राप्त करने के लिए खर्च की जाती है और इस प्रकार सम्पूर्ण आवर्त्त फिर से दुहराया जाता है।

इन क्रमिक चरणों से गुजरने मे परिचलन परिसम्पत्ति को जो समय लगता है उसे उनके आवर्त्त का सम्पूर्ण काल कहते है।

परिचलन परिसम्पत्ति के आवर्त्त को तेज कर लागत-लेखा व्यवस्था के अन्तर्गत उद्यम उत्पादन मे इस्तेमाल होने वाले कच्चे माल और अन्य भौतिक मूल्यों के भंडार को कम करता है। इस तरह उस उद्यम मे उत्पादन के विस्तार या राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की अन्य शाखाओं मे उपयोग के लिए परिचलन परिसम्पत्ति का एक भाग उपलब्ध हो जाता है।

किसी भी उद्यम के साधनों के आवर्त्त की गति उत्पादन और परिचलन (बिक्री के लिए प्रस्तुत भंडार आदि के रूप मे) में लगाये गये समय पर निर्भर होती है। इसलिए परिचलन परिसम्पत्ति के आवर्त्त को त्वरित करने वाले तत्वों में उत्पादन एव परिचलन पर व्यय किये गये समय मे कमी और आवश्यक कोटा से अधिक भंडार को समाप्त करना मुख्य है। परिचलन परिसम्पत्ति के आवर्त्त को तेज करना राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए काफी महत्व रखता है।

३. उत्पादन लागत और तैयार वस्तुओं की कीमतें

समाजवादी अर्थ-व्यवस्था मे लागत और उसकी सरचना

समाजवादी समाज मे वस्तु का मूल्य तीन भागों मे बांटा जा सकता है : १) काम मे लाये गये उत्पादन के साधनों का मूल्य, २) आवश्यक श्रम द्वारा उत्पन्न मूल्य, ३) अधिशेष श्रम द्वारा उत्पन्न मूल्य।

प्रथम दो भाग समाजवादी उद्यमों की उत्पादन लागत मे शामिल होते है। मूल्य का तीसरा भाग समाज की शुद्ध आय होता है।

उद्योग मे कारखाने की लागत और पूर्ण लागत मे अन्तर करना आवश्यक है। कारखाने की लागत के अन्तर्गत उद्यम द्वारा वस्तुओ के उत्पादन मे लगायी गयी लागत आती है। पूर्ण लागत मे कारखाने की लागत के अतिरिक्त वस्तुओं की बिक्री पर और अन्य दिशाओ (परिवहन, पैकिंग, ट्रस्टों एव मत्रालयों के प्रशासन, कर्मचारियों के प्रशिक्षण एव तकनीकी प्रचार पर किया गया व्यय और शोध-संस्थानों को दी गयी राशि आती है) मे होने वाले व्यय शामिल हैं।

औद्योगिक उत्पादन की उत्पादन लागत का ढांचा क्या है?

उद्यम वस्तुओ के उत्पादन पर जो कुछ भी खर्च करता है, उसे निम्न-लिखित समरूप कोटियों मे आर्थिक विशेषताओं और उत्पादन के बुनियादी तत्वों की प्रकार के आधार पर बांटा जा सकता है :

१. मजूरी और मजूरी के आधार पर निर्धारित अतिरिक्त व्यय।

२ कच्चे माल और अन्य सामानों, ईंधन एवं विद्युत शक्ति पर होने वाला व्यय।

३. प्रयुक्त उत्पादन के साधनों के मूल्य के बराबर घिसावट कोष की व्यवस्था।

४. उत्पादन के प्रबन्ध एव व्यवस्था के ऊपर उद्यम और उसके विभागों का व्यय।

उत्पादन लागत मे विभिन्न तत्वो का अनुपात उद्योग की शाखा विशेष की विशिष्ट स्थितियो और विशेषताओं और उसके तकनीकी साज-सामानो के स्तर तथा उत्पादन और श्रम के सगठन के अनुमार परिवर्तित होता रहता है।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओं मे सामाजिक श्रम के व्यय मे मितव्ययिता लाने के लिए उत्पादन लागत मे कमी करना आवश्यक होता है। उत्पादन लागत मे कमी करने के लिए आवश्यक है कि काम पर नियुक्त मजदूरों की उत्पादकता बढे, प्रति इकाई उत्पादन पर ईंधन और विद्युत शक्ति का होने वाला व्यय घटे और प्रशासकीय खर्च मे कटौती हो।

उत्पादन लागत मे कटौती एक महत्वपूर्ण चीज है, क्योंकि इस पर सिर्फ उस उद्यम विशेप की ही लाभदायकता निर्भर नही है, बल्कि सचय भी अवलम्बित है। उत्तरोत्तर सचय के द्वारा ही समाजवादी पुनरुत्पादन का क्षेत्र बढता है और लोगो का भौतिक एव सास्कृतिक स्तर ऊचा उठता है। उत्पादन लागत मे कमी करने का आन्दोलन काफी महत्वपूर्ण है। दो दशकों (१९६१-८०) के दौरान औद्योगिक उत्पादन लागत मे कटौती के फलस्वरूप १,४००-१,५०० अरब रूबल की बचत होगी। यह राशि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के कुल विनियोग का ३/४ है।

शुद्ध आय और उसके दो रूप

सम्पूर्ण समाजवादी समाज मे अधिशेष श्रम द्वारा उत्पन्न अधिशेष उत्पादन के मूल्य का मौद्रिक रूप ही शुद्ध आय है।

सम्पूर्ण राष्ट्रीय आय के समान ही समाज की शुद्ध आय भौतिक उत्पादन की शाखाओ मे उत्पन्न की जाती है। राजकीय उद्यमो मे उत्पन्न शुद्ध आय के एक भाग का वितरण स्वय उद्यम (मुनाफे के रूप मे) करते हैं। शुद्ध आय का दूसरा भाग राज्य को प्राप्त होता है। शुद्ध आय का उत्पादन सामूहिक फार्मों मे भी होता है। इसका एक भाग सामूहिक फार्मों के पास रहता है और शेष कीमतो और आय-कर द्वारा राज्य के पास चला जाता है।

राज्य की केन्द्रित शुद्ध आय कैसे प्राप्त होती है

राजकीय उद्यमों एवं संगठनों के लाभ और आवर्त्त-कर से प्राप्त राशि → राज्य की शुद्ध आय ← मजूरी की कुल राशि से प्राप्त सामाजिक बीमा के लिए ली गयी राशि
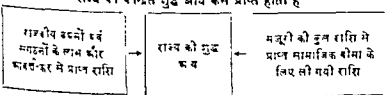
सामूहिक फार्मों और अन्य सहकारी उद्यमों तथा संगठनों की शुद्ध आय का एक अंश

शुद्ध आय दो रूपों में होती है . राज्य के पास केन्द्रित शुद्ध आय और राजकीय उद्यम (तथा सामूहिक फार्म) की शुद्ध आय।

राज्य के पास केन्द्रित शुद्ध आय समाजवादी समाज के अधिशेष उत्पादन के मूल्य का वह हिस्सा है जो सम्पूर्ण जनता की आवश्यकताओं पर व्यय करने के लिए राज्य के हाथों में केन्द्रित होता है।

राजकीय बजट में यह आय आवर्त्त-कर, मुनाफे से ली गयी राशि, मजूरी बिल के आधार पर लिये गये सामाजिक बीमा-शुल्क, सहकारी उद्यमों से लिये गये आय-कर, आदि के रूप में होती है।

राज्य को प्राप्त होने वाली शुद्ध आय सब लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने, पूंजीगत निर्माण कार्यों को वित्तीय साधन देने और प्रतिरक्षा, सार्वजनिक शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, पेंशन, प्रशासन, इत्यादि पर राज्य के होने वाले व्यय को पूरा करने के लिए इस्तेमाल में लायी जाती है।

राजकीय उद्यम की शुद्ध आय से हमारा तात्पर्य अधिशेष उत्पादन के मूल्य के उस भाग से है जो उद्यम के पास रहता है। शुद्ध आय की मात्रा इस पर निर्भर है कि कहां तक उद्यम योजना के लक्ष्यों को पूरा करता है और किस हद तक उत्पादन लागत में कटौती होती है। उद्यम जितनी ही अच्छी तरह काम करेगा, उत्पादन लागत उतनी ही कम और शुद्ध आय उतनी ही अधिक होगी। इस व्यवस्था के फलस्वरूप उत्पादन की लाभदायकता बढ़ाने में उद्यम के सभी मजदूर वास्तविक दिलचस्पी दिखाते हैं।

राजकीय उद्यमों की शुद्ध आय का इस्तेमाल प्राविधिक प्रक्रियाओं, सामाजिक-सांस्कृतिक सुविधाओं एवं भवन-निर्माण के लिए कोष-निर्माण और समाज-

वादी उद्यमों के मजदूरों को प्रोत्साहन देने के वास्ते एक कोष स्थापित करने के लिए नियोजित रूप से होता है। उद्यमों की शुद्ध आय (मुनाफा) का एक भाग लाभांश के रूप में राजकीय बजट में रखा जाता है।

उद्यम की शुद्ध आय (मुनाफा) का एक भाग राजकीय बजट में ले लिया जाता है।

समाजवादी उद्यमों की शुद्ध आय निरन्तर बढ़ रही है। १६४० में सोवियत संघ के उद्यमों एवं आर्थिक संगठनों की शुद्ध आय ३२७ करोड़ रूबल और १६६४ में ३,६६० करोड़ रूबल थी।

राजकीय क्षेत्र में कीमत

समाजवादी उद्योग का उत्पादन पहले से तय की गयी कीमतों पर बेचा जाता है। समाजवाद के अन्तर्गत कीमत निर्धारण उत्पादन की सामाजिक लागत से होता है, या यों कहें कि कीमत निर्धारण का मुख्य आधार वस्तु का मूल्य होता है। समाजवादी समाज में कीमतें मूल्य से भिन्न होती हैं। किन्तु ये विचलन अपने-आप नहीं होते, बल्कि इनका निर्धारण राज्य द्वारा देश की अर्थव्यवस्था का विकास करने और मेहनतकश जनता की खुशहाली बढ़ाने के लिए होता है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में बताया गया है कि "कीमतों को एक हद तक सामाजिक तौर पर आवश्यक श्रम के व्यय को जाहिर करना चाहिए और उत्पादन एवं परिचलन लागत के अतिरिक्त एक निश्चित मुनाफा राशि सामान्य तौर पर काम करने वाले उद्यम को मिलनी चाहिए।"[1]

समाजवादी अर्थव्यवस्था में उद्यम एवं उद्योग की थोक कीमतों, राज फार्मों की कृषिजन्य वस्तुओं की कीमतों, सामूहिक फार्मों द्वारा राज्य को बेची जाने वाली कृषिजन्य वस्तुओं की मूल कीमतों और फार्म के बचे हुए उत्पादन की बिक्री की कीमतों, राजकीय एवं सहकारी व्यापार की खुदरा कीमतों और असंगठित बाजार की खुदरा कीमतों के बीच भेद किया जाता है।

सोवियत संघ में थोक कीमतों में पूर्ण लागत, औद्योगिक उद्यम का मुनाफा और बिक्री-संगठन की लागत और मुनाफा शामिल होते हैं। अगर वस्तु पर आवर्त्त-कर लगता है, तो उसे भी थोक कीमत में शामिल कर लेते हैं।

सिर्फ उपभोक्ता वस्तुएं उत्पन्न करने वाले उद्योग की शाखाएं और भारी उद्योग की कुछ शाखाएं (तेल, गैस, लोहा और इस्पात, इलेक्ट्रोटेक्निकल उद्योग, आदि) ही राज्य को आवर्त्त-कर देती हैं। भारी उद्योग के उत्पादन का अधिकांश [illegible] जाता है। इसका मतलब है कि भारी उद्योग में उत्पन्न शुद्ध

[1] "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ५३७।

ना आवर्म-त्रर के द्वारा इसके उद्योग द्वारा उत्पन्न वस्तुओं की लिया जाता है।

मतें निर्धारित करते समय राज्य वस्तुओं के उत्पादन पर उद्यमों के को पूरा करने और लाभदायकता को बनाये रखने की आवश्यकता रूप से ध्यान देता है।

ा की व्यवस्था द्वारा राज्य उद्यमों के लाभप्रद परिचालन को प्रोत्साहित, उत्पादन लागत में कमी करने और जरूरी वस्तुओं के उत्पादन को प्रेरित करता है। समाजवादी उत्पादन का निरन्तर विकास और कीमतों में कटौती का आधार है। इस प्रकार वे मुद्रा कीमतों में । सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में बताया गया ादकता की वृद्धि और उत्पादन लागत में कटौती के आधार पर स्थित एवं आर्थिक दृष्टि से उचित कमी कम्युनिस्ट निर्माण के काल की मुख्य प्रवृत्ति होती है।"[1]

४. सामूहिक फार्मों में लागत-लेखा

त लेखा के सिद्धान्त बुनियादी रूप से सामूहिक फार्मों पर भी लागू वियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम के अनुसार "सामूहिक व्यवस्था लागत-लेखा के सिद्धान्तों पर आधारित होनी चाहिए।"[2] हिक फार्मों में सहकारी और सामूहिक फार्म सम्पत्ति की खास विशेषरण लागत-लेखा का राजकीय उद्यमों की तुलना में भिन्न स्वरूप

त-लेखा के लिए आवश्यक है कि सामूहिक फार्म के समग्र उत्पादन फार्म में एक वर्ष के दौरान किये गये उत्पादन) का सही हिसाब मौद्रिक जाये। इस उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा बिकाऊ उत्पादन के रूप में ता है। इस बिकाऊ उत्पादन का अधिकांश राज्य को निश्चित बुनि- कीमतों पर बेच दिया जाता है।

वियत संघ में कीमतें हर किस्म के उत्पादन के लिए अलग-अलग क्षेत्रों त्पादन परिस्थितियों के अनुसार निश्चित की जाती हैं। उदाहरण के न्न की राजकीय खरीद कीमत उक्राइन की अपेक्षा यूराल में अधिक है, ाइन में प्रति सेंटनर अन्न के उत्पादन में यूराल की अपेक्षा कम श्रम

---

[1] नेज्म का मार्ग", पृष्ठ ५२७।
[2] ृष्ठ ५२६।

भारी उद्यमों के मजदूरों को प्रोत्साहन देने के वास्ते एक कोष स्थापित करने के लि
निर्धारित रूप में होता है। उद्यमों की शुद्ध आय (मुनाफा) का एक भाग लाना
के रूप में राजकीय बजट में रखा जाता है।

उद्यम की शुद्ध आय (मुनाफा) का एक भाग राजकीय बजट में ले लिया जाता है।

समाजवादी उद्यमों की शुद्ध आय निरन्तर बढ़ रही है। १९६० में सोवियत संघ के उद्यमों एवं आर्थिक संगठनों की शुद्ध आय ३२० करोड़ रूबल और १९६४ में ३,९९० करोड़ रूबल थी।

राजकीय क्षेत्र में कीमत

समाजवादी उद्योग का उत्पादन पहले से तय की गयी कीमतों पर बेचा जाता है। समाजवाद के अन्तर्गत कीमत निर्धारण उत्पादन की सामाजिक लागत से होता है, या यों कहें कि कीमत निर्धारण का मुख्य आधार वस्तु का मूल्य होता है। समाजवादी समाज में कीमतें मूल्य से भिन्न होती हैं। किन्तु ये विचलन अपने-आप नहीं होते, बल्कि इनका निर्धारण राज्य द्वारा देश की अर्थव्यवस्था का विकास करने और मेहनतकश जनता की खुशहाली बढ़ाने के लिए होता है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में बताया गया है कि "कीमतों को एक हद तक सामाजिक तौर पर आवश्यक श्रम के व्यय को जाहिर करना चाहिए और उत्पादन एवं परिचलन लागत के अतिरिक्त एक निश्चित मुनाफा राशि सामान्य तौर पर काम करने वाले उद्यम को मिलनी चाहिए।"[1]

समाजवादी अर्थव्यवस्था में उद्यम एवं उद्योग की थोक कीमतों, राजकीय फार्मों की कृषिजन्य वस्तुओं की कीमतों, सामूहिक फार्मों द्वारा राज्य को बेची जाने वाली कृषिजन्य वस्तुओं की मूल कीमतों और फार्म के बचे हुए उत्पादन की विशेष ऊंची कीमतों, राजकीय एवं सहकारी व्यापार की खुदरा कीमतों और असंगठित बाजार की खुदरा कीमतों के बीच भेद किया जाता है।

सोवियत संघ में थोक कीमतों में पूर्ण लागत, औद्योगिक उद्यम का मुनाफा और बिक्री-संगठन की लागत और मुनाफा शामिल होते हैं। अगर वस्तु पर आवर्त-कर लगता है, तो उसे भी थोक कीमत में शामिल कर लेते हैं।

सिर्फ उपभोक्ता वस्तुएं उत्पन्न करने वाले उद्योग की शाखाएं और भारी उद्योग की कुछ शाखाएं (तेल, गैस, लोहा और इस्पात, इलेक्ट्रोटेक्निकल उद्योग, इत्यादि) ही राज्य को आवर्त-कर देती हैं। भारी उद्योग के उत्पादन का अधिकांश ... लिया जाता है। इसका मतलब है कि भारी उद्योग में उत्पन्न शुद्ध

[1] "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ५३७।

आय का एक हिस्सा आवर्त्त-कर के द्वारा हल्के उद्योग द्वारा उत्पन्न वस्तुओं की कीमतों में वसूल लिया जाता है।

थोक कीमतें निर्धारित करते समय राज्य वस्तुओं के उत्पादन पर उद्यमों के नियोजित व्यय को पूरा करने और लाभदायकता को बनाये रखने की आवश्यकताओं पर विशेष रूप से ध्यान देता है।

कीमतों की व्यवस्था द्वारा राज्य उद्यमों के लाभप्रद परिचालन को प्रोत्साहित करता है, उत्पादन लागत में कमी करने और जरूरी वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने के लिए प्रेरित करता है। समाजवादी उत्पादन का निरन्तर विकास और उन्नति थोक कीमतों में कटौती का आधार हैं। इस प्रकार वे खुदरा कीमतों में कटौती लाते हैं। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में बताया गया है कि "श्रम-उत्पादकता की वृद्धि और उत्पादन लागत में कटौती के आधार पर कीमतों में व्यवस्थित एवं आर्थिक दृष्टि से उचित कमी कम्युनिस्ट निर्माण के काल में दाम-नीति की मुख्य प्रवृत्ति होती है।"[1]

४. सामूहिक फार्मों में लागत-लेखा

लागत लेखा के सिद्धान्त बुनियादी रूप से सामूहिक फार्मों पर भी लागू होते हैं। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम के अनुसार "सामूहिक फार्मों में कृषि व्यवस्था लागत-लेखा के सिद्धान्तों पर आधारित होनी चाहिए।"[2] किन्तु सामूहिक फार्मों में सहकारी और सामूहिक फार्म सम्पत्ति की खास विशेषताओं के कारण लागत-लेखा का राजकीय उद्यमों की तुलना में भिन्न प्रकार होता है।

लागत-लेखा के लिए आवश्यक है कि सामूहिक फार्म के समस्त उत्पादन (सामूहिक फार्म में एक वर्ष के दौरान किये गये उत्पादन) का सही हिसाब मौद्रिक रूप में रखा जाये। इस उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा बिकाऊ उत्पादन के रूप में बेच दिया जाता है। इस बिकाऊ उत्पादन का अधिकांश राज्य को निश्चित बुनियादी खरीद कीमतों पर बेच दिया जाता है।

सोवियत संघ में कीमतें हर किस्म के उत्पादन के लिए अलग-अलग क्षेत्रों में क्षेत्रीय उत्पादन परिस्थितियों के अनुसार निश्चित की जाती हैं। उदाहरण के लिए, खाद्यान्न की राजकीय खरीद कीमत उक्राइन की अपेक्षा दूसरे क्षेत्रों में अधिक है, क्योंकि उक्राइन में प्रति सेंटनर अन्न के उत्पादन में दूसरे [illegible] लगता है।

...आमने के मार्ग में अनेक कठिनाई
दाहरण के लिए, सामूहिक फार्म अपने उत्पादन के कुछ साधन (जैसे, बीज,
) नहीं खरीदता। वे उनकी कमी का अन्न-आप उनका उत्पादन कर पूरा करते
मूहिक फार्म पर श्रम के लिए वस्तु और मुद्रा दोनों में भुगतान किया जाता
लिए सामूहिक फार्म पर उत्पादन लागत का हिसाब लगाना कठिन हो जाता
र ठीक से हिसाब लगाया जाए, ऐसा-ऐसा व्यवस्थित रूप में रखा जावे
य एवं सामानों का उचित मूल्यांकन किया जावे, तो इन कठिनाइयों का हल
सकता है।

वर्तमान काल में सामूहिक फार्म को उत्पादन लागत का हिसाब यों लगाना
फार्म में उत्पन्न बीज, चारा और अन्य सामानों का मूल्यांकन उनकी
लागत के आधार पर किया जाता है तथा खरीदे गये सामानों का मूल्यांकन
बाजार कीमत के आधार पर होता है। स्थिर उत्पादन परिसम्पत्ति (ट्रैक्टरों
डियों, फार्म-मशीनरी, आदि) की घिसावट का हिसाब राजकीय फार्मों के
इन दरों पर किया जाता है। सामूहिक फार्म के सदस्यों को वस्तु के रूप
जाने वाले भुगतान को मुद्रा के रूप में बदला जाता है, क्योंकि ऐसा होने
ा-लेखा व्यवस्था को काम में लाना आसान हो जाता है।

सामूहिक फार्म बड़े पैमाने का एक आर्थिक उद्यम है। किसानों के पूर्वजों
र में लाये जाने वाले पुराने तरीकों को अब नहीं अपनाया जा सकता।
सामूहिक फार्म की दृष्टि से उत्पादन पर होने वाले व्यय का हिसाब मुद्रा
रखना जरूरी हो गया है। सामूहिक फार्मों का यह कर्तव्य है कि वे उत्पा-
में कटौती करें। इसके लिए उन्हें सबसे पहले श्रम की उत्पादकता
गी। सघन खेती (यानी रसायनों, सिंचाई की सुविधाओं के प्रयोग,
त्रीकरण और विद्युतीकरण) से श्रम-उत्पादकता में तेजी से वृद्धि होगी।
ी से उपज बढ़ेगी और मवेशियों की उत्पादकता में वृद्धि होगी।
षि उत्पादन की राजकीय खरीद कीमतों और खुदरा कीमतों को घटाने
पादन में वृद्धि और उत्पादन लागत में कटौती आवश्यक है।
जकीय खरीद कीमतों को इस तरह निर्धारित किया जाता है कि साम-
अपने उत्पादन को बेचकर उत्पादन लागत को पूरा कर सकें और शुद्ध
मुनाफे (खरीद कीमत और उत्पादन लागत का अन्तर) की एक राशि
सकें।

मूहिक फार्म की शुद्ध आय उसके समग्र उत्पादन के मूल्य का वह भाग
उत्पादन में हुए हर प्रकार के व्यय (उत्पादन लागत) को पूरा करने

द बच जाता है। उत्पादन लागत और प्राप्त आय की तुलना कर हम यह
न कर सकते हैं कि किस फसल को उपजाना लाभदायक है। इस प्रकार
सामूहिक फार्म के आर्थिक कार्यों के परिणामों का मूल्यांकन किया जा
है।

सामूहिक फार्म की शुद्ध आय का एक भाग अन्तरीय लगान होता है,
कृषि उत्पादन के लिए जमीन अनिवार्य है। भूखण्डों में उर्वरता और
की भिन्नता के कारण अन्तर होता है। बेहतर प्राकृतिक उर्वरता और
स्थिति के कारण कुछ सामूहिक फार्मों में श्रम-उत्पादकता ऊंची होती है या
इकाई उत्पादन में श्रम की कम मात्रा व्यय होती है।

इसलिए बेहतर या औसत भूखण्डों या बाजार के नजदीक के भूखण्डों पर
करने वालों को अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक शुद्ध आय प्राप्त होती है।
आय के इस भाग को अन्तरीय लगान-१ कहते हैं।

सामूहिक फार्मों में अन्तरीय लगान-२ भी प्राप्त होता है। अग्रणी फार्मों
आधुनिक टेक्नालाजी, खाद और खेती के तरीकों, आदि के द्वारा जमीन का
ी तरह इस्तेमाल करने के फलस्वरूप जो शुद्ध आय की राशि मिलती है उसे
न्तरीय लगान-२ कहते हैं।

अन्तरीय लगान का एक भाग सामूहिक फार्मों के पास ही रह जाता है।
भाग राज्य की कीमतों और आय-कर की व्यवस्था के द्वारा राजकीय बजट
प्राप्त होता है।

प्रति इकाई उत्पादन पर लागत कम करने के लिए सामूहिक फार्मों को
ी अवसर प्राप्त हैं। श्रम-उत्पादकता बढ़ाकर व्यय कम करने से सामूहिक
ों को शुद्ध आय की अधिक राशि प्राप्त होती है और सामूहिक फार्म पर काम
े वाले किसानों की खुशहाली बढ़ती है।

सामूहिक फार्म उत्पादन की लाभदायकता मालूम करने के लिए उत्पादन लागत जानना आवश्यक है। उत्पादन लागत जानने के मार्ग में अनेक कठिनाइयां हैं। उदाहरण के लिए, सामूहिक फार्म अपने उत्पादन के कुछ साधन (जैसे, बीज,

है। अगर ठीक से हिसाब लगाया जाये, लेखा-जोखा व्यवस्थित रूप से रखा जाये और श्रम एवं सामानों का उचित मूल्यांकन किया जाये, तो इन कठिनाइयों का हल निकल सकता है।

वर्तमान काल में सामूहिक फार्म की उत्पादन लागत का हिसाब यों लगाया जाता है. फार्म में उत्पन्न बीज, चारा और अन्य सामानों का मूल्यांकन उनकी उत्पादन लागत के आधार पर किया जाता है तथा खरीदे गये सामानों का मूल्यांकन उनकी बाजार कीमत के आधार पर होता है। स्थिर उत्पादन परिसम्पत्ति (ट्रैक्टरों मोटरगाड़ियों, फार्म-मशीनरी, आदि) की घिसावट का हिसाब राजकीय फार्मों के लिए स्वीकृत दरों पर किया जाता है। सामूहिक फार्म के सदस्यों को वस्तु के रूप में किये जाने वाले भुगतान को मुद्रा के रूप में बदला जाता है, क्योंकि ऐसा पर लागत-लेखा व्यवस्था को काम में लाना आसान हो जाता है।

सामूहिक फार्म बड़े पैमाने का एक आर्थिक उद्यम है। किसानों के पू द्वारा काम में लाये जाने वाले पुराने तरीकों को अब नहीं अपनाया जा सक आधुनिक सामूहिक फार्म की दृष्टि से उत्पादन पर होने वाले व्यय का हिसाब के रूप में रखना जरूरी हो गया है। सामूहिक फार्मों का यह कर्तव्य है कि वे उ दन लागत में कटौती करें। इसके लिए उन्हें सबसे पहले श्रम की उत्पाद बढ़ानी होगी। सघन खेती (यानी रसायनों, सिंचाई की सुविधाओं के प्रय व्यापक यंत्रीकरण और विद्युतीकरण) से श्रम-उत्पादकता में तेजी से वृद्धि होग सघन खेती से उपज बढ़ेगी और मवेशियों की उत्पादकता में वृद्धि होगी।

कृषि उत्पादन की राजकीय खरीद कीमतों और खुदरा कीमतों को घट के लिए उत्पादन में वृद्धि और उत्पादन लागत में कटौती आवश्यक है।

राजकीय खरीद कीमतों को इस तरह निर्धारित किया जाता है कि सा हिक फार्म अपने उत्पादन को बेचकर उत्पादन लागत को पूरा कर सकें और शु आय यानी मुनाफे (खरीद कीमत और उत्पादन लागत का अन्तर) की एक रा प्राप्त कर सकें।

सामूहिक फार्म की शुद्ध आय उसके समग्र उत्पादन के मूल्य का वह भा होती है जो उत्पादन में हुए हर प्रकार के व्यय (उत्पादन लागत) को पूरा करने

बढ़ जाता है। [illegible] [illegible] है। इस प्रकार सामूहिक फार्मों [illegible] कार्यों के [illegible] का मूल्यांकन किया जा सकता है।

सामूहिक फार्म की शुद्ध आय का एक भाग अन्तरीय लगान होता है, क्योंकि कृषि उत्पादन के लिए जमीन अनिवार्य है। भूखण्डों में उर्वरता और स्थिति की भिन्नता के कारण अन्तर होता है। केवल प्राकृतिक उर्वरता और बेहतर स्थिति के कारण कुछ सामूहिक फार्मों में श्रम-उत्पादकता ऊंची होती है या प्रति इकाई उत्पादन में श्रम की कम मात्रा व्यय होती है।

इसलिए बेहतर या औसत भूखण्डों या बाजार के नजदीक के भूखण्डों पर खेती करने वालों को अन्य गांवों की अपेक्षा अधिक शुद्ध आय प्राप्त होती है। शुद्ध आय के इस भाग को अन्तरीय लगान-१ कहते हैं।

सामूहिक फार्मों में अन्तरीय लगान-२ भी प्राप्त होता है। अपने फार्मों की आधुनिक टेक्नालाजी, खाद और सिंचाई के तरीकों, आदि के द्वारा जमीन का अच्छी तरह इस्तेमाल करने के फलस्वरूप जो शुद्ध आय की राशि मिलती है उसे ही अन्तरीय लगान-२ कहते हैं।

अन्तरीय लगान का एक भाग सामूहिक फार्मों के पास ही रह जाता है। दूसरा भाग राज्य की कीमतों और आय-कर की व्यवस्था के द्वारा राजकीय बजट को प्राप्त होता है।

प्रति इकाई उत्पादन पर लागत कम करने के लिए सामूहिक फार्मों को काफी अवसर प्राप्त हैं। श्रम-उत्पादकता बढ़ाकर व्यय कम करने से सामूहिक फार्मों की शुद्ध आय की अधिक राशि प्राप्त होती है और सामूहिक फार्म पर काम करने वाले किसानों की खुशहाली बढ़ती है।

के लिए, सामूहिक फार्म अपने उत्पादन के कुछ साधन (जैसे, बी
खरीदते। वे उनकी कमी को अपने-आप उनका उत्पादन कर पूरा कर
फार्म पर श्रम के लिए वस्तु और मुद्रा दोनों में भुगतान किया जा
सामूहिक फार्म पर उत्पादन लागत का हिसाब लगाना कठिन हो जा
क में हिसाब लगाया जाये, लेना-जोखा व्यवस्थित रूप से रखा जा
साधनों का उचित मूल्यांकन किया जाये, तो इन कठिनाइयों का ह
है।

ान काल में सामूहिक फार्म की उत्पादन लागत का हिसाब यों लगाया

फार्म-मशीनरी, आदि) की घिसावट का हिसाब राजकीय फार्मों के
रों पर किया जाता है। सामूहिक फार्म के सदस्यों को वस्तु के रूप
ाले भुगतान को मुद्रा के रूप में बदला जाता है, क्योंकि ऐसा होने
व्यवस्था को काम में लाना आसान हो जाता है।

क फार्म बड़े पैमाने का एक आर्थिक उद्यम है। किसानों के पूर्वजों
ाये जाने वाले पुराने तरीकों को अब नहीं अपनाया जा सकता।
हिक फार्म की दृष्टि से उत्पादन पर होने वाले व्यय का हिसाब मुद्रा
जरूरी हो गया है। सामूहिक फार्मों का यह कर्तव्य है कि वे उत्पा-
टौती करें। इसके लिए उन्हें सबसे पहले श्रम की उत्पादकता
सघन खेती (यानी रसायनों, सिंचाई की सुविधाओं के प्रयोग,
ण और विद्युतीकरण) से श्रम-उत्पादकता में तेजी से वृद्धि होगी।
पज बढ़ेगी और मवेशियों की उत्पादकता में वृद्धि होगी।
त्पादन की राजकीय खरीद कीमतों और खुदरा कीमतों को घटाने
में वृद्धि और उत्पादन लागत में कटौती आवश्यक है।
खरीद कीमतों को इस तरह निर्धारित किया जाता है कि सामू-
उत्पादन को बेचकर उत्पादन लागत को पूरा कर सके और शुद्ध
(खरीद कीमत और उत्पादन लागत का अन्तर) की एक राशि

फार्म की शुद्ध आय उसके समग्र उत्पादन के मूल्य का वह भाग
दन में हुए हर प्रकार के व्यय (उत्पादन लागत) [illegible] करते

के बाद बच जाता है। उत्पादन लागत और प्राप्त आय की तुलना कर हम यह निश्चित कर सकते हैं कि किस फसल को उपजाना लाभदायक है। इस प्रकार सम्पूर्ण सामूहिक फार्म के आर्थिक कार्यों के परिणामों का मूल्यांकन किया जा सकता है।

सामूहिक फार्म की शुद्ध आय का एक भाग अन्तरीय लगान होता है, क्योंकि कृषि उत्पादन के लिए जमीन अनिवार्य है। भूखण्डों में उर्वरता और स्थिति की भिन्नता के कारण अन्तर होता है। बेहतर प्राकृतिक उर्वरता और बेहतर स्थिति के कारण कुछ सामूहिक फार्मों में श्रम-उत्पादकता ऊँची होती है या प्रति इकाई उत्पादन में श्रम की कम मात्रा व्यय होती है।

इसलिए बेहतर या औसत भूखण्डों या बाजार के नजदीक के भूखण्डों पर खेती करने वालों को अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक शुद्ध आय प्राप्त होती है। शुद्ध आय के इस भाग को अन्तरीय लगान-१ कहते हैं।

सामूहिक फार्मों में अन्तरीय लगान-२ भी प्राप्त होता है। अग्रणी फार्मों में आधुनिक टेक्नालाजी, खाद और खेती के तरीकों, आदि के द्वारा जमीन का अच्छी तरह इस्तेमाल करने के फलस्वरूप जो शुद्ध आय की राशि मिलती है उसे ही अन्तरीय लगान-२ कहते हैं।

अन्तरीय लगान का एक भाग सामूहिक फार्मों के पास ही रह जाता है। दूसरा भाग राज्य की कीमतों और आय-कर की व्यवस्था के द्वारा राजकीय बजट को प्राप्त होता है।

प्रति इकाई उत्पादन पर लागत कम करने के लिए सामूहिक फार्मों को काफी अवसर प्राप्त हैं। श्रम-उत्पादकता बढ़ाकर व्यय कम करने से सामूहिक फार्मों को शुद्ध आय की अधिक राशि प्राप्त होती है और सामूहिक फार्म पर काम करने वाले किसानों की खुशहाली बढ़ती है।

अध्याय १६

समाजवादी पुनरुत्पादन—समाजवाद के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय और वित्त एवं साख व्यवस्था

१. समाजवादी पुनरुत्पादन

समाजवादी पुनरुत्पादन का स्वरूप

पुनरुत्पादन का मतलब है उत्पादन, वितरण और उपभोग की प्रक्रिया की निरन्तर पुनरावृत्ति। इस प्रक्रिया में उत्पादन ही अन्य सभी चीजों को निर्धारित करता है, क्योंकि जो कुछ उत्पादन होगा उसी का वितरण और इस्तेमाल होगा।

पुनरुत्पादन, साधारण या विस्तारित, किसी भी प्रकार का हो सकता है। समाजवाद के अन्तर्गत उत्पादन का पैमाना प्रतिवर्ष निर्बाध रूप से बढ़ता है। संक्षेप में कहें तो समाजवाद के अन्तर्गत विस्तारित पुनरुत्पादन होता है। पुनरुत्पादन की प्रक्रिया का अर्थ स्थायी भौतिक धन और श्रम-शक्ति से कुछ अधिक है। इसके अन्तर्गत उत्पादन के सम्बंध भी शामिल होते हैं।

पूरे पैमाने के कम्युनिस्ट निर्माण की अवधि में समाजवादी उत्पादन-सम्बन्धों के पुनरुत्पादन से समाज की समाजवादी सम्पत्ति दो रूपों में विकसित और सुदृढ़ होती है। राजकीय और सहकारी एवं सामूहिक फार्म की सम्पत्ति एक-दूसरे के निकट आती है और भविष्य में उनका विलयन हो जाता है। वे धीरे-धीरे एक कम्युनिस्ट सम्पत्ति के रूप में बदल जाती हैं। मेहनतकश जनता के बीच मैत्रीपूर्ण सहयोग और पारस्परिक सहायता की भावना बढ़ती है। श्रम के प्रति कम्युनिस्ट दृष्टिकोण का विकास होता है तथा जीवन की अच्छी चीजों के वितरण की कम्युनिस्ट व्यवस्था शनै:-शनै: विकसित होती है।

पूंजीवादी पुनरुत्पादन की तुलना में समाजवादी पुनरुत्पादन की मुख्य विशेषता यह है कि वह लोगों की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करता है। पूंजीवाद के अन्तर्गत लक्ष्य कुछ और ही होता है। पूंजीवादी पुनरुत्पादन का मुख्य उद्देश्य पूंजीपतियों के एक छोटे समूह की समृद्धि बढ़ाना है। समाजवादी पुनरुत्पादन का विकास सम्पूर्ण समाज के हित में होता है। इसके अन्तर्गत उद्यमों और उद्योगों के बीच प्रतिद्वन्द्विता, अधिक उत्पादन के संकट और बेरोजगारी के जन्म लेने की कोई सम्भावना नहीं रहती।

समाजवादी पुनरुत्पादन की एक और विशेषता उत्पादन की निरन्तर वृद्धि है। सोवियत संघ का उत्पादन निरन्तर बढ़ता जा रहा है, जबकि पूंजीवादी विश्व के प्रमुख देश, अमरीका में उत्पादन की वृद्धि में युद्ध के बाद चार बार संकटों के कारण रुकावटें आयी हैं।

समाजवादी पुनरुत्पादन नियोजित रूप से चलता है। इसका मतलब यह है कि अर्थव्यवस्था की हर शाखा और सम्पूर्ण सामाजिक उत्पादन का विकास एक पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार होता है।

आर्थिक विकास की उच्च दर, उत्पादक शक्तियों का निरन्तर विकास और कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार का निर्माण समाजवादी पुनरुत्पादन की प्रमुख विशेषताएं हैं।

सामाजिक तौर पर पुनरुत्पादन की प्रक्रिया उत्पादक शक्तियों और उत्पादन के सम्बंधों की पुनरावृत्ति करती है, किन्तु भौतिक उत्पादन की दृष्टि से यह समग्र सामाजिक उत्पादन के निर्माण की प्रक्रिया है।

समाजवादी पुनरुत्पादन के फलस्वरूप समग्र सामाजिक उत्पादन होता है और समाज का धन बढ़ता है। समाज का धन समाज को प्राप्त भौतिक मूल्यों का कुल योग है। ये भौतिक मूल्य किसी खास पीढ़ी और उसकी पिछली पीढ़ियों की उत्पादक क्रियाओं के फल हैं।

समग्र सामाजिक उत्पादन और उसका ढांचा

एक निश्चित अवधि, साधारणतया एक साल, के दौरान समाज द्वारा उत्पन्न भौतिक धन की सम्पूर्ण मात्रा को समग्र सामाजिक उत्पादन कहते हैं। भौतिक उत्पादन के क्षेत्र (उद्योग, कृषि, परिवहन, संचार) में लगे लोगों और व्यापार के क्षेत्र में काम करने वाले लोगों के श्रम के द्वारा ही समग्र सामाजिक उत्पादन प्राप्त किया जाता है। व्यापार का क्षेत्र (पैकिंग, भंडार और परिवहन) भी उत्पादन प्रक्रिया में शामिल है।

भौतिक उत्पादन में कार्य के अतिरिक्त राजकीय प्रशासन, सांस्कृतिक कार्य तथा जनता को म्युनिसिपल और चिकित्सा सेवाएं प्रदान करने वाले क्षेत्र में भी

काम होता है। इन क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों का समग्र सामाजिक उत्पादन
की उत्पत्ति में कोई सीधा योगदान नहीं है, किन्तु उनका श्रम सामाजिक दृष्टि से
महत्त्वपूर्ण है। वे अप्रत्यक्ष रूप से समग्र सामाजिक उत्पादन की उत्पत्ति
देते हैं।

समाजवादी समाज में समग्र सामाजिक उत्पादन निरन्तर निर्बा
से बढ़ता है। विकास की तेज दर इसकी एक खास विशेषता है।
(१९६१-८०) के दौरान सोवियत संघ का समग्र सामाजिक उत्पादन
गुना बढ़ेगा।

निम्नलिखित तत्वों के कारण समाजवाद में उत्पादन का द्रुत
विकास होता है।

सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व श्रम-उत्पादकता की वृद्धि है। समाजवाद के अ
श्रम-उत्पादकता की वृद्धि के फलस्वरूप समग्र सामाजिक उत्पादन को बढ़ा
असीमित सम्भावनाएं हैं।

भौतिक उत्पादन में लगे लोगों की संख्या में वृद्धि दूसरा तत्व है।

समग्र सामाजिक उत्पादन को भौतिक और मूल्य दोनों रूपों में पुनरस्त
किया जाता है।

भौतिक रूप में समग्र सामाजिक उत्पादन के मुख्य तत्व ये हैं:

१ उत्पादन के लिए आवश्यक वस्तुएं या उत्पादन के साधन (मशीन,
कच्चा माल और अन्य सामान, ईंधन, आदि);

२ व्यक्तिगत उपभोग की वस्तुएं (कपड़ा, जूता, भोजन, घरेलू वस्तुएं,
सांस्कृतिक इस्तेमाल की वस्तुएं, आदि)।

उत्पादन के लिए अपेक्षित वस्तुओं द्वारा उत्पादन के लिए इस्तेमाल किये
ये साधनों की कमी को पूरा किया जाता है और उत्पादन का विस्तार होता है।

व्यक्तिगत उपभोग की वस्तुओं का इस्तेमाल मजदूरों की व्यक्तिगत जरू-
तों को पूरा करने, राजकीय भंडार बनाने और उत्पादन में काम करने वाले अन्य
लोगों को उपभोक्ता वस्तुएं प्रदान करने के लिए होता है।

इसलिए समग्र सामाजिक उत्पादन में सम्मिलित वस्तुओं को उनके इस्ते-
माल के अनुसार दो मुख्य भागों—उत्पादन के साधनों की उत्पत्ति (विभाग १)
और उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन (विभाग २)—में बांटा जाता है।

मूल्य की दृष्टि से समग्र सामाजिक उत्पादन के तीन भाग हैं: १) उत्पादन
न साधनों का मूल्य जिनका उत्पा प्रक्रिया में इस्तेमाल हो चुका है
नी उत्पादन के साधनों के जो तैयार माल में हस्तान्तरित
का है), २) नव-उत्पा

के लिए होती है, ३) वह नव-उत्पादित मूल्य जिसका इस्तेमाल उत्पादन और सार्वजनिक उपभोग भंडार के प्रसार के लिए होता है।

पुनरुत्पादन की प्रक्रिया में प्रत्येक एक विशेष भूमिका अदा करता है। पहला हिस्सा काम में लाये गये उत्पादन के साधनों के मूल्य की कमी को पूरा करता है। इस तरह वह इमारतों, मशीनों औजारों, संस्थानों, मशीनों और यंत्रों की घिसावट को पूरा करता है और काम में लाये गये कच्चे मालों, ईंधन, विद्युत शक्ति और उत्पादन में प्रयुक्त अन्य तत्वों की कमी को पुनर्स्थापित करता है।

समग्र सामाजिक उत्पादन का दूसरा हिस्सा व्यय की गयी श्रम-शक्ति के मूल्य के बराबर होता है, यानी उत्पादन करने वाले मजदूरों द्वारा इस्तेमाल की गयी वस्तुओं के मूल्य के बराबर होता है।

समग्र सामाजिक उत्पादन का तीसरा भाग अधिशेष उत्पादन के मूल्य के बराबर होता है। इसका इस्तेमाल गैर-उत्पादक क्षेत्र के व्यय को पूरा करने और उत्पादन के विस्तार के लिए साधन जुटाने (संचय कोष के रूप में) के लिए होता है।

समग्र सामाजिक उत्पादन के मूल्य की प्राप्ति

वार्षिक सामाजिक उत्पादन के मूल्य की प्राप्ति एक योजना के अनुसार होती है। विभाग १ और विभाग २ के पारस्परिक और प्रत्येक विभाग के भीतरी विनिमय के द्वारा ही यह कार्य होता है।

सबसे पहले हम यह देखें कि विभाग १ के उद्यमों के बीच किस प्रकार विनिमय होता है।

विभाग १ में उत्पादन प्रक्रिया के निरन्तर नवीनीकरण के लिए आवश्यक है कि उत्पादन की प्रक्रिया में इस्तेमाल किये गये उत्पादन के [illegible] पूरा किया जाये।

विभाग १ की विभिन्न शाखाओं के पारस्परिक विनिमय द्वारा [illegible] होता है। उदाहरण के लिए, लोह अयस्क और कोयला [illegible] कच्चा माल और ईंधन मिलता है। इस्पात [illegible] देता है और बदले में मशीन और साज सामान [illegible] की शाखाओं में परस्पर उत्पादन के साधनों का [illegible] है। इस विनिमय से ही उत्पादन की [illegible] है। इस प्रकार विभाग १ के उत्पादन का एक हिस्सा [illegible] है।

विभाग १ के उत्पादन के [illegible] गये उत्पादन के साधनों की पुनर्स्थापना [illegible]

श्रम निहित होता है। इसका उपयोग विभाग १ और विभाग २ में उत्पादन के विस्तार के लिए किया जाता है।

विभाग २ के उत्पादन के एक हिस्से का मूल्य भी इस विभाग के भीतर विभिन्न शाखाओं के पारस्परिक विनिमय द्वारा प्राप्त किया जाता है। इस हिस्से का इस्तेमाल इस विभाग में संलग्न लोगों के पारस्परिक उपभोग के लिए होता है। दूसरे भाग को विभाग १ के मजदूरों के उपभोग के लिए रखा जाता है। विभाग २ के उत्पादन के एक भाग का इस्तेमाल उत्पादन में अतिरिक्त मजदूरों को लगाने के लिए होता है।

विभाग १ और विभाग २ में उत्पादनों का पारस्परिक विनिमय होता है। विभाग १ से विभाग २ के उद्योगों को मशीनी औजार, मशीन और यंत्र, ईंधन, सामान, इत्यादि मिलते हैं। इनके द्वारा उत्पादन में प्रयुक्त साधनों की कमी को पूरा किया जाता है और उत्पादन का विस्तार किया जाता है। विभाग १ में काम करने वाले मजदूरों को विभाग २ से व्यक्तिगत उपभोग की वस्तुएं मिलती हैं और उपभोग भंडार का विस्तार होता है क्योंकि उपभोग में लगातार वृद्धि होती है और विभाग १ में उत्पादन की सभी शाखाओं का विस्तार होता है तथा अतिरिक्त मजदूरों को काम मिलता है।

इस तरह भौतिक और मौद्रिक दोनों रूपों में समग्र सामाजिक उत्पादन के अवयवों का पारस्परिक विनिमय होता रहता है।

समाजवादी विस्तारित पुनरुत्पादन की निर्बाध प्रक्रिया के लिए निम्नलिखित स्थितियों की आवश्यकता होती है :

प्रथम, विभाग १ (जो उत्पादन के साधनों को उत्पन्न करता है) वार्षिक उत्पादन मूल्य और भौतिक रूप की दृष्टि से इतना होना चाहिए कि क) मूल्य और भौतिक रूप की दृष्टि से विभाग १ और विभाग २ में समग्र सामाजिक [illegible]

[illegible] उत्पादन परिसम्पत्ति में वृद्धि हो सके (यानी उत्पादन के पैमाने में वृद्धि के लिए उत्पादन के आवश्यक साधनों का संचय हो सके) और ग) उत्पादन परिसम्पत्ति के सामाजिक [illegible] भंडार और सुरक्षित कोष बन सकें।

[illegible] उपभोक्ता वस्तुओं को उत्पन्न करता है) का [illegible] से इतना होना चाहिए कि क) [illegible] गये अतिरिक्त मजदूरों को [illegible] सिद्धान्त के अनुसार उपभोक्ता [illegible] क्षेत्रों (प्रशासन,

[illegible]ल, स्वास्थ्य सेवा, आदि) में लगे मजदूरों को उपभोक्ता वस्तुएं मिल सकें और ग) सामाजिक तौर पर उपभोक्ता वस्तुओं के आवश्यक भंडार और सुरक्षित निधि बन सकें।

इन शर्तों के पूरा होने पर ही समस्त सामाजिक उत्पादन को निर्बाध विस्तारित पुनरुत्पादन हो सकती है।

उत्पादन के साधनों के उत्पादन की प्राथमिकता

समाजवादी विस्तारित पुनरुत्पादन के लिए सबसे आवश्यक शर्त यह है कि उत्पादन के साधनों के उत्पादन को उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन की तुलना में प्राथमिकता दी जाये (यानी उत्पादन के साधनों का उत्पादन अपेक्षाकृत तेजी से हो)। उत्पादन के विस्तार के लिए आवश्यक है कि सर्वप्रथम उत्पादन के साधन उत्पन्न किये जायें और उनका उत्पादन इतनी मात्रा में हो कि उत्पादन के दौरान काम में लाये गये साधनों की कमी को ही पूरा न किया जा सके, बल्कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओं में उत्पादन बढ़े।

लेनिन ने उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन के ऊपर उत्पादन के साधनों के उत्पादन को प्राथमिकता देने की बात को विस्तारित पुनरुत्पादन का एक आर्थिक नियम बताया।

इस नियम को जरा हम अच्छी तरह देखें।

सामाजिक उत्पादन में विगत श्रम के हिस्से के बढ़ने और जीवित श्रम के हिस्से के घटने के साथ समाज की उत्पादक शक्तियों का विकास और तकनीकी प्रगति साथ-साथ होती है। शारीरिक श्रम का स्थान मशीनी श्रम लेता जाता है। मशीनों से श्रम-उत्पादकता बढ़ती है और फलस्वरूप उत्पादन की मात्रा और उत्पादन के पैमाने में वृद्धि होती है। उत्पादन के साधनों के विकास के कारण शारीरिक श्रम का स्थान मशीनी श्रम ले लेता है और मशीन उद्योग की आम प्रगति होती है।

तकनीकी प्रगति के आधार पर विस्तारित पुनरुत्पादन के लिए उत्पादन के साधनों का विकास आवश्यक है।

पूंजीवाद के विपरीत समाजवाद में पूंजीगत वस्तुओं के विकास की प्राथमिकता गुणात्मक रूप से भिन्न होती है। यह विकास अपने आप नहीं होता और न ही चक्रीय होता है। यह विकास जानबूझ कर किया जाता है। इस विकास का उद्देश्य पूंजीपतियों को समृद्ध करना नहीं है। यह विकास नियोजित होता है। इसके फलस्वरूप समस्त जनता का हित-साधन होता है।

समाजवाद की स्थापना के लिए उत्पादन के साधनों के विकास को प्राथ-
मिकता देना आवश्यक है : उपभोक्ता वस्तुओं के लिए लोगों की माग पूरा करने
वाले खाद्य उद्योगों और कृषि का विकास तभी हो सकता है जब भारी उद्योग उन्हे
विभिन्न प्रकार की मशीनें आवश्यक मात्रा में दें और विद्युत शक्ति और कच्चा
माल प्रदान करें। संक्षेप मे, अर्थव्यवस्था की इन शाखाओं मे तकनीकी प्रगति का
विस्तार आवश्यक है। उदाहरण के लिए, कपड़े के उत्पादन को बढ़ाने के लिए
सर्वप्रथम अत्यन्त कुशल करघे और अन्य मशीनें आवश्यक हैं।

जब पूरे पैमाने पर कम्युनिस्ट निर्माण-कार्य होने लगता है, उस समय भारी
उद्योग अधिकाधिक मात्रा मे प्रत्यक्षत: उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की वस्तुएं
उत्पन्न करने लगते हैं। देश के आर्थिक विकास एवं प्रतिरक्षा की आवश्यकताओ
को पूरा करने के साथ ही भारी उद्योग पहले से अधिक मात्रा में फार्मों, हलके एव
खाद्य उद्योगों तथा उपभोक्ता उत्पादन की अन्य शाखाओ को उत्पादन के साधन
ते हैं। फलस्वरूप उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन के क्षेत्र में भी विकास की दर
ढ़ाकर पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन के विकास की दर के बराबर करना सम्भव
ो जाता है।

इसका मतलब यह नहीं है कि उत्पादन के साधनों के उत्पादन के विकास
ो प्राथमिकता का नियम अब सही नहीं है। भारी उद्योग सदा ही समाजवादी
र्थिक विकास का आधार रहा है और अब भी है। भारी उद्योगों की बदौलत
समाज उत्पादक शक्तियों के विकास, तकनीकी प्रगति और जीवन-यापन के
र में सुधार की दृष्टि से बहुत आगे बढ़ा है।

२. राष्ट्रीय आय और समाजवाद के अन्तर्गत उसका वितरण

राष्ट्रीय आय

समाजवादी अर्थव्यवस्था मे राष्ट्रीय आय समग्र सामा-
जिक उत्पादन का वह हिस्सा है जो काम में लाये गये
उत्पादन के साधनों के मूल्य को पूरा करने के बाद बच
ा है। राष्ट्रीय आय मे व्यय किया गया अतिरिक्त श्रम भी शामिल होता है।

अपने भौतिक या वस्तुगत रूप मे राष्ट्रीय आय के अन्तर्गत देश में उत्पन्न
उत्पादन के साधन और उपभोक्ता वस्तुएं होती हैं। राष्ट्रीय आय का इस्तेमाल
, उत्पादन के विस्तार, जनसंख्या के व्यक्तिगत उपभोग और अन्य गैर-उत्पा-
उपभोगों के लिए होता है। चूंकि समाजवाद के अन्तर्गत वस्तु उत्पादन होता
सलिए राष्ट्रीय आय मूल्य के रूप में होती है और मुद्रा के द्वारा मापी
ी है।

समाजवादी समाज की राष्ट्रीय आय पूंजीवादी समाज की राष्ट्रीय आय से बिल्कुल भिन्न होती है। उसका आर्थिक स्वरूप अलग होता है और उसके स्रोत भी भिन्न होते हैं। उसके वितरण के सिद्धान्त और इस्तेमाल के रूप अलग होते हैं।

पूंजीवाद के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय की सृष्टि मेहनतकश जनता के शोषण द्वारा होती है और उसका इस्तेमाल शोषक वर्ग करते हैं। उसके बहुत बड़े भाग का इस्तेमाल स्वयं पूंजीपति और भूस्वामी करते हैं। उसका सिर्फ एक छोटा-सा हिस्सा मेहनतकश जनता को मिल पाता है।

समाजवाद के अन्तर्गत शोषणमुक्त मेहनतकश जनता राष्ट्रीय आय का निर्माण करती है और वही उसकी स्वामी होती है। वहां राष्ट्रीय आय की निर्बाध और द्रुत प्रगति की सभी स्थितियां रहती हैं।

१९५४ से १९६३ के बीच सोवियत संघ की राष्ट्रीय आय में १३० प्रतिशत और प्रति व्यक्ति उत्पादन में ९४ प्रतिशत की वृद्धि हुई। १९८० तक सोवियत संघ की राष्ट्रीय आय में पांच गुनी वृद्धि हो जायेगी और वह ७२,००० या ७५,००० करोड़ रूबल के पास पहुंच जायेगी।

समाजवाद के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय की वृद्धि का मुख्य कारण श्रम-उत्पादकता में वृद्धि है। विज्ञान और संस्कृति, संचित अनुभव और मेहनतकश जनता के तकनीकी ज्ञान की वृद्धि का इस दृष्टि से बहुत महत्व है।

सोवियत संघ की राष्ट्रीय आय में अधिकांश वृद्धि श्रम-उत्पादकता के बढ़ने के फलस्वरूप होती है। राष्ट्रीय आय की वृद्धि में यह तत्व काफी महत्वपूर्ण है। १९६१-८० के दौरान राष्ट्रीय आय की वृद्धि के ९/१० के लिए श्रम-उत्पादकता की वृद्धि जिम्मेदार होगी। श्रम-उत्पादकता जितनी ही अधिक होगी, समग्र सामाजिक उत्पादन की मात्रा और फलस्वरूप राष्ट्रीय आय उतनी ही अधिक होगी।

समाजवादी समाज में राष्ट्रीय आय की वृद्धि भौतिक उत्पादन के क्षेत्र में लगे लोगों की संख्या में वृद्धि के कारण भी होती है।

साथ ही विज्ञान, सार्वजनिक स्वास्थ्य और संस्कृति के क्षेत्र में काम करने वाले लोगों की संख्या में भी वृद्धि होती है। १९६१-८० के दौरान इन क्षेत्रों में लगे लोगों की संख्या ४० प्रतिशत बढ़ जायेगी।

समाजवादी अर्थव्यवस्था में समाज की मानव-शक्ति का अत्यन्त कुशलतापूर्वक इस्तेमाल होता है, क्योंकि समाजवाद के अन्तर्गत बेरोजगारी के खत्म हो जाने के कारण समाज की जरूरतों को ध्यान में रखकर श्रम-शक्ति का नियोजित इस्तेमाल सम्भव हो जाता है।

समाजवाद की स्थापना के लिए उत्पादन के साधनों के विकास को प्राथमिकता देना आवश्यक है। उपभोक्ता वस्तुओं के लिए लोगों की मांग पूरा करने वाले खाद्य उद्योगो और कृषि का विकास तभी हो सकता है जब भारी उद्योग उन्हें विभिन्न प्रकार की मशीनें आवश्यक मात्रा में दें और विद्युत शक्ति और कच्चा माल प्रदान करें। संक्षेप में, अर्थव्यवस्था की इन शाखाओं में तकनीकी प्रगति का विस्तार आवश्यक है। उदाहरण के लिए, कपड़े के उत्पादन को बढ़ाने के लिए सर्वप्रथम अत्यन्त कुशल करघे और अन्य मशीनें आवश्यक हैं।

जब पूरे पैमाने पर कम्युनिस्ट निर्माण-कार्य होने लगता है, उस समय भारी उद्योग अधिकाधिक मात्रा में प्रत्यक्षतः उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की वस्तुएं उत्पन्न करने लगते हैं। देश के आर्थिक विकास एवं प्रतिरक्षा की आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ ही भारी उद्योग पहले से अधिक मात्रा में फार्मों, हलके एव खाद्य उद्योगों तथा उपभोक्ता उत्पादन की अन्य शाखाओं को उत्पादन के साधन देते हैं। फलस्वरूप उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन के क्षेत्र में भी विकास की दर बढ़ाकर पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन के विकास की दर के बराबर करना सम्भव हो जाता है।

इसका मतलब यह नही है कि उत्पादन के साधनों के उत्पादन के विकास की प्राथमिकता का नियम अब सही नहीं है। भारी उद्योग सदा ही समाजवादी आर्थिक विकास का आधार रहा है और अब भी है। भारी उद्योगों की बदौलत ही समाज उत्पादक शक्तियों के विकास, तकनीकी प्रगति और जीवन-यापन के स्तर मे सुधार की दृष्टि से बहुत आगे बढ़ा है।

२. राष्ट्रीय आय और समाजवाद के अन्तर्गत उसका वितरण

राष्ट्रीय आय समाजवादी अर्थव्यवस्था मे राष्ट्रीय आय समग्र सामाजिक उत्पादन का वह हिस्सा है जो काम मे लाये गये उत्पादन के साधनो के मूल्य को पूरा करने के बाद बच जाता है। राष्ट्रीय आय मे व्यय किया गया अतिरिक्त श्रम भी शामिल होता है।

अपने भौतिक या वस्तुगत रूप मे राष्ट्रीय आय के अन्तर्गत देश मे उत्पन्न नये उत्पादन के साधन और उपभोक्ता वस्तुए होती हैं। राष्ट्रीय आय का इस्तेमाल सचय, उत्पादन के विस्तार, जनसख्या के व्यक्तिगत उपभोग और अन्य गैर-उत्पादक उपभोगों के लिए होता है। चूकि समाजवाद के अन्तर्गत वस्तु उत्पादन होता है, इसलिए राष्ट्रीय आय मूल्य के रूप मे होती है और मुद्रा के द्वारा मापी जाती है।

उपयोग सामाजिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं (यानी विज्ञान, सार्वजनिक शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, कला, इत्यादि की आवश्यकताओं) की सतुष्टि, सामाजिक सुरक्षा (बड़े परिवारों की माताओं और अविवाहित माताओं की सहायता, पेंशन, इत्यादि) तथा प्रशासन और प्रतिरक्षा (राजकीय यंत्र, सशस्त्र सेना, इत्यादि की देखभाल) के लिए होता है। जन-कल्याण को बढ़ाने की दृष्टि से सार्वजनिक उपभोग भंडार का काफी महत्व है। सोवियत जनता के उपभोग के अधिकाधिक हिस्से की व्यवस्था सार्वजनिक भंडार से होती है।

संचय कोष (या भंडार) का निर्माण अधिशेष उत्पादन से होता है। भौतिक दृष्टि से इस भंडार मे मुख्यतः विभाग १ के उत्पादन होते हैं। विभाग २ के उत्पादन का एक निश्चित भाग भी संचित किया जाता है। यह उत्पादन भंडार, उत्पादन मे लगे लोगो के बीच वितरण हेतु संचित उपभोक्ता वस्तुओ, इत्यादि के रूप मे होता है। सचय भंडार मे मौद्रिक दृष्टि से राजकीय बजट, राज्य, सहकारी और सामूहिक फार्म उद्यमों के संचित साधन होते हैं। राष्ट्रीय आय का लगभग २५ प्रतिशत सचय भंडार मे शामिल होता है।

इस्तेमाल की दृष्टि से सचय भंडार को तीन भागो मे बाटा जा सकता है। एक भाग का इस्तेमाल उत्पादन के विस्तार, दूसरे हिस्से का उपयोग सांस्कृतिक और कल्याणकारी उद्देश्यो (स्कूलो, अस्पतालो, आवास, इत्यादि के निर्माण और संचालन) की पूर्ति तथा तीसरे भाग का इस्तेमाल आरक्षित या बीमा कोष के निर्माण के लिए होता है।

समग्र सामाजिक उत्पादन और राष्ट्रीय आय के वितरण को हम पृष्ठ ३२४ पर दी गयी स्कीम से स्पष्ट कर सकते हैं।

समाजवाद के अन्तर्गत उत्पादन और उपभोग, या उपभोग और सचय के बीच कोई विरोध नही रहता। समाजवादी समाज यह कोशिश करता है कि

समाजवादी सचय

उपभोग और सचय के बीच ऐसा सतुलन स्थापित किया जाये जिससे विस्तारित पुनरुत्पादन का विकास तेजी से हो और समाजवादी समाज की जरूरतो को पूरी तरह सतुष्ट किया जा सके।

उपभोग और सचय के पारस्परिक सम्बध का निर्धारण राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नियोजित, सानुपातिक विकास के नियम के आधार पर समाजवादी निर्माण के वर्तमान कार्यों को देखते हुए किया जाता है। उपभोग और सचय के पारस्परिक अनुपात अपरिवर्तनशील नहीं होते। वे परिवर्तित होते रहते हैं और प्रत्येक अवधि विशेष के लिए उनका निर्धारण होता है।

अन्त मे, उत्पादन के साधनों की मितव्ययिता के कारण भी राष्ट्रीय आय बढ़ती है। प्रति इकाई उत्पादन, ईंधन, कच्चे माल और अन्य सामानों के व्यय को घटाने और उपलब्ध मशीनों तथा उत्पादन के क्षेत्र के कुशलतापूर्वक उपयोग के द्वारा उत्पादन की मात्रा बढ़ती है तथा राष्ट्रीय आय मे इसी के अनुकूल वृद्धि होती है।

राष्ट्रीय आय का वितरण

समाजवाद के अन्तर्गत राष्ट्रीय आय का वितरण समाजवादी पुनरुत्पादन के प्रसार और जन-कल्याण मे वृद्धि के उद्देश्य से नियोजित ढंग से होता है।

राष्ट्रीय आय के दो भाग होते हैं। पहले हिस्से को आवश्यक उत्पादन या अपने लिए उत्पादन कहते हैं। भौतिक उत्पादन मे लगे लोगो के बीच इसका वितरण श्रम की मात्रा और कोटि के अनुसार होता है। यह उत्पादन राजकीय उद्यमो मे औद्योगिक और अन्य कर्मचारियो की मजूरी तथा सामूहिक फार्मों मे वस्तु और मौद्रिक भुगतान के रूप में होता है।

राष्ट्रीय उत्पादन के दूसरे हिस्से का इस्तेमाल उत्पादन के विस्तार, भडार के निर्माण, सास्कृतिक और कल्याणकारी उद्देश्यों की पूर्ति, सार्वजनिक उपभोग भडार के निर्माण तथा अन्य सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता है।

समाजवादी राज्य शहरी क्षेत्र मे समाजवादी उत्पादन के विस्तार और समाज की आवश्यकताओ की सतुष्टि के लिए बजट के जरिए राष्ट्रीय आय का पुर्नवितरण करता है। गैर-उत्पादक क्षेत्र मे काम करने वाले लोग राष्ट्रीय आय के पुर्नवितरण द्वारा अपने काम के लिए पारिश्रमिक प्राप्त करते हैं।

समाजवादी समाज की सम्पूर्ण राष्ट्रीय आय को दो भागों, उपभोग भडार और सचय भडार के रूप मे बाटा जा सकता है।

उपभोग भंडार राष्ट्रीय आय का वह हिस्सा है जिसका इस्तेमाल जनता के लिए खाद्य पदार्थों, वस्त्र, जूता, घरेलू वस्तुओ और सास्कृतिक आवश्यकता की वस्तुओ एवं सार्वजनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता है। सोवियत सघ मे राष्ट्रीय आय का ७५ प्रतिशत इसी तरह इस्तेमाल होता है।

उपभोग भंडार का निर्माण आवश्यक श्रम द्वारा उत्पन्न वस्तुओ और अधिशेष उत्पादन के उस हिस्से से होता है जिसका इस्तेमाल सामाजिक, सांस्कृतिक और अन्य सार्वजनिक जरूरतों की पूर्ति के लिए होता है।

समाजवाद के अन्तर्गत उपभोग भडार को दो भागो मे बाटा जा सकता है। यह विभाजन उसके इस्तेमाल की दृष्टि से होगा। उपभोग भडार के एक हिस्से का इस्तेमाल भौतिक उत्पादन मे सलग्न लोगो को मजूरी देने और दूसरे भाग का इस्तेमाल सार्वजनिक उपभोग के लिए होता है। सार्वजनिक उपभोग भडार का

उपयोग सामाजिक एव सांस्कृतिक आवश्यकताओं (यानी विज्ञान, सार्वजनिक शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, कला, इत्यादि की आवश्यकताओ) की सतुष्टि, सामाजिक सुरक्षा (बड़े परिवारों की माताओ और अविवाहित माताओं की सहायता, पेंशन, इत्यादि) तथा प्रशासन और प्रतिरक्षा (राजकीय यत्र, सशस्त्र सेना, इत्यादि की देखभाल) के लिए होता है। जन-कल्याण को बढ़ाने की दृष्टि से सार्वजनिक उपभोग भडार का काफी महत्व है। सोवियत जनता के उपभोग के अधिकाधिक हिस्से की व्यवस्था सार्वजनिक भडार से होती है।

संचय कोष (या भडार) का निर्माण अधिशेष उत्पादन से होता है। भौतिक दृष्टि से इस भडार मे मुख्यतः विभाग १ के उत्पादन होते हैं। विभाग २ के उत्पादन का एक निश्चित भाग भी सचित किया जाता है। यह उत्पादन भडार, उत्पादन मे लगे लोगो के बीच वितरण हेतु सचित उपभोक्ता वस्तुओ, इत्यादि के रूप मे होता है। सचय भडार मे मौद्रिक दृष्टि से राजकीय बजट, राज्य, सहकारी और सामूहिक फार्म उद्यमो के सचित साधन होते है। राष्ट्रीय आय का लगभग २५ प्रतिशत सचय भडार मे शामिल होता है।

इस्तेमाल की दृष्टि से सचय भडार को तीन भागो मे बाटा जा सकता है। एक भाग का इस्तेमाल उत्पादन के विस्तार, दूसरे हिस्से का उपयोग सांस्कृतिक और कल्याणकारी उद्देश्यो (स्कूलो, अस्पतालो, आवास, इत्यादि के निर्माण और सचालन) की पूर्ति तथा तीसरे भाग का इस्तेमाल आरक्षित या बीमा कोष के निर्माण के लिए होता है।

समग्र सामाजिक उत्पादन और राष्ट्रीय आय के वितरण को हम पृष्ठ ३२४ पर दी गयी स्कीम से स्पष्ट कर सकते हैं।

समाजवादी सचय

समाजवाद के अन्तर्गत उत्पादन और उपभोग, या उपभोग और सचय के बीच कोई विरोध नही रहता। समाजवादी समाज यह कोशिश करता है कि उपभोग और सचय के बीच ऐसा सतुलन स्थापित किया जाये जिससे विस्तारित पुनरुत्पादन का विकास तेजी से हो और समाजवादी समाज की जरूरतो को पूरी तरह सतुष्ट किया जा सके।

उपभोग और सचय के पारस्परिक सम्बध का निर्धारण राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के नियोजित, सानुपातिक विकास के नियम के आधार पर समाजवादी निर्माण के वर्तमान कार्यों को देखते हुए किया जाता है। उपभोग और सचय के पारस्परिक अनुपात अपरिवर्तनशील नही होते। वे परिवर्तित होते रहते हैं और प्रत्येक अवधि विशेष के लिए उनका निर्धारण होता है।

समाजवादी समाज का कुल उत्पादन
काम में लाये गये उत्पादन के साधनों का पुनरस्थापन
राष्ट्रीय आय
संचय कोष (या भंडार)
उपभोग भंडार
उत्पादन के विस्तार के लिए कोष
पूंजी निर्माण और सांस्कृतिक एवं जन-कल्याण के कार्यों के लिए कोष
सामाजिक रिजर्व और बीमा के लिए कोष
भौतिक उत्पादन में लगे लोगों को उनके काम के अनुसार भुगतान करने के लिए कोष
विज्ञान, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं और कला के लिए कोष
सामाजिक सुरक्षा कोष
राजकीय प्रशासन और प्रतिरक्षा के लिए कोष
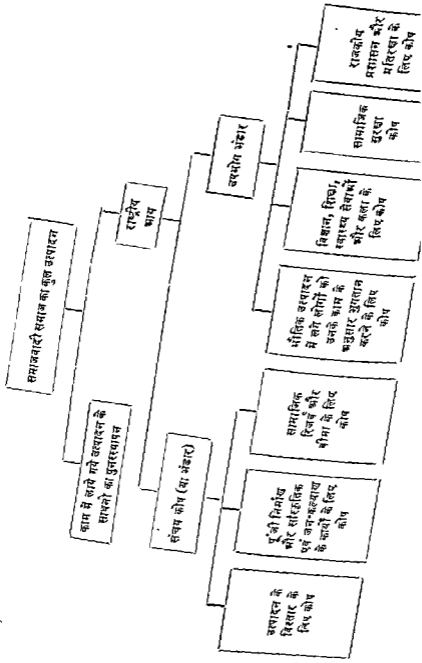
ुई [illegible] का [illegible] उत्पादन के विस्तार [illegible] के लिए
उत्पादन के इस हिस्से के द्वारा उत्पादक और गैर-उत्पादक
ता है। समाजवादी संचय के फलस्वरूप ही कोष बढ़ते हैं। इन
कोष को बढ़ाना होता है।

व्यवस्था में पूंजी विनियोग हर वर्ष बढ़ता जाता है। इसी के
े संचय होता है। उदाहरण के लिए, सोवियत संघ में प्रथम
दौरान कुल राजकीय पूंजी विनियोग ६७,००० लाख रूबल
रीय योजना के दौरान (१९५१-५५) ६ ३२ ००० लाख रूबल
योजना (१९५९-६५) के दौरान पूंजी विनियोग २० हजार

ावाद के अन्तर्गत वित्त और साख व्यवस्था

पुनरुत्पादन की दृष्टि से वित्त और साख का बहुत महत्व है।
्था द्वारा सामाजिक उत्पादन का उत्पादन, वितरण, विनि-
ोग होता है। सामाजिक उत्पादन (राष्ट्रीय आय) के अधि-
ा इस्तेमाल के लिए वित्त और साख की जरूरत होती है।
ा समाजवादी राज्य प्रत्येक उद्यम की आर्थिक क्रियाओं को
ौर साधनों के सुरक्षित भंडार का पूर्णतम उपयोग करता है।
ंध साधनों का मितव्ययितापूर्ण उपयोग हो पाता है।

ाय का निर्माण, जैसा कि हम जानते हैं, भौतिक उत्पादन
के क्षेत्र में (समाजवादी उद्यमों में) होता है। इसका
ा एक महत्वपूर्ण भाग संचय भंडार के निर्माण के लिए
उपयोग में लाया जाता है (यानी उत्पादन के विस्तार
ा जाता है)।

: उद्यम अपने-आप राष्ट्रीय आय के इस हिस्से का इस्तेमाल
ास्तार के लिए करें तो अलग-अलग उद्यमों और राष्ट्रीय अर्थ-
ों के बीच सही संतुलन बनाये रखना मुश्किल होगा। इसीलिए
ास्था में एक केन्द्रीय संचय भंडार का निर्माण किया जाता है।
ा इस्तेमाल पूंजीगत निर्माण और पुनर्निर्माण एवं तत्कालीन
ह लिए किया जाता है।

केन्द्रीय सघन भंडार राजकीय बजट में शामिल होता है। यह समाजवादी राज्य की वित्तीय व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण कड़ी होता है। राजकीय बजट देश की बुनियादी वित्तीय योजना है। इसके द्वारा राष्ट्रीय आय के एक बड़े हिस्से को एक जगह इकट्ठा किया जाता है और उसका इस्तेमाल सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता है। इसका निर्माण हर साल चालू आर्थिक योजना के अनुसार होता है।

राजकीय बजट को दो भागों, आय (राजस्व) और व्यय में बांटा जाता है।

राजकीय बजट के आय पक्ष में समाजवादी उद्यमों से प्राप्त आमदनी शामिल की जाती है। इस आमदनी में आवर्त्त कर, राजकीय उद्यमों और आर्थिक संगठनों के मुनाफे का हिस्सा, सहकारी सगठनों और सामूहिक फार्मों से प्राप्त आय-कर की राशि, लकड़ी से प्राप्त आय[1], इत्यादि शामिल होते हैं। आय का ९/१० भाग समाजवादी उद्यमों से आता है। सामाजिक बीमा कोष भी राजकीय बजट के आय पक्ष में शामिल होता है, क्योंकि राजकीय सगठन और उद्यम इस कोष में मजूरी के बिल के आधार पर निर्धारित विशेष हिस्से के रूप में एक निश्चित पैमाने पर अपना योगदान करते हैं।

सोवियत राजकीय बजट की एक खास विशेषता यह है कि जनता से सीधे प्राप्त आय का राजकीय आय में बहुत कम हिस्सा होता है। १९६५ में सोवियत सघ की आय का सिर्फ ७.२ प्रतिशत जनता से कर के रूप में प्राप्त हुआ था।

राजकीय बजट के व्यय पक्ष में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, सामाजिक और सास्कृतिक कार्यक्रमों, राजकीय प्रशासन के विभागों के सचालन पर होने वाले व्यय तथा देश की प्रतिरक्षा पर होने वाला खर्च शामिल होते हैं।

सोवियत सघ के राजकीय बजट के राजस्व का अधिकाश (७५ प्रतिशत तक) राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और सामाजिक एव सांस्कृतिक कार्यक्रमों पर खर्च होता है। राजकीय यत्र पर होने वाला खर्च आनुपातिक दृष्टि से कम होता जा रहा है।

सोवियत सघ निरन्तर शान्ति की नीति पर चल रहा है। इसीलिए बजट का अपेक्षाकृत कम हिस्सा प्रतिरक्षा व्यय के रूप मे होता है।

---

१. लकड़ी से प्राप्त आय में पेड़ों की बिक्री, वन-उद्यान से (संस्थाओं एवं व्यक्ति विशेष के हाथों नये पेड़ों एवं बीज की बिक्री से) प्राप्त आय, आदि शामिल होती हैं। राजकीय जंगलों से प्राप्त आय का आधा भाग संघीय बजट और शेष स्थानीय बजट में शामिल होता है।

समाजवादी समाज में राजकीय बजट सम्पूर्ण राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के
कास के आधार पर सदा व्यवस्थित रूप से बढता जाता है। सोवियत सघ मे
जस्व का व्यय की तुलना मे अधिक महत्व होता है।

सोवियत सत्ता के प्रत्येक अग (सोवियत सघ की सुप्रीम सोवियत से लेकर
म सोवियत तक) का अपना अलग बजट होता है। फलस्वरूप राजकीय योज-
ओ के कार्यान्वियन के दौरान स्थानीय परिस्थितियो पर हर क्षेत्र मे ध्यान दिया
ता है।

माजवाद के अन्त-र्गत साख और बैंक व्यवस्था

समाजवाद के अन्तर्गत साख अस्थायी तौर पर बेकार
पडे मौद्रिक साधनो को काम मे लगाने का एक रूप है
और राजकीय अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओ को पूरा
करने के लिए बेकार पडे साधनो का नियोजित इस्तेमाल
साख की व्यवस्था के द्वारा होता है।

साख का समाजवादी उद्यमो के साधनों के आवर्त्त के साथ घनिष्ठ सम्बध
। इस आवर्त्त के दौरान उद्यमो के पास अस्थायी रूप से बेकार साधन रहते हैं।
सका कारण यह है कि उत्पादन की बिक्री से प्राप्त मुद्रा-राशि का तत्काल
त्पादन की जरूरतो पर व्यय नही होता। उत्पादन को बेचकर उद्यम और आर्थिक
गठन स्टेट बैंक मे अपने खातो मे मुद्रा-राशि जमा करते हैं। इस मुद्रा-राशि की
वश्यकता कुछ समय बाद व्यय के लिए पडती है। मेहनतकश जनता की आय मे
ृद्धि होने के कारण भी अस्थायी तौर पर उसके बचत खाते मे जमा राशि बढ
ाती है।

कुछ उद्यमो और आर्थिक सगठनों के पास मुद्रा-राशि बेकार पडी रह
सकती है और कुछ अन्य लोगो को अतिरिक्त मुद्रा-राशि की जरूरत पड सकती
है। उनको कच्चे माल की खरीद, उत्पादन भडार के निर्माण, उत्पादन और परि-
वहन, इत्यादि पर व्यय के लिए मुद्रा-राशि की आवश्यकता हो सकती है।

बैंको मे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत अस्थायी तौर पर बेकार पडे
सभी मौद्रिक साधन जमा रहते हैं। इन्ही मे से बैंक जरूरतमद आर्थिक सगठनो
और उद्यमो को ऋण देते है।

साख अल्पकालीन या दीर्घकालीन होते है।

अल्पकालीन साख साधारणतया एक वर्ष से कम की अवधि के लिए दिया
जाता है। सोवियत सघ मे स्टेट बैंक अल्पकालीन साख का मुख्य केन्द्र है। अल्प-
कालीन साख उद्यमो और आर्थिक सगठनो को परिचलन के अतिरिक्त साधनो की
अस्थायी जरूरतो को पूरा करने के लिए दिया जाता है।

दीर्घकालीन साख लम्बी अवधि के लिए दिया जाता है। इसका इस्तेमाल मुख्यतया पूंजीगत निर्माण के लिए होता है। आजकल दीर्घकालीन साख आल यूनियन बैंक फार फाइनेंसिंग कैपिटल इन्वेस्टमेंट्स (दी यू. एस. एस. आर. स्त्रोईबैंक) द्वारा दिया जाता है। दीर्घकालीन साख पूंजीगत निर्माण कार्यक्रमो, मवेशियों की नस्ल के विकास, निजी आवास-निर्माण, उपभोक्ता वस्तुओ का उत्पादन बढ़ाने, कल्याण सेवाओ के प्रसार, आदि के लिए दिया जाता है। स्टेट बैंक भी राजकीय उद्यमो के पूंजी विनियोग के लिए साख की व्यवस्था करता है। वह पूंजी विनियोगो के लिए ऋण देता है। यह ऋण अल्पावधि मे चुका दिया जाता है। यह ऋण नये तकनीक को व्यवहार मे लाने और उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन के सगठन और विस्तार के लिए दिया जाता है। सोवियत सघ का स्टेट बैंक विदेशी राज्यों, मुख्यत: जनवादी जनतत्रो को अनुकूल एवं पारस्परिक लाभ की दृष्टि से अच्छी शर्तों पर दीर्घकालीन ऋण देता है।

ऋण देने वाली सस्थाए ऋण-राशि पर एक निश्चित ब्याज लेती हैं और जमा-राशि पर एक निश्चित ब्याज देती हैं। ब्याज की प्राप्त राशि और भुगतान की गयी राशि का अन्तर बैंक का मुनाफा होता है। बैंक का मुनाफा समाज की शुद्ध आय का एक हिस्सा होता है।

समाजवाद के अन्तर्गत साख द्वारा उद्यमों को अपने साधनों के कुशल प्रयोग मे प्रोत्साहन मिलता है। इससे समाजवादी उत्पादन और लाभप्रदता बढती है।

समाजवादी अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखाओं और उद्यमों के बीच अस्थायी तौर पर बेकार पडे साधनों का अत्यन्त विकसित साख और बैंक व्यवस्था के द्वारा पुनर्वितरण होता है।

सोवियत साख और बैंक व्यवस्था के अन्तर्गत १) स्टेट बैंक, २) दी आल यूनियन बैंक फार फाइनेंसिंग कैपिटल इन्वेस्मेंट्स और ३) राजकीय बचत बैंक शामिल हैं।

इस व्यवस्था में स्टेट बैंक का प्रमुख स्थान है। वह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को अल्पकालीन साख प्रदान करता है। स्टेट बैंक के द्वारा लेन-देन होता है और भुगतान किये जाते हैं। राजकीय आय इसी के जरिए प्राप्त होती है और इसके ही द्वारा आर्थिक सगठनो और उद्यमों तथा जनता एव संगठनो या सस्थाओ के आपसी लेन-देन होते हैं। स्टेट बैंक करेंसी जारी करने वाली एकमात्र संस्था है। परिचलन में मुद्रा-राशि भेजने और मुद्रा के परिचलन के नियोजन एवं नियमन के लिए वह उत्तरदायी है। अन्त में, देश में स्टेट बैंक ही एक सस्था है जिसके पास विदेशी मुद्रा का भंडार रहता है और जो सभी अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन की व्यवस्था करती है।
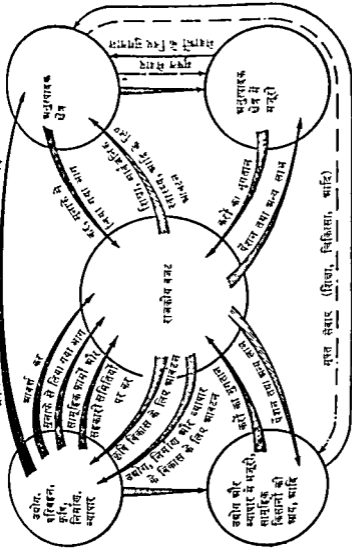
उद्योग, परिवहन, कृषि, निर्माण, व्यापार
आवर्त कर
मुनाफे से लिया गया भाग
सामूहिक फार्मों और सहकारी समितियों पर कर
कृषि विकास के लिए आवंटन
उद्योग, निर्माण और व्यापार के विकास के लिए आवंटन
राजकीय बजट
कर, मुनाफे से लिया गया भाग
शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, आदि के लिए आवंटन
अनुत्पादक क्षेत्र
अनुत्पादक क्षेत्र में मजूरी
मुफ्त सेवाएं
सेवाओं के लिए भुगतान
उद्योग और व्यापार में मजूरी, सामूहिक किसानों की आय, आदि
करों का भुगतान
पेंशन तथा अन्य लाभ
मुफ्त सेवाएं (शिक्षा, चिकित्सा, आदि)
सेवाओं (थियेटर, नाइयों की दुकानों और नाइयों, आदि) के लिए भुगतान

सोवियत संघ का स्टेट बैंक दुनिया का सबसे बड़ा बैंक है। इसकी करीब ६,००० शाखाए (सघीय, क्षेत्रीय, प्रादेशिक और शहरी कार्यालय, जिला शाखाए और स्थानीय म्युनिसिपल बैंक) हैं। इनके द्वारा लेन-देन और साख परिचालन की व्यवस्था बहुत बडे पैमाने पर होती है।

दी आल यूनियन बैंक फार फाइनेंसिंग कैपिटल इन्वेस्टमेंट्स विभिन्न उद्यमों को पूंजीगत निर्माण के लिए वित्तीय साधन और दीर्घकालीन ऋण प्रदान करता है। वह इमारत बनाने वाले सगठनों को अल्पकालीन ऋण देता है, साथ ही ग्राहकों और ठेकेदारों के आपसी लेन-देन की व्यवस्था करता है।

स्टेट बैंक की तरह ही दी यू. एस. एस. आर. स्त्रोईबैंक निर्माण-कार्य की योजना की पूर्ति, साधनो के उचित उपयोग और निर्माण लागत मे कमी के लिए प्रयत्नशील रहता है।

सोवियत संघ का फारेन ट्रेड बैंक सोवियत सघ के विदेश व्यापार के लिए साख का प्रबन्ध करता है और करेन्सी सम्बधी कार्य करता है। वह आयात-निर्यात एव सेवाओ के अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिए भी भुगतान सम्बधी हिसाब-किताब करता है। वह सोवियत सघ एव अन्य देशो के बीच व्यावसायिक एवं अन्य आर्थिक सम्बधो को बढ़ाता है तथा वस्तुओ के आयात-निर्यात से सम्बद्ध घरेलू व्यापार एवं उद्योगो को विकसित करता है।

बचत बैंक भी साख सस्थाए हैं। उनमे जनता, सामूहिक फार्म और गैर-सरकारी संस्थाए अपनी बचत-राशि जमा करते हैं। वे राजकीय ऋण की व्यवस्था और साखपत्रो एव अन्य मौद्रिक व्यवस्थाओ द्वारा जनता की सेवा करते है।

समाजवादी समाज मे मेहनतकश जनता द्वारा बचत बैंको मे जमा की गयी मुद्रा-राशि (जिसका वह तत्काल इस्तेमाल नही करती है) का उपयोग समाजवादी निर्माण के लिए वित्तीय साधन प्रदान करने के वास्ते होता है। बचत बैंक जमा-कर्ताओ को उनकी बचत के उपयोग के लिए ब्याज देते हैं।

समाजवादी समाज मे लोगो के भौतिक कल्याण मे निरन्तर वृद्धि के फल-स्वरूप काफी बचत होती है। उदाहरण के लिए, १९६४ मे बचत बैंको मे जनता द्वारा जमा की गयी कुल मुद्रा-राशि १,५७,००० लाख रूबल थी, जबकि १९४० में जमा की गयी कुल मुद्रा-राशि सिर्फ ७,००० लाख रूबल थी।

अध्याय १७

विश्व समाजवादी व्यवस्था

१. विश्व समाजवादी व्यवस्था का उदय और विकास

रूस की महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति ने पूंजीवाद के अखण्ड राज्य को खत्म कर दिया।

मानव इतिहास में एक नया युग, पूंजीवाद के पतन का युग शुरू हुआ। अब पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था एकमात्र सर्वव्यापी व्यवस्था नहीं रही। समाजवादी आर्थिक व्यवस्था का उदय हुआ और वह भी उसके साथ विकसित होने लगी।

सोवियत संघ में समाजवादी आर्थिक व्यवस्था के उदय का बहुत बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व था। उसने विश्व विकास की धारा को निश्चित तौर पर प्रभावित किया है।

कतिपय यूरोपीय एवं एशियाई देशों की समाजवादी क्रान्तियों ने रूस की महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की परम्परा को आगे बढ़ाया। द्वितीय विश्वयुद्ध में सोवियत संघ की जीत का इन देशों में समाजवाद की विजय के लिए निर्णायक महत्व था।

समाजवादी क्रान्तियों की विजय के कारण कई देश पूंजीवादी व्यवस्था से हटकर अलग हो गये। फलस्वरूप विश्व समाजवादी व्यवस्था का उदय हुआ। विश्व समाजवादी व्यवस्था का निर्माण वर्तमान युग में समाज के प्रगतिशील विकास का मुख्य परिणाम है।

विश्व समाजवादी व्यवस्था पूंजीवादी व्यवस्था से अलग हुए राज्यों का समूह मात्र नहीं है, बल्कि समाजवाद और कम्युनिज्म के रास्ते पर आगे बढ़ने वाले स्वतंत्र सार्वभौम राष्ट्रों का सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समूह है।

उनके बीच हितों और लक्ष्यों की समानता के कारण एकता होती है और अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी एकता के सूत्र में घनिष्ठ रूप से आबद्ध होते हैं।

विश्व समाजवादी व्यवस्था के देश यूरोप, एशिया और लैटिन अमरीक (जहां क्यूबा के लोग सफलतापूर्वक समाजवाद का निर्माण कर रहे है) मे फै हुए हैं। कई अफ्रीकी देश विकास के गैर-पूजीवादी मार्ग पर आगे बढ रहे हैं।

उत्पादन के साधनो पर समाज का सामूहिक स्वामित्व विश्व समाजवाद व्यवस्था का आर्थिक आधार है। सामाजिक स्वामित्व के दो रूप हैं: राजकीय स्वामित्व और सहकारी स्वामित्व। सोवियत सघ और बहुसख्यक जनवादी जनतत्रो मे समाजवादी स्वामित्व का ही बोल-बाला है। विश्व समाजवादी व्यवस्था के सभी देशों मे समाजवादी उत्पादन के विकास का मुख्य उद्देश्य जनता की भौतिक और सास्कृतिक आवश्यकताओ की अधिकाधिक पूर्ति करना है।

जनशक्ति का मजदूर वर्ग द्वारा नेतृत्व विश्व समाजवादी व्यवस्था का राजनीतिक आधार है। सभी समाज्वादी देशो मे कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टिया ही नेतृत्व और मार्ग-दर्शन करती हैं।

सभी समाजवादी देशों का एक ही उद्देश्य है—अपनी क्रान्तिकारी उपलब्धियों और स्वतत्रता को साम्राज्यवादियो की क्रूर दृष्टि से रक्षा करना।

विश्व समाजवादी व्यवस्था की एक ही विचारधारा है—मार्क्सवाद-लेनिनवाद।

विश्व समाजवादी और पूजीवादी व्यवस्थाए परस्प -विरोधी नियमो के अनुसार विकसित होती हैं। पूजीवादी विश्व व्यवस्था का उदय और विकास उसके राज्यो के पारस्परिक सघर्ष के दौरान हुआ। इसमे से ताकतवर राज्यो ने कमजोर राज्यों को अधीन करने और गुलाम बनाने की कोशिश की। किन्तु विश्व समाजवादी व्यवस्था का उदय और विकास सार्वभौमिकता और स्वैच्छिक सहयोग के सिद्धान्त के आधार पर सभी समाजवादी देशों की मेहनतकश जनता के बुनियादी हितो के अनुकूल होता है।

असम आर्थिक और राजनीतिक विकास का नियम विश्व पूजीवादी व्यवस्था की एक खास विशेषता है। इस नियम के फलस्वरूप राज्यो के बीच टकराव होते हैं। किन्तु विश्व समाजवादी व्यवस्था के नियम बिल्कुल भिन्न होते हैं। इन नियमो के फलस्वरूप सभी सदस्य-राष्ट्रो की अर्थव्यवस्थाओ का निरन्तर नियोजित विकास होता है। इस तरह सम्पूर्ण विश्व समाजवादी व्यवस्था का चतुर्दिक विकास होता है और वह शक्तिशाली बनती जाती है।

विश्व पूजीवादी व्यवस्था मद गति से विकसित होती है। उसे सकटों और उतार-चढ़ाव का सामना करना पड़ता है। विश्व समाजवादी व्यवस्था निरन्तर

द्रुत गति से आगे बढ़ती है। सभी समाजवादी देशों की अर्थव्यवस्थाओं की प्रगति समान रूप से निरन्तर होती रहती है।

समाजवादी देशों में जनशक्ति का स्थायित्व सिद्ध हो चुका है। जनवादी जनतंत्रों की अर्थव्यवस्थाओं में सर्वप्रमुख भूमिका उत्पादन के समाजवादी सम्बन्धों की है।

जनवादी जनतंत्र जिनमें से बहुतेरे पहले पिछड़े हुए थे, अब उन्नत समाजवादी राज्य बन गये हैं। बहुत कम समय में उन्होंने अपने पिछड़ेपन पर विजय प्राप्त कर ली और एक आधुनिक उद्योग खड़ा कर लिया।

समाजवादी देशों की नियोजित अर्थव्यवस्था पूंजीवादी राज्यों की अर्थव्यवस्था की अपेक्षा अधिक तेजी के साथ विकसित होती है।

युद्ध-पूर्व के उत्पादन की तुलना में समाजवादी देशों का औद्योगिक उत्पादन १९६३ में करीब ८ गुना अधिक था। सोवियत संघ का औद्योगिक उत्पादन युद्ध पूर्व के उत्पादन की तुलना में १९६३ में ६.८ गुना अधिक था। पोलैंड का औद्योगिक उत्पादन ८.९ गुना बढ़ा। चेकोस्लोवाकिया, जर्मन जनवादी जनतंत्र, हंगरी, रूमानिया, बुल्गारिया और मंगोलिया जनवादी जनतंत्र में उत्पादन क्रमशः ४६, ३.८, ५.४, ७.४, १७ और ११ १ गुना बढ़ा।

जनवादी जनतंत्रों में समाजवादी निर्माण की अत्यन्त कठिन समस्या (छोटी और व्यक्तिगत कृषि में किसानों को स्वेच्छापूर्वक बड़े पैमाने की यंत्रीकृत खेती की ओर प्रवृत्त करना) का समाधान या तो हो चुका है या सफलतापूर्वक हो रहा है। इस तरह समाजवादी उत्पादन-सम्बन्धों की कामयाबी के फलस्वरूप मजदूरों और किसानों के बीच अटूट बन्धुत्वपूर्ण सहयोग न सिर्फ गांवों में बल्कि शहरों में भी स्थापित हुआ है। आज समाजवादी देशों में ९० प्रतिशत जोत लायक जमीन समाजवादी क्षेत्र के अन्तर्गत आ चुकी है।

समाजवादी देशों की अत्यन्त विकसित अर्थव्यवस्था के कारण आम जनता के भौतिक और सांस्कृतिक स्तर ऊंचे उठे हैं। समाजवादी देशों में राष्ट्रीय आय तेजी से बढ़ रही है। इस आय के तकरीबन तीन-चौथाई का इस्तेमाल मेहनतकश जनता की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए किया जाता है।

विश्व समाजवादी व्यवस्था ने विकास के एक नये चरण में प्रवेश किया है। सोवियत संघ बड़े पैमाने पर कम्युनिस्ट समाज का निर्माण कर रहा है और तेजी से कम्युनिज्म का भौतिक और तकनीकी आधार बना रहा है। समाजवादी शिविर के अन्य देश सफलतापूर्वक समाजवाद की बुनियाद डाल रहे हैं। कुछ देशों ने पूर्ण विकसित समाजवादी समाज का निर्माण-कार्य शुरू कर दिया है।

विश्व समाजवादी व्यवस्था मानव-समाज के विकास मे निर्णायक त
बन रही है। हमारे युग मे विश्व विकास के मुख्य तत्व, प्रवृत्ति एवं लक्षणो
निर्धारण विश्व समाजवादी व्यवस्था, साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्षरत शक्ति
और समाज के समाजवादी पुनर्निर्माण की शक्तिया करती हैं।

विश्व समाजवादी व्यवस्था विश्व क्रान्तिकारी प्रक्रिया मे एक महत्वपू
भूमिका अदा कर रही है। इसका सबूत यह है कि समाजवादी देशो की मेहनतक
जनता उत्पीडन और शोषण से रहित एक नये समाज की रचना कर रही है। व
समाजवाद और कम्युनिज्म का भौतिक एव तकनीकी आधार निर्मित कर साम
जिक कार्यकलाप के निर्णायक क्षेत्र—भौतिक उत्पादन के क्षेत्र मे साम्राज्यवाद क
सदा के लिए खात्मा कर रही है। जब पूजीवादी देशों मे मेहनतकश जनता समाज
वादी राज्यो मे आर्थिक निर्माण-कार्य की सफलता, जीवन-यापन के स्तर मे सुधार
जनतत्र का विकास और सरकार चलाने मे आम जनता का बढता हुआ सहयोग
देखेगी तब महसूस करेगी कि मेहनतकश जनता की आवश्यकताओ को पूर्ण रूप से
समाजवाद और कम्युनिज्म ही सन्तुष्ट सकता है। इस तरह जनता मे क्रान्तिकारी
विचार फैलते है और पूजीवादी उत्पीडन के खिलाफ सामाजिक और राष्ट्रीय मुक्ति
के लिए सक्रिय सघर्ष करने के लिए प्रोत्साहन मिलता है।

समय के साथ-साथ साम्राज्यवाद की आक्रामक कार्रवाइयो की विरोधी
शक्ति के रूप मे समाजवादी राज्यो की भूमिका बढ गयी है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रति-
क्रियावाद और आक्रमण की मुख्य शक्तियो को लगाम लगाने में सोवियत सघ एव
सम्पूर्ण समाजवादी राष्ट्र जितना ही समर्थ होते जाते हैं, उपनिवेशो की जनता को
साम्राज्यवाद और घरेलू प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध लडने के लिए उतने ही अनुकूल
अवसर मिलते जाते है। पूजीवादी देशो मे क्रान्तिकारी सघर्षों की सफलता, राष्ट्रीय
मुक्ति आन्दोलन की विजय और विश्व समाजवादी व्यवस्था की शक्ति के बीच बड़ा
घनिष्ठ सम्बध है।

विश्व समाजवादी व्यवस्था का निर्माण और उसकी बढ़ती हुई एकता
और मैत्री एक नये प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय और राजनीतिक सम्बधो के सूचक हैं।

२. विश्व समाजवादी व्यवस्था के देशों के बीच पारस्परिक आर्थिक सबंधों के आधार के रूप में सहयोग और आपसी सहायता

विश्व समाजवादी व्यवस्था के देश अत्यन्त प्रगतिशील राजनीतिक, आर्थिक
और सैद्धान्तिक आधार पर एकजुट हैं। इसके फलस्वरूप एक नये प्रकार के
आर्थिक और राजनीतिक सम्बध राष्ट्रों के बीच पनपे हैं। ये सम्बध इतिहास

[illegible] समाजवादी देशों के [illegible]

[illegible]

[illegible]

लेनिन ने १९१३ में ही लिखा था : "पुरानी दुनिया — राष्ट्रीय उत्पीड़न, राष्ट्रीय कलह और राष्ट्रीय अलगाव की दुनिया — के मुकाबले मजदूर एक नयी दुनिया — सब राष्ट्रों की मेहनतकश जनता की एकता की दुनिया — प्रस्तुत करते हैं, जहाँ किसी प्रकार की अनुचित सुविधा या मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण के लिए बिल्कुल स्थान नहीं है।"[2] विश्व समाजवादी व्यवस्था ऐसी ही दुनिया है जहाँ मेहनतकश जनता के बीच एकता है और समाजवादी देशों में बन्धुत्वपूर्ण पारस्परिक सहयोग है।

प्रत्येक समाजवादी देश (छोटा हो या बड़ा) को अन्य समाजवादी देशों का पूर्ण सहयोग अपेक्षित है। आज जब दुनिया दो व्यवस्थाओं के बीच बंटी हुई है, समाजवादी देशों का अस्तित्व और उनकी प्रगति समाजवादी शिविर की उपस्थिति के कारण ही सुरक्षित है। वे समाजवादी शिविर की आर्थिक शक्ति और राजनीतिक एकता पर निर्भर रह सकते हैं। मैत्रीपूर्ण बहुपक्षीय सहयोग द्वारा समाजवादी देश विश्व समाजवादी व्यवस्था से लाभ उठा रहे हैं और अपने देश की उत्पादक शक्तियों का विकास त्वरित कर रहे हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण समाजवादी शिविर की आर्थिक ताकत भी मजबूत हो रही है।

नये प्रकार के आर्थिक और राजनीतिक सम्बंध एक स्वाभाविक घटना के रूप में आये हैं। इनका दृढ़ सामाजिक-आर्थिक एवं सैद्धान्तिक आधार है। इन सम्बंधों का स्रोत समाजवादी व्यवस्था (यानी समाजवादी उत्पादन-सम्बंध) है। इस कारण आर्थिक विस्तार, आधिपत्य और दासता के लिए समाजवादी देशों के आपसी सम्बंधों में कोई गुंजाइश नहीं है।

---

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ४६८।
२. लेनिन, "संग्रहीत रचनाएं", खंड १६, पृष्ठ ६१।

विश्व समाजवादी व्यवस्था में राज्यों के आर्थिक सम्बन्ध समाजवाद के आर्थिक नियमों के अनुसार बनते हैं। इन सबका मुख्य लक्ष्य जनता की खुशहाली बढ़ाने के लिए विकसित टेक्नालाजी के आधार पर उत्पादन का निरन्तर विस्तार करना है।

समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन

समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन के आधार पर समाजवादी देशों का पारस्परिक सहयोग विकसित और मजबूत होता है। यह श्रम-विभाजन विश्व पूंजीवादी व्यवस्था में पाये जाने वाले श्रम-विभाजन से बिल्कुल भिन्न होता है। पूंजीवादी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन का जन्म स्वतः मुनाफे के लिए भयंकर प्रतिद्वन्द्विता के दौरान होता है। समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नियोजित, सानुपातिक विकास के नियम के आधार पर एक योजना के अनुसार चलता है।

समाजवाद पहली बार समानता और पारस्परिक लाभ के आधार पर बड़े और छोटे राष्ट्रों के बीच सहयोग के लिए स्थितियां उत्पन्न करता है। वह विश्व समाजवादी व्यवस्था के सभी सदस्य-राष्ट्रों की आर्थिक स्वतंत्रता को मजबूत करता है। समाजवादी देश एक-दूसरे से मित्रतापूर्ण सहयोग करते हैं। वे इस तरह आर्थिक साधनों और शक्तियों का मितव्ययितापूर्ण उपयोग करते हैं। फलस्वरूप उनकी उत्पादक शक्तियों के विकास को प्रोत्साहन मिलता है। प्रत्येक देश न सिर्फ अपने साधनों का उपयोग करता है, बल्कि विश्व समाजवादी व्यवस्था के अन्य सदस्य-देशों के साधनों का भी इस्तेमाल करता है। इस तरह विश्व समाजवादी व्यवस्था के सभी साधनों के कुशल प्रयोग द्वारा आर्थिक विकास की दर तेज की जाती है और लोगों की खुशहाली बढ़ायी जाती है।

समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन के फलस्वरूप प्रत्येक देश के लिए सामाजिक उत्पादन की उन शाखाओं को विकसित करने का पूरा अवसर मिल जाता है जिनके लिए अत्यन्त अनुकूल स्थितियां (प्राकृतिक और भौतिक साधन, उत्पादन का आधार, औद्योगिक मजदूर, इंजीनियर और तकनीकी जानकार, इत्यादि) उपलब्ध हैं।

समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन प्रत्येक देश की राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के विकास का सम्पूर्ण विश्व समाजवादी व्यवस्था के विकास के साथ मेल बैठाता है।

समाजवादी देशों के बीच श्रम-विभाजन का मतलब समाजवादी शिविर के देशों के उत्पादन में विशेषीकरण और सहयोग लाना है। उत्पादन में विशेषीकरण का मतलब उत्पादन की उन शाखाओं के विकास को प्राथमिकता देना है

जो कम से कम श्रम व्यय कर उत्पादन कर सकते है। उत्पादन मे सहयोग परस्पर पूरक विशेषीकृत उद्योगो के पारस्परिक सहयोग का रूप लेता है। इसका उद्देश्य वनिमय वस्तुओ के उत्पादन मे अधिकतम आर्थिक परिणाम प्राप्त करना होता है।

उत्पादन मे विशेषीकरण और सहयोग को अलग-अलग समाजवादी देशो के विशेष और सामान्य हितो को ध्यान मे रखकर ही बढावा दिया जाता है। विशेषीकरण और सहयोग से समाजवादी देशो को अपनी उत्पादक शक्तिया विकसित करने, उत्पादन लागत घटाने और उत्पादन की किस्म को उन्नत करने का मौका मिलता है।

आर्थिक सहयोग और उत्पादन मे विशेषीकरण को बढावा देने की प्रक्रिया के दौरान अलग-अलग समाजवादी देशो की अपनी औद्योगिक रूपरेखा बनती है और समाजवादी आर्थिक व्यवस्था मे उनका स्थान निर्धारित होता है।

उदाहरण के लिए, पोलैंड अत्यन्त विकसित इजीनियरिंग, कोयला-खनन और रासायनिक उद्योगो तथा अलौह धातुओ के उद्योगो वाला देश हो गया है। चेकोस्लोवाकिया मे भारी मशीन-निर्माण और इलेक्ट्रिकल इजीनियरिंग तथा हल्के उद्योग की कुछ शाखाओ को प्राथमिकता दी गयी है। जर्मन जनवादी जनतत्र में भारी शक्ति सयत्र, परिशुद्धि यत्रो, प्रकाशीय साज-सामान और रसायनो के उत्पादन मे विशेषीकरण पर जोर दिया जा रहा है। रूमानिया मे तेल-शोधन और तेल उद्योग के लिए आवश्यक मशीन उद्योग का काफी विकास हुआ है।

समाजवादी शिविर के अधिकाश देश विशेष प्रकार के उत्पादन मे विशेषीकरण कर रहे हैं, किन्तु सोवियत सघ अपने विशाल क्षेत्रफल, विविध प्राकृतिक साधनो और बडी जनसख्या के कारण अर्थव्यवस्था की सभी मुख्य शाखाओ का विकास कर रहा है। किन्तु इसका मतलब यह नही है कि सोवियत सघ समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन मे विस्तृत पैमाने पर भाग नही ले सकता। इसके विपरीत विश्व समाजवादी व्यवस्था के उत्पादन मे विशेषीकरण और सहयोग के [illegible]

[illegible] श्रम-विभाजन ने [illegible] र पिछड़े हुए कृषि-प्रधान देशो को जन्म दिया। इसके विपरीत विश्व समाजवादी व्यवस्था के अन्दर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन समाजवादी देशो के बीच उत्पादन के निर्धारित और विवेकपूर्ण वितरण को जन्म देता है।

समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन समाजवादी देशो के बीच आर्थिक विकास के स्तर मे समानता लाने मे मदद करता है।

सर्वप्रथम यह महत्वपूर्ण औद्योगिक एवं कृषिजन्य वस्तुओं के प्रति व्यक्ति उत्पादन में धीरे-धीरे समानता लाता है।

उत्पादन के तकनीकी स्तर की विषमता, मेहनतकश जनता के सांस्कृतिक एव तकनीकी स्तर में विषमता और फलस्वरूप सामाजिक श्रम की उत्पादकता स्तर में होने वाली असमानता को दूर करता है।

अन्ततोगत्वा यह मेहनतकश जनता के जीवन-यापन के स्तर को धीरे-धीरे समान बनाता है।

३. आर्थिक सहयोग के रूप

समाजवादी देशों के बीच आर्थिक सम्बंध समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन की प्रक्रिया में अनुभव के पारस्परिक आदान-प्रदान का रूप धारण करते हैं।

विश्व समाजवादी व्यवस्था के देशों के पारस्परिक आर्थिक सहयोग के ये रूप है . राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की उनकी योजनाओं में तालमेल, विदेश व्यापार, ऋण की व्यवस्था, वैज्ञानिक और तकनीकी सहायता और आर्थिक निर्माण के दौरान अनुभवों का आदान-प्रदान तथा कर्मचारियों के प्रशिक्षण मे सहायता।

समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन और समाजवादी राज्यों के बीच उत्पादन में विशेषीकरण और सहयोग का मतलब इन देशों के आपसी नियोजित आर्थिक सम्बधों से है।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की योजनाओं का समन्वय

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के नियोजित, सानुपातिक विकास के नियम के अनुसार समाजवादी शिविर के देशों के बीच आर्थिक सहयोग राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की परस्पर समन्वित योजनाओं के आधार पर विकसित होता है।

अपनी अर्थव्यवस्था का नियोजन करते समय प्रत्येक देश अपने विकास का अन्य समाजवादी देशों की अर्थव्यवस्थाओं के साथ तालमेल बैठाता है। इस प्रकार समाजवादी देशों के बीच चतुर्दिक आर्थिक सहयोग के लिए आधार तैयार होता है, जिस पर प्रत्येक राज्य और सम्पूर्ण विश्व समाजवादी व्यवस्था की अर्थव्यवस्था प्रगति करती है।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं की योजनाओं के समन्वय के द्वारा समाजवादी देश उत्पादन की विभिन्न शाखाओं के बीच न सिर्फ अलग-अलग देशों के भीतर बल्कि उनके बीच सही अनुपात स्थापित करते है। इस प्रकार मैत्रीपूर्ण व्यवस्था और समान रूप से पारस्परिक लाभ के समझौतो द्वारा उचित अनुपात स्थापित किये जाते है।

आर्थिक योजनाओं का समन्वय करते समय प्रत्येक राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और उसके हितों, उत्पादन क्षमताओं और जरूरतों, देश की आर्थिक शक्ति बढ़ाने और स्वतन्त्रता को मजबूत करने तथा मेहनतकश जनता के भौतिक और सांस्कृतिक स्तर ऊंचा उठाने की आवश्यकता पर ध्यान दिया जाता है।

अपने संयुक्त प्रयास से समाजवादी देश औद्योगिक एवं परिवहन उद्यमों, सम्बद्ध विद्युत शक्ति प्रणालियों, इत्यादि का निर्माण कर रहे हैं। इसीलिए पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, हंगरी, सोवियत संघ के पश्चिमी भाग, जर्मन जनवादी जनतंत्र और रूमानिया की विद्युत शक्ति प्रणालियों को परस्पर सम्बद्ध करने के लिए विद्युत शक्ति संचार लाइनें बनायी गयी हैं। सोवियत संघ, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, जर्मन जनवादी जनतंत्र और हंगरी सोवियत संघ से तेल बाहर ले जाने के लिए संयुक्त रूप से **द्रुझबा** (मैत्री) तेल पाइपलाइन का निर्माण कर रहे हैं।

समाजवादी देशों के बीच नियोजित आर्थिक सहयोग के संगठन के लिए १६४६ में सभी सदस्य-राष्ट्रों ने पूर्ण समानता के सिद्धान्तों के आधार पर **पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद** की स्थापना की। यह परिषद समाजवादी देशों का एक अन्तर-सरकारी आर्थिक संगठन है। इसका कार्य आर्थिक और तकनीकी अनुभव के विनिमय, कच्चे माल, खाद्य पदार्थ, मशीन और साज-सामान की व्यवस्था करना और एक विवेकपूर्ण श्रम-विभाजन के आधार पर समाजवादी देशों के आर्थिक विकास में नियोजित अन्तस्सम्बंध और समन्वय स्थापित करना है।

समाजवादी देशों के आर्थिक विकास का नियोजित समन्वय समाजवाद की प्रकृतिगत आवश्यकता है। इससे विश्व समाजवादी व्यवस्था के देशों की मेहनतकश जनता के महत्वपूर्ण हितों की सिद्धि होती है।

समाजवादी देशों के बीच **व्यापार** काफी व्यापक रूप से होता है। यह व्यापार योजना के आधार पर चलता है। इसमें उत्पादन की अराजकता, प्रतिद्वन्द्विता, कीमतों के अपने-आप उतार-चढ़ाव, एकतरफा विनिमय और कुछ देशों का अन्य देशों द्वारा शोषण और लूट के लिए कोई जगह नहीं है।

विदेश व्यापार

समाजवादी देशों के बीच व्यापार पारस्परिक लाभ की दृष्टि से चलता है। व्यापार का उद्देश्य प्रत्येक देश की अर्थव्यवस्था का विकास करना है। व्यापार उचित और स्थायी कीमतों के आधार पर होता है। ये कीमतें विश्व कीमतों के आधार पर दीर्घकालीन स्वैच्छिक समझौतों द्वारा निश्चित की जाती हैं। सहयोग और मैत्रीपूर्ण सहायता विश्व समाजवादी बाजार के विदेश व्यापार की विशेषताएं हैं।

विश्व समाजवादी बाजार में माल की बिक्री के सिलसिले मे किसी भी कठिनाई का सामना नही करना पड़ता। समस्त समाजवादी राज्यो में उत्पादन के निरन्तर विकास और मेहनतकश जनता के भौतिक और सास्कृतिक स्तर मे वृद्धि के फलस्वरूप विश्व समाजवादी बाजार की क्षमता बराबर बढ़ती जाती है।

समाजवादी देशो के आपसी व्यापार सम्बध वस्तुओं की पारस्परिक पूर्ति के लिए दीर्घकालीन समझौतो से निर्धारित होते हैं।

समाजवादी देशो की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे निरन्तर विकास के फलस्वरूप उनके निर्यात और आयात के ढाचे मे परिवर्तन होता है। युद्ध के पहले सभी जनवादी जनतत्र (चेकोस्लोवाकिया और जर्मन जनवादी जनतत्र को छोड़कर) मुख्यतः कच्चे माल और खाद्य पदार्थों का निर्यात करते थे। आज स्थिति भिन्न है। लड़ाई के पहले बुलगारिया मुख्य रूप से कृषि उत्पादन का निर्यात करता था, किन्तु १९६० मे उसके निर्यात का अधिकाश तैयार माल था।

ऋण की व्यवस्था समाजवादी देशो के पारस्परिक आर्थिक सहयोग और सहायता का मुख्य रूप है। समाजवाद का निर्माण करते समय सोवियत सघ को अपने भौतिक और वित्तीय साधनो पर निर्भर रहना पड़ा, किन्तु जनवादी जनतत्र वही कार्य बिल्कुल भिन्न परिस्थितियों मे कर रहे हैं। वे सोवियत सघ की मैत्रीपूर्ण और नि.स्वार्थ सहायता और समस्त समाजवादी देशो के सहयोग और पारस्परिक सहायता पर निर्भर करते है।

ऋण (साख) की व्यवस्था

युद्धोत्तर काल मे सोवियत सघ ने समाजवादी देशो को करीब ८०,००० लाख रूबल का ऋण दिया है। ऋण अत्यन्त अनुकूल शर्तों पर दिये गये हैं। पूजीवादी देश अपने ऋण पर बहुत अधिक ब्याज (३.५ प्रतिशत से ६ प्रतिशत प्रतिवर्ष) लेते हैं तथा आर्थिक और राजनीतिक शर्तें लगा देते हैं। समाजवादी देशो के ऋण पर साधारणतया १-२ प्रतिशत ब्याज देना पडता है। विशेष स्थितियो मे ब्याजमुक्त ऋण भी दिये जाते हैं। ऋण समझौतों मे कोई प्रतिकूल आर्थिक या राजनीतिक शर्तें ऋण के प्रयोग के सम्बध मे नही होती। ऋण और ब्याज का भुगतान सामान्यतया उस देश द्वारा निर्यात की जाने वाली वस्तुओ के रूप मे होता है।

पूजीवादी विश्व का मुख्य सिद्धान्त है : मनुष्य मनुष्य के लिए भेड़िया है। निम्न-पूजीवादी देशो की प्रतिद्वन्द्वी फर्में और कम्पनिया तकनीकी सुधार और वैज्ञानिक आविष्कारो को छिपाने की कोशिशें करती है। साथ ही अपने प्रतिद्वन्द्वियों का भेद लेने के लिए वे घूस देने और हथकण्डा इस्तेमाल करने मे लेकर कोई भी कुकृत्य कर सकती हैं।

वैज्ञानिक और तकनीकी सहयोग

[illegible]
[illegible] प्रदान कर रहा है। [illegible] के दौरान सोवियत संघ को अन्य समाजवादी देशों से ३,००० वैज्ञानिक और तकनीकी दस्तावेज मिले।

वैज्ञानिक और तकनीकी सहयोग के फलस्वरूप प्रत्येक समाजवादी राज्य समय, शक्ति और साधनों की बचत कर सकता है। जिन वैज्ञानिक और तकनीकी समस्याओं का अन्य मित्र-देशों ने पहले ही निवारण किया है, उन पर दूसरों को समय, शक्ति और साधन खर्च करने की आवश्यकता नहीं है।

कर्मचारियों के प्रशिक्षण में सहायता वैज्ञानिक और तकनीकी सहयोग का मुख्य पहलू है। मित्र-देशों के नवयुवक बहुत बड़ी संख्या में सोवियत संघ, चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड और अन्य देशों की उच्च शिक्षा संस्थाओं में व्यवस्थित रूप से प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं।

सफल आर्थिक सहयोग और समाजवादी शिविर की दिनोदिन बढ़ती हुई शक्ति इस बात का सूचक है कि आर्थिक प्रतियोगिता में पूंजीवाद के मुकाबले समाजवाद विजयी होगा।

४. दो विश्व व्यवस्थाओं के बीच शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व और आर्थिक प्रतियोगिता

समाजवाद और पूंजीवाद के बीच शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व और आर्थिक प्रतियोगिता के प्रश्न को सर्वप्रथम लेनिन ने सैद्धान्तिक रूप से पुष्ट किया। उसके

अनुसार समाजवादी क्रान्ति एक साथ सभी देशों में विजयी नहीं हो सकती। इसलिए कमोबेश लम्बे समय तक एक समाजवादी देश या समाजवादी देशों के समूह को अपना विकास एक भिन्न परिस्थिति में करना होगा। पूंजीवादी व्यवस्था अन्य देशों में वर्तमान रहेगी।

शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व का क्या मतलब है?

दो व्यवस्थाओं (समाजवादी और पूंजीवादी) की साथ-साथ उपस्थिति के कारण उनमें परस्पर शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व अवश्यम्भावी हो जाता है।

शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व का मतलब वर्ग संघर्ष से इनकार करना नहीं है। भिन्न आर्थिक व्यवस्थाओं वाले देशों के बीच सह-अस्तित्व समाजवाद और पूंजीवाद के पारस्परिक वर्ग संघर्ष का एक विशेष रूप है। शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व का अर्थ दो विचारधाराओं (समाजवादी और पूंजीवादी) के बीच समन्वय नहीं है। इसके विपरीत इसका मतलब यह है कि सर्वहारा वर्ग और उसकी पार्टी समाजवादी और कम्युनिस्ट विचारों की विजय के लिए पुरजोर संघर्ष करें।

सोवियत जनता और अन्य समाजवादी देशों की जनता पूंजीवादी व्यवस्था को पसन्द नहीं करती। पूंजीवादी देशों का शासक वर्ग भी समाजवादी व्यवस्था को पसन्द नहीं करता। किन्तु प्रत्येक राज्य की जनता ही यह फैसला कर सकती है कि कौन-सी व्यवस्था स्थापित की जाये। इसलिए दो परस्पर-विरोधी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाओं के सम्बन्ध शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व पर आधारित होने चाहिए।

वर्तमान युग में जब एटम और हाइड्रोजन बम जैसे बड़े पैमाने पर विध्वंस करने वाले हथियार बन चुके हैं तब युद्ध को राष्ट्रों की जिन्दगी से अलग ही रखना चाहिए। ऐसा करने के लिए एक ही रास्ता—समाजवाद और पूंजीवाद के बीच शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व और शान्तिपूर्ण होड़ का रास्ता है। वर्तमान काल में शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धान्त की मान्यता और उसका दृढ़तापूर्वक कार्यान्वयन शान्ति और अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा सुदृढ़ करने और बनाये रखने के लिए जरूरी शर्त है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में बताया गया है कि "समाजवादी और पूंजीवादी देशों का शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व मानव समाज के विकास की वस्तुगत आवश्यकता है। अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों के निपटारे के लिए युद्ध न तो कोई साधन हो सकता है और न उसे होना ही चाहिए। इतिहास ने आज हमारे सामने दो ही रास्ते रखे हैं : शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व या विध्वंसकारी युद्ध।"[1]

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ५०६।

से बहुत-से खतरों का सामना करना पड़ता है। इन खेमों में शामिल न होने वाले तटस्थ राष्ट्रों की संख्या दिनोंदिन बढ़ रही है।

आज जनगण सक्रिय रूप में युद्ध और शान्ति के निर्णय को अपने हाथ में ले रहे हैं। शान्ति के संघर्ष में आम जनता के युद्ध-विरोधी आन्दोलन का प्रमुख स्थान है। आज अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग शान्ति के लिए संघर्ष में मुख्य संचालक शक्ति है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में बताया गया है : "शक्तिशाली समाजवादी शिविर, शान्तिप्रेमी गैर-समाजवादी देशों, अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग और शान्ति की इच्छुक समस्त शक्तियों के संयुक्त प्रयास से विश्वयुद्ध रोका जा सकता है। पृथ्वी पर समाजवाद की पूर्ण विजय के पूर्व, दुनिया के एक हिस्से में पूंजीवाद के रहते हुए, साम्राज्यवादी शक्तियों की तुलना में समाजवादी शक्तियों की बढ़ती हुई ताकत और युद्ध की शक्तियों की अपेक्षा शान्ति की शक्तियों की श्रेष्ठता के फलस्वरूप सामाजिक जीवन से युद्ध का वास्तविक उन्मूलन सम्भव हो जायेगा।"[1]

युद्ध अपने-आप नहीं रोका जा सकता। शान्तिप्रिय शक्तियों को शान्ति के लिए जोरदार संघर्ष करना चाहिए और शान्ति के शत्रुओं के सब षड्यन्त्रों पर नजर रखनी चाहिए। युद्ध की रोकथाम समाजवादी देशों की नीति, प्रतिरक्षा की उनकी सामर्थ्य और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के लेनिनवादी सिद्धान्त के कार्यान्वयन पर निर्भर है। किन्तु इनसे साम्राज्यवाद की आक्रामक प्रकृति नहीं बदलती। अगर इस पर भी साम्राज्यवाद युद्ध शुरू करता है तो इसका मतलब है कि वह अपनी मृत्यु को निमंत्रण दे रहा है। अब जनगण ऐसी व्यवस्था को बर्दाश्त नहीं कर सकते जो उन्हें युद्ध की आग में झोंक दे। वे साम्राज्यवाद को उखाड़ कर सदा के लिए दफना देंगे।

समाजवाद और पूंजीवाद के बीच आर्थिक प्रतियोगिता

शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व का सिर्फ यही अर्थ नहीं है कि भिन्न समाज-व्यवस्थाओं वाले देश साथ-साथ रहें, बल्कि दोनों व्यवस्थाओं के बीच आर्थिक प्रतियोगिता चले। इस प्रतियोगिता के दौरान समाजवाद को अधिकाधिक सफलता मिलेगी। शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति पर चलते हुए समाजवादी देश पूंजीवाद के साथ प्रतियोगिता में विश्व समाजवादी व्यवस्था की स्थिति मजबूत बना रहे हैं।

अन्ततोगत्वा विजय उसी व्यवस्था को मिलेगी जो राष्ट्रों को उनका भौतिक और आध्यात्मिक कल्याण बढ़ाने के लिए अधिकतम अवसर प्रदान करेगी। ऐसी

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ५०५।

व्यवस्था समाजवाद ही होगी। समाजवाद ही आम जनता मे अपार सर्जनात्मक उत्साह की सम्भावनाए उत्पन्न करता है। विज्ञान और सस्कृति का वास्तविक विकास करने, दरिद्रता और बेरोजगारी से रहित खुशहाली लाने के मानवजाति के स्वप्न को मूर्त रूप देने, आनन्दमय बालपन और शान्तिपूर्ण बुढ़ापे, मनुष्य की साहसपूर्ण योजनाओ की पूर्ति और काम करने तथा सच्ची आजादी के साथ निर्माण करने के अवसर समाजवाद ही प्रदान करता है।

समाजवाद की विजय पूजीवादी देशो के आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप कर नही प्राप्त की जायेगी। कम्युनिज्म की विजय मे सोवियत जनता की आस्था भिन्न प्रकार की है। यह आस्था समाज-विकास के नियमो के ज्ञान और समाजवादी अर्थ-व्यवस्था की श्रेष्ठता पर आधारित है। जिस प्रकार किसी समय पूजीवाद ने सामन्तवाद की जगह ली, उसी प्रकार एक अत्यन्त प्रगतिशील और उचित समाज-व्यवस्था—कम्युनिज्म—सारे विश्व के पैमाने पर अवश्यम्भावी रूप से पूजीवाद को हटाकर उसका स्थान ग्रहण करेगी।

समाजवाद और पूजीवाद के बीच शान्तिपूर्ण आर्थिक होड पूजीवादी देशो की जनता को न तो हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहने के लिए बाध्य कर देती है और न ही वर्ग सघर्ष और राष्ट्रीय मुक्ति सघर्ष की आवश्यकता को समाप्त कर देती है। इसके विपरीत पूजीवाद के साथ शान्तिपूर्ण होड मे समाजवाद की जीत मेहनतकश जनता के वर्ग सघर्ष को तेज करती है और मुक्ति के लिए सचेत लडाकू जनता के रूप मे बदल देती है। साम्राज्यवादी इसे अच्छी तरह जानते हैं। वे समाजवादी देशो द्वारा विकास के क्षेत्र मे हासिल की गयी सफलताओ से डरते हैं और उनकी प्रगति को मन्द करने के लिए प्रयत्न करते हैं।

सोवियत सत्ता का अस्तित्व ५० वर्षों से भी कम पुराना है। इस दौरान सोवियत सघ ने दो अत्यन्त भयकर लड़ाइया लडी हैं। उसको दबोचने के लिए जिन शत्रुओ ने उस पर आक्रमण किया था, उनको उसने परास्त कर दिया। अमरीका मे डेढ़ शताब्दी से भी अधिक दिनो से पूजीवाद है। इसके अतिरिक्त कभी भी किसी शत्रु ने अमरीका पर आक्रमण नही किया। इसके बावजूद आज सोवियत सघ विश्व के सबसे शक्तिशाली पूजीवादी देश को आर्थिक प्रतियोगिता के लिए ललकार रहा है।

समाजवाद और पूजीवाद के बीच आर्थिक प्रतियोगिता का मतलब मुख्य रूप से प्रति व्यक्ति अधिक औद्योगिक और कृषि उत्पादन प्राप्त करना और जनता को जीवन-यापन का उच्चतम स्तर प्रदान करना है। इस प्रतियोगिता मे स्पष्ट रूप से सोवियत सघ और समाजवाद का पलड़ा भारी है। सोवियत सघ और अमरीका के आर्थिक विकास की तुलनात्मक दरो से यह बात साफ हो जाती है।

सोवियत सघ और अमरीका की अर्थव्यवस्थाओ मे खाई काफी कम हो गयी है।

१९१३ मे रूस का औद्योगिक उत्पादन अमरीका की अपेक्षा ८ गुना कम था, किन्तु १९५३, १९५७ और १९६४ मे अमरीकी उत्पादन का क्रमश: ३३ प्रतिशत, ४७ प्रतिशत और ६५ प्रतिशत था। ४५ वर्षों (१९१८-६२) के दौरान सोवियत सघ का औद्योगिक उत्पादन १०.१ प्रतिशत की दर से बढा है और इसी दौरान अमरीका का औद्योगिक उत्पादन ३.४ प्रतिशत की दर से बढा। १९५४-६२ के दौरान सोवियत सघ के औद्योगिक विकास की औसत वार्षिक वृद्धि दर १० ७ प्रतिशत और अमरीका की २.९ प्रतिशत रही है।

हाल के वर्षों मे सोवियत सघ अपने आर्थिक विकास की ऊची दर के फलस्वरूप कई महत्वपूर्ण वस्तुओं के उत्पादन मे अमरीका से मात्रा की दृष्टि से आगे बढ गया है। अब कई वस्तुओ और तैयार माल की दृष्टि से सोवियत सघ दुनिया मे पहला स्थान प्राप्त कर रहा है।

कोयला और लौह अयस्क निष्कर्षण, कोक उत्पादन, मुख्य मार्ग पर चलने वाले विद्युत और डिजेल रेल इजिनो, धातु काटने के औजारो, ट्रैक्टरों (कुल शक्ति के रूप मे), पूर्व-निर्मित प्रबलित कक्रीट, चीरी गयी लकडी, ऊनी कपडो, चीनी, मवेशियों की चर्बी, मछली और अन्य वस्तुओ और तैयार मालो की कुल मात्रा की दृष्टि से सोवियत सघ अमरीका से आगे निकल गया है।

सोवियत सघ और अमरीका के बीच आर्थिक होड के परिणाम के सम्बध मे सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे प्रकाश डाला गया है। कार्यक्रम में कहा गया है कि जैसे-जैसे सोवियत सघ कम्युनिज्म का भौतिक एव तकनीकि आधार तैयार करता जायेगा, वैसे-वैसे वह अमरीका से प्रति व्यक्ति औद्योगिक एव कृषि उत्पादन तथा कुल उत्पादन की दृष्टि से आगे निकलता जायेगा।

सोवियत सघ अन्य समाजवादी देशों के साथ मिलकर पूजीवादी देशो के साथ प्रतियोगिता के क्षेत्र मे आर्थिक विजय के लिए कार्य कर रहा है। समाजवादी देशो की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियो का यह अन्तर्राष्ट्रीय कर्तव्य है कि वे अपनी अर्थव्यवस्थाओ का विकास उनकी पूरी क्षमता के अनुसार तेजी से करें। वे आर्थिक प्रतियोगिता के क्षेत्र मे पूजीवाद के ऊपर सक्षिप्त समय मे पूर्ण विजय प्राप्त करने के लिए सयुक्त रूप से प्रयास करें और समाजवादी व्यवस्था के लाभों तथा प्रत्येक देश के आन्तरिक साधनो का इस्तेमाल करें।

ख. समाजवाद का शनैः-शनैः कम्युनिज्म के रूप में विकास

अध्याय १८

कम्युनिस्ट समाज का उच्चतर दौर और समाजवाद के कम्युनिज्म के रूप में विकसित होने के नियम

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २२वीं कांग्रेस ने सुन्दरतम समाज—कम्युनिज्म—की ओर विजय-अभियान की स्पष्ट, उज्ज्वल सम्भावनाएं सामने रखीं। कांग्रेस द्वारा स्वीकृत कार्यक्रम को २०वीं सदी का कम्युनिस्ट घोषणापत्र कहना एकदम सही है। इस घोषणापत्र में समाजवादी समाज के विकास के सभी पहलुओं की विवेचना की गयी है और समाजवाद से कम्युनिज्म की ओर संक्रमण के मार्ग को वैज्ञानिक तौर पर पुष्ट और प्रशस्त किया गया है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में बताया गया है "कम्युनिज्म एक वर्गविहीन समाज व्यवस्था है। उसमें उत्पादन के साधनों के सार्वजनिक स्वामित्व का एक ही स्वरूप होता है और समाज में पूर्ण सामाजिक समानता होती है। उसके अन्तर्गत जनता के सर्वांगीण विकास के साथ ही, विज्ञान और टेक्नालाजी की निरन्तर प्रगति के परिणामस्वरूप उत्पादक शक्तियां विकसित होती हैं। सामूहिक सम्पत्ति के सभी स्रोत उन्मुक्त हो जाते हैं और विपुलता आ जाती है। "प्रत्येक व्यक्ति से उसकी योग्यता के अनुसार काम लिया जाये और उसे उसकी आवश्यकता के अनुसार हिस्सा दिया जाये", इस महान सिद्धान्त को मूर्त रूप दिया जाता है। कम्युनिज्म स्वतन्त्र, सामाजिक तौर पर चेतन मेहनतकश जनता का अत्यन्त संगठित समाज है। उस समाज में सार्वजनिक

स्वराज्य स्थापित होता है। समाज-कल्याण के लिए किया जाने वाला श्रम प्रमुख एवं प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक हो जाता है। उस श्रम की आवश्यकता को सभी महसूस करते हैं और इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता का अधिकतम जन-कल्याण के लिए उपयोग होता है।"[1]

कम्युनिज्म समाजवाद के प्रत्यक्ष विकास के क्रम मे आता है। कम्युनिस्ट सामाजिक-आर्थिक सरचना के विकास के दो चरणो के रूप मे समाजवाद और कम्युनिज्म आते हैं। इसलिए इनकी कई समान विशेषताए हैं और इनके बीच कई महत्वपूर्ण अन्तर भी हैं।

१. समाजवाद और कम्युनिज्म की समान आर्थिक विशेषताएं और उनकी भिन्नताएं

समाजवाद और कम्युनिज्म की समान विशेषताएं

उत्पादन के साधनों का सामाजिक स्वामित्व समाजवाद और कम्युनिज्म का आर्थिक आधार है। इसका मतलब है कि भूमि, खनिज सम्पत्ति, कारखानो, बिजलीघरो, परिवहन सुविधाओ, सचार व्यवस्था और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के उत्पादनो का समाजीकरण हो जाता है और वे सारे समाज की सम्पत्ति होते हैं।

सरचनाओ के दोनो दौरो मे उत्पादन के सम्बंध उत्पादक शक्तियो के अनुकूल होते हैं, अर्थात उत्पादन के साधनो के सामाजिक स्वामित्व और उत्पादन के सामाजिक स्वरूप मे सामजस्य होता है। भौतिक सम्पत्ति का उपयोग सारे समाज के हित मे होता है।

समाजवाद और कम्युनिज्म मे न कोई शोषक वर्ग होते हैं और न मनुष्य का मनुष्य के द्वारा शोषण हो। जातीय या राष्ट्रीय उत्पीड़न का समाजवाद और कम्युनिज्म में नामोनिशान भी नहीं रहता है। कम्युनिस्ट समाज के प्रथम और उच्चतर दोनो चरणों के उत्पादन-सम्बधो की प्रमुख विशेषता शोषणमुक्त लोगो के बीच मैत्रीपूर्ण सहयोग और पारस्परिक सहायता है।

समाजवाद और कम्युनिज्म की यह विशेषता है कि समाज के सभी सदस्यो की भौतिक और सास्कृतिक आवश्यकताओ की पूर्ण सतुष्टि के लिए विज्ञान और टेक्नालाजी की द्रुत प्रगति के आधार पर सामाजिक उत्पादन का निरन्तर विकास होता है। समाजवाद और कम्युनिज्म मे भौतिक और आध्यात्मिक मूल्यो के सृजनकर्ता मनुष्य को और उसकी भौतिक और सास्कृतिक आवश्यकताओ को पहला स्थान दिया जाता है।

---
१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ५०१।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का नियोजित विकास तेज होता है। समाज के भौतिक और मानव-शक्ति साधनो का विवेकपूर्ण प्रयोग तथा श्रम-उत्पादकता मे निरन्तर वृद्धि कम्युनिस्ट समाज के दोनो दौरो की प्रमुख विशेषताए हैं।

समाजवाद और कम्युनिज्म के अन्तर्गत ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों तथा मानसिक एव शारीरिक श्रम के बीच कोई विरोध नहीं होता है।

कम्युनिस्ट सरचना के दोनों चरणो मे श्रम नि शुल्क और सृजनात्मक होता है। दोनो दौरो की यह समान विशेषता है कि समाज के सभी सदस्य अपनी योग्यता के अनुसार काम करते हैं।

समाजवाद और कम्युनिज्म मे एक ही, मार्क्सवादी-लेनिनवादी, विचारधारा का बोलबाला होता है।

उपर्युक्त मुख्य विशेषताएं एकसमान समाजवाद और कम्युनिज्म दोनो मे वर्तमान रहती हैं।

समाजवाद और कम्युनिज्म के कई समान लक्षणो के होने का मतलब यह नही है कि उनमे कोई अन्तर होता ही नही।

कम्युनिज्म और समाजवाद मे बुनियादी अन्तर

कम्युनिस्ट समाज के निम्नतर और उच्चतर चरणो मे आर्थिक एव सांस्कृतिक परिपक्वता अलग-अलग होती है। इसी के फलस्वरूप कम्युनिज्म और समाजवाद मे बुनियादी अन्तर होते है।

कम्युनिज्म मे उत्पादक शक्तियां अतुलनीय रूप से विकास के स्तर पर होती हैं। कम्युनिज्म का भौतिक और तकनीकी आधार अत्यन्त शक्तिशाली और उन्नत होता है जिसमे श्रम-उत्पादकता मे काफी वृद्धि होती है और विपुल मात्रा मे भौतिक एव अभौतिक सम्पत्ति प्राप्त होती है। कम्युनिज्म के अन्तर्गत सम्पूर्ण सामाजिक अर्थव्यवस्था के नियोजित सगठन का स्तर अत्यन्त ऊचा होता है। समाज के सभी सदस्यो की बढती हुई आवश्यकताओ की सन्तुष्टि के लिए भौतिक सम्पत्ति एव मानव-शक्ति का कुशल एव विवेकपूर्ण इस्तेमाल होता है।

कम्युनिज्म के अन्तर्गत उत्पादन के सम्बध अत्यन्त परिपक्व होते हैं। उदाहरण के लिए, समाजवाद के अन्तर्गत सामाजिक सम्पत्ति के दो स्वरूप होते हैं: राजकीय सम्पत्ति एव सहकारी तथा सामूहिक फार्म की सम्पत्ति। किन्तु कम्यु-निज्म के अन्तर्गत एक ही प्रकार की सम्पत्ति—कम्युनिस्ट सम्पत्ति होती है जिस पर सम्पूर्ण जनता का अधिकार होता है। समाजवाद के अन्तर्गत दो वर्ग—मजदूर वर्ग और सहकारी किसान वर्ग—होते है, क्योकि सामाजिक सम्पत्ति के दो रूप होते है। एकमात्र कम्युनिस्ट स्वामित्व की स्थापना से वर्गों और वर्ग-भिन्न-

ताओं के आर्थिक आधार नहीं रहेंगे तथा ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के पारस्परिक सामाजिक-आर्थिक, कल्याणात्मक और सांस्कृतिक विभेद खत्म हो जायेंगे।

उत्पादन तकनीकों और मेहनतकश जनता की शिक्षा एवं तकनीकी दक्षता के स्तर के उन्नत होने से जनता की उत्पादक क्रिया में मानसिक और शारीरिक कार्यों का समेकन हो जायेगा।

कम्युनिस्ट समाज में कार्य का असली स्वरूप ही बदल जायेगा। समाजवाद के अन्तर्गत कार्य अब भी जीवन की प्रमुख आवश्यकता नहीं है। कम्युनिज्म के अन्तर्गत सम्पूर्ण समाज के लिए निःशुल्क, सर्जनात्मक कार्य जीवन की प्रमुख आवश्यकता होता है। काम में लोगों को सृजन के आनन्द और महान सुख की उपलब्धि होती है। किन्तु कम्युनिज्म समाज के सदस्यों को काम करने की जिम्मेदारी से मुक्त नहीं करता। आलस और परजीविता का कम्युनिज्म से कोई मेल नहीं है। काम करने में सक्षम प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक श्रम में शामिल होगा और इस प्रकार समाज की भौतिक और सांस्कृतिक समृद्धि बढ़ायेगा।

कम्युनिज्म के अन्तर्गत विपुल समृद्धि हो जाने और काम के जीवन की प्रमुख आवश्यकता बन जाने के बाद यह सम्भव हो जायेगा कि "प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार काम लेने और उसे उसके कार्य के अनुसार हिस्सा देने" के बदले "प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार काम लिया जाये और उसको उसकी आवश्यकता के अनुसार हिस्सा दिया जाये।"

अगर उत्पादन के साधनों और काम की दृष्टि से सबकी स्थिति एकसमान हो तो भौतिक सम्पत्ति के वितरण की दृष्टि से भी सबकी स्थिति एक-सी होगी। सांस्कृतिक तौर पर विकसित मनुष्य की विवेकपूर्ण जरूरतों को ध्यान में रखकर ही वितरण होगा। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में बताया गया है: "कम्युनिस्ट उत्पादन का उद्देश्य समाज की निर्बाध प्रगति और सभी सदस्यों को उनकी बढ़ती हुई आवश्यकताओं, व्यक्तिगत जरूरतों एवं रुचियों के अनुसार भौतिक एवं सांस्कृतिक सहूलियतें देना है।"[१]

कम्युनिस्ट समाज में वस्तु उत्पादन और उसकी विशिष्ट आर्थिक कोटियाँ—वस्तु, मुद्रा, कीमत, मजूरी, लागत लेखा, साख और वित्त व्यवस्था—नहीं रहेंगी।

कम्युनिज्म सार्वजनिक जीवन के संगठन का उच्चतम रूप है। कम्युनिज्म की ओर संक्रमण और समाजवादी उत्पादन-सम्बंधों के विकास और उन्नति के

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ५११।

साथ-साथ शरीर-सरचना मे भी अनुकूल परिवर्तन होगे। राजनीतिक एव न्यायिक संस्थाओं के क्षेत्र मे तब्दीलियां होगी और सामाजिक चेतना बदलेगी।

कम्युनिस्ट समाज के उच्चतर चरण मे न तो कोई वर्ग होगे और न वर्ग-विभेद और न ही वहां श्रम की मात्रा और उपभोग की दर मापने की आवश्यकता होगी तथा साथ ही वहां साम्राज्यवादी देशो की ओर से आक्रमण की भी कोई आशका न होगी। फलस्वरूप समाज के राजनीतिक सगठन के रूप में राज्य धीरे-धीरे खत्म हो जायेगा। समाजवादी राज्य-तत्र कम्युनिस्ट सामाजिक प्रशासन के रूप मे बदल जायेगा।

कम्युनिज्म की ओर सक्रमण के फलस्वरूप समान राजनीतिक, आर्थिक और आध्यात्मिक हितो, सौहार्दपूर्ण मित्रता और सहयोग के आधार पर राष्ट्र एक-दूसरे के नजदीक आयेंगे।

कम्युनिज्म और समाजवाद के बीच विभेद होने पर भी समाज-विकास के इन दो दौरों को बाटने वाली कोई दीवार नही है। यह कहा जा सकता है कि कम्यु-निज्म का पौधा समाजवाद मे ही पुष्पित एव पल्लवित होता है। इस तरह काम करने के कम्युनिस्ट तरीके और उत्पादन का कम्युनिस्ट सगठन, मेहनतकश जनता की आवश्यकताओ को सतुष्ट करने के सामूहिक तरीके (सार्वजनिक भोजन-व्यवस्था बोर्डिंग स्कूल, किंडरगार्टेन, बाल-विहार, इत्यादि) समाजवादी समाज मे ही जन्म लेते और विकसित होते हैं। इसी चरण मे कम्युनिज्म के कई स्पष्ट लक्षण लक्षित और विकसित होते हैं।

२. समाजवाद के कम्युनिज्म में विकसित होने के वास्तविक नियम

किस प्रकार समाजवाद कम्युनिज्म के रूप में विकसित होता है ?

इस दुनिया मे कम्युनिस्ट समाज ही अत्यन्त न्यायोचित एवं अत्यन्त पूर्ण समाज है। कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियो का अन्तिम उद्देश्य कम्युनिज्म का निर्माण करना है।

समाजवाद का कम्युनिज्म के रूप मे विकास वास्तविक नियमों पर आधारित एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है। इन नियमो को न तो मनमाने ढग से तोडा-मरोडा जा सकता है और न ही नजरअन्दाज किया जा सकता है।

पूजीवाद से समाजवाद मे सक्रमण वर्ग सघर्ष की स्थितियो मे होता है। इसके लिए तत्कालीन सामाजिक सम्बधो को जड से उखाड फेंकना होगा और एक बड़ी सामाजिक क्रान्ति द्वारा सर्वहारा अधिनायकत्व कायम करना होगा।

समाजवाद से कम्युनिज्म की ओर सक्रमण की बात कुछ और है। समाज-वाद कम्युनिज्म के रूप मे बिना किसी क्रान्ति के विकसित होता है, क्योंकि समाज-

वाद और कम्युनिज्म दोनों एक ही कम्युनिस्ट सामाजिक-आर्थिक संरचना के दो दौर हैं। कम्युनिज्म की ओर संक्रमण के दौरान कोई शोषक वर्ग नहीं होते और समाज के सभी सदस्यों—मजदूरों, किसानों और बुद्धिजीवियों—की दिलचस्पी कम्युनिज्म के निर्माण में होती है।

यद्यपि कतिपय ऐतिहासिक परिस्थितियों में ऐसी सम्भावना थी और अब भी है कि कोई देश बिना पूंजीवादी दौर से गुजरे समाजवाद में पहुंच जाये, किन्तु कोई भी देश बिना समाजवाद स्थापित किये कम्युनिज्म की स्थापना नहीं कर सकता। समाजवाद का निर्माण करने के बाद ही कम्युनिस्ट समाज की स्थापना हो सकती है।

समाजवाद से कम्युनिज्म की ओर संक्रमण धीरे-धीरे और लगातार होता है। कम्युनिज्म एकाएक नहीं आ जाता।

समाजवाद से कम्युनिज्म की ओर संक्रमण के दौरान कम्युनिस्ट समाज के दूसरे दौर के लिए आवश्यक भौतिक और आध्यात्मिक पूर्वस्थितियां धीरे-धीरे तैयार की जाती हैं।

समाजवाद से कम्युनिज्म की ओर संक्रमण की मुख्य स्थितिया हैं : कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार का निर्माण जिससे भौतिक समृद्धि की प्रचुरता, समाजवादी सम्पत्ति के दोनों रूपों का मिलकर एक कम्युनिस्ट सम्पत्ति का रूप धारण कर लेना, श्रम का मनुष्य के जीवन की मुख्य आवश्यकता के रूप मे विकसित होना, शहर और देहात तथा मानसिक और शारीरिक श्रम के बीच बुनियादी फर्क का खात्मा, समाजवादी समाज के वर्गों के बीच सामाजिक-आर्थिक विभेद का मिटना और वर्गविहीन समाज की ओर सक्रमण, समाज के सभी सदस्यो का सर्वांगीण भौतिक और आध्यात्मिक विकास और सार्वजनिक सम्पत्ति एव श्रम के प्रति कम्युनिस्ट दृष्टिकोण का विकास।

बिना आवश्यक स्थितिया तैयार किये कम्युनिज्म के उच्चतर चरण की ओर सक्रमण नही हो सकता। जरूरी है कि विपुल भौतिक समृद्धि लायी जाये और जनता कम्युनिस्ट दृष्टिकोण से काम करने और जिन्दगी बिताने के लिए तैयार रहे।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २२वी कांग्रेस के एक प्रस्ताव मे कहा गया है : "कम्युनिज्म के पूरे पैमाने पर निर्माण के दौरान पार्टी की आन्तरिक नीति को इन महत्वपूर्ण कामों को सम्पन्न करना होगा : कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार का निर्माण, समाजवादी सम्बधों का विकास और कम्युनिस्ट समाज के व्यक्ति की रचना।"[1]

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ४३०।

समाजवाद से कम्युनिज्म की ओर क्रमिक संक्रमण का मतलब मन्द गति से विकास नहीं है। इसके विपरीत यह संक्रमण अत्यन्त द्रुत और अभूतपूर्व गति से होता है। उत्पादक शक्तियो और संस्कृति का द्रुत विकास और विज्ञान एव टेक्ना-लोजी [illegible]

[illegible]

[illegible]

वग इसमें हिस्सा लेते हैं।

तेज वैज्ञानिक एव तकनीकी प्रगति के आधार पर मजदूरो के ऊचे तकनीकी ज्ञान और कम्युनिज्म के निर्माण के सघर्ष मे मेहनतकश जनता की सक्रियता और बढ़ी हुई समझदारी के आधार पर सामाजिक उत्पादन निरन्तर बढता है।

कम्युनिस्ट निर्माण एक स्वत स्फूर्त प्रक्रिया नही है, बल्कि आम मेहनतकश जनता के सृजनात्मक कार्य, उसकी चेतना और सामाजिक उत्पादन के विकास मे उसके सक्रिय सहयोग, विज्ञान और संस्कृति का परिणाम है।

कम्युनिज्म का शीघ्र निर्माण वस्तुगत नियमो के ज्ञान और प्रयोग पर निर्भर है। इन्ही नियमो के आधार पर समाजवादी समाज कम्युनिस्ट रूपान्तरण के सबसे छोटे और अत्यन्त कुशल रास्ते और तरीके चुनता है।

सोवियत सघ मे कम्युनिस्ट समाज के प्रथम चरण—समाजवाद—का निर्माण हो चुका है। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे कहा गया है: "समाजवाद का धीरे-धीरे कम्युनिज्म के रूप मे विकसित होना एक वस्तुगत नियम है। यह स्थिति पिछले काल मे सोवियत समाजवादी समाज के विकसित होने के कारण आयी है?"[1]

सोवियत संघ पूर्ण पैमाने पर कम्युनिस्ट निर्माण के दौर मे

सोवियत सघ के आर्थिक एव सामाजिक-राजनीतिक जीवन के सभी क्षेत्रो मे समाजवाद की महान विजय के परिणामस्वरूप देश पूरे पैमाने पर कम्युनिस्ट निर्माण का कार्य कर रहा है। समाजवाद की पूर्ण और अन्तिम विजय, अत्यन्त विकसित उत्पादक शक्तियो और उत्पादन के सामाजिक सम्बधो और विज्ञान एव संस्कृति के पल्लवित-पुष्पित होने के कारण ऐसी स्थिति पैदा हो गयी है जिसमे कम्युनिस्ट समाज का पौधा दिन-ब-दिन सोवियत सघ मे विकसित और पुष्ट होता जा रहा है। सोवियत सघ मे कम्युनिस्ट निर्माण में प्रत्येक सोवियत मजदूर की दिलचस्पी है। यही मूर्त एव तात्कालिक कार्य है। कम्युनिस्ट निर्माण के कार्य एक के बाद एक पूरे किये जाते हैं।

---

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ५०६।

कम्युनिज्म का भौतिक और तकनीकी आधार (जिससे सम्पूर्ण जनसंख्या को विपुल भौतिक एवं सांस्कृतिक समृद्धि प्राप्त होगी) दो दशकों (१९६१-८०) के दौरान निर्मित होगा। सोवियत समाज उसी स्थिति में आ जायेगा जहां आवश्यकता के अनुसार वितरण का सिद्धान्त व्यवहार-रूप में परिणत होगा और धीरे-धीरे सम्पूर्ण जनता का एकमात्र कम्युनिस्ट स्वामित्व कायम हो जायेगा।

कम्युनिस्ट समाज के निर्माण की प्रक्रिया में वर्ग-विभेद समाप्त हो जायेंगे और कम्युनिस्ट मेहनतकश जनता का एक वर्गविहीन समाज स्थापित होगा। शहर और गांव तथा मानसिक और शारीरिक श्रम का तात्त्विक विभेद समाप्त हो जायगा। राष्ट्रों का आर्थिक और सैद्धान्तिक दृष्टि से एक बड़ा समुदाय बनेगा। कम्युनिस्ट समाज का "मानव" जन्म लेगा। उस मानव में विचारधारा की ईमानदारी और दृढ़ता, उच्च शिक्षा, नैतिक शुद्धता और शारीरिक पूर्णता का अपूर्व समन्वय होगा। सभी नागरिक सार्वजनिक प्रशासन में हाथ बटायेंगे। समाजवादी जनवाद के व्यापक विकास के परिणामस्वरूप समाज कम्युनिस्ट स्वराज्य के कार्यान्वयन की तैयारी करेगा।

इस तरह अगले बीस वर्षों में सोवियत संघ में कम्युनिस्ट समाज का मुख्य निर्माण-कार्य समाप्त हो जायेगा, किन्तु कम्युनिस्ट समाज का पूर्ण निर्माण आगे आने वाली अवधि में होगा।

सोवियत संघ में कम्युनिज्म के निर्माण-कार्य का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व है। समाजवाद की ओर सबसे पहले अग्रसर होने वाला सोवियत संघ मानवजाति को कम्युनिज्म की ओर ले जा रहा है। सोवियत संघ में कम्युनिज्म के निर्माण के फलस्वरूप उत्पादक शक्तियों में वृद्धि होगी और देश की आर्थिक शक्ति बढ़ेगी। इस तरह पूंजीवाद के साथ प्रतियोगिता में विश्व समाजवादी व्यवस्था की स्थिति सुदृढ़ होगी। किसी भी पूंजीवादी देश से सोवियत संघ में जीवन-यापन का स्तर ऊंचा होगा। पूंजीवादी देशों के मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी संघर्ष के लिए इसका बड़ा महत्व है।

समाजवादी देशों में कम्युनिज्म की ओर कमोबेश एक साथ संक्रमण

समाजवाद के निर्माण में संलग्न सभी देशों में कम्युनिज्म की ओर संक्रमण अवश्यम्भावी है। सोवियत संघ में कम्युनिज्म की स्थापना का कार्य विश्व समाजवादी व्यवस्था के राष्ट्रों द्वारा कम्युनिस्ट समाज की स्थापना के लक्ष्य का ही एक अंग है।

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का कार्यक्रम बताता है : "चूंकि सामाजिक शक्तियां—मजदूर वर्ग, सहकारी फार्मों में काम करने वाला किसान और जनवादी बुद्धिजीवी—और अर्थव्यवस्था के सामाजिक स्वरूप (समाजवादी सम्पत्ति

[illegible]

[illegible]

सभी समाजवादी देश विश्व समाजवादी व्यवस्था के सदस्य हैं और वे इस व्यवस्था के फायदों का इस्तेमाल कर रहे हैं। इस कारण से समाजवाद की स्थापना [illegible]। ऐसी सम्भावना है कि एक ही ऐतिहासिक युग में कम्युनिज्म की ओर संक्रमण कमोबेश एक साथ होगा।

पूँजीवाद के अन्तर्गत (विशेषकर साम्राज्यवादी दौर में) देशों का असम आर्थिक और राजनीतिक विकास [illegible] कर लेता है किन्तु विश्व समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत सभी देशों के आर्थिक और सांस्कृतिक विकास को क्रमिक [illegible] पाटा जाता है। ऐसा देश भी जो काफी पिछड़ा हुआ हो, अन्य समाजवादी देशों के सहयोग, पारस्परिक सहायता और अनुभवों के द्वारा कम समय में अपनी अर्थव्यवस्था एवं संस्कृति को अग्रणी समाजवादी देशों के स्तर पर ला सकता है।

हर देश की जनता के सृजनात्मक श्रम द्वारा कम्युनिज्म के लिए भौतिक पूर्वस्थितियों का निर्माण, समाजवादी व्यवस्था को शक्तिशाली बनाने के लिए सभी देशों का योगदान और समाजवादी देशों के सहयोग और पारस्परिक सहायता की दृढ़ीकरण समाजवादी देशों के कम्युनिज्म की ओर कमोबेश एक साथ एक ही ऐतिहासिक काल में संक्रमण का आर्थिक आधार है।

कम्युनिज्म की ओर सबसे पहले संक्रमण करने वाला देश कम्युनिज्म की ओर अन्य समाजवादी देशों के अभियान को तेज करता है और उसका मार्ग प्रशस्त

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ५७६-८०।

सकता है। कम्युनिज्म के निर्माण द्वारा सोवियत संघ के जनगण सम्पूर्ण मानवजाति के लिए अज्ञात मार्गों को दिखा रहे हैं, अपने अनुभवों से इन मार्गों के औचित्य की परीक्षा कर रहे हैं, कठिनाइयों का पता लगाकर उनको दूर करने के लिए साधन खोज रहे हैं और कम्युनिज्म के निर्माण के लिए उचित विधियाँ और तरीके ढूंढ रहे हैं।

कम्युनिज्म मानवजाति का युगों पुराना स्वप्न है। विश्व समाजवादी व्यवस्था के सभी देशों के लिए यह सपना साकार हो रहा है। अन्ततोगत्वा समस्त मानवजाति कम्युनिज्म की स्थापना करेगी। यही समाज-विकास की अवश्यम्भावी प्रवृत्ति होगी।

अध्याय १६

कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार का निर्माण

कम्युनिज्म और समाजवाद के बीच अन्तर है। कम्युनिज्म मे समाजवाद की अपेक्षा उत्पादक शक्तिया अधिक विकसित होती हैं।

समाजवाद से कम्युनिज्म की ओर जाने के लिए आवश्यक है कि कम्युनिज्म का भौतिक एवं तकनीकी आधार तैयार किया जाये। इसके लिए समाज की उत्पादक शक्तियो को इतना विकसित करना होगा कि भौतिक और सास्कृतिक समृद्धि विपुल मात्रा मे उपलब्ध हो तथा कम्युनिस्ट सम्बधो की स्थापना हो सके।

१. कम्युनिज्म के भौतिक एव तकनीकी आधार के निर्माण के तरीके

कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार का अर्थ क्या है ?

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे बताया गया है कि "पार्टी और सोवियत जनता का मुख्य आर्थिक कार्य दो दशको के भीतर कम्युनिज्म के भौतिक एवं तकनीकी आधार का निर्माण करना है।"[1]

कम्युनिज्म के भौतिक एव तकनीकी आधार पर ही कम्युनिस्ट समाज की इमारत खड़ी हो सकती है। इसके निर्माण के द्वारा ही कम्युनिस्ट निर्माण के सभी कार्य पूरे किये जा सकते हैं।

कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार से हमारा स्पष्ट तात्पर्य राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सभी धाराओ मे मशीनो और यत्रो की अत्यन्त विकसित

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ५११।

प्रणाली की प्रधानता से है। इसके विस्तार और तकनीकी स्तर के ऊंचे होने से श्रम-उत्पादकता बढ़ती है और भौतिक मूल्यों की विपुलता और आवश्यकता के अनुसार वितरण के सिद्धान्त के कार्यान्वयन की ओर धीरे-धीरे सक्रमण की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

पैमाने और तकनीकी स्तर की दृष्टि से कम्युनिज्म का भौतिक एव तकनीकी आधार समाजवाद से श्रेष्ठ होता है। इस आधार के तत्व समाजवाद में ही जन्म लेते हैं। इसके बाद जरूरत है कि द्रुत तकनीकी प्रगति द्वारा उनके विकास के लिए व्यापक अवसर प्रदान किये जायें।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में बताया गया है: कम्युनिज्म के भौतिक एवं तकनीकी आधार के निर्माण का मतलब है कि "सम्पूर्ण देश का विद्युतीकरण किया जाये और इस आधार पर राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रो मे सामाजिक उत्पादन के तकनीक, टेक्नालाजी और सगठन को पूर्ण किया जाये। उत्पादन प्रक्रियाओ का व्यापक यत्रीकरण और उनमे स्वयंचालन का प्रवेश, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे रसायनशास्त्र का बड़े पैमाने पर प्रयोग, उत्पादन की नयी एव आर्थिक दृष्टि से कुशल शाखाओ, नये प्रकार की शक्ति और नये पदार्थों का जोर-शोर से विकास, प्राकृतिक, भौतिक और श्रम के साधनो का हर तरह से और विवेकपूर्ण इस्तेमाल, विज्ञान और उत्पादन का पूर्ण सम्मिलन और द्रुत वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति एव मेहनतकश जनता के लिए उच्च सास्कृतिक एवं तकनीकी स्तर कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार के निर्माण के लिए अपरिहार्य हैं। इनके अतिरिक्त पूजीवादी देशों की तुलना मे श्रम-उत्पादकता अधिक होनी चाहिए, यह कम्युनिस्ट व्यवस्था की विजय के लिए एक अनिवार्य पूर्वस्थिति है।"[१]

इनके फलस्वरूप सोवियत संघ के पास विशाल मात्रा मे उत्पादक शक्तिया हो जायेंगी। तकनीकी स्तर की दृष्टि से वह अत्यन्त विकसित पूजीवादी देशो से भी आगे निकल जायेगा तथा प्रति व्यक्ति उत्पादन की दृष्टि से उसका स्थान विश्व मे पहला होगा।

कम्युनिज्म के भौतिक एव तकनीकी आधार के निर्माण के लिए भारी उद्योगो का और भी विकास आवश्यक है। इसी आधार पर राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की अन्य शाखाए—कृषि, उपभोक्ता वस्तुओ को उत्पन्न करने वाले उद्योग, भवन-निर्माण, परिवहन एव सचार और सार्वजनिक सेवा से सम्बधित शाखाए (व्यापार सार्वजनिक भोजन-व्यवस्था, स्वास्थ्य, आवास और कल्याण सेवाए)—तकनीकी रूप से पुनर्सज्जित हो जायेंगी।

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ५१३।

१९६० की तुलना मे समग्र औद्योगिक उत्पादन १९८० मे ६.२-६.४ गुना बढेगा। इसी प्रकार उत्पादन के साधनो की पैदावार ६.८-७ गुना, उपभोक्ता वस्तुओ का उत्पादन ५-५.२ गुना तथा समग्र कृषि उत्पादन ३.५ गुना बढ़ेगा।

बीस वर्षीय विकास योजना के परिणामस्वरूप १९८० मे सोवियत सघ गैर-समाजवादी विश्व के कुल वर्तमान औद्योगिक उत्पादन का दुगुना पैदा करेगा।

कम्युनिज्म के भौतिक एव तकनीकी आधार के पूर्ण होने पर सोवियत सघ के पास अभूतपूर्व मात्रा मे उत्पादक शक्तिया हो जायेंगी।

कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार के निर्माण के तरीके

कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार के निर्माण के अत्यन्त महत्वपूर्ण तरीको मे सम्पूर्ण देश का विद्युतीकरण एक है।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे बताया गया है "कम्युनिस्ट समाज के निर्माण के दौरान जिन कार्यों को सम्पन्न करना है उनकी रूपरेखा निर्धारित करने मे पार्टी का पथ-प्रदर्शन लेनिन के इस महान सूत्र—'कम्युनिज्म =सोवियत सत्ता+पूरे देश का विद्युतीकरण'—से होता है।"[१]

विद्युतीकरण कम्युनिस्ट समाज के निर्माण की रीढ़ है। आधुनिक वैज्ञानिक एव तकनीकी प्रगति मे विद्युतीकरण की प्रमुख भूमिका है। पूर्ण विद्युतीकरण के फलस्वरूप उद्योग एव कृषि की सभी शाखाओ मे महत्वपूर्ण परिवर्तन होगे। उद्योग, कृषि, परिवहन और अन्य शाखाए उच्चतर तकनीकी आधार पर पहुच जायेंगी।

सस्ती विद्युत शक्ति के कारण शक्ति-सचालित उद्योगो का व्यापक विकास होगा और परिवहन, कृषि तथा शहरी एव ग्रामीण सार्वजनिक सेवाओ का बडे पैमाने पर विद्युतीकरण होगा। १९८० तक सोवियत सघ के विद्युतीकरण का काम मोटे तौर पर समाप्त हो जायेगा।

१९८० तक विद्युत शक्ति का वार्षिक उत्पादन २,७००-३,००० अरब किलोवाट घंटे हो जायेगा। उत्पादन की इस मात्रा पर पहुचने के लिए बड़े-बड़े बिजलीघर बनाने पडेंगे और सचालन-गृहो (आपरेटिंग स्टेशनो) का विस्तार करना होगा। १८० बड़े पन-बिजलीघर, ३० लाख किलोवाट की क्षमता वाले २०० क्षेत्रीय ताप-बिजलीघर और २६० अन्य प्रकार के बिजलीघर २० वर्षो मे बनाये जाने की योजना है। इसके अतिरिक्त अणु-बिजलीघर, खासकर उन क्षेत्रो मे जहा शक्ति के स्रोत बहुत कम है, बनाये जाने वाले है।

इन बीस वर्षों के दौरान समस्त सोवियत सघ के लिए एक एकीकृत विद्युत शक्ति प्रणाली की स्थापना होगी जिससे पूर्वी जिलो से देश के यूरोपीय हिस्से का

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ५१२।

विद्युत शक्ति दी जा सकेगी। इस विद्युत शक्ति प्रणाली को अन्य समाजवादी देश की विद्युत शक्ति प्रणालियों से सम्बद्ध किया जायेगा।

मशीन-निर्माण का विकास कम्युनिज्म के भौतिक एवं तकनीकी आधार की स्थापना के लिए अत्यन्त महत्व का है। स्वयचालन लाइनों और मशीनों, आटोमेटिक्स, टेलीमेकैनिक्स और इलेक्ट्रानिक विधियों तथा परिशुद्धि उपकरणों का विकास भी आवश्यक है।

बीस वर्षों के दौरान २,८०० नये इंजीनियरिंग और मेटल वर्किंग सयंत्र सोवियत संघ में बनेंगे और १,६०० पुराने सयंत्रों की मरम्मत होगी। परिणाम-स्वरूप मशीन-निर्माण और मेटल वर्किंग उद्योगों का उत्पादन १०-११ गुना बढ़ेगा। इसमे स्वयचालित और अर्द्ध-स्वयंचालित लाइनों में होने वाली ६० गुनी वृद्धि भी शामिल होगी।

उद्योग, कृषि, भवन-निर्माण, परिवहन, माल लादने और उतारने की प्रक्रियाओ तथा सार्वजनिक सेवाओ मे व्यापक यंत्रीकरण का प्रवेश होगा। उत्पादन के सभी चरणों और प्रक्रियाओ का यत्रीकरण होगा। बुनियादी और सहायक दोनों प्रकार के कामो मे हाथ से काम करना बन्द हो जायेगा।

व्यापक यत्रीकरण उद्योग में स्वयंचालन लायेगा।

समाजवाद के भौतिक एव तकनीकी आधार मे स्वयचालन के सिर्फ तत्व निहित होते हैं, किन्तु कम्युनिज्म के भौतिक एवं तकनीकी आधार के निर्माण के दौरान मशीनों की स्वयंचालित प्रणालियां प्रमुख हो जाती है। बीस वर्षों (१९६१-८०) के दौरान उद्योगो मे चौतरफा यत्रीकरण पर आधारित व्यापक स्वयचालन का प्रवेश होगा। उच्चतर तकनीकी एव आर्थिक कुशलता से सम्पन्न अधिकाधिक खाते एव कारखाने बनेंगे। साइबरनेटिक्स, इलेक्ट्रानिक सगणको एवं नियत्रण-विधियो का उद्योग, भवन-निर्माण और परिवहन, शोध, नियोजन, डिजाइन बनाने, लेखा, सांख्यिकी और प्रबन्ध मे व्यापक प्रयोग होगा।

स्वयचालन एवं व्यापक यत्रीकरण समाजवादी श्रम के कम्युनिस्ट श्रम के रूप मे विकसित होने के लिए भौतिक आधार हैं। स्वयचालन के परिणामस्वरूप श्रम का चरित्र आमूल रूप से बदल जाता है, मजदूरो की कुशलता और तकनीकी दक्षता का स्तर ऊचा उठता है और मानसिक एव शारीरिक श्रम के बीच की बुनियादी खाइयां दूर हो जाती हैं।

उत्पादन प्रक्रियाओ का व्यापक यंत्रीकरण और स्वयचालन राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे वैज्ञानिक एव तकनीकी प्रगति को प्रोत्साहित करता है।

कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार के निर्माण के लिए अर्थव्यवस्था का रसायनीकरण आवश्यक है।

अभी ही रसायन उद्योग अर्थव्यवस्था की मुख्य शाखाओं में से एक बन गया है। इसके बने पदार्थों का इस्तेमाल उत्पादन की सभी शाखाओं में और घरेलू आवश्यकताओं के लिए हो रहा है। संश्लिष्ट पदार्थों का उत्पादन रसायन उद्योग की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।

मशीन-निर्माण की मशीनों और साधनों के निर्माण में संश्लिष्ट पदार्थों का सर्वाधिक प्रयोग हो रहा है। सार्वजनिक दुकानों के कारण सामानों और श्रम-शक्ति की बड़ी बचत हो रही है।

इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम ने रसायन उद्योग के सर्वांगीण विकास और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओं में आधुनिक रसायनशास्त्र की उपलब्धियों के पूर्ण विकास पर जोर दिया है, क्योंकि इससे सार्वजनिक सम्पत्ति बढ़ती है तथा उत्पादन के नये उन्नत और सस्ते साधनों और उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन बढ़ता है। धातु, लकड़ी और अन्य इमारती सामानों के बदले सस्ते, व्यावहारिक और हल्के संश्लिष्ट पदार्थों का इस्तेमाल होगा।

२० वर्षों में रसायन उद्योग का कुल उत्पादन १७ गुना बढ़ जायेगा और मानवनिर्मित और संश्लिष्ट रेशों का उत्पादन १५ गुना तथा प्लास्टिक एवं रेक्सीन का उत्पादन ६० गुना बढ़ जायेगा।

[illegible]

गोश्त, दूध एवं अन्य चीजों का उत्पादन हो बढ सकता है।

रसायनीकरण के आर्थिक प्रभाव के फलस्वरूप अन्य चीजों के अतिरिक्त उद्योग और कृषि का आम वैज्ञानिक एवं टेक्नालाजिकल स्तर उन्नत होता है और श्रम की कार्यकुशलता ऊंची होती है। इस तरह के परिणाम आंकड़ों के रूप में अभिव्यक्त नहीं किये जा सकते, लेकिन इससे वे कम मूर्त और प्रभावपूर्ण नहीं हो जाते।

धातुओं और ईंधन का अत्यधिक उत्पादन आधुनिक उद्योग की रीढ़ है और कम्युनिज्म के भौतिक एवं तकनीकी आधार के निर्माण में उसका बड़ा महत्व है। हल्की, अलौह और विरल धातुओं का उत्पादन काफी तेज होगा और

विद्युत शक्ति दी जा सकेगी। इस विद्युत शक्ति प्रणाली को अन्य समाजवादी देशो की विद्युत शक्ति प्रणालियो से सम्बद्ध किया जायेगा।

मशीन-निर्माण का विकास कम्युनिज्म के भौतिक एव तकनीकी आधार की स्थापना के लिए अत्यन्त महत्व का है। स्वयचालन लाइनो और मशीनों, आटोमेटिक्स, टेलीमेकेनिक्स और इलेक्ट्रानिक विधियों तथा परिशुद्धि उपकरणों का विकास भी आवश्यक है।

बीस वर्षों के दौरान २,८०० नये इजीनियरिंग और मेटल वर्किंग सयत्र सोवियत सघ मे बनेंगे और १,६०० पुराने संयत्रों की मरम्मत होगी। परिणामस्वरूप मशीन-निर्माण और मेटल वर्किंग उद्योगो का उत्पादन १०-११ गुना बढ़ेगा। इसमे स्वयचालित और अर्द्ध-स्वयंचालित लाइनो मे होने वाली ६० गुनी वृद्धि भी शामिल होगी।

उद्योग, कृषि, भवन-निर्माण, परिवहन, माल लादने और उतारने की प्रक्रियाओ तथा सार्वजनिक सेवाओ मे व्यापक यंत्रीकरण का प्रवेश होगा। उत्पादन के सभी चरणों और प्रक्रियाओ का यत्रीकरण होगा। बुनियादी और सहायक दोनो प्रकार के कामो मे हाथ से काम करना बन्द हो जायेगा।

व्यापक यत्रीकरण उद्योग में स्वयचालन लायेगा।

समाजवाद के भौतिक एव तकनीकी आधार मे स्वयचालन के सिर्फ तत्व निहित होते हैं, किन्तु कम्युनिज्म के भौतिक एवं तकनीकी आधार के निर्माण के दौरान मशीनो की स्वयंचालित प्रणालिया प्रमुख हो जाती हैं। बीस वर्षों (१९६१-८०) के दौरान उद्योगो मे चौतरफा यत्रीकरण पर आधारित व्यापक स्वयचालन का प्रवेश होगा। उच्चतर तकनीकी एवं आर्थिक कुशलता से सम्पन्न अधिकाधिक खाते एव कारखाने बनेंगे। साइबरनेटिक्स, इलेक्ट्रानिक सगणको एव नियत्रण-विधियो का उद्योग, भवन-निर्माण और परिवहन, शोध, नियोजन, डिजाइन बनाने, लेखा, सांख्यिकी और प्रबन्ध मे व्यापक प्रयोग होगा।

स्वयचालन एव व्यापक यत्रीकरण समाजवादी श्रम के कम्युनिस्ट श्रम के रूप मे विकसित होने के लिए भौतिक आधार है। स्वयचालन के परिणामस्वरूप श्रम का चरित्र आमूल रूप से बदल जाता है, मजदूरो की कुशलता और तकनीकी दक्षता का स्तर ऊचा उठता है और मानसिक एवं शारीरिक श्रम के बीच की बुनियादी खाइया दूर हो जाती हैं।

उत्पादन प्रक्रियाओ का व्यापक यत्रीकरण और स्वयंचालन व्यवस्था मे वैज्ञानिक एव तकनीकी प्रगति को प्रो[illegible]हित

कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी व्यवस्था का रसायनीकरण आवश्यक है।

[illegible]

[illegible]

इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम ने रसायन उद्योग के त्वरित विकास और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओं में आधुनिक रसायनशास्त्र की उपलब्धियों के पूर्ण विनियोग पर जोर दिया है, क्योंकि इससे सामाजिक सम्पत्ति बढ़ती है तथा उपभोग के नये उन्नत और सस्ते साधनों और श्रमोपकरणों का उत्पादन बढ़ता है। धातु, लकड़ी और अन्य इमारती सामानों के बदले सस्ते, व्यावहारिक और हल्के संश्लिष्ट पदार्थों का इस्तेमाल होगा।

२० वर्षों में रसायन उद्योग का कुल उत्पादन १७ गुना बढ़ जायेगा और मानवनिर्मित और संश्लिष्ट रेशों का उत्पादन १५ गुना तथा प्लास्टिक तथा रेजीन का उत्पादन ६० गुना बढ़ जायेगा।

रासायनिक एवं संश्लिष्ट पदार्थों के प्रयोग से भौतिक उत्पादन के मुख्य क्षेत्रों में आमूल गुणात्मक परिवर्तन के लिए मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप उत्पादन में तेजी से वृद्धि होती है, उत्पादन की किस्म उन्नत होती है और पूँजीगत व्यय में बचत होती है तथा उत्पादन लागत में कमी आती है।

[illegible]

मांस, दूध एव अन्य चीजों का उत्पादन ही बढ़ सकता है।

रसायनीकरण के आर्थिक प्रभाव के फलस्वरूप अन्य चीजों के अतिरिक्त उद्योग और कृषि का आम वैज्ञानिक एव टेक्नालाजिकल स्तर उन्नत होता है और श्रम की कार्यकुशलता ऊंची होती है। इस तरह के परिणाम आंकड़ों के रूप में अभिव्यक्त नहीं किये जा सकते, लेकिन इससे वे कम मूर्त और प्रभावपूर्ण नहीं हो जाते।

धातुओं और ईंधन का अत्यधिक उत्पादन आधुनिक उद्योग की रीढ़ है और कम्युनिज्म के भौतिक एव तकनीकी आधार के निर्माण में उसका बड़ा महत्व है। हलकी, अलौह और विरल धातुओं का उत्पादन काफी तेज होगा और

अलुमिनियम का उत्पादन भी काफी बढ़ेगा। आने वाले वर्षों में तैल एवं गैस
र्पण के विकास को प्राथमिकता दी जायेगी। इनका प्रयोग कच्चे माल के
रसायन उद्योग मे होगा। कोयला, गैस और तैल को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था क
जरूरतो को पूरा करना चाहिए। बीस वर्षों मे सोवियत सघ का कोयला उ
२ ३-२.४ गुना, तैल उत्पादन ४.७-४.८ गुना हो जायेगा।

उत्पादन, विशेषीकरण और सहयोग की व्यवस्था मे सुधार और
उद्यमो मे समुचित सामजस्य का कम्युनिज्म के भौतिक एवं तकनीकी आध
निर्माण में काफी महत्व है।

कम्युनिज्म के भौतिक एवं तकनीकी आधार के लिए कृषि के क्षे
विज्ञान एव टेक्नालाजी की उपलब्धियो तथा प्रगतिशील अनुभवों का बड़े पै
पर इस्तेमाल आवश्यक है। कम्युनिज्म के निर्माण के लिए सुदृढ़ उद्योग के
ही उन्नत, बहुमुखी और अत्यन्त उत्पादक कृषि की आवश्यकता है।

कृषि की उत्पादक शक्तियो के तेज विकास के परिणामस्वरूप दो बुनिय
कार्य होगे। वे कार्य एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप मे सम्बद्ध होगे : क) जनता के लि
उच्च कोटि के खाद्य पदार्थों एव उद्योगो के लिए कच्चे मालो का विपुल मात्र
उत्पादन, तथा ख) देश मे सामाजिक सम्बधो का क्रमिक रूप से कम्युनि
सम्बधो मे रूपान्तरण और शहर एव गाव के बीच बुनियादी भेद का खात्मा।

रासायनिक प्रक्रियाओं और वस्तुओ का कृषि के क्षेत्र मे इस्तेमाल खे
और उसके सघन तरीको के विकास की दृष्टि से एक क्रान्तिकारी कदम है। रस
यनीकरण के फलस्वरूप फसलो के अधिक उत्पादन, मवेशियो की उच्च उत्पादक
और श्रम की ऊची कार्यकुशलता के लिए आधार तैयार हो जाता है। सघन खे
और सिंचित कृषि मे परस्पर बड़ा घनिष्ठ सम्बध है। बडे पैमाने पर सिचाई व्यवस्
के फलस्वरूप अनाज का उत्पादन बढ़ेगा जिससे सुरक्षा-निधि बढ़ेगी तथा देश
अनाज की मात्रा में वृद्धि होगी।

व्यापक यत्रीकरण और विद्युतीकरण के बिना सघन कृषि का विका
असम्भव है। यत्रीकरण और विद्युतीकरण के व्यापक होने के परिणामस्वरूप फसलो
की खेती और पशुपालन का तेजी से विकास होगा और श्रम की कार्यकुशलता को
ऊचे स्तर पर पहुचाने मे मदद मिलेगी।

कृषि क्षेत्र मे उत्पादक शक्तियो के जोर-शोर से विकास के फलस्वरूप
तकनीकी साधनो और सगठन की दृष्टि से कृषि उद्योग के स्तर पर पहुच जायेगी।
प्रकृति पर कृषि की निर्भरता कम होगी और अन्त मे न्यूनतम हो जायेगी।

कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार के निर्माण मे विज्ञान की
अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होनी है। वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के द्वारा

प्राकृतिक सम्पत्ति और शक्तियो का पूर्ण प्रयोग सार्वजनिक हित मे नये प्रकार की शक्ति के अन्वेषण और नये पदार्थों के निर्माण तथा जलवायु को प्रभावित करने और बाह्य अन्तरिक्ष की गवेषणा के तरीको के अन्वेषण के लिए होगा। समाज की उत्पादक शक्तियों के अपार विकास में विज्ञान अधिकाधिक निर्णायक भूमिका अदा कर रहा है। मार्क्स की भविष्यवाणी के अनुकूल ही विज्ञान समाज की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उत्पादक शक्ति हो गया है।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे बताया गया है "कम्युनिस्ट समाज के निर्माण मे विज्ञान की भूमिका बढ़ाने के लिए पार्टी हर उपाय करेगी; उत्पादक शक्तियो के विकास की नयी सम्भावनाओ को ढूढने और नवीनतम वैज्ञानिक और तकनीकी उपलब्धियो के तेज और व्यापक प्रयोग के लिए अनुसधान और शोध को प्रोत्साहन देगी; उद्यमो मे शोध सहित सभी प्रयोगात्मक कार्यों को निश्चित रूप से आगे बढाने और वैज्ञानिक एव तकनीकी सूचना सम्बधी कार्यों को कुशल रूप मे सगठित करने तथा प्रगतिशील सोवियत और विदेशी तरीको के अध्ययन और प्रसारण की पूरी व्यवस्था के विकास के लिए प्रोत्साहन देगी।"[१]

वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति का भविष्य मुख्य रूप से प्राकृतिक विज्ञान की मुख्य शाखाओ की उपलब्धियो पर निर्भर है। गणित, भौतिकी, रसायनशास्त्र और प्राणिशास्त्र के क्षेत्र मे ज्ञान का ऊचा स्तर तकनीकी, चिकित्सा, कृषि एव अन्य विज्ञानो के क्षेत्र मे प्रगति के लिए आवश्यक है।

विज्ञान का विकास और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे वैज्ञानिक उपलब्धियो का प्रयोग कम्युनिस्ट पार्टी और समाजवादी राज्य की जिम्मेदारी है।

श्रम-उत्पादकता मे निरन्तर तेज वृद्धि कम्युनिस्ट समाज के निर्माण के लिए काफी महत्त्वपूर्ण है। लेनिन ने लिखा है "कम्युनिज्म उन्नत तकनीकी का प्रयोग करने वाले सामाजिक रूप से जागरूक, सगठित, स्वेच्छा से काम करने वाले मजदूरो की उच्चतर श्रम-उत्पादकता (पूजीवाद की तुलना मे) का ही दूसरा नाम है।"[२]

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओ मे विज्ञान और टेक्नालाजी की प्रगति, मजदूरो का उच्च सास्कृतिक स्तर और तकनीकी दक्षता तथा उत्पादन एव श्रम के उन्नत सगठन के परिणामस्वरूप श्रम-उत्पादकता मे अपार वृद्धि होगी। २० वर्षो मे औद्योगिक क्षेत्र मे श्रम-उत्पादकता ४-४.२ गुनी और कृषि के क्षेत्र मे ५-६ गुनी बढ़ेगी। तब श्रम उत्पादकता की दृष्टि से सोवियत सघ का विश्व मे पहला स्थान हो जायेगा।

---

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ५६०-६१।
२. लेनिन, "सकलित रचनाएँ", खड ३, पृष्ठ २२३।

कम्युनिज्म के भौतिक एवं तकनीकी आधार के निर्माण के लिए अपा
साधनों की आवश्यकता है। १९६१-८० के दौरान राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में पूं
विनियोग करीब २,००० अरब रूबल होगा। यह विनियोग-राशि सोवियत राज
सत्ता के जीवन काल में हुए कुल पूंजी विनियोग के सात गुने से भी अधिक होगी।

कम्युनिज्म के भौतिक एवं तकनीकी आधार के निर्माण के परिणाम

कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार के निर्माण के फलस्वरूप निम्नलिखित कार्य होंगे :

पहला—अमूर्त क्षमता वाली उत्पादक शक्तियां पैदा होंगी और सोवियत संघ प्रति व्यक्ति उत्पादन की दृष्टि से विश्व में पहला स्थान प्राप्त करेगा।

दूसरा—श्रम उत्पादकता अधिक होगी, सोवियत जनता अत्यन्त आधुनिक तकनीकों से सम्पन्न होगी और श्रम आनन्द, प्रोत्साहन एवं सृजनात्मक शक्ति के स्रोत के रूप में बदल जायेगा।

तीसरा—भौतिक सम्पत्ति के उत्पादन की वृद्धि के फलस्वरूप सोवियत जनता की सभी जरूरतों की पूर्ति होगी, उसको उच्चतम जीवन-यापन का स्तर प्राप्त होगा और आवश्यकता के अनुसार वितरण के सिद्धान्त को अपनाने के लिए परिस्थितियां उत्पन्न होंगी।

चौथा—समाजवादी उत्पादन-सम्बंधों का स्थान धीरे-धीरे कम्युनिस्ट उत्पादन-सम्बंध ले लेंगे, वर्गविहीन समाज का निर्माण होगा और शहर एवं गांव तथा मानसिक एवं शारीरिक श्रम के बीच की बुनियादी खाई दूर होगी।

पांचवां—समाजवाद आर्थिक प्रतियोगिता में पूंजीवाद को परास्त करेगा और देश की प्रतिरक्षा-शक्ति को इतना मजबूत बनायेगा कि सोवियत संघ या सम्पूर्ण समाजवादी खेमे के ऊपर हाथ उठाने वाले प्रत्येक दुश्मन का डटकर जवाब दिया जायेगा।

क्या इन दो दशकों में कम्युनिज्म के भौतिक एवं तकनीकी आधार के निर्माण के लिए आवश्यक उपादान उपलब्ध हैं? हां, सोवियत संघ को हर आवश्यक उपादान उपलब्ध हैं। सोवियत संघ में विश्व की सबसे विकसित समाज व्यवस्था है, राज्य की बागडोर मेहनतकश जनता के हाथों में है। मजदूरों, किसानों और बुद्धिजीवियों के बीच अटूट मैत्री है और सोवियत संघ की विभिन्न कौमें मैत्री-सूत्र में बंधी हैं। मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त और समाज-विकास के नियमों के ज्ञान से सम्पन्न कम्युनिस्ट पार्टी सोवियत समाज की पथ-प्रदर्शक शक्ति है।

सोवियत संघ के समान विशाल देश दुनिया में कोई नहीं है। इसका क्षेत्रफल अमरीका के क्षेत्रफल का तिगुना और सभी पश्चिमी यूरोपीय देशों के कुल क्षेत्रफल का करीब चार गुना है। जनसंख्या की दृष्टि से सोवियत संघ का विश्व

शोधकर्ता हो गये। १९६३ में करीब ६२ लाख लोग उच्चतर और विशेषीकृत माध्यमिक स्कूलो मे पढ रहे थे। उनमे से करीब ३३ लाख उच्चतर शैक्षणिक सस्थानो मे थे।

स्कूलों, तकनीकी स्कूलो और उच्चतर शैक्षणिक संस्थानो के अतिरिक्त तकनीकी एव व्यावसायिक प्रशिक्षण के विस्तार के लिए स्कूल, कक्षा, पाठ्यक्रम, परिचर्या गोष्ठी, डाक द्वारा पढ़ाई और सायकालीन पाठ्यक्रमो का काफी विस्तार होगा। आज सोवियत संघ में हर तीसरा व्यक्ति किसी न किसी कक्षा में पढ़ रहा है। सामूहिक शिक्षा सचमुच व्यापक हो गयी है। शिक्षा का स्तर ऊपर उठने के साथ समस्त मेहनतकश जनता का सामान्य सास्कृतिक स्तर भी ऊचा उठता है।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी जनता के सास्कृतिक स्तर की उन्नति को कम्युनिस्ट निर्माण की सफलता की गारटी मानती है।

आगामी बीस वर्षों मे सोवियत संघ की विशाल जनसंख्या को पूर्ण माध्यमिक या उच्चतर शिक्षा प्राप्त होगी। १९८० तक उच्चतर शैक्षणिक सस्थानो मे पढने वाले लोगों की सख्या ८० लाख (१९६० में पढ़ने वालो की सख्या की तिगुनी) हो जायेगी। मेहनतकश जनता की व्यावसायिक दक्षता बढ़ाने के लिए विभिन्न विधियो का बड़े पैमाने पर प्रयोग होगा।

उत्पादन के व्यापक मशीनीकरण और स्वयचालन के परिणामस्वरूप मशीनों की स्वयचालित प्रणाली के नियत्रण, देखरेख, समायोजन और उन्नति का ही काम मुख्य रूप से मजदूरो के लिए रह जायेगा। इसके लिए समन्वित ढग से विकसित और अत्यन्त दक्ष लोगो की जरूरत होगी जो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओ मे काम कर सकेंगे।

कम्युनिज्म के अन्तर्गत तकनीक न सिर्फ मनुष्य की दक्षता में ही परिवर्तन लायेगी, बल्कि उसके बौद्धिक दृष्टिकोण को भी बदल देगी। क्षमताओ और प्रतिभाओ के सर्वतोमुखी विकास और प्रत्येक को एक उन्नत बौद्धिक जीवन प्रदान करने के लिए आवश्यक भौतिक परिस्थितियो का निर्माण होगा। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे बताया गया है: "कम्युनिज्म की ओर सक्रमण का मतलब उस प्रशिक्षण से है जो लोगों को कम्युनिस्ट-मना और अत्यन्त सस्कृत बना देना है। लोग शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकार के श्रम के लिए तथा विभिन्न सामाजिक, सरकारी, वैज्ञानिक और सास्कृतिक क्षेत्रो मे सक्रिय भूमिका अदा करने के लिए तैयार होते हैं।"[१]

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ५९६।

अध्याय २०

समाजवादी उत्पादन-सम्बंधों का कम्युनिस्ट उत्पादन-सम्बंधों में विकास

समाजवाद से कम्युनिज्म की ओर संक्रमण के दौरान उत्पादन के सम्बंध (जो उत्पादक शक्तियों से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं और उनसे प्रभावित होते हैं) उत्पादक शक्तियों के विकास के साथ विकसित और उन्नत होते हैं। उत्पादक शक्तियों के विकास पर आधारित समाजवादी उत्पादन-सम्बंध कम्युनिस्ट उत्पादन-सम्बंधों के रूप में क्रमशः विकसित होते हैं।

१. समाजवादी स्वामित्व से कम्युनिस्ट स्वामित्व की ओर

समाजवाद के अन्तर्गत उत्पादन के सम्बंध समाजवादी स्वामित्व पर आधारित होते हैं। समाजवादी स्वामित्व दो प्रकार का होता है राजकीय स्वामित्व (सम्पूर्ण जनता का स्वामित्व) और सहकारी स्वामित्व।

कम्युनिज्म की ओर संक्रमण के साथ-साथ दोनों प्रकार के समाजवादी स्वामित्व—राजकीय और सहकारी—एक-दूसरे के नजदीक आते-जाते हैं और अन्ततोगत्वा मिलकर एक कम्युनिस्ट स्वामित्व (सम्पूर्ण जनता का स्वामित्व) को जन्म देते हैं।

कम्युनिस्ट स्वामित्व का उदय राजकीय और सहकारी एवं सामूहिक फार्म स्वामित्व के व्यापक विकास एवं उन्नति के कारण होता है।

कम्युनिज्म की ओर संक्रमण के दौरान राजकीय सम्पत्ति

समाजवादी सम्पत्ति के कम्युनिस्ट सम्पत्ति के रूप में विकसित होने के साथ ही राजकीय सम्पत्ति अधिकाधिक परिपक्व होती है और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में उसकी भूमिका और भी महत्वपूर्ण होती जाती है।

नये उद्यमों के निर्माण और औद्योगिक, कृषि एवं परिवहन सम्बंधी वर्त
सगठनों के विस्तार के फलस्वरूप सम्पूर्ण राजकीय सम्पत्ति आकार की दृषि
बढ़ती जाती है। कम्युनिज्म की ओर प्रगति के फलस्वरूप उत्पादन का पैम
बढ़ेगा और साथ ही उसकी कुशलता भी बढ़ेगी।

राजकीय सम्पत्ति में गुणात्मक परिवर्तन भी होता है। ये गुणात्मक परि
वर्तन समाजीकरण के स्तर में निरन्तर वृद्धि से सम्बधित हैं। कम्युनिज्म के विका
के साथ-साथ उत्पादन का संकेन्द्रण भी होता जायेगा। बड़े, पूर्णरूपेण स्वयचालि
उद्यम बनेंगे। एक एकीकृत विद्युत ग्रिड स्थापित होगा। देश के विभिन्न क्षेत्रों
बीच आर्थिक सम्बध विस्तृत और मजबूत होंगे। श्रम का सामाजिक विभाजन
विशेषीकरण, सहयोग और उद्यमों का सयोजन अभूतपूर्व रूप से विकसित होगा।

राजकीय सम्पत्ति के बढ़ने के साथ उद्यम उन्नत होंगे और कम्युनिस्ट
समाज के उद्यमों के रूप में परिवर्तित होंगे। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी
के कार्यक्रम के अनुसार इस प्रक्रिया के विशिष्ट सूचक होंगे : नयी मशीनें, उत्पादन
प्रक्रियाओं और प्रबन्ध एव नियन्त्रण में स्वयचालन के अधिकाधिक प्रयोग के फल-
स्वरूप उत्पादन, सगठन और कुशलता के उच्च स्तर; श्रमिकों के सांस्कृतिक एव
तकनीकी स्तर में उन्नति, शारीरिक और मानसिक श्रम में अधिकाधिक ऐक्य
और प्रत्येक औद्योगिक उद्यम में इंजीनियरों और तकनीकी विशेषज्ञों की बढ़ती
हुई सख्या; शोध का विस्तार और उद्यमों एव शोध सस्थानों में घनिष्ठ सम्बध;
एक-दूसरे से बेहतर काम करने का बढ़ता हुआ आन्दोलन; विज्ञान की उपलब्धियों,
श्रम-सगठन के श्रेष्ठतम रूप और श्रम-उत्पादकता बढाने के श्रेष्ठतम तरीकों का
प्रयोग, उद्यमों के प्रबन्ध में मजदूर-समूहों का हिस्सा और श्रम के कम्युनिस्ट रूपों
का प्रसार।

विज्ञान, सस्कृति, सार्वजनिक स्वास्थ्य और सामुदायिक सेवाओ के क्षेत्र में
राजकीय सम्पत्ति प्रमुख हो जायेगी। कम्युनिस्ट निर्माण की प्रक्रिया में राजकीय
स्वामित्व का प्रभाव क्षेत्र दिनोदिन विस्तृत होता जायेगा। इसके अन्तर्गत श्रम के
संगठन के सामाजिक रूप और जीवन-यापन की स्थितिया आती जायेंगी।

कम्युनिस्ट सक्रमण काल में सामूहिक फार्म की सम्पत्ति और सहकारी सम्पत्ति

कम्युनिस्ट सम्पत्ति की ओर सक्रमण का अर्थ है सामूहिक फार्म की
सम्पत्ति और सहकारी सम्पत्ति का पूर्ण विकास और
उनकी उन्नति। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के
कार्यक्रम में बताया गया है : "कोलखोज व्यवस्था की
आर्थिक प्रगति क्रमिक पुनर्मेल और अन्ततोगत्वा कोल-
खोज सम्पत्ति एव सम्पूर्ण जनता की सम्पत्ति के

फार्मों का कोई महत्व नही रह जायेगा। वे कोई आर्थिक लाभ नही प्रदान करेंगे और इस तरह वे लुप्त हो जायेंगे।

उत्पादक शक्तियो के विकास के साथ सामूहिक फार्मों के पारस्परिक सम्बंध भी बढेंगे और उत्पादन का समाजीकरण सामूहिक फार्म-विशेष की सीमाओं को पार कर जायेगा। कई सामूहिक फार्मों के साधनों का एकीकरण होगा और सयुक्त उद्यम, सांस्कृतिक और कल्याणकारी सस्थान स्थापित होंगे। फार्म उत्पादन की प्रारम्भिक प्रोसेसिंग तथा भडार बनाने और उनको एक जगह से दूसरी जगह ले जाने, इमारती सामान बनाने के विभिन्न कारखानो के निर्माण, इत्यादि के लिए राजकीय कोलखोज बिजलीघर और उद्यम बनेंगे।

जब इस प्रकार की सम्पत्ति पर बहुत-से सामूहिक फार्मों का सयुक्त अधिकार हो जाता है तो यह सम्पत्ति बहुत कुछ सार्वजनिक सम्पत्ति के समान हो जाती है।

कृषि के विद्युतीकरण और उत्पादन के यत्रीकरण तथा स्वयंचालन के विकास के साथ सामूहिक फार्मों के उत्पादन के साधनो और उत्पादन के सार्वजनिक साधनों का एकीकरण होता जा रहा है। उदाहरण के लिए, अभी ही मिश्रित राजकीय एव कोलखोज उद्यम—बिजलीघर, सिंचाई व्यवस्था, इत्यादि हैं। इनका जन्म राजकीय और सामूहिक फार्मो के साधनों के एकीकरण से हुआ है।

सार्वजनिक परिसम्पत्ति मे वृद्धि होने के साथ सार्वजनिक उद्यमो और सास्कृतिक एवं कल्याणकारी सस्थाओं (बोर्डिंग स्कूल, क्लब, अस्पताल, अवकाश-गृह, इत्यादि) के निर्माण मे सामूहिक फार्मों की भूमिका भी बढ़ती जा रही है।

सामूहिक फार्म ज्यों-ज्यो विकसित होंगे, उनके उत्पादन-सम्बध परस्पर और स्थानीय औद्योगिक उद्यमों के साथ मजबूत होते जायेंगे। विभिन्न उद्यमो को सयुक्त रूप से सगठित करने की व्यवस्था का विस्तार होगा। तब जहा भी आर्थिक दृष्टि से आवश्यक समझा जायेगा, कृषि-औद्योगिक सगठन बनेंगे। इनके द्वारा कृषि और उसके उत्पादन की औद्योगिक प्रोसेसिंग साथ-साथ होगी। परिणामस्वरूप कृषि और औद्योगिक उद्यमो मे उचित सहयोग और विशेषीकरण होगा और पूरे सालभर श्रम-शक्ति एव उत्पादन के साधनो का पूर्ण और समरूप प्रयोग होगा। इन सबके फलस्वरूप सामूहिक फार्म की सम्पत्ति और सहकारी सम्पत्ति का चरित्र सार्वजनिक सम्पत्ति के समान हो जायेगा।

जब सामूहिक फार्म की सम्पत्ति और सहकारी सम्पत्ति का समाजीकरण सार्वजनिक सम्पत्ति के स्तर पर पहुंच जायेगा, तब सामूहिक फार्म और सार्वजनिक कृषि उद्यम एक स्तर पर आ जायेंगे। वे अत्यन्त विकसित यत्रीकृत फार्मों के रूप मे परिवर्तित हो जायेंगे। उच्च श्रम-उत्पादकता के फलस्वरूप सामूहिक फार्म

क खेती से होगी। सबको भोजनालय, बेकरी, लौन्ड्री, बाल-विहार, क्लब, पुस्तकालय और क्रीड़ा की सुविधाएं मिलेंगी। सामूहिक फार्म ो राष्ट्रीयकृत उद्यमों के मजदूरों की भुगतान दर के अनुसार ही पारि- जायेगा। सामूहिक फार्म के किसानों को सब तरह की सामाजिक न, छुट्टी, इत्यादि) प्राप्त होगी।

ुनिज्म की ओर सक्रमण के साथ मेहनतकश जनता की निजी सम्पत्ति ी बदलेगा। कम्युनिस्ट समाज मे प्रत्येक व्यक्ति से उसकी क्षमता के र लिया जायेगा और उसे उसकी आवश्यकता के अनुसार हिस्सा ष्ट है कि तब व्यक्तिगत बचत, निजी मकान, निजी फार्म और इस य चीजों का महत्व खत्म हो जायेगा और वे लुप्त हो जायेंगी। व्यक्तिगत सम्पत्ति के अन्तर्गत सिर्फ व्यक्तिगत उपयोग की वस्तुएं

न्त विकसित उत्पादक शक्तियों के आधार पर कम्युनिज्म की ओर ौरान समाज मे सामाजिक-आर्थिक विभेद भी समाप्त हो जायेंगे।

२. सामाजिक-आर्थिक विभेदों का निराकरण

जवाद शहर और देहात के परस्पर-विरोध को खत्म कर देता है।

त्र और व के बीच समाप्ति — बन्धुत्वपूर्ण सहयोग और शोषणमुक्त श्रमिकों की पारस्परिक सहायता के आधार पर शहर और देहात के बीच सम्बध कायम होते हैं। अब शहर और देहात के हित एक-से हैं और एक ही लक्ष्य—कम्युनिज्म के निर्माण से सम्बद्ध हैं।

जवाद के अन्तर्गत भी शहर और गाव के बीच विभेद रहता है। इस ेद का कारण यह है कि शहर मे उत्पादन के साधनों पर राजकीय

और कोलखोज एवं सहकारी सम्पत्ति के बीच की खाई खत्म होती है उन्ही तर
से शहर और गाव का पारस्परिक विभेद भी खत्म होता है।

उत्पादक शक्तियो के निरन्तर विकास और कृषि में मशीनों के अधि
धिक प्रयोग द्वारा ही शहर और गांव का आपसी विभेद खत्म होगा।

कृषि को तकनीकी रूप से पुनर्सज्जित करने के कारण ग्रामीण जनता
कार्य-कुशलता और तकनीकी स्तर मे वृद्धि होगी। आधुनिक कृषि मशीनों का प्र
करने वाले सामूहिक फार्म के किसानो का श्रम राजकीय औद्योगिक उद्यमों मे
मजदूरों के श्रम के समान हो जायेगा। कम्युनिज्म के अन्तर्गत कृषि-श्रम औद्योगि
श्रम का ही एक रूप होगा।

कम्युनिज्म की ओर क्रमिक सक्रमण के दौरान ग्रामीण क्षेत्र मे और
सास्कृतिक विकास होगा और जीवन-यापन का स्तर ऊचा उठेगा। कम्युनि
रूपान्तरणो के फलस्वरूप शहरी क्षेत्र की भी रूपरेखा बदलेगी।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे बताया गया है : "शहर
और ग्रामीण क्षेत्र के पारस्परिक सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक विभेदों ए
जीवन-यापन के स्तर की विषमताओ का निराकरण कम्युनिस्ट निर्माण की एक
महान उपलब्धि होगा।"[१]

समाजवाद शारीरिक और मानसिक श्रम के परस्पर-विलोम को समाप्त
कर देता है। समाजवादी समाज मे मानसिक और शारीरिक दोनो प्रकार के श्रम
करने वालो के हित समान होते है। वे एक प्रकार के
काम करते हैं तथा सम्पूर्ण जनता के हित के लिए काम
करते हैं। दोनो प्रकार के श्रमिको के बीच घनिष्ठ
बन्धुत्वपूर्ण सहयोग और पारस्परिक सहायता की भावना
समाजवाद की एक खास विशेषता है। मजदूर, किसान
और बुद्धिजीवी, सभी उत्पादन के निरन्तर विकास और
उन्नति में दिलचस्पी रखते हैं।

मानसिक और शारीरिक श्रम के पारस्परिक विभेद का अन्त

समाजवाद के अन्तर्गत भी मानसिक और शारीरिक श्रम के बीच बुनियादी
अन्तर होते है। सामान्यत मजदूर और किसान शारीरिक श्रम करते हैं तथा
बुद्धिजीवी मानसिक श्रम। बुद्धिजीवियों की अपेक्षा शारीरिक श्रम करने वाले
लोगो की शिक्षा और सस्कृति का स्तर नीचा होता है।

कम्युनिज्म की ओर क्रमिक सक्रमण के दौरान मानसिक और शारीरिक
श्रम का पारस्परिक बुनियादी अन्तर समाप्त हो जायेगा। यह कार्य यत्रीकरण
और स्वयचालन के द्वारा आधुनिक उत्पादन के विकास के आधार पर होगा।

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ५३२।

शक्ति कार्य मशीनों द्वारा होंगे। [illegible] का [illegible] और इंजीनियर एवं [illegible] तथा [illegible] के ज्ञान के बराबर हो जायगा।

मानसिक एवं शारीरिक श्रम के बीच बुनियादी विभेद खत्म हो जाने से प्रत्येक कार्य में दोनों प्रकार के श्रम का संयुक्त रूप से प्रयोग होगा। कम्युनिस्ट समाज में काम करने वाला प्रत्येक व्यक्ति, जैसाकि मार्क्स ने कहा था, अपनी योग्यताओं का बिना रुकावट विकास करता हुआ कार्य करेगा जिसमें मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार के श्रम का प्रयोग होगा।

कम्युनिस्ट समाज में मेहनतकश जनता का श्रम अत्यन्त यंत्रीकृत होगा। मजदूर कम्युनिज्म के मशीनों के नियंत्रण का कार्य उत्साहपूर्वक सम्पादित करेंगे। उनके काम में मानसिक श्रम का ही अधिक प्रयोग होगा। शारीरिक श्रम से हमारा मतलब उन्नततर मशीनों के कार्य के नियंत्रण और समंजन से होगा। कहने का सार यह है कि व्यापक यंत्रीकरण और स्वचालन के प्रयोग से शारीरिक श्रम इंजीनियरों और तकनीकी विशेषज्ञों के श्रम की ही एक किस्म के रूप में परिणत हो जायगा।

शारीरिक श्रम के निराकरण को सरल रूप में नहीं समझना चाहिए। किसी भी प्रकार का श्रम बिना शारीरिक प्रयास के नहीं किया जा सकता। किन्तु मानसिक श्रम प्रधान हो जायेगा और शारीरिक प्रयास के तत्व न्यूनतम हो जायेंगे। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में बताया गया है कम्युनिज्म की विजय के फलस्वरूप "...जनता की उत्पादक क्रिया में मानसिक एवं शारीरिक श्रम का संयोग होगा। बुद्धिजीवी एक भिन्न सामाजिक समुदाय के रूप में न रहेंगे। हाथ से काम करने वाले मजदूर सांस्कृतिक और टेक्नालाजिकल स्तर की दृष्टि से मानसिक श्रम करने वाले लोगों की बराबरी में आ जायेंगे।"[1]

वर्ग-विभेदों की समाप्ति

कम्युनिस्ट निर्माण के फलस्वरूप वर्गों के बीच विभाजक रेखाएं समाप्त हो जायेंगी और सामाजिक दृष्टि से समरूप समाज बनेगा।

शहर और गांव तथा मानसिक एवं शारीरिक श्रम के बीच विभेद मिट जाने पर समाजवादी समाज के दो मित्र वर्गों—मजदूर वर्ग और कृषक वर्ग—तथा उनकी सामाजिक कोटि—बुद्धिजीवी—के पारस्परिक अन्तर समाप्त हो जायेंगे।

कम्युनिज्म वर्गों एवं सामाजिक कोटियों के बीच समाज का विभाजन खत्म कर देगा। कम्युनिज्म के अन्तर्गत जनता के बीच न कोई वर्ग रहेंगे और न वर्ग-विभेद और सामाजिक विभेद हो।

१. "कम्युनिज्म का मार्ग," पृष्ठ ५१०।

कम्युनिज्म जनता में परस्पर समानता लायेगा। कम्युनिज्म के अन्तर्गत समाज में सभी लोगों की समान स्थिति रहेगी और उत्पादन के साधनों की दृष्टि से वे एक ही स्तर पर होंगे। सबको श्रम और वितरण की दृष्टि से समान सहूलियत होगी। वे सार्वजनिक कार्यों के प्रबन्ध में सक्रिय हिस्सा लेंगे। सार्वजनिक और व्यक्तिगत हितों में समानता होने के कारण व्यक्ति और समाज के बीच मैत्रीपूर्ण सहयोग के सम्बंध होंगे।

जातिगत सम्बंधों का विकास

वर्गों और वर्ग-विभेदों के उन्मूलन के बाद जातियों के बीच सम्बंध पनपेंगे। वर्ग-विभेदों की समाप्ति और कम्युनिस्ट सामाजिक सम्बंधों के विकास से जातियों के बीच सामाजिक समरूपता आती है और संस्कृति, नैतिक मूल्यों एवं जीवन-यापन के तौर-तरीकों में समान कम्युनिस्ट विशेषताओं के विकास को प्रोत्साहन मिलता है और पारस्परिक विश्वास और मित्रता बढ़ती है।

समाजवाद के अन्तर्गत जातियां विकसित होती हैं और एक-दूसरे के नजदीक आती हैं। सभी जनगण और राष्ट्र समान मूल हितों से बंधकर एक परिवार का रूप धारण कर लेते हैं तथा एकमात्र लक्ष्य—कम्युनिज्म की ओर बढ़ते हैं।

कम्युनिज्म के निर्माण के साथ जातियों के बीच भौतिक एवं आध्यात्मिक सम्पत्ति का विनिमय उत्तरोत्तर बढ़ता है और प्रत्येक सोवियत जनतंत्र का कम्युनिस्ट निर्माण के समान लक्ष्य की पूर्ति में योगदान बढ़ता जाता है।

कम्युनिज्म की विजय होते ही सोवियत संघ की विभिन्न जातियां परस्पर और भी नजदीक आयेंगी और उनकी आर्थिक एवं विचारधारा सम्बंधी समानता [illegible] अपेक्षा लम्बी प्रक्रिया है।"[१]

३. मनुष्य जीवन की प्रमुख आवश्यकता के रूप में श्रम का परिवर्तन

श्रम—मनुष्य जीवन की प्रमुख आवश्यकता

जब मजदूर तकनीकी साज-सामान से सम्पन्न हो, शारीरिक और मानसिक श्रम के बीच की बुनियादी खाई मिट जाये और लोगों का श्रम के प्रति कम्युनिस्ट दृष्टिकोण हो, तब प्रत्येक व्यक्ति का श्रम उसके जीवन की प्रमुख आव-

१. "कम्युनिज्म का मार्ग", पृष्ठ ५६०।

श्यकता बन जायेगा। श्रम एक स्वस्थ जीवन की क्रियाओं की स्वाभाविक अभिव्यक्ति होगा।

सम्पूर्ण समाज के कल्याण के लिए किया जाने वाला नि:शुल्क सृजनात्मक श्रम प्रत्येक व्यक्ति को सुख और आनन्द देगा।

कम्युनिज्म के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता और प्रतिभा के पूर्ण विकास के लिए उचित अवसर मिलेगा। प्रत्येक व्यक्ति निजी और सामाजिक हित को ध्यान में रखकर अपने काम का चुनाव करेगा।

एंगेल्स ने लिखा : कम्युनिज्म के अन्तर्गत "...उत्पादन का इस तरह का संगठन होना चाहिए जिसमें एक ओर तो कोई व्यक्ति उत्पादक श्रम का—जो मानव अस्तित्व की एक अनिवार्य शर्त है—अपना हिस्सा दूसरों के सिर पर नहीं डाल पायेगा और दूसरी ओर उत्पादक श्रम मनुष्यों को पराधीन बनाने का साधन नहीं रहेगा, बल्कि वह प्रत्येक व्यक्ति को अपनी समस्त शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं का चौमुखी विकास करने तथा पूर्ण प्रयोग करने का अवसर देगा तथा इस प्रकार मनुष्य की मुक्ति का साधन बन जायेगा और इसलिए उसमें उत्पादक श्रम मनुष्य को भार नहीं प्रतीत होगा, बल्कि उसके लिए आनन्द का स्रोत बन जायेगा।"[१]

कम्युनिस्ट समाज में हर काम करने वाला व्यक्ति इंजीनियर और मजदूर दोनों का कार्य करेगा। साथ ही समाज का हर स्वस्थ सदस्य राजनीतिक कार्यों में सक्रिय हिस्सा लेगा। मनुष्य की योग्यताएं और प्रतिभाएं पुष्पित होंगी और जीवन के सभी क्षेत्रों में उनका इस्तेमाल होगा। सामान्यतया श्रम का आदर-सम्मान किया जायेगा और यही मनुष्य की योग्यता का मापदण्ड होगा।

समाजवाद के अन्तर्गत हर मेहनतकश द्वारा अपने कर्तव्य का निर्वाह—अपनी पूरी योग्यता के साथ कार्य का सम्पादन—भौतिक और नैतिक प्रोत्साहनों द्वारा होता है। किन्तु कम्युनिस्ट समाज में सदस्यों को उनकी चेतना ही काम करने के लिए प्रोत्साहित करेगी। कम्युनिस्ट समाज में किसी भी व्यक्ति के लिए काम न करना असम्भव है। जनमत और उसकी अपनी चेतना उसे काम करने के लिए प्रोत्साहित करेगी। अपनी योग्यता के अनुसार काम करना आदत बन जायेगा, समाज के हर सदस्य के लिए मुख्य आवश्यकता बन जायेगा।

श्रम के जीवन की प्रमुख आवश्यकता बन जाने पर श्रम के प्रति एक नवीन कम्युनिस्ट दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। कम्युनिज्म के अन्तर्गत श्रम की चर्चा करते हुए लेनिन ने लिखा : "सकुचित और ठोस अर्थ की दृष्टि से कम्युनिस्ट श्रम का मतलब समाज की भलाई के लिए किया गया नि:शुल्क श्रम है। यह श्रम किसी

१ एंगेल्स—'ड्यूहरिंग मत खण्डन", पृष्ठ ४०८।

निश्चित पारिश्रमिक के रूप में और किन्ही खास वस्तुओं की प्राप्ति के लिए नही होता और न ही पुरस्कार और कानूनी तौर पर निश्चित दर में होता है। यह श्रम बिना किसी निश्चित दर के और बिना किसी पुरस्कार की आशा और प्रलोभन के स्वेच्छा से किया जाता है। यह श्रम सामूहिक कल्याण के लिए काम करने की आदत और चेतना-इच्छा का परिणाम होता है। यह श्रम स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक होता है।"[1]

श्रम के प्रति नवीन, कम्युनिस्ट दृष्टिकोण समाजवादी समाज में ही उत्पन्न होने लगता है। भावी कम्युनिस्ट समाज का मानव कम्युनिज्म के लिए संघर्ष के दौरान श्रम और सामाजिक क्रियाकलाप की प्रक्रिया में उत्पन्न होता है। कम्युनिज्म का निर्माण करोड़ों मजदूर अपने सृजनात्मक कार्य के द्वारा करते हैं। उनकी चेतना जितनी ही ऊची और उनकी क्रिया जितनी ही पूर्ण और व्यापक होगी, कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार का निर्माण उतनी ही तेजी से होगा। कम्युनिज्म और श्रम अभिन्न हैं। सिर्फ काम के द्वारा ही मानवजाति के उज्ज्वल भविष्य—कम्युनिज्म का निर्माण हो सकता है। इसलिए यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि लोगों को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाये कि वे श्रम को जीवन की प्रमुख आवश्यकता के रूप में देखें और उसकी इज्जत करें।

कम्युनिस्ट तरीके से काम करना और जीवन बिताना सीखना

पूरे पैमाने पर कम्युनिस्ट निर्माण-कार्य के दौरान श्रम के प्रति कम्युनिस्ट दृष्टिकोण का पनपना अत्यन्त आवश्यक है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में बताया गया है : "समाज के सभी सदस्यों में श्रम के प्रति कम्युनिस्ट दृष्टिकोण पैदा करना पार्टी का मुख्य शैक्षणिक कार्य है। समाज के हित के लिए श्रम करना सबका पुनीत कर्तव्य है।"[2]

सोवियत संघ में श्रम के प्रति कम्युनिस्ट दृष्टिकोण पैदा करने में ट्रेड यूनियनों, तरुण कम्युनिस्ट लीग और विद्यालयों की प्रमुख भूमिका होती है।

लेनिन के अनुसार ट्रेड यूनियनें कम्युनिज्म की पाठशाला हैं। वे औद्योगिक अनुशासन को मजबूत करती हैं और समाजवादी अनुकरण आन्दोलन को प्रोत्साहित करती हैं, श्रम के उन्नत तरीकों के प्रयोग को प्रोत्साहन देती है और मेहनतकश जनता के बीच व्यापक सांस्कृतिक कार्य करती हैं।

तरुणों में श्रम के प्रति कम्युनिस्ट दृष्टिकोण को बढ़ावा देने में तरुण कम्युनिस्ट लीग की बहुत बड़ी भूमिका होती है। तरुण कम्युनिस्ट लीग श्रम की कठिन

---

[1] "संकलित रचनाएं", खंड ३, पृष्ठ ३६८।
[2] "...म का मार्ग", पृष्ठ ५६५।

समाज की भलाई के लिए निष्ठापूर्वक श्रम—जो काम नहीं करेगा, व खायेगा भी नहीं,

सार्वजनिक स्वास्थ्य बनाये रखने और उसके विकास के लिए प्रत्येक के म मे चिन्ता;

सार्वजनिक कर्तव्य की भावना से ओतप्रोत होना, सार्वजनिक हित के लि घातक कार्यों को सहन नही करना;

सामूहिकता की भावना और बन्धुत्वपूर्ण पारस्परिक सहयोग—प्रत्येव व्यक्ति सबके लिए और सब प्रत्येक के लिए;

व्यक्तियो के बीच मानवीय सम्बन्ध और परस्पर प्रतिष्ठा का भाव—हर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के लिए मित्र, साथी और भाई है;

ईमानदारी और सच्चाई, नैतिक शुद्धता, विनम्रता और सामाजिक एवं निजी जीवन मे दिखावापन न होना;

अन्याय, परजीविता, बेईमानी, पदलोलुपता और धन बटोरने की भावना के प्रति समझौता न करने का दृष्टिकोण,

सोवियत सघ के सभी जनगण के बीच मित्रता और भाईचारे का भाव, जाति और रगभेद पर आधारित घृणा को सहन न करना;

कम्युनिज्म, शान्ति और राष्ट्रों की स्वतत्रता के शत्रुओं से समझौता न करना,

सभी देशो के मेहनतकशों और जनगण से बन्धुत्वपूर्ण ऐक्य-भाव।

श्रम के प्रति नया, कम्युनिस्ट दृष्टिकोण पनपने और श्रम का जीवन की मुख्य आवश्यकता बन जाने तथा साथ ही सामाजिक-आर्थिक विभेदों के खत्म हो जाने पर भौतिक समृद्धि के वितरण की व्यवस्था मे सुधार को प्रोत्साहन मिलेगा।

४. वितरण के कम्युनिस्ट सिद्धान्त की ओर संक्रमण

कम्युनिस्ट निर्माण के दौरान उत्पादन के समाजवादी सम्बधों के विकसित और उन्नत होने का मतलब है भौतिक और आध्यात्मिक सम्पत्ति के वितरण के रूपों का विकास।

कम्युनिज्म की ओर सक्रमण के फलस्वरूप वितरण के समाजवादी सिद्धान्त—"प्रत्येक से उसकी क्षमता के अनुसार काम लिया जाये और प्रत्येक को उसके काम के अनुसार हिस्सा दिया जाये"—के स्थान पर वितरण का कम्युनिस्ट सिद्धान्त—"प्रत्येक से उसकी क्षमता के अनुसार काम लिया जाये और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार हिस्सा दिया जाये"—आ जायेगा।

मार्क्स ने लिखा है : "...व्यक्ति की श्रम-विभाजन के प्रति दासता और इसके साथ ही मानसिक और शारीरिक श्रम की परस्पर विसंगति के समाप्त हो जाने, जीवन के एक साधन के रूप में नहीं बल्कि जीवन की एक प्रमुख आवश्यकता के रूप में श्रम के परिवर्तित हो जाने, व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के साथ ही उत्पादक शक्तियों में अपार वृद्धि हो जाने और सहकारी सम्पत्ति के अजस्र स्रोत के मुक्त हो जाने के बाद ही समाज अपने पताके पर लिखेगा प्रत्येक व्यक्ति से उसकी क्षमता के अनुसार काम लिया जाये और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार हिस्सा दिया जाये।"[१]

वितरण के कम्युनिस्ट सिद्धान्त की ओर संक्रमण के लिए क्या जरूरी है ?

वितरण के कम्युनिस्ट सिद्धान्त की ओर संक्रमण के लिए सर्वप्रथम यह जरूरी है कि इतना उत्पादन हो कि समाज को विपुल मात्रा में भौतिक एवं सांस्कृतिक सम्पत्ति उपलब्ध हो और प्रत्येक व्यक्ति को हर प्रकार की चीजें उपभोक्ता वस्तुएं—खाद्य पदार्थ, वस्त्र, जूता और सांस्कृतिक एवं कल्याणकारी चीजें—स्कूल, नाट्यशाला, सिनेमा, रेडियो, परिवहन, घर, इत्यादि पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हों। जीवन की अनिवार्य वस्तुओं की विपुलता हो जाने और "प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार हिस्सा देने" के सिद्धान्त के व्यवहार में आने का मतलब है कि प्रत्येक व्यक्ति को (समाज में उसकी स्थिति और उसके काम की मात्रा और किस्म जो भी हो) समाज से अपनी आवश्यकतानुसार हर चीज प्राप्त होगी। आवश्यकता के अनुसार वितरण के कम्युनिस्ट सिद्धान्त की व्याख्या पूंजीवादी भोंडे दृष्टिकोण से नहीं की जा सकती कि हर आदमी को हर चीज उसकी इच्छानुसार मात्रा में मिले। आवश्यकता के अनुसार वितरण का मतलब है कि कम्युनिज्म के अन्तर्गत सामूहिक जीवन के नियमों को मानने वाले सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत मनुष्य की उचित आवश्यकताओं की पूर्ति हो। इसके फलस्वरूप मनुष्य अपने और अपने परिवार के लिए जीवन की अनिवार्य वस्तुएं जुटाने की चिन्ता से मुक्त हो जायेगा।

जब तक समाज के प्रत्येक सदस्य में कम्युनिस्ट चेतना नहीं आती और वह श्रम के प्रति कम्युनिस्ट दृष्टिकोण नहीं अपनाता, तब तक जीवन-यापन के लिए आवश्यक वस्तुओं का कम्युनिस्ट सिद्धान्त के अनुसार वितरण नहीं हो सकता। यह आवश्यक है कि लोग अपनी क्षमता के अनुसार काम करने की आदत डालें।

जब तक वितरण के कम्युनिस्ट सिद्धान्त को अपनाने के लिए आवश्यक परिस्थितियां नहीं उत्पन्न हो जाती, तब तक समाज श्रम और उपभोग की मात्रा

१. मार्क्स और एंगेल्स, "संकलित रचनाएं", खंड २, मास्को, पृष्ठ २४।

पर वह वितरण करेगा और उत्पादन का वितरण काम की मात्रा और किस्म के अनुसार करेगा।

श्रम की मात्रा के अनुसार वितरण श्रम-उत्पादकता, मजदूरी को ऊंचा उठाता तथा उत्पादन शक्तियों के विकास को बढ़ाता है और लोगों को अपनी योग्यता के अनुसार काम करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करता है तथा कम्युनिज्म की ओर प्रगति को बढ़ावा देता है।

वितरण का समाजवादी सिद्धान्त वितरण के कम्युनिस्ट रूपों के विकास में बाधा नहीं डालता, बल्कि उन्हें पूरी तरह प्रोत्साहित करता है। वितरण के कम्युनिस्ट रूप एकाएक पूर्ण विकसित होकर नहीं प्रकट होंगे, बल्कि श्रम के अनुसार वितरण के समाजवादी तरीकों के साथ-साथ विकसित होंगे। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २२वीं कांग्रेस ने बताया कि श्रम के अनुसार वितरण के कम्युनिस्ट सिद्धान्त की ओर संक्रमण क्रमिक रूप में होगा। २२वीं कांग्रेस ने दोनों सिद्धान्तों को संयुक्त रूप से अपनाने पर जोर दिया, क्योंकि जब तक भौतिक सम्पत्ति का उत्पादन विपुल मात्रा में नहीं होगा तब तक श्रम के अनुसार वितरण के सिद्धान्त का परित्याग नहीं होगा। इस सिद्धान्त के परित्याग का मतलब होगा कि सम्पूर्ण संचित साधन खत्म हो जायेंगे और आर्थिक विकास के मार्ग में बाधा पड़ेगी। फलस्वरूप कम्युनिस्ट समाज का निर्माण नहीं हो सकेगा। दोनों सिद्धान्तों को संयुक्त रूप से अपनाने पर समाजवाद से कम्युनिज्म की ओर संक्रमण के दौरान भौतिक और सांस्कृतिक सम्पत्ति का अधिकाधिक भाग सार्वजनिक उपभोग कोष से, काम की मात्रा और किस्म का बिना विचार किये, समाज के सदस्यों में निःशुल्क वितरित होगा।

सार्वजनिक कोष कम्युनिस्ट वितरण का मार्ग

सोवियत संघ की मेहनतकश जनता को सार्वजनिक कोष से अभी ही एक बड़ी राशि प्राप्त हो रही है।

सोवियत संघ में ३६० लाख से अधिक पेंशनयाफ्ता लोगों का भरण-पोषण सार्वजनिक कोष से होता है। करीब ४० लाख से अधिक विद्यार्थियों को राजकीय छात्रवृत्ति और छात्रावास की सुविधाएं प्राप्त हैं। १२० लाख से अधिक मेहनतकश लोग और उनके बच्चे अपनी वार्षिक छुट्टियां आरोग्य-गृहों, अवकाश-गृहों और तरुण पायनियर शिविरों में सामाजिक बीमे और सामूहिक फार्मों के खर्च से बिताते हैं।

१९६४ में सार्वजनिक उपभोग कोष की राशि ३,६६,००० लाख रूबल थी जो १९४० की कुल राजकीय बजट राशि की दुगुनी थी। १९८० में इस मद पर २५,५०,०००—२६,५०,००० लाख रूबल खर्च होंगे।

कम्युनिज्म की ओर सक्रमण के साथ समाज प्रत्येक व्यक्ति का बचपन से
ापे तक अधिक ख्याल करने लगेगा। हर तरह की विशेष चिकित्सा का
ा जायेगा। बच्चों के लिए आवश्यक सस्थाओं का काफी विस्तार होगा
निक परिवार, अगर चाहे तो, अपने हर उम्र के बच्चों को शिक्षा सस्थाओं
ोगा। राज्य, ट्रेड यूनियनें और सामूहिक फार्म अपग या बूढ़ा होने से
ाम करने में अक्षम लोगों का ध्यान रखें।

बाल-संस्थानों और बोर्डिंग स्कूलों में बच्चों का निःशुल्क भरण-पोषण
भिभावक चाहें तो);

सभी शैक्षणिक सस्थाओं में विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा,

सभी नागरिकों को मुफ्त चिकित्सा सेवा, स्वास्थ्य-गृहों में रुग्ण व्यक्तियों
ल्क दवा और चिकित्सा,

अवकाश-गृहों, बोर्डिंगहाउसों, पर्यटक शिविरों और खेलकूद की सुविधाओं
में निरन्तर कमी और आंशिक तौर पर उनका निःशुल्क उपयोग,

को कार्यान्विति की ओर जोर-शोर से अग्रसर होगा।

कम्युनिज्म की ओर सक्रमण के फलस्वरूप उत्पादन-सम्बन्ध विकसित और
ोगें और उपरि-सरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन होंगे।

ामाजवाद से कम्युनिज्म की ओर संक्रमण के दौरान समाज राजनीतिक संगठन, राजकीय संरचना और प्रशासन

ा अनिवार्य तत्व
पूर्ण जनता के
य की ओर

मार्क्सवाद-लेनिनवाद के अनुसार राजसत्ता आर्थिक आधार पर खड़ी राजनीतिक उपरि-सरचना का एक भाग होती है। आर्थिक आधार में परिवर्तन होने पर उपरि-सरचना भी बदलती है।

सोवियत सघ मे समाजवाद की स्थापना के फलस्वरूप देश के जीवन मे और सोवियत समाज की वर्गीय सरचना मे गहरे राजनीतिक परिवर्तन हुए। शोषक वर्गों का उन्मूलन कर दिया गया और सोवियत जनता की राजनीतिक और विचारधारा सम्बधी एकता कायम हुई। फलस्वरूप सोवियत राज्य के कार्यों मे परिवर्तन हो गये।

पूजीवाद से समाजवाद की ओर सक्रमण के दौरान सोवियत सघ मे गैर-सर्वहारा वर्गों के शत्रुतापूर्ण कार्यों को दबाना सोवियत राज्य का एक मुख्य कार्य था। किन्तु इन वर्गों के उन्मूलन के बाद उत्पादन के समाजवादी सम्बधों की जड़ें गहरी हो गयी और सोवियत राज्य का यह कार्य धीरे-धीरे खत्म हो गया।

आर्थिक निर्माण और सगठन, सास्कृतिक विकास और शिक्षा, देश की रक्षा और समाजवादी सम्पत्ति की सुरक्षा समाजवादी राज्य के मुख्य कार्य हो गये हैं। सोवियत विदेश नीति का मुख्य उद्देश्य समाजवाद और कम्युनिज्म के निर्माण के लिए शान्ति की स्थिति बनाये रखना है। सोवियत सघ समाजवादी देशो की एकता और घनिष्ठता को मजबूत करने के लिए काम कर रहा है। वह मुक्ति एव क्रान्तिकारी आन्दोलनो को सहायता दे रहा है, एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के देशो के साथ एकता और सहयोग कायम कर रहा है, भिन्न समाज व्यवस्थाओ वाले राज्यों के बीच शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धान्त को व्यवहार में परिणत कर रहा है और साम्राज्यवादी आक्रामको की योजनाओ को नाकाम बना रहा तथा नये विश्वयुद्ध के खतरे का उन्मूलन कर रहा है।

भविष्य मे राज्य कैसे विकसित होगा? इस प्रश्न पर सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की बाईसवी काग्रेस मे गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे बताया गया है कि सर्वहारा अधिनायकत्व जिसकी स्थापना महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति के परिणामस्वरूप हुई थी, शोषक वर्गों का उन्मूलन करने, समाजवाद को पूरा करने और अन्तिम तौर पर विजयी बनाने तथा सोवियत समाज को पूरे पैमाने के कम्युनिस्ट निर्माण के मार्ग पर अग्रसर करने के बाद आन्तरिक विकास के कार्यों की दृष्टि से आवश्यक नही रह गया है। मजदूर वर्ग के ऐतिहासिक मिशन—कम्युनिज्म की स्थापना—मे अब सम्पूर्ण जनता सम्मिलित हो गयी है। सोवियत समाजवादी राज्य जिसकी स्थापना सर्वहारा अधिनायकत्व के रूप मे हुई, आज सम्पूर्ण जनता का राज्य है। इसके माध्यम से सम्पूर्ण जनता की इच्छा अभिव्यक्त होती है।

समाजवाद की पूर्ण और अन्तिम विजय के बाद सर्वहारा अधिनायकत्व के जरिए मजदूर वर्ग को पथ-प्रदर्शक की भूमिका अदा करने की जरूरत नही रह जाती है। इसकी नेतृत्वकारी भूमिका इसकी आर्थिक स्थिति और इसके प्रत्यक्षतः

सोवियत संघ में समाजवादी जनवाद मेहनतकश जनता का वास्तविक जनवादी शासन है। इसका हर साल विस्तार और विकास हो रहा है। हाल के वर्षों में कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत सरकार ने कई महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं। ये कदम समाजवादी जनवाद की महान प्रगति के सूचक हैं।

सोवियतें और सरकार के जनवादी सिद्धान्तों का विकास

सघ जनतत्रो को आर्थिक और सास्कृतिक विकास के लिए काफी अधिकार दिये गये हैं। सोवियत सघ के आर्थिक और सास्कृतिक क्षेत्र मे नेतृत्व की अत्यधिक केन्द्रीयता को दूर किया गया है। स्थानीय पहल को अधिकतम प्रोत्साहन दिया गया है। स्थानीय सोवियतों को अतिरिक्त अधिकार दिये गये हैं। समाजवादी वैधानिकता के उल्लघन को खत्म कर दिया गया है। सामूहिक फार्मों की पहल और उनके सदस्यो को प्रोत्साहित करने तथा कृषि उत्पादन के नियोजन की प्रक्रिया मे सुधार करने के लिए पार्टी ने महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं।

समाजवाद से कम्युनिज्म की ओर सक्रमण के दौरान राजकीय कार्यों मे मेहनतकश जनता का सक्रिय सहयोग बढ़ता जायेगा। सोवियतों से आशा की जाती है कि वे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेंगी। हम जानते हैं कि जनता के हितो की रक्षा और प्रतिनिधित्व सोवियतें करती हैं।

सोवियतों मे शहरो और गावो की सम्पूर्ण मेहनतकश जनता शामिल होती है। वे जनता के व्यापक सगठन और उनकी एकता के प्रतीक है। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम मे बताया गया है कि कम्युनिज्म के निर्माण के दौरान सोवियनो की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जायेगी। सोवियतो मे राज्य और सामाजिक सरचना की विशेषताए सयुक्त रूप से समन्वित हैं, किन्तु वे सार्वजनिक सगठनो के रूप मे ही काय करेंगी। आम जनता का उनके कार्यों मे व्यापक और प्रत्यक्ष सहयोग होगा।

पूरे पैमाने पर कम्युनिस्ट निर्माण-कार्य प्रारम्भ होने पर अर्थव्यवस्था और सस्कृति के मार्ग-दर्शक राजकीय प्रशासन संगठनों का विशेष महत्व हो जाता है। उनका भविष्य व्यापक है। किन्तु कम्युनिज्म के अन्तर्गत उनका राजनीतिक स्वरूप खत्म हो जायेगा। वे आर्थिक और सास्कृतिक जीवन की व्यापक और बहुविध प्रक्रियाओ का निर्देशन करने वाले स्वयशासित सार्वजनिक सगठन वन जायेगे।

राजकाज मे मेहनतकश जनता के सक्रिय हिस्सा लेने और उनके अधिकाधिक नियत्रण के फलस्वरूप राजकीय और आर्थिक यत्रो के कार्यों मे सुधार होता है। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के दिसम्बर १६६५ के

पूर्णाधिवेशन मे पार्टी एव राजकीय नियंत्रण के मुख्य माध्यमो को सार्वजनिक नियत्रणों के माध्यमो के रूप मे परिवर्तित करने के लिए निर्णय लिये गये थे। राजकीय कार्यों के प्रशासन मे अधिकाधिक लोगो को शामिल करने, पार्टी और सरकार के निर्देशनो की लगातार प्रशासनिक, आर्थिक और अन्य सगठनो द्वारा व्यवस्थित रूप से जाच करने, राजकीय अनुशासन दृढ़ करने तथा समाजवादी कानून के पालन की व्यवस्था करने के लिए कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत सरकार के हाथो मे ये प्रभावकारी साधन होगे।

जन-सगठनो की दिनो-दिन बढती भूमिका

पूरे पैमाने पर कम्युनिस्ट निर्माण के दौरान जन-सगठनो की भूमिका काफी महत्वपूर्ण हो जाती है। अभी राजकीय विभागो द्वारा किये जाने वाले बहुत-से कार्यों के सम्पादन के लिए वे उत्तरदायी हो जायेगे।

अभी ही मेहनतकश जनता के सबसे बडे सगठन के रूप मे ट्रेड यूनियनो के अधिकार, महत्व और उनकी भूमिका काफी बढ गयी है। उदाहरण के लिए, वे उत्पादन सम्बधी समस्याओ को सुलझाने (जैसे काम और मजूरी की दर का निर्धारण, उद्योग मे मजदूरों को सुरक्षा और स्वास्थ्य-सेवाए प्रदान करना, औद्योगिक, व्यावसायिक एव अन्य मजदूरो के विश्राम और मन-बहलाव का इन्तजाम, आदि) मे अधिक सलग्न हैं। उन्होने पर्याप्त सख्या मे सांस्कृतिक सस्थानो, स्वास्थ्य-विहारों, स्वास्थ्य-गृहो, अवकाश-गृहो तथा अनगिनत क्रीडा-सस्थाओ का निर्माण किया है।

ट्रेड यूनियनो के माध्यम से औद्योगिक, दफ्तर के और व्यावसायिक कर्मचारी आर्थिक क्रियाओ को अधिकाधिक प्रभावित कर रहे हैं। वे औद्योगिक उद्यमो के काम मे सुधार लाने और उत्पादन को नियत्रित करने मे सहायता दे रहे हैं।

यह आवश्यक है कि जन-सगठनो को शहरो और औद्योगिक एव कृषि केन्द्रों मे शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने और गुण्डागर्दी, अपराध तथा समाज-विरोधी तत्वों के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए अधिकार मिलें।

जन-सगठनो को उत्तरोत्तर बडी भूमिका अदा करनी है। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम ने सास्कृतिक एव स्वास्थ्य सस्थानो के प्रबन्ध मे उन्हे अधिकाधिक हिस्सा देने की बात कही है। कार्यक्रम ने कहा है कि अगले कुछ वर्षों मे नाट्यगृह, सिनेमा, सगीत-गोष्ठी भवन, क्लब, पुस्तकालय और अन्य सास्कृतिक एव शैक्षणिक सस्थाओ (जो अभी राज्य के नियत्रण मे है) का प्रबन्ध उन्हे सौप दिया जाये। शान्ति और व्यवस्था (सामाजिक जन-स्वयसेवक दलो तथा मैत्रीपूर्ण न्यायालयो द्वारा) बनाये रखने के लिए उन्हे अधिकार प्रदान किये जाये।

समाजवादी जनवाद के चतुर्दिक विकास और उन्नति के फलस्वरूप बहुत बड़ी संख्या में मेहनतकश जनता समाजवादी उत्पादन के प्रबन्ध में हिस्सा लेगी।

सभी राजकीय उद्यमों और समस्त निर्माण-स्थलों पर स्थायी उत्पादन सम्मेलनों और समितियों की स्थापना की गयी है। ये लोगों को उत्पादन प्रबन्ध की ओर आकर्षित करती हैं। इसके फलस्वरूप "एक व्यक्ति के प्रबन्ध" के सिद्धान्त को "नीचे से जन-नियंत्रण" के साथ जोड़ दिया जाता है। इस तरह प्रबन्धक मेहनतकश जनता के अनुभवों से लाभ उठाते हैं। उनकी सुदृढ़ता इस बात में निहित है कि उनका काम औद्योगिक एवं आर्थिक कर्मचारियों, इंजीनियरों और तकनीशियनों और प्रशासन, पार्टी तथा तरुण कम्युनिस्ट लीग के प्रतिनिधियों के पूर्ण सहयोग द्वारा चलता है।

इसी तरह पूरे पैमाने पर कम्युनिस्ट निर्माण-कार्य के दौरान समाजवादी राज्य-तंत्र के निरन्तर विकास के लिए अत्यन्त अनुकूल स्थितियां पैदा होती हैं।

कम्युनिज्म और राजसत्ता

समाजवादी राज्य-तंत्र अपने क्रमिक विकास के फलस्वरूप कम्युनिस्ट सामाजिक प्रशासन में बदल जायेगा। इसके अन्तर्गत तब सोवियतें, ट्रेड यूनियनें, सहकारी समितियां और मजदूर वर्ग के अन्य जन-संगठन शामिल होंगे।

जहां तक आर्थिक और सांस्कृतिक प्रबन्ध का प्रश्न है, कम्युनिज्म में भी वे सार्वजनिक कार्य रहेंगे जिन्हें अभी राज्य करता है, किन्तु समाज के विकास के साथ-साथ उनमें परिवर्तन होगा और पूर्णता आयेगी। कार्यों का चरित्र और उनको सम्पादित करने के तरीके कम्युनिस्ट समाज में भिन्न होंगे। वर्तमान समय में नियोजन, लेखा, आर्थिक प्रबन्ध और सांस्कृतिक विकास के कार्यों के लिए सरकारी विभाग जिम्मेदार हैं। कम्युनिस्ट समाज में इनका राजनीतिक पक्ष खत्म हो जायेगा और वे सामाजिक प्रशासन के अंग बन जायेंगे। इस तरह राज्य के मुरझा जाने का मतलब उसका पूरी तरह लुप्त हो जाना नहीं है, बल्कि राज्य के अंगों का कम्युनिस्ट सामाजिक प्रशासन के रूप में द्वन्द्वात्मक विकास है।

पूर्ण विकसित कम्युनिस्ट समाज की स्थापना के बाद आन्तरिक स्थितियों को देखते हुए राज्य आवश्यक नहीं रह जायेगा, किन्तु बाहरी स्थितियों को देखते हुए राज्य तभी लुप्त होगा जब कम्युनिज्म सारे विश्व के पैमाने पर विजयी होगा। जब तक साम्राज्यवाद और साम्राज्यवादी देश हैं, हथियारबन्द फौज जैसे राज्य के अंग को पूरी तरह मजबूत बनाना होगा। इसलिए कम्युनिज्म के अन्तर्गत भी राज्य तब तक बना रहेगा, जब तक साम्राज्यवादी आक्रमण का खतरा रहेगा। स्पष्ट है कि राज्य के पूरी तरह लुप्त हो जाने के लिए आन्तरिक स्थितियां यानी

करती है कि काम का सचालन और नियोजन वैज्ञानिक आधार पर हो।

❁ ❁ ❁

कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व मे सोवियत जनता अपने उज्ज्वल भवि॰
कम्युनिज्म का निर्माण कर रही है।

कोई सौ वर्ष से अधिक हुए, सर्वहारा वर्ग के महान शिक्षकों, मार्क्स
एगेल्स ने कम्युनिस्ट घोषणापत्र में लिखा था : "एक हौआ—कम्युनिज्म का
—यूरोप को आतंकित कर रहा है।" सभी देशो की मेहनतकश जनता के वी
पूर्ण, नि.स्वार्थ सघर्ष ने समस्त मानवजाति को कम्युनिज्म के नजदीक ला
है। कम्युनिज्म तक आने के लिए एक लम्बे और जनता के सुख के लिए स
करने वाले बहादुरो के रक्त से सने मार्ग को तय करना पड़ा है। कम्युनिज्म
पुराना सपना आज सबसे बडी शक्ति बन गया है। आज एक विशाल भूभाग
कम्युनिस्ट समाज का निर्माण हो रहा है।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनी २२वी काग्रेस में हर्ष के
घोषणा की : "सोवियत जनता की वर्तमान पीढ़ी कम्युनिज्म के अन्तर्गत जी
यापन करेगी!" सोवियत सघ मे कम्युनिज्म का पूर्ण निर्माण मानवजाति के इ
हास मे उसकी महानतम उपलब्धि होगा।

कम्युनिज्म की ओर सोवियत जनता का हर लम्बा डग पूंजीवादी देश
सामाजिक और राष्ट्रीय उत्पीडन के खिलाफ सघर्ष करने वाली मेहनतकश ज
को प्रेरणा देता है और सारे विश्व के पैमाने पर मार्क्सवाद-लेनिनवाद के, कम्यु
के विचारों की विजय को नजदीक लाता है।

कम्युनिज्म का मार्ग विश्व के जनगण का मार्ग है। पूंजीवाद से कम्यु
की ओर आगे बढने का यह मार्ग मानवीय प्रगति का मार्ग है।